भारत में मुस्लिम सुल्तान

1



पुरुषोत्तम नागेश ओक





लेखक की रचनाएँ—

कौन कहता है अकबर महान था?
विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय
भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें
ताजमहल मन्दिर भवन था
भारत में मुस्लिम सुलतान-१
भारत में मुस्लिम सुलतान-२
लखनऊ के इमामबाड़े हिन्दू भवन हैं
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-१
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-२
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-३
वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास-४
दिल्ली का लाल किला लाल कोट था
फल ज्योतिष (ज्योतिष विज्ञान पर अनूठी पुस्तक)
फतेहपुर सीकरी हिन्दू नगर है

भारत में मुस्लिम सुलतान

[भाग १]

लेखक

पुरुषोत्तम नागेश ओक

अध्यक्ष

भारतीय इतिहास पुनर्लेखन संस्थान

अनुवादक

जगमोहनराव भट्ट

हिन्दी साहित्य सदन

नई दिल्ली–110 005

मूल्य : 85.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन / टैलीफैक्स : 23553624/23551344
e-mail : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2010

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

अनुक्रम

दो शब्द

ईसा की सातवीं शताब्दी में जब अरब तथा उसके पड़ोसी देशों से असभ्य तथा बर्बर लोगों के गिरोह भारत में आने शुरू हुए थे तब से लेकर उस समय तक के भारत के इतिहास का अध्ययन —जबतक देश-भक्ति की भावना से पूर्ण शक्तियों ने उन्हें अन्ततः निश्चल तथा निर्वीर्य न बना दिया—बड़ा विषादपूर्ण और बीभत्स है।

भारत में प्रवेश कर ये बर्बर गिरोह दीमक तथा टिड्डी-दल के समान इस देश को चट कर गए। वहाँ के राजप्रासादों तथा सुरम्य भवनों में दूध और शहद की नदियाँ बहती थीं और जो स्वर्ण तथा हीरे-मोतियों से सुसज्जित तथा प्रकाशवान थे, उस देश को इन्होंने खुली नालियों, झोपड़ियों, और कच्चे मकानों वाली गन्दी बस्ती में परिवर्तित कर दिया।

भारतीय इतिहास के कपटवेश में इस काल के जो वृत्तान्त विश्वभर के स्कूलों, कालिजों और शोध-संस्थाओं में पढ़ाए जाते हैं वे तब जले पर और भी नमक छिड़कते हैं जब उनमें इस सहस्राबदी को इस आधार पर स्वर्णयुग बताया जाता है कि तब अरबी और फारसी संस्कृतियों का भारतीय संस्कृति (एवमेव) के साथ यशस्वी (एवमेव) संयोजन हुआ था।

वस्तुतः नृशंस तथा क्रूर जत्थों द्वारा हिंसात्मक व्यवहारों और ध्वंसों, हत्याओं और सामूहिक नरसंहारों, अपहरण, लूटमार और चोरियों, बलात्कारों और डाकों, यातनाओं तथा क्रूर पीड़ाओं का ७वीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी ईसा तक का यह १००० वर्षों का समय बड़ा दुर्भाग्यपूर्ण था। पर यह चित्रण तब और भी भ्रष्ट हो जाता है जब इस युग को भारत का सौभाग्य बताया जाता है।

हमने उपर्युक्त इस दावे के समर्थन के पक्ष में आतुरता से साक्ष्यों की

खोज की पर महान् आश्चर्य है कि उन विदेशी चापलूस द्वारा लिखे गये पक्षपात युक्त वृत्तों में भी हमें एक भी साक्ष्य न मिला, जिन्होंने विदेशियों द्वारा किए गये पापों और अपराधों की लूट में दिल खोलकर भाग लिया था। इन वृत्तों में तो मात्र शराब के नशे में चूर और अफ़ीम के नशे में धुत ऐयाशों का सिंहासनों पर कब्जा करने वाले बहुरूपियों को थैलियों में कटे हुए सिर पेश करने का, हर युद्ध और विद्रोह के बाद सामूहिक नर-संहार में काटे गये सिरों की मीनारों का, हरमों और वेश्यागृहों में जहाँ हज़ारों की संख्या में स्त्री और पुरुष गुलाम रहते थे, कामुकतापूर्ण रंगरेलियों और अप्राकृतिक व्यभिचार का, दानवीय यातनाओं द्वारा हत्या तथा आँखें फोड़ने का, छुरे या गर्म सलाखों के बल पर बलात्कार का भय दिखाकर सामूहिक धर्म परिवर्तन का, घूसखोरी और भ्रष्टचार का, चोरी और डकैती का, और भारत की सम्पदा लूटकर अरब, अबीसीनिया, इराक़, फारस, अफ़गानिस्तान और तुर्की ले जाने का और हिन्दुओं के घोड़े की सवारी करने पर रोक लगाने का, अपने वस्त्रों पर एक अपमानजनक रंगीन धब्बा लगाकर चलने को बाध्य करके उन्हें उनकी अपनी ही मातृभूमि में तिरस्करणीय गुलाम और गुंडों के रूप में दागने का, उनकी स्त्रियों और बच्चों के अपहरण और हज़ारों की संख्या में गुलामों के रूप में बेचे जाने का और इसी तरह हथियाई गई सम्पत्ति और मनुष्यों का विदेशी जत्थों के नेताओं और उनके अनुचरों के मध्य १ : ५ और ४ : ५ के अनुपात में विभाजन का वर्णन है।

जिन लोगों को यह सब वर्णन बड़ा कठोर, अतिवादी और एक-पक्षीय लगे उन्हें हम यह बताना चाहेंगे कि अपने समस्त वर्णन में हमने एक भी उपाख्यान को अतिरंजित करने की या तथ्यों को घटाने-बढ़ाने की कोई चेष्टा नहीं की है। भारत में मुस्लिम युग का इतिहास इतना रक्तरंजित है कि कोई इतिहासकार उसे 'रंगना' भी चाहे तो ऐसा करने की कोई गुंजाइश नहीं है। हर शासन ऐसा पागलखाना था और विभिन्न शासनों के मध्यवर्ती कालों में जो हो-हुल्लड़ था वह इतना पाशविकतापूर्ण था कि सर्वाधिक कल्पनाशील लेखक को भी भारत में विदेशी कुशासन के इन १००० वर्षों के किसी भी वर्णन में इससे अधिक अशुभ घटनाओं को जोड़ने अथवा उनकी कल्पना करने की गुंजाइश ही नहीं है।

वास्तव में यथार्थ घटनाएँ स्वयं में इतनी नृशंस, असंख्य और सुदीर्घ

थीं और विदेशी वृत्तकार इतने पक्षपाती थे कि हमारे पास तक पहुँचने वाले विवरण उस दुर्भाग्य के, जो हिन्दुत्त्व को उन लोगों के हाथ १००० वर्षों के दौरान भोगना पड़ा, मात्र नमूने हैं। इन लोगों का तो अन्धविश्वास था कि इस्लामी जन्नत प्राप्त करने का एकमात्र रास्ता यही था कि इसी भूमि पर हिन्दुओं के लिए नरक बना दिया जाये।

मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त-लेखकों की तथ्य-गोपन तथा अपकथन या मिथ्या सुझावों की प्रवृत्ति इतनी पूर्णता को पहुँची हुई थी कि महान् ब्रिटिश इतिहासकार सर एच० एम० इलियट को बाध्य होकर उनका मूल्यांकन निर्लज्ज, ढीठ और पक्षपातपूर्ण कपट के रूप में करना पड़ा। फिर भी हमने अपने आपको उनके अपने ही धर्म-बन्धुओं के तत्कालीन काले कारनामों का वर्णन करने के लिए विदेशी पक्षपाती वृत्त-लेखकों के ही उद्धरणों का हवाला देने तक सीमित रखा है। हम इसके अतिरिक्त और कुछ कर भी नहीं सकते थे, कारण उस समय हम स्वयं तो उपस्थित थे नहीं। इससे पाठक को आश्वस्त हो जाना चाहिए कि वह जो कुछ अगले पृष्ठों में पढ़ेगा वह भारत में मध्ययुगीन विदेशी शासन के सर्वेक्षण के बेतरतीब नमूने मात्र और न्यूनोक्ति होगी और किसी भी रूप में उस समय के यन्त्रणापूर्ण दिनों के संत्रास और आतंक का विस्तृत विवरण न होगा।

यदि पाठक को विभिन्न अध्यायों में "हत्या, बलात्कार और नर संहार" जैसे शब्द बार-बार दोहराए गये मिलें तो इसका कारण यह है कि १००० वर्ष की इस अवधि में नृशंस आक्रांताओं के दलों ने इन निन्दनीय कृत्यों को बार-बार दुहराया।

मनुष्य की वाणी उस समय की असीम यातना और दुर्भाग्य का वर्णन करने में असमर्थ है। उस समय शासन तथा धर्म के संरक्षण में बर्बरता असंख्य रूपों में छाई हुई थी।

चापलूस वृत्त-लेखकों ने अपने यदा-कदा प्रत्येक विदेशी बदमाश के—जिसने राजा या दरबारी के रूप में कपट वेश धारण किया—प्रशंसा के पुल बाँधकर और उसे "न्यायप्रिय बुद्धिमान तथा दयालु" कहकर अपने रक्तरंजित विवरणों को नया मोड़ देने का ध्यान रखा है। यह श्रेय और प्रशस्तियाँ अन्ध देशभक्तिपूर्ण, धर्मान्ध, पक्षपाती और घिघयाने वाली श्रद्धांजलियों से अधिक कुछ नहीं हैं। इसका स्पष्ट प्रमाण इस तथ्य से

मिलता है कि यह वर्णन करने के बाद वृत्त-लेखक उस विभीषिकापूर्ण नाटक का वर्णन करने लगते हैं जिसका आयोजन विदेशी आक्रान्ता अपूर्व सफलता तथा जोश से करते थे।

विश्व भर में भारतीय इतिहास का पठन-पाठन करने वाले सभी व्यक्तियों का आज एक महान् उत्तरदायित्व है। उन्हें भारतीय इतिहास की गन्द-भरी अश्वशाला को पक्षपात, झूठ, न्यूनोक्तियों, विकृतियों, दमन और भ्रामकता की गन्दगी हटाकर स्वच्छ बनाने का दुष्कर कार्य करना है। यह कार्य कितना ही कष्टदायक क्यों न हो और इतने लम्बे समय के बाद इस कड़वे सत्य को स्वीकार करने का कर्तव्य ही पिछड़ापन समझा जाये पर इतिहास के अभिलेखों को ठीक रखने के लिए यह कार्य करना ही होगा।

आधुनिक भारतीय लेखकों ने भारतीय इतिहास की घटनाओं को जिस खूबी से तोड़-मरोड़कर बर्बर कृत्यों को 'गौरव' का परिधान पहनाया है, उससे स्पष्ट होता है कि ये लेखकगण प्रशासक, राजनीतिज्ञ और साम्प्रदायिक व्यक्ति थे। वे इतिहासकार न थे क्योंकि उनका कार्य तो सच्चाई, पूर्ण सच्चाई और सचचाई के अतिरिक्त और कुछ नहीं—का लेखा-जोखा करना होता है। वे "साम्प्रदायिक एकता और सद्भाव", "बीती ताहि बिसार दे" और "भूल जाओ और क्षमा करो" के बुलन्द नारों से गुमराह हो गये थे। पर यह नहीं भूलना चाहिए कि इतिहासकार न महात्मा होता है न राजनीतिज्ञ। इतिहासकार का काम तो अतीत को खोदना है और इसलिए एक सच्चे और ईमानदार इतिहासकार का कर्तव्य है कि तथ्यों तथा घटनाओं का उसी रूप में उल्लेख करे जैसी वे घटित हुई हैं। उसे न रक्त-रंजित घटनाओं का गौरव गान करना चाहिए और न ही देशभक्तिपूर्ण व्यवहार की अवमानना करनी चाहिए। उसे अपने ऊपर इतिहास के माध्यम से साम्प्रदायिक सद्भाव बनाए रखने की विशेष जिम्मेवारी नहीं थोपनी चाहिए।

असुविधाजनक घटनाओं को छद्मावरण में प्रस्तुत करने के लिए अथवा उनका बिल्कुल सफ़ाया करने को इतिहासकार को गुमराह करने के लिए बहकाने वाले नारों को सिद्धान्त बनाना इतिहास का कला देवी को साम्प्रदायिक और राजनीतिक उद्देश्यों रूपी वेश्या के स्तर तक गिरा देना है।

हम दिल से चाहते हैं कि भारत के सभी नागरिक, चाहे वे किसी भी धर्म को मानते हों, भारत के राष्ट्रीय सम्प्रदान में अपने को अनुपयुक्त मानने की बजाए भारतीय संस्कृति में संघटित हों तथा उससे तादात्म्य स्थापित करें। पर इस उद्देश्य की पूर्ति इतिहास के उन रक्त-रंजित पैबंदों को मात्र रफू करके, अथवा मध्ययुगीन इतिहास के सन्दर्भ में अन्य दिशा निर्धारित करके अथवा यह ढोंग रचते हुए नहीं की जा सकती कि मध्ययुगीन काल शान्ति, समृद्धि और आदर्श न्यायप्रियता का काल था। इन सभी प्रयत्नों ने विभिन्न भारतीय सम्प्रदायों की दरार को केवल स्थायी करने का काम किया है। साम्प्रदायिक सौहार्द के निर्माण के लिए एक अधिक सहनशील, निश्चित और ईमानदार रास्ता यह है कि इसकी नींव मध्ययुगीन इतिहास के वास्तविक तथ्यों पर रखी जाये।

सबसे पहली और महत्त्वपूर्ण बात यह है कि वर्तमान पीढ़ी के भारतीय मुसलमानों को उन विदेशी लुटेरों से, जिन्होंने १००० वर्ष तक कुकृत्य किए अपना सम्बन्ध या रिश्ता जोड़ने की आवश्यकता नहीं है। इसके तीन कारण हैं—१. जिन विदेशी बर्बरों ने भारत पर आक्रमण किया उन और इन मुसलमानों के बीच कई पीढ़ियों का अन्तर है, २. एक ही धर्म से सम्बन्ध रखने का अर्थ यह नहीं है कि कुकृत्यों में भागीदार बनने की इच्छा महसूस की जाए। उदाहरण के लिए हमारे ही समय में अनेक मुसलमान अपराधी जेलों में पड़े हैं। क्या न्यायप्रिय मुस्लिम नागरिकों का यह कर्तव्य है कि वे धर्म के नाम पर इनसे सम्बन्ध या रिश्ते का दावा करें और जब इन्हें सज़ा मिले तो दुःख अनुभव करें। ३. आज के अधिकांश मुसलमानों का हिन्दुओं से धर्म-परिवर्तन हुआ है। अतः पुनः उन्हें उन विदेशी आक्रान्ताओं और शासकों से तादात्म्य स्थापित करने के लिए बाध्य महसूस करने की आवश्यकता नहीं है, जिन्होंने शताब्दियों पूर्व भारत में आतंक मचाया था।

हिन्दू-मुस्लिम एकता स्थापित करने का सर्वश्रेष्ठ तरीक़ा—यद्यपि यह इतिहास-लेखक अथवा अध्यापक के कार्यक्षत्र में नहीं आता—यह है कि मध्ययुगीन इतिहास की सभी रक्तरंजित तथा दारुण घटनाओं का यथातथ्य उल्लेख हो ताकि वर्तमान और भावी पीढ़ियों को आगाह किया जा सके कि वे इन दुष्कृत्यों की पुनरावृत्ति न करें। वस्तुतः इतिहास की

शिक्षा का प्रमुख उद्देश्य यही है कि मानवता अतीत से भविष्य के लिए सबक़ ले सके। वह उद्देश्य उस समय बिल्कुल असफल हो जाता है जब इतिहास को झूठा और अयथार्थ रूप दिया जाता है। ऊपर से लीपा-पोती किया गया और मुलम्मा चढ़ाया गया इतिहास केवल याददाश्त पर एक रिक्तदन्ती ही नहीं बनता वरन् ख़तरनाक भ्रान्तियों और गर्तों को छिपाने के मार्ग पर अग्रसर करता है।

हिन्दू-मुस्लिम दरार के विरुद्ध शेखचिल्ली के समान विचारों और चेष्टाओं के बावजूद यह दरार बनी ही रही क्योंकि भारतीय इतिहास को प्रशासकों, राजनीतिज्ञों और साम्प्रदायिक लोगों की सनक पूरी करने के लिए अयथार्थ रूप में प्रस्तुत किया गया है। इस अयथार्थ रूप में प्रस्तुतीकरण का परिणाम यह हुआ कि दोनों ही सम्प्रदायों ने अपनी ऐतिहासिक ग्रन्थियाँ बनाए रखा। एक ओर तो मुसलमानों को अरब और अबीसीनिया, कुज़ाकिस्तान और उजबेकिस्तान, तुर्की और ईरान तथा अफगानिस्तान और इराक़ से आए विदेशी आक्रान्ताओं से तादात्म्य स्थापित करने को बाध्य किया गया और दूसरी ओर गैर-मुसलमानों के प्रति उनके द्वारा किए गये कुल बैर के लिए गर्व महसूस कराया गया। उन्हें यह विश्वास दिलाया गया कि उन विदेशी सहधर्मियों की करतूतों से मात्र गौरव की वर्षा होती है। अत: उनके मस्तिष्क में अवचेतन में एक ग्रन्थि निर्मित होती है कि उन्हें यशस्वी (एवमेव) हिंसात्मक व्यवहार और ध्वंस के उस कीर्तिमान की मात्र पुनरावृत्ति और अनुकरण ही नहीं करना अपितु उसे मात करना है। इस प्रकार पूर्ण सद्भावनाएँ रखते हुए भी इतिहास को अयथार्थ रूप में प्रकट करने वाले लोग न मुसलमानों के दोस्त हैं, न हिन्दुओं के। इतिहास को अयथार्थ रूप में प्रकट करने से, हालाँकि वह ऐसा अच्छी-से-अच्छी भावनाओं से करते हैं, वे इस ग्रन्थि को स्थायी और पुष्ट करने में सहायता देते हैं कि एक 'सच्चा' मुसलमान बनने के लिए हर किसी आदमी को हिन्दुओं से घृणा करना तथा इराक़, ईरान, तुर्की और अरब को मूल देश मानना आवश्यक है।

उसी प्रकार हिन्दू भी अपनी ग्रन्थि संजोए रहता है जो उसे गुप्त फोड़े की भाँति पीड़ित करती है। प्रशासकों, राजनीतिज्ञों अथवा सम्प्रदायवादियों द्वारा यह अन्धविश्वास करने के लिए बाध्य किए जाने पर कि

भारत में विदेशी शासकों द्वारा अपनाया गया मध्ययुगीन कुल बैर हिन्दुओं की भलाई के लिए ही था, हिन्दू नागरिक को इस बात पर बड़ा आश्चर्य होता है कि यदि लूट-खसोट, कोड़े लगाकर दासता स्वीकार कराना, अमानवीय यन्त्रणा, पूर्ण अव्यवस्था, अराजकता, बलात्कार, नर-संहार और ध्वंस की इन करतूतों को गौरवपूर्ण कृत्य मानना है तो वास्तविक दुष्कृत्य क्या होंगे !

अपने दैनन्दिन व्यवहार में हम जानते हैं कि यदि किसी व्यक्ति ने जानबूझकर और बार-बार अन्य व्यक्ति के साथ अनुचित व्यवहार किया है तो उन दोनों में सौहार्द स्थापित करने का सबसे अच्छा तरीका यही है कि गलती करने वाला साहस के साथ अपनी गल्तियाँ कबूल करे और भविष्य में उनकी पुनरावृत्ति न करने की कसम खाए। यदि गलती करने वाला दम्भ में लगातार यह मना करता रहे कि उसने कोई गलती नहीं की है या उस पर मुलम्मा चढ़ाता रहे तो वह दूसरे में अपने प्रति न प्रेम उपजा सकता है, न विश्वास। यही बात हिन्दू-मुस्लिम एकता पर भी लागू होती है। आज के मुसलमानों को पुराने समय के विदेशी दुराचारियों से सम्बन्ध स्थापित करने का दावा बिल्कुल नहीं करना चाहिए, यद्यपि यह दुराचार इस्लाम के नाम पर किए गए थे। यदि भारतीय मुसलमान विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं के सम्बन्धी होने का दावा करते हैं तो उन्हें दुष्कृत्यों के लिए उन आक्रान्ताओं की भर्त्सना करनी चाहिए और उनसे गौरवान्वित होने का विचार छोड़ देना चाहिए।

लेकिन यदि ऐसा कोई मुसलमान या हिन्दू है जो विदेशी मध्ययुगीन बर्बरता पर गौरव अनुभव करता हो तो वह स्वतः ही भर्त्सना का पात्र है।

उपर्युक्त अनुरूपता केवल आधुनिक साम्प्रदायिक सम्बन्धों पर आंशिक रूप से लागू होती है क्योंकि हम यह बिल्कुल सुझाना नहीं चाहते कि २०वीं शताब्दी के मुसलमानों ने हिन्दुओं के साथ बुराई की है। हम कहना चाहते हैं कि यदि वे विदेशी मुस्लिम आक्रान्ताओं से कोई भी सम्बन्ध स्थापित करने का दावा करते हैं तो उन्हें कम-से-कम उनके कारनामों के लिए उनकी भर्त्सना करनी चाहिए और उन्हें गौरवान्वित करना छोड़ देना चाहिए।

भारत के मध्ययुगीन मुसलमान राजा और दरबारी सारे समय दूसरे

की गर्दन काटने और अपनी गर्दन बचाने के चक्कर में ही पड़े रहे। जिन पुस्तकों में उस समय के महान् आदर्शवाद, जनकल्याण की कामना, न्याय के लिए आदर्श प्रशासनिक व्यवस्था, राजस्व संग्रह की सुगम व्यवस्था का वर्णन है, वे मात्र शैक्षिक कपट-जाल हैं। उनमें यह बताने का प्रयास किया गया है कि महान् जन-संहार करने वाले मोहम्मद कासिम, गज़नी, गौरी, बाबर, हुमायूँ, अकबर और औरंगजेब जैसे अशिक्षित और शराब तथा अफीम के नशे में धुत रहने वाले पश्चिम एशिया का लम्बा रास्ता तय कर भारत इसलिए आए थे कि वे अपनी आदर्श शासन-व्यवस्था का परिचय दे सकें।

भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें ऐसी अनेक असंगतियों से भरी हैं कि एक सच्चा इतिहासकार उन्हें छूना भी पसन्द न करेगा।

परीक्षा-पत्र बनाने वालों को भारत में विदेशी मध्ययुगीन शासकों की जनकल्याण प्रयोजनाओं और काल्पनिक आर्थिक सुधारों पर प्रश्न देने बन्द कर देने चाहिए। ईमानदारी से तो वे विद्यार्थियों से मात्र यह पूछ सकते हैं कि प्रत्येक शासक ने किस सीमा तक प्रजाजन और अपने सम्बन्धियों को यन्त्रणा दीं, नरसंहार किया और उनकी खाल उधेड़ी। विद्यार्थियों को मध्ययुगीन मुस्लिम शासन की कुछ काल्पनिक अच्छाइयों का विशद् वर्णन करने को कहना उनसे अभिप्रेरित झूठ को दोहरवाना है।

जनकल्याण पर आधारित प्रशासन की केवल पृथ्वीराज चौहान, राणा प्रताप तथा शिवाजी जैसे देशज शासकों से ही आशा की जा सकती है क्योंकि वे यहाँ की जनता के प्रति उत्तरदायी थे न कि दमिश्क के खलीफा या मक्का के मुल्लाओं के प्रति। देशभक्त शासकों के जो भी उदार दान होंगे उनका विभाजन भारतीयों में होगा, न कि विदेशियों में। इतिहास की परीक्षाओं में, उदाहरण के तौर पर, यह पूछा जाना चाहिए कि पृथ्वी-राज चौहान, राणा प्रताप या शिवाजी ने विदेशी दस्युओं के विरुद्ध युद्ध करने के लिए किस प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्था की; भारत कब से और क्यों दूध और शहद का देश न रहा; एक विशिष्ट काल में भारत से मक्का, बग़दाद, दमिश्क, समरकन्द, बुखारा, गज़नी और काबुल ले जाई गई सम्पत्ति का मूल्य कितना था; कितने कस्बों, नगरों तथा किलों का सफ़ाया किया गया; मध्ययुग में वर्तमान भवनों को कब और किस प्रकार मकबरों और मस्जिदों में परिवर्तित किया गया।

पर इसकी बजाय इतिहास की परीक्षाओं में प्रायः केवल मोहम्मद तुग़लक़, बाबर, शेरशाह और अकबर तथा ब्रिटिश गवर्नर जनरलों जैसे विदेशियों पर ही प्रश्न पूछे जाते हैं। इस प्रकार के व्यवहार से भारतीय इतिहास की परीक्षाएं मात्र ढोंग बन गई हैं क्योंकि जो कुछ विद्यार्थी सीखते हैं वह न 'भारतीय' है, न ही 'इतिहास'।

भारतीय इतिहास का पठन-पाठन करने वाले संभवतः एक अन्य भयंकर भूल से अपरिचित प्रतीक होते हैं। मध्ययुगीन भवनों पर अरबी तथा फ़ारसी में उत्कीर्ण लेखों में यदि किसी मुस्लिम बादशाह अथवा दरबारी द्वारा उन भवनों के स्वामित्व अथवा निर्माण का दावा किया गया है तो उस पर विश्वास नहीं किया जाना चाहिए। इन दावों पर विश्वास करने से पूर्व इनकी सावधानी से जाँच की जानी चाहिए तथा अन्य पुष्ट तथा अविवादग्रस्त साक्ष्यों से इनका मिलान किया जाना चाहिए। यह स्वाभाविक मानव स्वभाव है कि किसी भवन पर बलात् कब्जा करने वाला भागे हुए स्वामी का साइनबोर्ड हटाकर अपना साइनबोर्ड लगा देता है। मध्ययुगीन भवनों पर अरबी तथा फारसी उत्कीर्ण लेख उसी श्रेणी में आते हैं।

उदाहरण के लिए आगरे की तथाकथित जामा मस्जिद पर लगी पटिया में कहा गया है कि यह (जामा मस्जिद) शाहजहाँ की कुमारी कन्या जहाँआरा द्वारा बनाई गई थी जो बुर्के की एकान्त विविक्ति में अकिंचनता और अप्रसिद्धि का जीवन बिताती थी। इस कथन को इसी रूप में सच नहीं मानना चाहिए। वास्तविक शोध से सिद्ध होगा कि यह लेख किसी हथियाए गए हिन्दू महल अथवा मन्दिर पर उत्कीर्ण कर दिया गया है। भवन में जनाने कमरे हैं और एक विशाल तहखाना है जो इसकी गैर-मस्जिद जैसी विशेषताओं के कुछ उदाहरण हैं।

नीचे हम तारीख १३ जून, १९६७ के स्टेट्समेन, कलकत्ता, डाक संस्करण में छपी एक समाचार कथा दे रहे हैं जिससे प्रकट होगा कि सावधानी से जाँच करने के बाद प्रत्येक मध्ययुगीन अरबी तथा फ़ारसी उत्कीर्ण लेख अविश्वसनीय सिद्ध हो जाता है। इस समाचार अंश का शीर्षक है "आगरे में ख़ज़ाने की खोज—हमाम की दीवारों में मुगल सिक्के छिपे बरामद हुए हैं।" नगर की कोतवाली में छोटी ईंटों और मोटे पलस्तर वाली

इमारत की फोटो भी है। आजकल इस भवन में शहर की सबसे बड़ी सब्जी-मण्डी है। सूचना में कहा गया है कि यद्यपि यह भवन अलीवर्दी खाँ के हमाम (स्नानगृह) के नाम से प्रसिद्ध है पर किसी भी तत्कालीन विवरण में ऐसा कोई संदर्भ नहीं मिलता कि यह हमाम अलीवर्दी खाँ ने बनाया था। यद्यपि हमाम के प्रवेश द्वार पर अभी तक उसका नाम खुदा हुआ था।

इस जालसाजी का पता लगाने के बाद भी उस समाचार-पत्र का संवाददाता अपनी मुगल-भीति से ऊपर न उठ सका और इस सचाई पर पहुँचने की बजाय कि वह भवन हड़पा हुआ एक मुस्लिम-पूर्व हिन्दू राज-महल था, संवाददाता ने नाहक निराधार अटकलें लगाना शुरू किया है कि इससे सन्देह होता है कि यह हमाम संभवतः मुमताज़ महल के पिता और शाहजहाँ के वजीर प्रसिद्ध आसफखाँ का था। ऐसा सोचने का एक पुष्ट आधार जहाँगीर के अपने राज्य के १६वें वर्ष के संस्करण हैं जिनमें कहा गया है कि "शाहरीवार की पहली तारीख को आसफखाँ की प्रार्थना पर मैं उसके घर गया और उसके द्वारा हाल ही में बनाए गये हमाम (स्नानगृह) में नहाया।"

स्पष्टतः जिस संवाददाता ने स्टेट्समेन समाचार-पत्र को यह समाचार-अंश दिया उसे सर एच० एम० इलियट द्वारा जहाँगीर के संस्मरणों के प्रसिद्ध अध्ययन की जानकारी न थी। इसमें हर पृष्ठ पर भण्डाफोड़ किया गया है कि यह इतिवृत्त किस प्रकार उन सफेद और सोद्देश्य झूठों का जाल है जिनमें हथियाए गये हिन्दू किलों, नगरों और भवनों का निर्माता होने का आरोपण बड़ी मौज से अपने पिता अकबर पर, अपने पर और विभिन्न मुस्लिम दरबारियों पर किया गया है।

सर एच० एम० इलियट द्वारा जहाँगीर के मूल्यांकन को पढ़े बिना भी उस समाचार-कथा में उल्लिखित इतिहास में इन्दराज की सूक्ष्म जाँच से जहाँगीरनामे की असमर्थता का पता चल सकेगा।

पहली विचारणीय बात है कि मरुस्थलीय परम्परा वाले मुसलमानों ने कभी हमाम (स्नानगृह) बनाए ही नहीं। दूसरी बात यह है कि यह पता लगाने के लिए कि आया उसके पास आगरे में कुछ चीज बनाने के लिए, और वह भी हमाम जैसी विलास-वस्तु बनाने के लिए—पर्याप्त समय, धन, शान्ति, सुरक्षा और स्थायित्व था या नहीं, आसफ खाँ के जीवन और

उसकी वित्तीय स्थिति की सतर्कतापूर्ण जाँच आवश्यक है। ऐसा करना इसलिए और भी आवश्यक है कि वह इच्छा होते ही पास बहती यमुना नदी में आसानी से बिना एक पैसा भी खर्च किए डुबकी लगा सकता था।

एक अन्य प्रश्न यह है कि क्या 'हमाम' इतना बड़ा था कि आगरे जैसे भरे-पूरे आधुनिक नगर की सबसे बड़ी सब्जी मण्डी के लिए उसमें पर्याप्त स्थान उपलब्ध था ?

एक अन्य विचारणीय बात यह है कि यदि इसका निर्माण आसफ खाँ ने किया था तो उत्कीण लेख में इसके निर्माण का श्रेय अलीवर्दी खाँ को क्यों दिया गया है ? क्या इससे यह सिद्ध नहीं होता कि मध्यकालीन मुसलमान परस्पर एक-दूसरे के विरुद्ध भी अपना झूठा दावा पेश करने के लिए जाली लेख खुदवा देते थे ? फिर क्या आश्चर्य है कि उन्होंने उन भवनों के पूर्व-मुस्लिम-पूर्व हिन्दू स्वामियों, निर्माताओं के विरुद्ध भी वैसा ही किया होगा।

अन्य बात यह है कि अलीवर्दी खाँ का झूठा दावा पेश करने वालों को इसकी प्रेरणा इस बात की जानकारी के आधार पर ही मिल सकती थी कि आसफ खाँ ने भी पहले इसे अनधिकृत रूप से ग्रहण करके ही इसपर अपना कब्जा जमाया था।

विवेकशील इतिहासकार को यह प्रश्न भी करना चाहिए कि सम्राट् होते हुए भी जहाँगीर एक दरबारी के घर में स्नान करने क्यों गया ? क्या सम्राट् का अपना कोई हमाम न था और यदि सम्राट् के पास कोई हमाम न था तो एक दरबारी ही उसे कैसे रख सकता था ?

अन्य विचारणीय बात यह है कि जैसा अक्सर होता है, जहाँगीर का वर्णन भी संदिग्ध है। वह कहता है कि वह आसफ खाँ के घर गया और हमाम में स्नान किया जिसका उसने हाल ही में निर्माण कराया था। इससे प्रश्न उठता है कि आसफ खाँ ने वास्तव में घर बनाया था या हमाम। यदि उसने घर बनाया था तो उस हमाम को, जो उसका एक भाग मात्र था, इतना तूल क्यों दिया गया ? यदि उसने बाद में मात्र हमाम बनाया था तो प्रश्न यह है कि शेष भवन किसकी सम्पत्ति था और यदि यह किसी और की सम्पत्ति था तो क्या इसमें पहले स्नान-गृह था ही नहीं ?

यदि इतिहासकार अथवा साधारण लोग भी इन दावों की बुद्धिमत्ता-

पूर्ण समीक्षा करने का ध्यान रखें तो मध्यकालीन भवनों पर ऐसे फर्जी दावों की वास्तविकता का पता लगाना कठिन नहीं है, हालाँकि आज इन्हें मकबरों तथा मस्जिदों के रूप में परिवर्तित कर दिया गया है।

सच्चे इतिहासकार को सच्चाई का हिमायती होना चाहिए। उसे साम्प्रदायिकता की भावना के आधार पर अपनी खोज या शोध रोकनी नहीं चाहिए अथवा समझौता नहीं करना चाहिए। अबतक भारतीय इतिहास के विद्वान् अधिकांशत: इस प्रमुख कर्तव्य से विमुख रहे हैं। बहुत ही कम विद्वानों ने इतिहास के सम्बन्ध में कोई मूल अथवा स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया है। उनमें से अधिकतर विद्वान् काफ़ी समय से प्रचलित उन परम्परागत पक्षपातपूर्ण धारणाओं को स्वीकार करने और उन्हें उसी रूप में दुहराने अथवा उनकी खिचड़ी बनाने में भी संतुष्ट रहे। स्वर्गीय सर एच० एम० इलियट और कीने सच्चे इतिहासकारों के कुछ ज्वलन्त उदाहरण हैं। सही अर्थों में शोध करने वाले प्रत्येक व्यक्ति को इस बात का सूक्ष्म अध्ययन करना चाहिए कि सर एच० एम० इलियट और कीने ने किस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम वृत्तों में वर्णित प्रत्येक विवरण को तोलने, उसकी जाँच करने अथवा उसका मूल्यांकन करने में अपनी विवेकशील क्षमता जागरूक रखी।

पर उनकी भी अपनी सीमाएँ हैं। हम मध्यकालीन मुस्लिम वृत्तों के अध्ययन में सर एच० एम० इलियट के एक दोष की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहेंगे। उन्होंने इन वृत्तों के आठ खण्डीय अध्ययन का नाम रखा है "भारत का इतिहास—उसके अपने इतिहासकारों द्वारा लिखित"। हमारे विचार से यह भयंकर भूल है। हजारों काल्पनिक घोड़े दौड़ाने के बाद भी जहाँगीर, बाबर, तैमूरलंग, बदायूँनी और अबुल फ़जल किसी भी प्रकार 'भारतीय' नहीं हो सकते क्योंकि उन्होंने 'भारतीयों' को सदैव कुत्ते, गुण्डे, चोर, उठाईगीर, गुलाम, डाकू, और निकृष्टम व्यक्ति कहा है। यदि वे भारतीय होते तो उनके वृत्तों में हिन्दुओं के विरुद्ध तुर्कों, अफगानों, अबीसीनियाइयों, अरबों, ईरानियों और मंगोलों का पक्ष न लिया गया होता। उन्होंने हिन्दुओं का बहुत अपमान किया है। उन्होंने हिन्दू विजयों को पराजयों के रूप में और मुस्लिम पराजयों को विजयों के रूप में वर्णित किया है। हिन्दू मन्दिरों के ध्वंस और हिन्दू स्त्रियों के अपहरण पर वे

मोहित न होते। उनका ध्यान सदा मक्का-मदीना की ओर केन्द्रित रहता है। उनका वर्ण्य-विषय विदेशी दरबारी परिषदें ही हैं जो भारत की लूट पर निर्भर रहती थीं। क्या ऐसे वृत्तों को "भारतीय इतिहास" और इसके लेखकों को "भारतीय" कहा जा सकता है ?

यदि सर इलियट इस विषय में जागरूक रहते कि मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त विदेशियों द्वारा भारतीय कलाकृतियों के ध्वंस की क्षमा-याचना मात्र हैं और ये उन लोगों द्वारा लिखे गए हैं जो इन कुकर्मों में सक्रिय भागीदार थे और कलाकृतियों के ध्वंस और लूट में उन्हें भी हिस्सा प्राप्त हुआ था तो उन्हें ऐसी कई अन्य सच्चाइयों का भी पता चलता जो उनके ध्यान में अब न आईं। तथापि सर इलिएट ने स्वयं को महान् इतिहासकार सिद्ध किया है, कारण उनमें पहचानने की कि मध्यकालीन मुस्लिम वृत्त धृष्ट तथा पक्षपातपूर्ण कपट थे बिरली अंतर्दृष्टि तथा महान् साहस था।

हम आशा करते हैं कि इस पुस्तक से पाठकों को मध्यकालीन इतिहास पर पुनर्विचार करने की प्रेरणा मिलेगी, इसकी परम्परागत धारणाओं की पुनः जाँच करने का प्रोत्साहन और तर्क समस्त परिणामों पर पहुँचने का साहस मिलेगा।

एन० १२८, ग्रटर कैलाश I,
नयी दिल्ली-११००४८

—पी० एन० ग्रोक

: १ :

मुहम्मद बिन क़ासिम

मध्य युग के भारतीय इतिहास का वह अंश यदि आप पढ़ें जिसमें लोलुप, अंधविश्वासी अरब इस्लाम का प्रचार करने के बहाने, धरती को रौंदते और खून की नदियाँ बहाते हुए, चारों ओर बिखर रहे थे तो आप भय से काँप उठेंगे।

ये आवारा, खानाबदोश और नैतिकता से हीन लोग हर जगह गए, हर घर में घुसे। उनके एक हाथ में खून से भीगी तलवार थी, दूसरे में जलती मशाल। ये व्यक्तियों को काटते थे, चीखती-चिल्लाती स्त्रियों और बच्चों को व्यभिचार और गुलामी के लिए घसीटते थे। किसी भी धर्म और जाति का यह रूप एक ऐसा कलंक है जिसकी कालिमा शैतान को भी मात करती है।

भारत उन देशों में से एक था जो बुरी तरह जले-झुलसे थे, चीरे-फाड़े गए थे, कुचले-मसले गये थे, पंगु और अपंग बने थे, बन्दी-कैदी बनाए गये थे। भारत ने इनसे अति-मानवीय सामना किया था। ये खूँखार हजार वर्षों के लम्बे अरसे से सागर-तरंगों की भाँति बराबर आ रहे थे। ये दरिन्दे तब तक आते रहे जबतक कि इनके अन्तिम मुसलमान शासक को १८५८ ई० में रंगून की कब्र में सुला नहीं दिया गया।

अबीसीनिया, इराक़, ईरान, अफ़गानिस्तान, कजाकिस्तान, उजबेकिस्तान के बलपूर्वक बनाये गये मुसलमानों के गिरोह ने डाका और खून-खराबी के जीवन में अरबों का साथ दिया था।

इस खूनी गिरोह का एक कुख्यात सरदार था, हरी आँखों वाला १६ वर्षीय शैतान लुटेरा मुहम्मद क़ासिम। यह अर्धचन्द्र अंकित हरे झंडे को उड़ाता हुआ आया था। सिन्धु नदी के दोनों ओर जिस प्रलय की वर्षा उसने की वह वास्तव में शैतानियत का नंगा नाच ही था।

मगर शीघ्र ही उसे ग्रहण भी लग गया। उसने दो किशोरी हिन्दू बालाओं का अपहरण किया। उन्होंने अपने बुद्धि बल से उसे— "जिस अवस्था में और जहाँ कहीं भी वह था"—घसीटकर सेना से दूर करवा दिया। ताजे साँड के चमड़े में उसे सी दिया गया। दम घुटकर वह एक दर्दनाक मौत मरा। वह आतंककारी, नर-भक्षी और नारी-व्यभिचारी उन बालाओं के चरणों पर ठण्डा हो गया। अपने विश्वसनीय जल्लाद को मौत के घाट उतारने वाला ख़लीफ़ा वालिद सदमे से मर गया। परवर्ती ख़लीफ़ा सुलेमान की उन्हें भोगने की बड़ी प्रबल अभिलाषा थी। पर प्राणों के भय से वह उनकी इज्ज़त से खेलने का साहस ही नहीं जुटा सका। अपने क्रोध की विवशता में, शैतानहन्ता उन वीर बालाओं को उसने भयंकर यातनाएँ दीं। इस नारकीय, दु:खान्त दृश्य का उपसंहार भी हुआ। सुलेमान ने उन वीरांगनाओं को घोड़ों की पूँछ से बाँधकर दमिश्क की सड़कों पर घसीटने की आज्ञा दी। उनका कमनीय तन चिथड़े-चिथड़े हो गया। आत्मा अनन्त में समा गई। परन्तु फिर भी उन्हें इस बात का पूर्ण सन्तोष था कि बालाएँ होते हुए भी, आसुरी पंजों में जकड़े जाने के बावजूद भी, प्रतिकूल परिस्थितियों में उलझने के बाद भी, वे अपने देश और धर्म की रक्षा में अटल रहीं। उन्होंने बहादुरी का बेहतरीन नमूना दिखाकर अपने शत्रुओं से पूरा-पूरा प्रतिशोध लिया था।

वर्षों के लम्बे प्रयास के बाद ही क़ासिम का शैतानी प्रवेश भारत में हो सका था। अरबों ने भारत को लूटने की बीभत्स योजना अन्तर्राष्ट्रीय आधार पर ६ठी शताब्दी में बनाई थी। अनेक शताब्दियों तक अरब-वासी टिड्डी दल की तरह भारत में प्रविष्ट होकर आतंक फैलाते रहे और इसकी उपजाऊ भूमि को चूसते रहे। इतिहास ही नहीं, भूगोल के साथ भी उन्होंने व्यभिचार और खिलवाड़ ही किया। पुष्ट, दुष्ट, कामी, अनपढ़, बेकार, अधम और नीच अरब बुराई में बह गए, नशाखोरी में डूब गए। व्यभिचार, बलात्कार और लूट में लिप्त हो गए। इस्लाम धर्म के नाम पर यह एक अन्तर्राष्ट्रीय स्तर की सुसंगठित डकैती थी। यह काम था एक शैतान का, पर उसने धर्म की चादर ओढ़ रखी थी।

अरबी इतिहासकार 'तारिख़ी मासूमी', 'मुजामलुत तवारिख़ी', और 'अल्‌बिलादुरी' की 'फुतुहुल्‌ बुलदन' के अनुसार दमिश्क के धार्मिक मुख्यालय

के भौतिक प्रधान ख़लीफ़ा ने इराक़ स्थित बग़दाद के उपप्रधान की सहायता से इन लूट-पाट के कार्यक्रमों को नियोजित किया था।

६३६ ई० में ख़लीफ़ा उमर ने भारत पर प्रथम आक्रमण करवाया था। परन्तु वह स्वयं दूर ही एक सुरक्षित स्थान पर रहा। गिरोह के जंगी नेता का नाम भी उमर ही था। उसके गिरोह ने बम्बई के समीप थाना पर झपट्टा मारा। मगर भारत की प्रतिरक्षा प्रबल थी। एक भी शत्रु वापिस नहीं लौट सका।

कुछ वर्षों के बाद दूसरे लुटेरे गिरोह को 'ब्रोच' भेजा गया। उनके हाकिम की हिम्मत यहाँ भी साथ आने की नहीं हुई। प्रायः सभी लुटेरे मारे गए।

भारत की सुरक्षा को भेदता हुआ एक दूसरा अरबी गिरोह उत्तर की ओर बढ़ा। इसने देवालय अर्थात् देवालयपुर पर धावा किया। इसे आज-कल कराँची कहते हैं। यहाँ सुरक्षा के देवता का विशाल गुम्बद वाला एक मन्दिर था। इसीलिए इसे देवालयपुर कहते थे। इसके ऊँचे स्तम्भ पर लहराता भगवा-ध्वज मीलों दूर से दिखाई देता था। झूठे लड़ाकू दावे की परम्परा के साथ-साथ चलते हुए अरबी इतिहास 'फ़ुतुहुल् बुलदन' ने दावा किया है कि डकैतों के गिरोहपति मुग़ीरा ने "शत्रु" (हिन्दू) का सफ़ाया कर दिया। इसके बाद विस्तृत वर्णनों (लूट-पाट का पूरा विवरण) का अभाव रहा। साथ ही एक परवर्ती भेदिये का काँपता बयान हिन्दुओं के सफ़ाये के इस दावे को झूठा प्रमाणित करता है। पहले के दो अभियानों की भाँति यह अभियान भी पूर्ण रूप से विफल रहा। आक्रमणकारियों को पीस दिया गया।

इस समय तक ख़लीफ़ा की गद्दी पर उसमान आ चुका था। उसने अब्दुल्ला को इराक़ का शासक नियुक्त किया। आक्रमण का खतरा न उठा, उसने अब्दुल्ला को भारतीय सीमा पर जासूसों की टोली भेजने का आदेश दिया। पूर्वाक्रिमणों में हाकिम भी था, अतएव इस टोली का नेता भी उसे ही बनाया गया। स्पष्ट है कि हाकिम को चौकस हिन्दू पहरेदारों ने बन्दी बना लिया। उसे कड़ा दंड भी दिया गया था क्योंकि वापिस लौटने पर वह पूर्ण रूप से असन्तुलित था। उससे बारम्बार और तरह-तरह से उलट-पुलट कर प्रश्न पूछे गए, पर ख़लीफ़ा के सामने वह बार-बार यही

रटता रहा—"पानी का पूर्ण अभाव है, फल इक्के-दुक्के होते हैं, डाकू (हिन्दू) बहुत बहादुर हैं। अगर थोड़ी सेना भेजी जाएगी तो वह मार दी जाएगी। अधिक भेजी जाएगी तो वह खुद भूखों मर जाएगी।" बात साफ़ है कि हिन्दुओं ने हाकिम में अल्लाह का भय कूट-कूटकर भर दिया था। इसी कारण उसने ख़लीफ़ा के सामने भारत का बड़ा अवसादपूर्ण चित्र अंकित किया। निराश और हताश होकर इस ख़लीफ़ा ने और आक्रमण करने का विचार ही त्याग दिया।

कामुकता का षड्यन्त्र—अब अली ख़लीफ़ा बना। उसने इस दिशा में पुनः विचार किया। भारत की सुन्दर नारियों का लुभावना रूप और धन-वैभव, ये दो ऐसे प्रबल आकर्षण थे जिसे लोलुप अरबवासी अधिक दिनों तक रोक न सके।

इनकी आक्रमण-पद्धति एक साँचे में ढली हुई थी। जल हो या थल, अरबी लुटेरों की बस एक ही पद्धति थी। शहरों पर धावा करना, मनुष्यों को मार देना, स्त्रियों का अपहरण करना, बच्चों को उड़ा लाना, भवन, ग्राम और जहाज़ों को जला देना, सारी सम्पत्ति छीन लेना, हिन्दू मन्दिरों को मस्जिद बना देना और सभी मनुष्यों को मार-पीट, धमका-डराकर मुसलमान बना लेना या फिर मार देना।

यह एक सनक थी। मगर धन और औरतों की अपनी प्यास बुझाने का यह तरीक़ा आसान या। अली ने ६५९ ई० में अब्दी के साथ एक शक्तिशाली गिरोह धावा करने के लिए भेजा। इतिहासकार कहते हैं—"अब्दी विजयी हुआ। लूट का धन पाया, लोगों को बन्दी बनाया और एक दिन में १ हजार सिरों को (हिन्दुओं के सिरों को) काटकर बिखेर दिया। कुछ लोगों को छोड़कर वह अपने सारे साथियों समेत कीकण में (खुरासान की सीमा पर, सिन्ध के निकट) ६६२ ई० में मारा गया।"

ऊपर के उद्धरण से स्पष्ट है कि अरबी का गिरोह प्रायः तीन वर्ष तक, भारत की सीमा पर निरपराध निहत्थे नागरिकों का खून बहाता रहा। कुछ को गुलाम बनाकर बेचने के लिए उड़ा लिया गया। उनके घरों को उजाड़, सारी सम्पदा को लूट, वह भयंकर अत्याचार करता रहा। अन्त में, भारत के सीमा रक्षकों ने किसी प्रकार इस लुटेरे को समाप्त कर ही दिया।

इसके बाद ख़लीफ़ा मुआविया ने पुनः एक दूसरे लुटेरे गिरोह को भारत भेजा। प्रत्येक बार लुटेरे गिरोह की संख्या बढ़ती ही गई। इसी अनुपात में उनके कुकर्मों और विनाश का क्षेत्र भी बढ़ता गया। मुहाल्लब का गिरोह इतना बड़ा था कि उसे एक पंक्ति में खड़ा करने पर मीलों लम्बी कतार बन जाती थी। उसके गिरोह का एक भाग बन्ना (सम्भवतः बन्नू) तक और दूसरा अलहवार (लाहौर नहीं, जैसाकि कुछ लोगों ने समझा है) तक आ पहुँचा जो मुलतान और काबुल के बीच में है। मगर उसे भी सीमा रक्षकों ने उसके सहयोगियों समेत गाजर-मूली की तरह काट दिया।

भारतीय ललकार को स्वीकार करने की बारी अब अब्दुल्ला की थी। ख़लीफ़ा और बग़दाद के शासक ने इसका निर्वाचन किया था। हिन्दू तलवार का स्वाद अब उसे चखना था। उसने कीकण में लड़ाई मोल ली। फिर प्राणभय से भागकर ख़लीफ़ा की गोद में जा छिपा। पुचकारकर, बहला-फुसलाकर उसे वापस भेजा गया। खून चाटने वाले अरबों को भारतीय गुलाम और लूट के धन की बड़ी आवश्यकता थी। अब्दुल्ला भारत की सीमा पर वापस लौटा और यहीं खत्म हो गया।

अब सीनान सीना ताने आया। अल् बिलादुरी फ़रमाते हैं—"यह बहुत ही अच्छा, भला और देवगुण सम्पन्न व्यक्ति था। यह पहला आदमी था जिसने अपने सभी सैनिकों को अपनी पत्नियों से तलाक़ दिला दिया" और उन्हें इस बात की गारण्टी दी कि भारत की सीमा पर उनको मजे लूटने के लिए सैकड़ों की संख्या में हिन्दू स्त्रियाँ प्राप्त होंगी। मगर दुःख है कि उसका यह कामुक स्वप्न चूर-चूर हो गया।

इधर इन हाँकों का कोई अन्त नहीं था। प्रत्येक अरबी एक क्रूर लुटेरा था। विक्रमादित्य और परवर्ती हिन्दू शासकों ने इनमें हिन्दू संस्कृति का प्रचार किया था। जब से ये अरबवासी हिन्दू संस्कृति से दूर हो गये, चीखती-चिल्लाती अबलाओं पर अत्याचार करना और अबोध बालकों को सताना ही इनका धर्म हो गया था। और कुछ करने के योग्य ये थे भी तो नहीं।

फिर जियाद आया। वीर जाटों और मेदों से तलवार बजाता यह भी मारा गया। इधर सीनान भी अपने लुटे-पिटे मान-सम्मान को खोजने लौटा। भारत की सीमा पर वह लुटेरी दृष्टि डालता हुआ मँडराता रहा।

धावा करने का साहस वह नहीं बटोर सका। तब इसकी मर्दानगी को धिक्कारता, आग उगलता, ज़ियाद का बेटा अब्बाद आया। इसने अपना मार्ग बदल अफ़गानिस्तान पर धावा बोल दिया। उस समय अफ़गानिस्तान हिंदू साम्राज्य का ही एक अंग था। अल् बिलादुरी कहते हैं—"वह वहाँ के नागरिकों से लड़ा" मगर "बहुत से मुसलमान मारे गए"। वहाँ के लोग नुकीली पगड़ियाँ पहनते थे। अब्बाद को यह टोपी काफ़ी पसन्द आई। मार खाकर जब वह लौटा तो अपने साथ इन टोपियों को भी बाँध लिया। उसने उस टोपी का काफ़ी प्रचार किया और इसका नाम 'अब्बादिया टोपी' रक्खा।

अब सीमा का हाकिम अल् मनज़र उर्फ़ अबुल् अशास बना। नूकण और कीकण पर उसने धावा किया। गाँवों में आग लगा दी। उसने स्त्रियों और बच्चों का अपहरण कर लूट की सम्पत्ति के साथ भागने का प्रयास किया। पूर्ववर्ती लोगों की अपेक्षा उसने बर्बादी कुछ अधिक ही की। मगर अपने पाप की फ़सल लेकर वह लौट नहीं सका। कुजदर में इसे घेरकर मार दिया गया।

बग़दाद की गद्दी पर अब उबयदुल्ला आसीन हुआ। हिन्दू घरों को जलाने, हिन्दू नारियों का अपहरण करने, बच्चों को सताने और लोगों को मुसलमान बनाने का भार उसने 'इब्नधरी अल्बबाली' को सौंपा। इसका अन्त अज्ञात है। इसे भी शायद शर्मनाक मौत ही मिली होगी, क्योंकि न तो किसी ने इसके गीत गाये और न ही कोई इसकी मौत पर रोया।

इसके बाद बग़दाद की गद्दी पर एक क्रूर और भयंकर व्यक्ति बैठा। इसका नाम था हज्जाज़। भारत पर पाप का धर्म-युद्ध छेड़ने के लिए इसने पहले सईद और बाद में मुज्जा को भेजा। मुज्जा एक वर्ष के भीतर ही मकरान में मारा गया।

अब भारत के भाग्य में एक नया मोड़ आया। अबतक अरबी लुटेरे एक पशु-सा आचरण करते थे। वे सिर्फ़ एक अवरोध के समान ही थे जो भारत की सीमा को नोचते-खसोटते थे। वे गाँव जलाते, खड़ी फ़सल नष्ट करते, झीलों में विष मिलाते, नहरों को नष्ट करते, पुलों को तोड़ते, स्त्रियों पर अत्याचार करते और लोगों को गुलाम बनाकर बग़दाद तथा दमिश्क के बाज़ारों में बेच देते थे।

ये थे लूट-पाट के ७५ वर्ष। अपराधी अरबी गिरोह भारत की सीमा पर पंजे मारते रहे। किसी भी शासक ने इस अरबी पशु को उसकी माँद तक नहीं खदेड़ा। किसी ने भी इस पशु का अन्त नहीं किया।

हिन्दुओं की यह एक पुरानी और परम्परागत बीमारी है, पर है बड़ी बुरी बीमारी। हम शत्रु को उसके घर तक रगेद कर नहीं मारते। आज भी हमारी आँखें नहीं खुली हैं। आज भी हम ऐसा नहीं कर रहे हैं।

सीमा पर मँडराते शत्रु निहत्थे नागरिकों को सता-सताकर मुसलमान बना रहे थे। उन्हें अपने ही भाइयों से अलग कर, अपने ही भाइयों का, अपने ही खून का शत्रु बना रहे थे। इस प्रकार आक्रमण की सीढ़ी पर वे एक-एक पग धरते-धरते शनैः-शनैः आगे बढ़ रहे थे।

परिणाम सबके सामने है। एक छोटा-सा उपद्रवी पशु शैतान मुहम्मद क़ासिम के रूप में जवान हो गया। इस १७ वर्षीय शैतान ने अत्याचार की आँधी चला दी। "१ लाख हिन्दू स्त्रियों को क़ैद कर लिया, सिन्ध के ७० उप-शासकों (राणाओं) का पतन हो गया," मीनार और मंच बनाकर मंदिरों को मस्जिद बना दिया, अतुलनीय सम्पदा लूट ली, आगज़नी और लूट-पाट के अनाचार से सारा सिन्ध बंजर हो गया।

लूट-पाट की जो ठोस नींव मुहम्मद क़ासिम ने डाली, वह नींव हजार वर्षों तक फलती-फूलती रही। अब भारत के गले में यह एक स्थायी फाँसी का फन्दा बन गया है। फाँसी का यह फन्दा दिन-प्रतिदिन कसता ही चला जा रहा है और भारत अभी तक धर्म-निरपेक्षता की काल्पनिक और ठंडी छाँव में गहरी नींद सोया हुआ है। क्या मज़ाक है?

बर्बर, कृतघ्न अरबवासियों ने भारत में लूटने, ज़लाने, सताने, हरण करने, मुसलमान बनाने, व्यभिचार करने और गुलाम बनाने का जो आसुरी जाल फैलाया था वह दो प्रकार का था। एक ओर घोड़े, भाले, बरछे, तलवार, धनुष, तीर और मादक द्रव्यों से सुसज्जित बर्बर अरबी-गिरोह को भारत भेजा जाता था; दूसरी ओर पाप की फ़सल दमिश्क और बग़दाद के बाज़ारों भेजी जाती थी। अपहृत हिन्दू स्त्रियों और बालकों, लूटी हुई सोने-चाँदी की ईंटों और जवाहरातों, हिन्दू सरदारों के रक्त-रंजित सिरों, भग्न देव-प्रतिमाओं और हज़ारों मन्दिरों के ख़ज़ानों के वहाँ ढेर लग रहे थे।

इस प्रबन्ध के अध्यक्ष ख़लीफ़ा थे। वे इस व्यवस्था का संचालन करते थे। बीच में बैठा था उनका सहकारी, बग़दाद का शासक। इस छोर पर मँडराता था लुटेरों का नायक जो भारत की सीमा पर चक्कर काटता था, लूट-पाट करता था और पाप की पैदावार को अपने खलिहान में भेजता था।

करांची से बग़दाद और दमिश्क जाने वाली सड़क पर हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और मनुष्यों की हड्डियाँ बिखरी पड़ी हैं। अनन्त यातनाओं से उनके प्राण लिये गए हैं। पाशविक लिप्सा, खूनी अत्याचार और अमानवीय यातनाओं ने उन्हें चूर-चूर किया है। इस मार्ग से अनेक शाखाएँ, अनेक पगडण्डियाँ भी निकली हैं। इन पगडण्डियों पर स्थित गृहों और भवनों में भारत की लुटी सम्पदा बिखरी पड़ी है। यह है उनकी हजार वर्षों की लूट। ख़लीफ़ा की सभ्यता और आचरण को नापते हैं। श्री इलियट और डाउसन (ग्रन्थ १, पृष्ठ ४३९)—"सिन्ध-विजय के भी पूर्व हम प्रथम मुआविया (ख़लीफ़ा) के अनुयायियों को मिस्र के शासक की लाश को गधे की लाश में भरकर और उसे जलाकर राख करते हुए पाते हैं। जब मूसा ने स्पेन जीता था उस समय ख़लीफ़ा सुलेमान था। यह वही क्रूर पिशाच था जिसने सिन्ध विजेता की हत्या की थी। इसने मूसा को अपने देश से निर्वासित कर दिया था। वह अपने संकट के दिन मक्का में व्यतीत कर रहा था। उसने इसके पुत्र की 'कोरडोवा' में हत्या करवा दी। उसका सिर काटकर मँगवाया और इसके पैरों पर फिकवा दिया। निराशा और पीड़ा से पागल पिता पर इस पिशाच के दूत हो-हो कर हँसते और ताने कसते रहे।"

ख़लीफ़ा की क्रूरता के ये उदाहरण हम नहीं, अरबी इतिहासकार प्रस्तुत कर रहे हैं। अरबी इतिहासकार इनकी नैतिक नीचता के भी उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। वे यथास्थान आपको प्राप्त होंगे।

ख़लीफ़ा का सहकारी इराक़-शासक भी अपने उस्ताद का एक ही चेला था। पृष्ठ ४२ पर सर एच० एम० इलियट हज्जाज का चरित्र-वर्णन करते हैं। इराक़ के सभी शासकों से ही नहीं वरन् लूटपाट और बलात्कार की मशीन चलाने वाले सभी व्यक्तियों से भी अनोखा इसका चरित्र था। वे कहते हैं—"क्रूर अत्याचारी हज्जाज नाम से तो इराक़ का शासक था पर वास्तव में वह उन सभी स्थानों पर शासन करता था जो प्राचीन परशिया के अन्तर्गत थे। इसके मन में और देशों को जीतने की लालसा जगी। उसने आज्ञा दी

और कुतइबा एक सेना लेकर काशगर तक घुस आया।···यहाँ पर चीनी दूतों ने उन लुटेरों से एक समझौता किया···।" ठीक यही घटना आज फिर घट रही है।

'बायोग्राफ़ीकल डिक्शनरी' के 'अल् हज्जाज़' शीर्षक निबन्ध में 'पेसक्यूअल डी गयानगोस' लिखते हैं—"कहा जाता है कि इस पागल नर-पिशाच ने अपने आदमियों द्वारा एक लाख बीस हज़ार लोगों को कटवाकर फिंकवा दिया था। उसकी मृत्यु के बाद उसके अनेक जेलख़ानों में ३० हजार पुरुष और २० हजार स्त्रियाँ बन्द पाई गई। यह निष्कर्ष पारसी स्रोत से है। इधर सुन्नी लेखक, उसकी इस निर्दयता के बावजूद भी, उसे न्यायी और निष्पक्ष ही बतलाते हैं।"

ख़लीफ़ा का प्रमुख कर्ता-धर्ता इराक़ का शासक था। भारत पर उत्पात करने वाले बर्बर गुण्डों की लगाम इसीके हाथ में थी। इसके बारे में श्री एच० एम० इलियट कहते हैं—(पृष्ठ ४३३)—"इन क्रूर धर्मोन्मादी लोगों ने खुले आम अपना लम्पट जीवन विलासिता और कामुकता में होम किया था तथा इसी प्रकार के धर्म (मुसलमान) का इन्होंने चारों ओर प्रचार किया।"

स्पष्ट है कि इस विशाल बीभत्स मशीन को चलाने वाले सभी व्यक्ति वास्तव में असभ्य और जंगली ही थे। वे दिन-रात लूट, बलात्कार, यंत्रणा, नर-संहार और क्रूर-कर्मों में आसक्त रहा करते थे।

लूट और लम्पटता का विभाजन—इस बर्बर सेना का नायक लूटी हुई स्त्रियों और सम्पत्ति का पाँचवाँ भाग अपने पास रख सकता था। बाक़ी भाग उसे अरब भेजना पड़ता था। इसका विभाजन इराक़ के शासक और दमिश्क के ख़लीफ़ा के बीच होता था।

पाप की पैदावार इस लूट और बलात्कार की भारतीय फ़सल को नियमानुसार १/४ एवं ४/५ भागों में बाँटने की मुसलमानी लुटेरों की यह परम्परा भारत में मुस्लिम शासन के अन्त तक चलती रही। विदेशी म्लेच्छ लुटेरों की दरवाज़ा तोड़कर भारत में प्रविष्ट होने और दिल्ली-आगरा आदि शहरों में अपनी स्थिति दृढ़ कर अत्याचारों की वर्षा करने की इस घातक प्रणाली की प्रशंसा में आधुनिक इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के पन्ने-पर-पन्ने रंगे गए। इसे भारतीय एवं अरबी फ़ारसी सभ्यता का अभूतपूर्व

और आश्चर्यजनक सम्मिश्रण माना गया है। कैसी अद्भुत सभ्यता है जो विश्वासघात, लूट, चोरी, आगज़नी, बलात्कार, अप्राकृतिक सम्भोग, विनाश और नर-संहार को बढ़ावा देती है। मन्दिरों को मस्जिद बनाने में और लोगों को मार-मारकर मुसलमान बनाने में अपना गौरव मानती है।

बार-बार यह तर्क दिया जाता है कि भारत में रहने के कारण अरबी, पठान, अबीसीनियाई, पारसी, उज़बेक और कज्जाक़ अवश्य ही अपने आप को भारतीय मानने लगे होंगे। ये लोग यह अनुभव नहीं करते हैं कि अपने आपको भारतीय मानना तो दूर रहा, इनके संक्रामक और धर्म-परिवर्तन-कारी स्पर्श ने विशुद्ध भारतीय लोगों की राज और देश-भक्ति की धारा को ही अपने भाइयों और देश के नाश के लिए मोड़ दिया है। वे स्वयं विदेशी बन बैठे हैं। यही कारण है कि धर्म-परिवर्तित भारतीयों का अधिकांश भाग आज भी तुर्की, पाकिस्तान, ईरान और अरब को भारत की अपेक्षा अधिक निकट समझता है, यद्यपि भारत के प्राचीन पालने पर ये झूले हैं। इसी ने इन्हें खिलाया है, सहारा दिया और बड़ा किया है।

यातना से धर्म-परिवर्तन कर हिन्दुओं के विशाल जन-समूह को धर्म-परिवर्तन के जादू से उन्हें उनके ही देश का द्रोही बना देने वाली अनोखी प्रणाली की यदि खोज करनी है तो हमें उस नर-पिशाच हज्जाज़ की माँद तक जाना ही पड़ेगा।

ख़लीफ़ा और हज्जाज़ की कामुक लिप्सा के लिए लंका और भारत की नारियों का, भेड़-बकरियों की तरह बाँधकर, निर्यात किया जाता था। अरबी इतिहासकार बतलाते हैं कि ६११ ई० में लंका से एक जहाज़ चला। इसमें मृत व्यापारी तथा अन्य लोगों की अनाथ 'मुसलमान' स्त्रियाँ भरी हुई थीं। देवालय याने देबालयपुर (कराँची का पूर्ववर्ती नाम) के निकट इस जलयान पर समुद्री डाकुओं ने हमला कर दिया। अभागी युवतियों का यह पार्सल अपने गन्तव्य स्थान तक नहीं पहुँच सका। ख़लीफ़ा और हज्जाज़ बड़े निराश हो गये। इस बहाने की आड़ में हज्जाज ने दाहिर के पास एक धृष्ट और अपमानजनक पत्र भेजा। स्त्रियों के इस पार्सल का उत्तरदायी उसने सिन्ध के राजा को ठहराया। दाहिर का उत्तर था कि दूर समुद्र के हमले से उसका कोई सम्बन्ध नहीं था।

यह अरबी वर्णन है। अरबी वर्णनों पर बहुत कम ही सफ़ेदी पोती

हुई रहती है। इन पंक्तियों से प्रकट होता है कि लंका और भारत की अभागी अबलाओं को ख़रीदकर चुपचाप दमिश्क भेजा जा रहा था। मार्ग में इस जलपोत ने भारतीय बन्दरगाह पर लंगर डाला। आदत से लाचार अरबी लुटेरों ने कुछ और हिन्दू युवतियों को घेर-घारकर उड़ाने का प्रयास किया। इस अपमान से सीमा रक्षक उत्तेजित हो उठे और अपराधी अरबी गिरोह पर टूट पड़े। अपराधियों को मार-मारकर इन बेबस युवतियों का उद्धार किया। मगर हज्जाज, दाहिर के इस न्याय और मानवता के कार्य से जल उठा।

तत्कालीन अरबी लोगों की कामुक और विलासी दृष्टि लंका पर थी। अरबी इतिहासकारों के वर्णन इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। वे कहते हैं कि अरबी लोग द्वीप की नारियों के सौंदर्य के कारण लंका को जवाहरातों का द्वीप कहकर पुकारते थे। १२०० वर्षों तक उन्होंने भारतीय ललनाओं पर जो जुल्म ढाया वह इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफ़ी है कि भारतीय नारियों के प्रति भी उनका कामुक आकर्षण कम नहीं था।

(परवर्ती घटना-क्रम का वर्णन करने के पूर्व हम पाठकों को सावधान करना चाहते हैं कि भारतीय नगरों, मनुष्यों, नारियों और एक स्थान से दूसरे स्थान की दूरी के वर्णन के साथ अरबी इतिहासकारों ने खिलवाड़-सा किया है। अपनी अज्ञानता और कामुक ओछेपन के कारण इन्होंने उच्चारण और अक्षर-विन्यास पर कोई ध्यान नहीं दिया। अतः भारतीय शहरों और नगरों के नाम अरबी इतिहास में अजीब से हो गए हैं। शंका होती है कि दाहिर नाम उन्होंने गढ़ा है या यह मूल नाम का ही अपभ्रंश है। यही हाल उनके पिता के साथ भी हुआ है जिसे वे 'चाच' कहते हैं। संस्कृत में ऐसे नाम नहीं हैं। जब भारत का असली इतिहास लिखा जायेगा तब हमें इनके मूल नामों की गवेषणा करनी होगी। तबतक हमें इन्हीं नामों से काम चलाना होगा जिसे तोड़-मरोड़कर ये प्रस्तुत करते हैं।)

दाहिर की राजधानी अलोर थी। यह सिन्ध का एक प्रसिद्ध शहर था। इसका विशाल राज्य सारे सिन्ध में छाया हुआ था। वह चार शासकीय विभागों में बँटा हुआ था। पहले विभाग में नीरून, देवालयपुर (करांची), लोहाना, लक्खा और सम्मा थे। इसके शासक बरहमनाबाद में रहते थे। (स्पष्टत: इसे ब्राह्मणपुर होना चाहिये) [illegible]पुर [illegible] और

राजहन की पहाड़ियों से मकरान तक की देखभाल दूसरा शासक शिवस्थान से करता था। तीसरा शासक तलवादा एवं चाचपुर यानी क्रमानुसार अक्षलन्दा और पाब्रिया का नियंत्रण करता था। चौथे विभाग की राजधानी मुलतान (मूलस्थान) थी। ब्रह्मपुर, करूर, आशाहर और कुम्बा इसके अधीन थे। इसकी सीमा काश्मीर तक थी। दाहिर स्वयं अलोर से करवान, कैंकानस और बनारस (सिन्धु का अटक-बनारस) का शासन देखता था।

दाहिर एक न्यायी और शक्तिशाली हिन्दू राजा के रूप में विख्यात था। सिंध आज रेगिस्तान है। पर दाहिर के उदार और परोपकारी शासन-काल में यह अपनी सुन्दर झीलों, नहरों और उर्वरा भूमि के कारण विख्यात था। उसके सीमा-रक्षक लुटेरे अरबी गिरोह पर तीक्ष्ण दृष्टि रखते थे। वे उपद्रवियों को दण्ड भी देते थे। इससे हज्जाज को क्लेश होता था। क्योंकि अरबी दल भारतीय नागरिकों के शव पर उन्मुक्त नृत्य नहीं कर सकता था। इसलिए उसने भयंकर प्रतिशोध की सौगन्ध खाई थी।

अपने पूर्ववर्ती सरदारों से वह निराश हो चुका था। वे उसकी भयंकर काम-लिप्सा और लोभ की उत्तुंग ज्वाला को शान्त नहीं कर सके थे। अतएव उसने अपने रिश्ते के भाई और दामाद मुहम्मद क़ासिम को उस लुटेरी सेना का सरदार नियुक्त किया, जो भारत के सीमा मन्दिरों को मसजिद बना रही थी।

क़ासिम की उम्र तब सिर्फ १७ वर्ष की थी। इस छोटे शैतान की बातों और वायदों से उसके ससुर को विश्वास हो गया कि वह सामूहिक व्यभिचार और बलात्कार की आशा अपने दामाद पर बाँध सकता है। अभागी हिन्दू स्त्रियों के बड़े-बड़े बंडल भेजने की इसने शपथ खाई। लूट के बँटवारे का आधार भी १/५ और ४/५ निश्चित हो गया था।

पहले उबैदुल्ला फिर बुदैल को देवालयपुर पर धावा करने भेजा गया। दोनों ही वहीं समा गये और उनके सिर वहीं दफ़न हो गये। ये दोनों ही अभियान समाप्त हो गए। उनकी जल सेना बिखर गई।

ठीक इसी समय वालिद ख़लीफ़ा बने। हज्जाज़ के कहने पर उसने क़ासिम को सिंध की सीमा पर नियुक्त किया।

पैदल और घुड़सवारों की विशाल सेना लेकर क़ासिम सिराज की ओर बढ़ा। यहाँ उसने अबुल् असवाद जान की प्रतीक्षा की। असंख्य लूटेरों की

एक बड़ी टोली लेकर वह क़ासिम से आ मिला। बड़े परिश्रम और बड़ी सूझ-बूझ के साथ इस अभियान की तैयारी की गई थी। छोटी-छोटी बातों का भी विशेष ध्यान रक्खा गया था। यहाँ तक कि प्रत्येक व्यक्ति को सूई और धागा तक दिया गया था।

ऐसा ज्ञात होता है कि इस अभियान पर हज्जाज़ और वालिद के बीच एक सीधा-सादा व्यापारिक समझौता हुआ था। भारतीय धन और स्त्रियों की लूट के इस व्यावसायिक अभियान का व्यय ख़लीफ़ा करेंगे। बदले में उन्हें दुगुना प्राप्त होगा। शेष हज्जाज़ को मिलेगा। हज्जाज़ ने इन शर्तों को अविलम्ब स्वीकार कर लिया। उसे विश्वास था कि उसका शैतान दामाद अपनी लुटेरी सेना की सहायता से असीम सम्पत्ति बटोर लाएगा।

जान और क़ासिम की संयुक्त सेना मकरान होकर आगे बढ़ी। उस समय अफ़ग़ानिस्तान भारत का ही भाग था। इसका संस्कृत नाम अहिग्ग-स्थान है। अतएव क़ासिम अफ़ग़ानिस्तान की ओर बढ़ा। पहला धावा कन्नाजउर पर हुआ। फिर ये अरमेल पर टूटे। हत्या और बलात्कार के 'छीन-झपट व्यापार' में भाग लेने एक-दूसरा लुटेरा दल ताबड़-तोड़ इनसे यहाँ आ मिला। इस दल का नेता भी एक मुहम्मद ही था। यह हारून का पुत्र था। मगर भारतीय सीमा-रक्षकों ने इसे मार-काटकर धूल में मिला दिया। कम्बालि में उसे दफ़नाया गया। भारतीय कीड़े-मकोड़ों ने इसकी हड्डियाँ तक चट कर दीं।

विजित भूभाग के हिन्दुओं को भाँति-भाँति की पीड़ाएँ दी गईं। उन्हें मुसलमान बनाया गया। अपनी टुकड़ी में उन्हें भरती किया गया। उनको यह धमकी दी गई कि यदि उन्होंने दाहिर से लड़ाई नहीं की तो उनकी पत्नियों और पुत्रों को समाप्त कर दिया जाएगा। इन शैतानों ने खड़ी फ़सल जला दी, झीलों में विष घोल दिया। स्त्रियों से बलात्कार कर घरों को मटिया-मेट कर दिया। गाँवों में आग लगा मन्दिरों को मस्जिद बना दिया। रातों-रात मन्दिरों के ब्राह्मण पुजारी मुल्ला बन गये और कोड़ों की छाँव में उन्होंने कुरान पढ़ी। जहाँ वे पूजा किया करते थे वहीं अब वे नमाज़ पढ़ने लगे। इसलिए यह कटु सत्य है कि भारत और पाकिस्तान के प्रायः सभी मुल्ला और मौलवी परिवर्तित हिन्दू सन्तान हैं। आज जहाँ वे नमाज़ पढते हैं, वहीं उनके पूर्वज पूजा किया करते थे।

कायर पुजारी—जलपोतों और सीमा निवासियों को अपने अधिकार में कर, क़ासिम देवालयपुर (करांची) की ओर बढ़ा। एक टुकड़ी ने आगे बढ़कर विशाल दुर्ग को घेर लिया। रसद-प्राप्ति में बाधा डालने के लिए स्थल मार्ग बन्द कर दिया गया। दुर्ग के मध्य में एक विशाल गुम्बदवाला मन्दिर था। उसके ऊँचे स्तम्भ पर गड़े लम्बे ध्वज-दण्ड के सहारे लहराता भगवा ध्वज मीलों दूर से दिखाई देता था। विशाल यंत्रों से दुर्ग पर अग्नि गोलों और पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी गई। हिन्दू ध्वज-दण्ड टूटकर चूर-चूर हो गया। असंतुलित युद्ध के कारण हिन्दू सैनिकों ने दुर्ग त्याग दिया और मुसलमानों के व्यूह को चीरकर दूसरी ओर निकल गए।

तूफ़ान की भाँति क़ासिम दुर्ग में प्रविष्ट हुआ। लूट, बलात्कार और हत्या का नंगा नृत्य प्रारम्भ हो गया। तीन दिन और तीन रात रक्त की धारा बहती रही। सारा दुर्ग ही मानो एक बृहत् बन्दीगृह हो गया हो। इसके सारे बन्दियों को निर्ममतापूर्वक पंगु कर दिया गया। उनके महलों पर मुसलमानों ने अपना अधिकार कर लिया। प्रमुख मन्दिर जामा मस्जिद बन गया। अब उस ऊँचे स्तम्भ के ध्वज-दण्ड पर भगवा ध्वज के बदले अर्धचन्द्रयुक्त हरी पताका फहराने लगी थी।

फिर तो यह उनका स्वभाव ही हो गया। जहाँ कहीं भी ये मुस्लिम लुटेरे गए, प्रमुख मन्दिर को जामा मस्जिद में बदल दिया और मुख्य पुजारी को मुख्य मुल्ला बना दिया। अरबी इतिहासकारों की लेखनी के अनुसार यह कार्य बड़ी आसानी से हो गया था। उन्हें सिर्फ़ दो कार्य करने पड़े थे—१. देव-प्रतिमाओं को चूर-चूर करना; २. मीनार और मंच बना देना।

शाह हज्जाज़ ख़लीफ़ा वालिद के पास विजय की सूचना भेज दी गई। वे दोनों हर्षावेग से झूम उठे। उन्होंने अपने युवा गिरोहपति को बधाई और आशीर्वाद भेजा कि सामूहिक नर-संहार और थोक क़त्लेआम में खुदा तुम्हारी मदद करे। दोनों बड़े ही उत्साहित और आनन्दित थे। लाभ की मोटी रक़म की राह में वे आँखें बिछाए बैठे थे। पर यह लाभ की रक़म थी क्या? बन्दी युवतियाँ, झपटे हुए आभूषण और क्षत-विक्षत शरीर।

डकैती के इस घृणित प्रयास के महत् लाभ की पहली क़िश्त ७१२ ई० में बग़दाद और दमिश्क के मार्ग पर थी। भारत के दुर्भाग्य का वह पहला वर्ष था। तब से लेकर हजार वर्षों तक भारतीय सम्पत्ति और युवतियों का

बराबर निर्यात होता रहा। वीर मराठों ने विदेशी मुसलमान शासकों को जब तक निर्वीर्य नहीं कर दिया तबतक निर्यात का यह क्रम चलता ही रहा।

नये मुसलमानों की भरती से तरोताजा होकर, लूटी सम्पत्ति के साथ भयभीत-पीड़ित व्यक्तियों को हाँकता-बटोरता, क़ासिम का विशाल दल सिन्धु की ओर आगे बढ़ा। छः दिन की यात्रा के बाद वे नीरून पहुँचे। कुछ समय पूर्व ही नीरून-निवासियों ने बुदैल के अरबी दल का मलीदा बनाया था। उस समय हज्जाज़ को सन्धि करनी पड़ी थी। हार की लाज को अरबी छाती में छिपाए क़ासिम के झुण्ड ने नीरून को घेर लिया। नीरून निवासी इस टिड्डी दल को देखकर घबरा गए। नये मुसलमान तलवार की छाया में इस दल का मार्ग-निर्देश करते थे। इस दल की संख्या दिन-दूनी रात चौगुनी बढ़ती जा रही थी। नीरून-निवासी भयभीत हो उठे। उन्होंने हज्जाज़ के पास अपना प्रतिनिधि मंडल भेजा। उसे सन्धि के नियमों का स्मरण दिलाया गया। पर नीचता के कीड़े हज्जाज़ ने इस मण्डल को बन्दी बना लिया। अत्याचारों और यातनाओं की आँधी में उन्हें मुसलमान बनाया गया और सैनिकों की निगरानी में क़ासिम के खेमे में भेज दिया गया।

क़ासिम की सेना नीरून से १ मील दूर मैदान में बुरी अवस्था में पड़ी हुई थी। न पीने को पानी था, न खाने को अन्न। बड़ी सफलता के साथ दुर्ग की सेना ने इन लुटेरों के रसद-मार्ग को अवरुद्ध कर दिया था। ठीक इसी निर्णयात्मक घड़ी में नीरून का आतंकित प्रतिनिधि मण्डल अभागे कैदियों की भाँति क़ासिम के सामने उपस्थित हुआ। क़ासिम ने तुरन्त योजना बनाई। प्रतिनिधि मण्डल के ये नये मुसलमान अपने दुर्ग में वापिस लौटेंगे। सन्धिवार्ता की आड़ में क़ासिम के विश्वस्त कर्मचारी भी चुपचाप इनके साथ प्रविष्ट होंगे और अँधेरी रात में दुर्ग-द्वार खोल दिया जाएगा। इस मंडल के लोगों को बुरी तरह धमकाया गया। उनकी आँखों के सामने अन्य हिन्दुओं को ऐसी-ऐसी पाशविक और बीभत्स यन्त्रणाएँ दी गईं कि इनका रोम-रोम काँप उठा। इनका मानसिक सन्तुलन बिगड़ गया। दुःस्वप्न की-सी स्थिति में उन्होंने दुर्ग-द्वार खोलना स्वीकार कर लिया। [illegible] निश्चित समय पर क़ासिम की सेना दुर्ग में प्रविष्ट हुई।

एक ही झपट्टे में दुर्ग-सेना का सफ़ाया हो गया। निश्चित नींद में लीन नागरिकों को एकाएक घेर लिया गया। अब इस्लाम की मशीन चली। वही हुआ जो होना चाहिए था। जो मुसलमान नहीं बने उन्हें रक्त में नहला दिया गया। मुख्य मन्दिर जामा मस्जिद हो गया। सारा नगर इस्लाम के कसते हुए दृढ़ पंजे में तड़फड़ाकर शान्त हो गया। यह है मुसलमानों से शान्त-सन्धिवार्ता करने का परिणाम।

अब क़ासिम शिवस्थान की ओर मुड़ा। यह एक प्रमुख तीर्थस्थान था। यहाँ भगवान् शिव का एक विशाल मन्दिर था। सुदृढ़ और समृद्ध नगर से यह मन्दिर आवेष्टित था। नीरून के नये मुसलमानों की भरती से क़ासिम का दल और विशाल हो गया था। अब वे इस दल का मार्ग-निर्देश कर रहे थे। साथ ही क़ासिम के लुटेरों के साथ मिलकर इन्हें लड़ना भी था। मार्ग में बज्रदुर्ग पड़ता था। दाहिर वंशीय बझ्र (वज्रसेन) इसका शासक था। नीरून के नये मुसलमानों को क़ासिम ने आज्ञा दी कि वे जाकर वज्रसेन को सूचित करें कि कासिम का क्रोध भयंकर है। लूट-पाट और नर-संहार के लिए यदि वह अपने शहर का समर्पण नहीं करेगा तो उसकी भी वही दशा होगी जो तुम लोगों की हुई है। मगर वज्रसेन को कहने की आवश्यकता नहीं थी। इस्लामी उन्माद में उफनते अनेक अरबी लुटेरों के कुकर्मों को उसने देखा-सुना था।

गुप्तचरों ने क़ासिम को सूचित किया कि वज्रसेन संग्राम के लिए तत्पर है। नगर के एक ओर मरुभूमि थी। घिर जाने के भय से क़ासिम ने उसी में तम्बू तान दिए। उसके पड़ाव के उत्तर में सिन्धु बहती थी। दोनों सेनाओं की छुट-पुट लड़ाई ने शीघ्र ही संग्राम का भीषण रूप धारण कर लिया। प्राचीरावेष्टित नगर में क़ासिम के यन्त्र अग्नि, गोले और पत्थर उगलने लगे। एक सप्ताह के बाद सहायता लाने के लिए वज्रसेन गुप्त रूप से दुर्ग त्यागकर सिन्धु से उस पार चला गया।

वज्रसेन बुधिया दुर्ग पहुँच प्राचीर के बाहर अपनी सेना सहित ठहर गया। अनुमान था कि क़ासिम पीछा करते हुए आएगा। दुर्ग-शासक एवं वज्रसेन ने निश्चय किया कि बाहर से वज्रसेन क़ासिम की सेना से युद्ध करेंगे और भीतर से उसे बराबर सहयोग और सहायता दी जाएगी।

इसी बीच क़ासिम ने वज्रनगर (बझ्र) एवं शिवस्थान को ...

भ्रष्ट कर दिया। नागरिक लूटे गए। भवनों में आग लगा दी गई। बन्दियों को मार दिया गया। स्त्रियों और बच्चों का हरण हो गया। सोने-चाँदी की ईंटों, जवाहरातों और नक़दी के ढेर लग गए। असीम सम्पत्ति लूटी गई।

इस समय तक क़ासिम की सेना विद्रोह की स्थिति तक पहुँच गई थी। क्योंकि क़ासिम का गिरोह अब विभिन्न विरोधी तत्त्वों का मिश्रण बन चुका था। इस गिरोह का एक बड़ा भाग उन नये मुसलमानों का था, जिन्हें अपना पवित्र, साधु और शान्त हिन्दू धर्म ही त्यागना नहीं पड़ा था वरन् अपने ही भाइयों को लूटना पड़ा, अपना ही खून बहाना पड़ा।

इन बिगड़े सैनिकों को बहलाने, फुसलाने, पुचकारने और घूस देने के लिए क़ासिम ने लूट की खुली छूट दे दी। जो जितना धन और जितनी स्त्रियाँ लूट सके, लूट ले और अपने पास रख ले। यह लूट उनकी अपनी ही रहेगी। छीनने-झपटने की किलकारियाँ भरते और विनाश का कोलाहल मचाते हुए ये असभ्य जंगली कई दिन तक हाहाकार में ही-ही करते रहे। तब क़ासिम ने पुनः इन छुटे पशुओं की नाक में नकेल बाँधी और सारे क्षेत्र की बची-खुची सम्पदा लूट लाने का आश्वासन दिया। एक झाड़ू-सी सारे क्षेत्र में फेर दी गई और क़ासिम के पास पुनः 'अपार सम्पत्ति' एकत्रित हो गई। इस्लाम की रक्तिम-विजय और हिन्दुओं पर किए गये अमानुषिक अत्याचार का एक लम्बा चिट्ठा लिखकर क़ासिम ने हज्जाज के पास भेजा। साथ ही १/५ तथा ४/५ के अनुसार लूट का भाग भी हज़ारों हिन्दू स्त्रियों, बालकों और पुरुषों सहित, सुदृढ़ सुरक्षा में भेजा गया।

अब क़ासिम अपने लुटेरों के साथ सीरशाम (सीसम) की ओर चला। कुछ राजपूत शासकों के साथ वज्रसेन उसका मार्ग रोकने आगे बढ़ा। सीसम के मार्ग पर सिन्धु की सहायक नदी कुम्भ के तट पर नील्हम नगर था। नगर को बरबाद कर, सारे खाद्य पदार्थ लूटकर, नगरवासियों को भूखे मरने के लिए छोड़ दिया गया।

इनके अत्याचारों की भयंकरता देखकर एक जाट मुखिया काका कोतल के रोंगटे खड़े हो गए। कुछ व्यक्तिगत लाभ, बचाव और सहूलियत के लिए उसने क़ासिम के साथ सहयोग करना स्वीकार कर लिया। उसे क़ासिम के बराबर में आसन और प्रतिष्ठा का परिधान प्राप्त हुआ। क़ासिम ने उसके मस्तक पर पगड़ी बाँधी। काका कोतल के सहयोग का

परिणाम वही हुआ जो होना था। उसे इस्लाम के खूनी दलदल में फँसाकर, उसकी आँखों के सामने ही, उसके भाइयों का संहार कर, उनकी स्त्रियों को लूट लिया गया और देखते-देखते नील्हम को तहस-नहस कर दिया गया। एक अरबी इतिहासकार ने लिखा है कि डाकुओं को इस लूट में इतने वस्त्र, पशु, गुलाम और खाद्य पदार्थ प्राप्त हुए कि पड़ाव में गौ-मांस भरपूर हो गया।

अब क़ासिम ने गिरोह को सीसम-उर्फ 'सीरशाम' की ओर हाँका। दो दिन तक भयंकर युद्ध होता रहा। वज्रसेन ने अपने राणाओं के साथ वीर-गति प्राप्त की। अब निःशस्त्र नागरिकों का संहार प्रारम्भ हुआ। फिर कुकर्मों की बारी आई। कुछ लोग भागने में सफल भी हुए। उन्होंने सैलज और कन्धावेल के मध्य में स्थित वहितलुर दुर्ग में शरण ली।

कुछ मुखिया इस नर-संहार और गौ-विनाश की भयंकरता सुनकर ही थर्रा गए। उन्होंने क़ासिम को एक हज़ार दिहरम वज़न की चाँदी देनी स्वीकार की। बन्धक और ज़मानत के रूप में उन्होंने अपने आदमियों को शिवस्थान भेज दिया।

मन्दिर मस्जिद बन गए—इसी समय क़ासिम को हज्जाज़ का पत्र मिला। इसमें उसने उसे नीरून लौटकर और सिन्ध पार करके दाहिर से युद्ध करने का आदेश दिया था।

उत्तर में क़ासिम ने लिखा—"सर्वाधिक रहमदिल अल्लाह! के नाम पर, संसार के तेजस्वी और प्रतिष्ठित दरबार को, धर्म के सरताज, आज़म और हिन्द के रक्षक, युसुफ़ के पुत्र हज्जाज़ को विनयी दास क़ासिम का अभिवादन। अभिवादन के बाद निवेदन है कि उसका मित्र अपने सभी अधिकारियों, अनुचरों, गुलामों और मुसलमानों के साथ अच्छी तरह से है। काम भली-भाँति चल रहा है। मौज़ का दरिया बराबर बह रहा है। आपके तेजस्वी विवेक को यह मालूम हो कि रेगिस्तान को रौंदते, ख़तरनाक मोड़ों को पार करते हुए मैं सिन्ध में सीहुन (सिन्ध नदी) के उस स्थान पर आ पहुँचा हूँ जिसे मिहरान कहते हैं। बुधिया के समीप, बघरूर (नीरून) के ठीक विपरीत मिहरान का भाग ले लिया है। प्रतिरोधियों को बन्दी बना लिया गया है। बाक़ी भय से भाग गए हैं। अमीर हज्जाज़ का आदेश पाकर हम नीरून लौट आए हैं। यह राजधानी के काफ़ी समीप ही है। हमें आशा

है कि अल्लाह की अनुकम्पा, शाही सहयोग और तेजस्वी शाहज़ादे के सौभाग्य से काफ़िरों के सुदृढ़ दुर्गों को जीता जाएगा, नगरों पर अधिकार किया जाएगा और हमारे ख़ज़ाने लबालब भरकर छलक जाएँगे। शिव-स्थान और सीसम दुर्ग ले लिये गए हैं। दाहिर के भतीजे, अधिकारियों और सैनिकों में कुछ को मार दिया गया है या फिर भगा दिया गया है। काफ़िरों को या तो मुसलमान बना लिया गया है या फिर खत्म कर दिया गया है। देव-प्रतिमाओं को चूर-चूर कर मन्दिरों के बदले मस्जिद आदि बना दिए गए हैं, मीनार खड़े किए गए, खुतबा पढ़ा गया, अज़ान-मंच बनाया गया ताकि निर्दिष्ट समय पर भक्ति प्रदर्शित की जा सके। प्रति प्रातः-सायं सर्वशक्तिमान की तक़बीर और नमाज़ पढ़ी जाती है।"

पत्र से दो बातें स्पष्ट हैं—(१) मुसलमान इतिहासकार जब यह दावा करते हैं कि इस्लामी विजेताओं ने मस्जिदों का निर्माण किया तो इसका मतलब सिर्फ़ यही होता है कि पूर्ववर्ती मन्दिरों में मीनार और चबूतरा आदि बना दिया गया, अज़ान दे दी गई और मस्जिद का निर्माण हो गया। इसलिए हमारे इतिहासकारों को यह अनुभव करना चाहिए कि प्रत्येक मध्ययुगीन मस्जिद हक़ीकत में एक पूर्ववर्ती मन्दिर है। (२) क़ासिम ने दाहिर की सेना के साथ सीधी लड़ाई नहीं की। हमेशा सीधी लड़ाई से उसने कन्नी काटी है ताकि देश को कुचल सके, फ़सल जला सके, असहाय जनता को लूट सके, उन्हें मुसलमान बनाकर अपने गिरोह में मिला सके, उनकी पत्नी और सन्तानों को गुलाम बनाकर वेश्यावृत्ति के लिए बेच सके। इस प्रकार उसने सारे देश को चूसकर, सुखाकर, निचोड़कर दाहिर से सामना किया था।

अपने अत्याचारी अभियान को चालू रखते हुए क़ासिम एक असुरक्षित बिसय (जिला) के प्रमुख नगर पर टूट पड़ा। इसका प्रमुख मुखिया (मुख्या) कहलाता था। उसे, पूर्ण परिवार सहित, बीस अन्य मुखियों के साथ हाथ-पैर बाँधकर, क़ासिम के सामने प्रस्तुत किया गया। इस्लाम के कोड़े मार-मारकर, रोमांचकारी यातनाएँ दे देकर उन्हें पहले मुसलमान बनाया गया फिर क़ासिम के साथ सहयोग करने पर विवश किया गया। अब वे हिन्दुओं के शत्रु थे और अपने ही राजा दाहिर के विरोध में खड़े थे। बिसय मुखिया को क़ासिम ने बैत का राजा घोषित कर दिया। 'बैत'

दाहिर की राज्य सीमा में था। यही अरबों की युद्ध-कला थी। एक हिन्दू को दूसरे के विरुद्ध खड़ा कर कायर का पक्ष ले लो, उसे इस्लाम का सहायक घोषित करो। सबसे पहले उसे तलवार की नोक पर मुसलमान बना लो। जीत की सारी भूमि उसे उपहार में दे देने का लालच दो। नीच-से-नीच कुकर्मों की सहायता के लिए उसकी पीठ पर रहो। इस प्रकार हिन्दुओं को आपस में ही लड़ाकर मरवा डालो। फ़ायदा होता था इन विदेशी अपहरण-कारी मुसलमानों को। वे हिन्दू या नये मुसलमानों को बहकाकर छल-कपट से जीती हुई ज़मीन का एक बड़ा भाग अपने अधिकार में कर लेते थे। पहले या पीछे हर हालत में मुसलमानों के सहायक हिन्दू को भी मुसलमान बनना ही पड़ता था। दूसरे के पद, अधिकार और राज्य को किसी अनधिकारी हिन्दू का घोषित कर, हिन्दू के विरोध में हिन्दू को खड़ा करने की नीति का पालन अकबर, औरंगज़ेब, शाहजहाँ आदि सभी मुसलमान शासकों ने समान रूप से किया था।

अब 'बिसय' मुखिया और इस्लाम का एक ही ध्येय और लक्ष्य हो गया। इसीलिए उसे मोर चित्रित छत्र, एक लाख दिहराम, एक आसन और एक सम्मानित परिधान दिया गया। ठाकुरों को सम्मानित परिधान और सजे-सजाए अश्व दिए गए।

इस प्रकार हिन्दुओं को घूँस देकर, हिन्दू नाविकों को डरा-धमकाकर उन्होंने सिन्धु नदी पार की।

देवालयपुर (कराँची) के पतन के बाद बन्दरगाह, दुर्ग-स्थित मन्दिर एवं वहाँ का शासक तीनों क़ासिम के चंगुल में फँस गये। वहाँ के शासक को मार-मारकर मुसलमान बनाया गया। कुछ ही दिनों में वह एक पक्का उद्दण्ड मुसलमान बन गया। नाम भी उसने अपना बड़ा आसान रखा। मौलाना इस्लामी। भयंकर कट्टरता में उसने क़ासिम के गिने-चुने लुटेरों को भी मात दे दी। उसपर क़ासिम का पूर्ण विश्वास हो गया था। क़ासिम ने इसे एक सीरियन के साथ दूत बनाकर दाहिर के पास भेजा।

दाहिर के दरबार में यह भूतपूर्व हिन्दू राजा के सम्मान में झुका तक नहीं। अब यह एक विदेशी मुसलमान मौलाना इस्लामी जो हो गया था। अपने धर्म से ही नहीं, साधारण शिष्टाचार से भी इसने हाथ धो लिये थे।

उसके व्यवहार से इतिहासकारों की यह मान्यता असत्य प्रमाणित

होती है कि भारतीय नगरों में स्थायी रूप से निवास करने के कारण अकबर, औरंगज़ेब, यहाँ तक कि बहादुरशाह ज़फ़र भी अपने आपको भारतीय कह सकते हैं। नहीं, इनमें से प्रत्येक विदेशी है। क्योंकि वे मक्का, ईरान और तुर्की को ही अपना देश और अपनी मातृभूमि मानते हैं। वहीं के लोग इनके देशवासी और भाई हैं। यहाँ के हिन्दुओं और मन्दिरों को वे घृणा और द्वेष की दृष्टि से देखते हैं। अपने आपको भारतीय मानना तो दूर रहा, इन विधर्मियों के स्पर्श ने ही उन्हें अपने देश से छीनकर पराया बना दिया। अपनी ही मातृभूमि में वे अपने आपको विदेशी मानने लगे। मौलाना इस्लामी का निन्दनीय व्यवहार अपने आपमें इसका स्पष्ट उदाहरण है। ऐसे उदाहरण एक नहीं अनेक हैं, जबकि वह नीच कुछ मास पूर्व दाहिर का देश-भाई ही नहीं, उसका तुच्छ सेवक और अनुचर भी था।

दाहिर ने इस नवीन अर्धचन्द्री मौलाना को दुत्कार दिया। अपने आपको इस्लाम की लुटेरी सेना के सामने समर्पण करने की माँग दाहिर के सामने इन दूतों ने रखी थी। इस धृष्ट और अपमानजनक माँग के उत्तर में दाहिर ने सिर्फ उन्हें दरबार से बाहर निकाल दिया। जबकि हज्जाज़ ने न्यायोचित माँग के उत्तर में प्रतिनिधि मण्डल की भरपूर हज़ामत की थी।

हज्जाज़ की बुरी नज़र दाहिर के अन्तःपुर की ओर भी थी। क़ासिम पर वह बड़ी आशा भी लगाए हुए था। उसने क़ासिम की सहायता के लिए लुटेरों की एक और नई टुकड़ी भेज दी।

क़ासिम ने सिन्धु पुल के दूसरे छोर की निगरानी के लिए नीरूम के नये-मुसलमान बिसय मुखिया, मुसाब, भट्टी ठाकुर, धर्म-त्यागी और अफ़गानी जाटों को नियुक्त किया ताकि दाहिर-पुत्र अपने दुर्ग से दाहिर की सहायता के लिए न आ सके।

इधर क़ासिम ने कई बार सिन्धु पर नावों का बेड़ा बनाने का प्रयास किया। पर हर बार दाहिर की सेना ने इसे सफल नहीं होने दिया। बाणों, पत्थरों और अग्निगोलों की वर्षा नावों के बेड़े को बनने के साथ-साथ ही छिन्न-विच्छिन्न कर देती थी।

दाहिर का अन्तिम युद्ध—बारम्बार इन प्रयासों के विफल होने पर क़ासिम ने एक दूसरा तरीक़ा अपनाया। सिन्धु-पाट जितना विस्तृत नावों का पूरा बेड़ा उसने अपनी ओर के नदी के तीर पर निर्मित कर लिया और

फिर उसे नदी की धार में बहा दिया। उपाय सफल हुआ। झटपट दूसरे तट पर कीलें ठोक नावों और बेड़ों का पुल बना लिया गया। घमासान संग्राम छिड़ गया। अत्यल्प संख्या में होने के कारण अन्ततः दाहिर-सेना को पीछे हटकर दुर्ग में शरण लेनी पड़ी।

इधर दाहिर का एक मन्त्री भयभीत हो उठा। उसने दाहिर को हर हालत में सन्धि करने की सलाह दी। इस कायरतापूर्ण उपदेश पर दाहिर सिंह-सा दहाड़ उठा। उसने अपने सारे क्षेत्र को ही समरांगण में परिणत कर दिया। हिन्दुस्तान की वीरता उसके रोम-रोम में लहरा रही थी। अपनी मातृभूमि के सम्मान की इस निर्णायक घड़ी में छाती तानकर खड़े होने में अक्षम इस मन्त्री को उसकी कायरता का पुरस्कार दिया गया। दाहिर ने उसका सिर उतार लिया।

जंगली चीतों से आवृत्त एकाकी हाथी की भाँति दाहिर जूझ रहा था। उसकी अपनी ही प्रजा और सैनिक सामूहिक रूप से मुसलमान बनाए जा रहे थे। नये धर्म के नियमों ने उन्हें रातों-रात देशद्रोही बना दिया था।

क़ासिम बैंत दुर्ग की ओर बढ़ा। यहाँ दाहिर के दो पुत्र जयसिम्हा और फूफी थे। दुर्ग से सुरक्षित दूरी पर क़ासिम ने खाई खोद उसमें अपना धन रखवा दिया। दाहिर का नदी-रक्षक पकड़ा गया था। भयंकर यातनाओं ने उसे भी मुसलमान बना दिया था। अब वह क़ासिम के लुटेरों का मार्ग-दर्शक था। 'बैंत' दुर्ग से क़ासिम 'रावर' दुर्ग की ओर बढ़ा। मार्ग में उसने जयपुर में पूर्ण विनाश का खेल खेला, मन्दिरों को मस्जिद और लोगों को मुसलमान बना, स्त्रियों और बच्चों को बन्दी कर बाक़ी को काटकर फेंक दिया गया।

जयपुर के मध्य में एक सरोवर था। यहाँ दाहिर की जन-रक्षक टुकड़ी रहती थी। शत्रु-गति की गुप्त सूचनाएँ दाहिर को देना इनका कार्य था।

अपने सैनिकों की मुख्य सेना के साथ दाहिर सरोवर के दूसरी ओर काजीतात में थे। क़ासिम की सेना सरोवर के इस ओर थी। नए मुसलमान रासिल की निगरानी में उन्होंने तीन मार्गों से घुसपैठ का प्रयास किया। काजीतात के पीछे हिन्दबादी बसा हुआ था। इसे अपने अधिकार में कर लेने की सलाह उसने क़ासिम को दी। क़ासिम के पहुँचने के साथ ही हिन्दबादी मुस्लिमबादी में परिणत हो गया। सदा की भाँति लूट, हत्या और बलात्कार का बाज़ार गर्म हो उठा।

अब क़ासिम का विशाल गिरोह दो भागों में विभक्त था। एक भाग बाधवा नदी के तट पर स्थित जयपुर में था। दूसरा भाग था हिन्दबादी में। बीच काजीतात में थे दाहिर। उनके पुत्र उनसे दूर बैत दुर्ग में थे। सामरिक महत्त्व के सभी मार्गों पर कासिम की हैवान सेना का भयंकर आतंक छाया हुआ था। जिनके लिए न्याय, धर्म और इन्सानियत का कोई अस्तित्व ही इस संसार में नहीं था। लूट और बलात्कार के नीच-से-नीच कुकर्म भी उनके लिए महान् आदरणीय और अनुकरणीय उदाहरण थे।

संकट की भीषणता से राजा दाहिर का एक दूसरा मन्त्री भी भयभीत हो उठा। साहस के अवतार दाहिर ने उसे सचेत किया कि राजा और मन्त्री शान्तिकाल में विशेष सुविधा एवं अधिकार प्राप्त प्रतिष्ठित व्यक्ति होते हैं। सिर्फ इसीलिए कि वे अपने देश, अपनी सभ्यता और अपने धर्म की रक्षा के लिए शत्रु से आमरण संग्राम के लिए तत्पर रहें।

दाहिर ने उसे बताया—"यह बड़े अपमान की बात है कि तुम शान्ति-सन्धि की बातें करते हो। यह शान्ति कैसी शान्ति होगी जबकि तुम्हारे शत्रु तुम्हारी स्त्रियों को लूटना, उन्हें गुलाम बनाकर अरब में बेचना, तुम्हारे महलों को नष्ट करना, तुम्हारे मन्दिरों को मस्जिद बनाना, और तुम्हें मुसलमान बनाकर तुम्हारे हिन्दुत्व को मिटाना चाहते हैं।"

दाहिर के ओजस्वी वचनों ने मन्त्री की बोलती बन्द कर दी।

निर्णायक युद्ध की तैयारी में दाहिर ने अपने सभी आश्रितों, स्त्रियों और बच्चों को रावर दुर्ग भेज दिया। क़ासिम की सेना से कुछ ही मील दूर अपना खेमा भी गाड़ दिया। पाँच दिन तक घमासान युद्ध होता रहा। एक के बाद दूसरी क़ासिम की सेना आती रही और दाहिर की सेना उसे मसलती रही। समय था जून, ७१२ ई० और स्थान था—बधवा और सिन्धु का मध्यभाग।

अपने इस अभियान की सफलता के लिए क़ासिम ने कोई भी तरकीब उठा नहीं रक्खी। हिन्दू सेना को पथभ्रष्ट करने और बहकाने के लिए, स्त्रियों को मार-मारकर राजी किया गया। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार—"जब इस्लाम की सेना ने धावा किया तब अधिकांश काफ़िर मार डाले गए। एकाएक सेना के बाईं ओर काफ़ी होहल्ला होने लगा। दाहिर ने सोचा कि यह शोर उसकी अपनी सेना में हो रहा है। उसने जोरों

से चीखकर कहा—'इधर आओ, मैं यहाँ हूँ।' स्त्रियों ने तब अपनी बुलन्द आवाज़ में कहा—'हे राजा, हम आपकी प्रजा हैं। हम लोग इन अरब लोगों के चंगुल में फँस गई हैं। इन्होंने हमें बन्दी बना लिया है।' दाहिर दहाड़ उठे—'मेरे जीवित रहते किसमें इतना साहस है कि तुम्हें बन्दी बना सके' और उसने अपना हाथी 'मुसुलमान' सेना की ओर हाँक दिया क़ासिम ने अग्नि-गोले फेंकने वाले से कहा कि अब तुम्हारी बारी है। एक शक्तिशाली विक्षेपक ने आदेश पाकर दाहिर के हौदे पर अग्नि-गोला फेंक दिया। हौदे में आग लग गई। हाथी पानी की ओर भागा। वाणों और भालों की वर्षा, मुसलमानी तलवारबाजों के नर-संहार से सुरक्षार्थ अंग-रक्षकों ने दाहिर के चतुर्दिक एक घेरा डाल दिया। महावत ने किसी प्रकार अग्नि शान्त कर, हाथी को वश में कर उसे एक बार फिर शत्रु की ओर हाँका। दाहिर हाथी के हौदे पर से उतर एक घोड़े पर सवार हो भयानक रूप से तलवार का वार करते हुए, शत्रु-सेना को चीरते हुए भीतर प्रविष्ट हो गए। सहायकों से दूर, चतुर्दिक मतवाले अरबों से आवृत्त, देशभक्ति के आवेग में संग्राम करते हुए दाहिर ने शत्रु का भारी संहार किया।

राजा दाहिर अब थककर चूर हो चुके थे। उनके प्रत्येक अंग से रक्त की धारा बह रही थी। अन्ततः वीर शिरोमणि दाहिर समर-भूमि में सो गए। तलवार के वारों ने उनके मस्तक को खण्ड-खण्ड कर बिखेर दिया था। ७१२ ई० के जून महीने के बृहस्पतिवार को सूर्यास्त के समय हिन्दुत्व का गौरवशाली तेजस्वी सूर्य अपनी पूर्ण गरिमा के साथ सिन्धु के पावन तट पर अस्त हो गया। इस वीर पुत्र को अपने अंक में लेने के लिए भारतमाता ने सिन्धु-तट को स्वच्छ एवं पवित्र करने के लिए अपनी लहराती लहर को भेजा। दूसरी लहर ने बड़े प्यार से दाहिर के शव को स्वच्छ किया। उसका रक्त जल में विलीन हो गया। आत्मा असीम में समा गई।

भारत ने अपने एक साहसी वीर पुत्र दाहिर को खो दिया। ७५ वर्षों के निरन्तर अरबी-घुसपैठ का यह परिणाम था। प्रत्येक बार लोगों ने सिर्फ यही सोचा कि ज़रा-सी ही तो ज़मीन गई है, थोड़े से ही तो मन्दिर मस्जिद बने हैं, कुछ ही हज़ार व्यक्ति तो इस्लाम में लुप्त हुए हैं। 'ज़रा', 'थोड़े' और 'कुछ' की इस शान्त सहनशीलता का पालन-पोषण ही हमारी एक भयंकर और घातक भूल थी।

जौहर—युद्ध अभी चल रहा था। दाहिर की अवशिष्ट सेना लड़ते हुए, अपना मार्ग बनाती हुई प्राचीरावेष्टित नगर रावर की ओर पीछे हट रही थी। अब क़ासिम की नज़र रावर पर थी। दाहिर-पत्नी रानी बाई ने जयसिम्हा के साथ रावर भी त्याग दिया। वे 'ब्रह्मनवादी' उर्फ़ 'बरहमनाबाद' चले गए। दाहिर की दूसरी पत्नी मैनाबाई ने १५ हज़ार सैनिकों की सहायता से रावर की रक्षा का भार सँभाला। दाहिर की बची हुई सेना भी इनसे आकर मिल गई थी।

क़ासिम बराबर रावर पर दबाव दे रहा था। उसने अपनी सेना को दो भागों में विभक्त कर दिया था। वे दिन-रात प्राचीरावेष्टित रावर पर पत्थरों और अग्नि-पिण्डों की वर्षा कर रहे थे। रक्त-पिपासु अरबों के हाथों में पड़ने के बदले अब मैनाबाई ने हिन्दू स्त्रियों के साथ जौहर का व्रत लिया। लकड़ी, रूई और तेल की एक विशाल चिता प्रज्वलित की गई—मुसलमानों के सहस्रवर्षीय शासनकाल में यह कहानी सैंकड़ों बार दुहराई गई है। मुस्लिम पशुओं के लोलुप और कामुक स्पर्श के बदले हिन्दू वीरांगनाओं ने अग्नि का आलिंगन करना ही उत्तम समझा।

क़ासिम शहर में प्रविष्ट हुआ। छः हज़ार हिन्दुओं को उसने मौत के घाट उतार दिया। प्रमुख मन्दिर मस्जिद बन गए। कुछ अवशिष्ट स्त्रियों और बच्चों को उसने बन्दी बना लिया। ३० हज़ार बन्दियों में दाहिर के दरबारी और सेवकों की सिर्फ़ ३० पुत्रियाँ थीं। दाहिर की नातिन जयश्री भी इनमें से एक थी। इन सभी को हज्जाज़ के पास बग़दाद भेज दिया गया।

दाहिर का राज-छत्र, लूटी सम्पदा और निर्यातित बन्दियों को हज्जाज़ ने ख़लीफ़ा के पास भेज दिया। एक निर्लज्ज अरबी इतिहासकार लिखता है—"वालिद ने अल्लाह का शुक्र अदा किया। कुछ हिन्दू स्त्रियों को उसने बेच दिया। कुछ उनके अनुचरों के बीच बाँट दी गईं। जब उसने दाहिर-पुत्री (नातिनी) को देखा तो वह उसके सौन्दर्य और आकर्षण से स्तब्ध रह गया। विस्मय से अभिभूत हो उसने अपनी अंगुली को दाँतों से काटा। अब्दुल्ला ने उसे पाने की इच्छा की। मगर ख़लीफ़ा ने कहा—'हे मेरे भतीजे, मैं इस लड़की को अत्यन्त पसन्द कर रहा हूँ। मैं इससे इतना प्रभावित हूँ कि इसे मैं अपने लिए ही रखना चाहता हूँ'।" इसी लम्पटता की

प्रशंसा भारतीय इतिहासकार बड़े मीठे-मीठे स्वर में करते हैं। क्या मज़ाक है कि इसे वे अरबी और भारतीय सभ्यता का बड़ा ही शिष्ट संगम मानते हैं।

लूट की इस क़िश्त के बाद ही क़ासिम का रावर-ध्वंस का समाचार भी आया। हज्जाज ने उत्तर दिया—"काफ़िरों को ज़रा भी मौका मत देना। तुरन्त ही उनके सिर कलम कर देना...यह अल्लाह का हुक्म है।" क्या यह एक विशिष्ट पंक्ति नहीं है ? इसे अरबी इतिहासकारों ने लिखा है। इस एक पंक्ति ने हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान के प्रति उनकी घृणित और कुत्सित मनोवृत्ति और खूनी षड्यन्त्र का पर्दा फ़ाश कर दिया है और हम आँखें बन्द किये बैठे रहे।

अपने वीर और देशभक्त पिता के छिन्न-विच्छिन्न और बरबाद राज्य को देखकर दुःखी और अनाथ जयसिम्हा ने अपने हृदय को पाषाण-सम बना लिया। उसने अलोर में अपने भाई फूफी, मटिया में चाच और बैकानैन के शासक धवल के पास संवाद भेज दिया। पर ये स्थान एक दूसरे से काफ़ी दूर थे। साथ ही मार्गों पर शत्रुओं का आतंक छाया हुआ था। उस पर उन्हें स्वयं अपने नगरों और नागरिकों की रक्षा भी करनी थी—नर-संहारों से, बलात्कारों से, क्रूर अत्याचारों से और धर्म-परिवर्तनों से।

ब्रह्मनाबाद को तहस-नहस करने की पूरी तैयारी क़ासिम ने कर ली। वह रावर से निकला। मार्ग में दो उपनगर थे, बहरूर और दहलीला। दोनों उपनगरों पर वह दो महीने तक घेरा डाले पड़ा रहा। दिन-रात हमले होते रहे। अन्ततः दोनों उपनगर टूट गए। "सिर पर कफ़न बाँध, शरीर पर सुगन्धित द्रव्यों का लेप कर" दोनों टूट पड़े। तबतक जौहर की ज्वाला में भस्म हो हिन्दू स्त्रियाँ मुस्लिम कसाइयों के पंजों से परे पहुँच चुकी थीं। उपनगरों को छानकर क़ासिम ने लूटी सम्पदा और गुलामों को नियमानुसार विभाजन कर बग़दाद और दमिश्क भेज दिया।

ब्रह्मनाबाद की ओर बढ़ते हुए क़ासिम ने सिन्ध के सभी हिन्दू शासकों को धमकी भरा पत्र भेजा। उसने इस्लाम के सामने समर्पण करने की माँग की। दाहिर के भूतपूर्व सलाहकार शशिशेखर ने, क़ासिम के अत्याचारों और कसाई कर्मों से भयभीत हो, आत्मसमर्पण कर दिया। धर्म त्यागकर वह मुसलमान बन गया। [illegible] में उसे [illegible] के सलाहकार

की प्रतिष्ठित पदवी प्राप्त हुई। दूसरे हिन्दू राजकुमार धारण के पुत्र नूबा को दहलीला में बन्दी बना लिया गया। फिर मुसलमान बनाकर उसे उसी स्थान का शासक भी घोषित कर दिया गया। फिर समवर्ती स्थानों पर आतंक फैलाने, असहाय नागरिकों से जजिया वसूल करने, और उन्हें मौत को भी मात करने वाली पीड़ा देकर मुसलमान बनाने के लिए क़ासिम ने सेना की एक टुकड़ी को आगे ब्रह्मनाबाद की ओर भेजा।

अब क़ासिम की सेना ने ब्रह्मनाबाद को घेर लिया। नगर के चार द्वार थे। नगर का पूर्ण नियन्त्रण दाहिर-पुत्र वीर जयसिम्हा के हाथ में था। उसके प्रभावशाली निर्देशन में हिन्दू सेनाएँ प्रतिदिन चारों द्वारों से बाहर निकलकर विदेशी मुसलमानी गिरोह पर धावा करती थीं।

जयसिम्हा के गुरिल्ला युद्ध ने क़ासिम का रसद-मार्ग बन्द कर दिया था। इस संकट में क़ासिम ने विषय मुखिया को कुमुक और खाद्य-पदार्थ भेज़ने का समाचार दिया। नये मुसलमान विषय मुखिया अन्तर-मन से कभी पूर्ण हिन्दू था मगर इस्लाम के धर्म परिवर्तन की जादुई हड्डी ने उसे देशद्रोही बनाकर ही छोड़ा।

रक्तशुद्धि की उचित एवं रूढ़िवादी परम्परा के प्रति अन्धी-भक्ति होने के कारण हिन्दू महा-विनाश से भी शिक्षा नहीं ले सके कि नियम-कानून को ताक पर रखने वाले ये शत्रु उनकी कड़ियों को कमजोर कर रहे हैं। यदि उन्होंने इन अभागे हिन्दुओं को वापिस अपनी गोद में ले लिया होता, एक लुप्त हिन्दू के प्रतिशोध में कम-से-कम १० शत्रुओं का सफ़ाया कर दिया होता, तो भारत कभी भी अपनी स्वतन्त्रता नहीं खो सकता था और शत्रु को 'जैसे-को-तैसा' उत्तर मिल जाता।

छः महीने तक शहर पर घेरा पड़ा रहा। बाहर मुस्लिम सेना ने सारी खड़ी फ़सल जला दी। जलाशय विषाक्त कर दिए। अतएव चारों ओर से घिरे हुए नागरिक बड़ी संकटापन्न अवस्था में हो गए। परिस्थिति की गम्भीरता को देखकर, काश्मीर के राजा से सहायता की याचना के लिए जयसिम्हा ने कुछ अंगरक्षकों के साथ चुपचाप नगर त्याग दिया।

जयसिम्हा की अनुपस्थिति में क़ासिम ने नगर-व्यापारियों को आश्वासन और घूंस देकर अपनी ओर मिला लिया। षड्यन्त्र में यह तय हुआ कि नित्य की लड़ाई से वापिस लौटने पर वे जवतवादी द्वार में आगल नहीं

लगाएँगे। जहाँ क़ासिम का उन्मादी रोष एक छेद भी नहीं कर सका वहाँ विश्वासघात फलीभूत हुआ। 'अल्लाह ओ अकबर' का गर्जन करता क़ासिम का लुटेरा गिरोह जवतवादी द्वार से अचानक उन पर टूट पड़ा। क़ासिम के भयंकर नरसंहार और पाशविक व्यभिचार से यथासम्भव बचने के लिए नगर-निवासियों ने नगर का पूर्वी द्वार खोलकर स्त्रियों और बच्चों को भगा दिया।

इस विश्वासघात का समाचार सुन दाहिर की दूसरी पत्नी ने ललकार कर अपनी सेना को नियन्त्रित करने का प्रयास किया। उन्हें अपने परिवार और अपने देश की सुरक्षा के पवित्र कर्तव्य का स्मरण दिलाया।

अल्लाह के नाम पर किए जाने वाली पाशविक क्रूरता की आरी से बचने के लिए नगर की अधिकांश नारियों ने अपने आपको अग्नि की लपटों में समर्पित कर जौहर का पवित्र कर्तव्य निभाया। जौहर की इस ज्वाला में लादी और उसकी दो पुत्रियाँ भी समा गईं। सम्भवतः क़ासिम के संकेत पर ही अरबी इतिहासकारों ने यह गढ़कर लिखा है कि दाहिर की दो पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परिमलदेवी बन्दिनी बना ली गईं। मगर क्यों ?

नगर पर धोखे से अधिकार करने से पूर्व क़ासिम की अवस्था बहुत ही खस्ता हो चुकी थी। वही क़ासिम एक अरबी इतिहासकार के अनुसार "निर्दयता के आसन पर बैठ गया और १६ हज़ार व्यक्तियों के खून से ज़मीन लाल हो गई।"

खून से भीगी धरती को देखकर सूर्य ने भी अपनी आँखें बन्द कर लीं। लाशों से पटे मन्दिर मस्जिद बन गए। नगर की सारी गौओं को काटकर उनका मांस क़ासिम के सर्वभक्षी गिरोह को परोस दिया गया।

सारा शहर छाना गया। पर दाहिर के परिवार का पता न चला। दूसरे दिन १ हज़ार व्यक्ति क़ासिम के सामने लाए गये। इनकी बड़ी-बड़ी दाढ़ियाँ थीं। सिर के केश मुँड़े हुए थे। उनसे दाहिर के परिवार का पता पूछा गया। एक शब्द-उच्चारण करना भी उन्होंने स्वीकार नहीं किया। उन्हें अमानवीय और पाशविक पीड़ाएँ दी गईं। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार उन पर "पैगम्बर साहब के कानून के आधार पर" भयंकर टैक्स लगाया गया और "जो मुसलमान बन गए उन्हें गुलामी, सम्पत्ति-कर और प्राण-कर से मुक्त कर दिया"। शेष लोगों से, जिनका घर पहले से ही

बुरी तरह लूट लिया गया था, उनकी भूतपूर्व स्थिति के अनुसार भारी टैक्स वसूल किया गया। अरब लुटेरे प्रत्येक घर में दल-ब-दल घुस गए। उन्होंने गृहपति को आज्ञा दी कि "प्रत्येक स्वस्थ अतिथि का एक दिन और एक रात तथा प्रत्येक बीमार अतिथि का तीन दिन और तीन रात मनोरंजन किया जाए।"

हज्जाज के आदेश पर क़ासिम की सेना एक नगर से दूसरे नगर को नष्ट करती, एक शहर से दूसरे शहर को लूटती, हिन्दू युवतियों पर बलात्कार कर उनका हरण करती, प्रत्येक घर को लूटकर उसमें आग लगाती, नरसंहार करती, लोगों को गुलाम और मुसलमान बनाती सारे सिन्ध पर छा गई।

दाहिर की राजधानी अलोर में उन्हें पुनः प्रबल विरोध का सामना करना पड़ा। वहाँ दाहिर पुत्र फूफी का नियन्त्रण था। निराशा का एक शब्द भी कोई उच्चारण नहीं कर सकता था। कोई नहीं बोल सकता था कि दाहिर वीर गति प्राप्त कर उन्हें रक्षा-विहीन कर गए हैं। फूफी अपने पिता की ही भाँति वीर, दृढ़ और अटल था।

क़ासिम के गिरोह के ५० हज़ार गुण्डों ने अलोर के बाहर तम्बू तान दिए। नगर के बाहर एक रमणीय उपवन में एक उत्तम सरोवर और एक सुन्दर मन्दिर था। क़ासिम ने इसे तहस-नहस कर दिया। इधर अलोर के रक्षकों ने क़ासिम को विवेक से काम लेकर लौट जाने की चेतावनी दी।

कई महीने तक बेबस क़ासिम घेरा डाले पड़ा रहा। अलोर की जनता चट्टान-सी अटल रही। तब क़ासिम ने एक स्त्री को लादी जैसे वस्त्र पहनाए और उसे एक काले ऊँट पर बैठाया जैसाकि लादी का अपना व्यवहार था। फिर कुछ सैनिकों के साथ उसे नगर-प्राचीर के पास भेज दिया। वहाँ उसने ऊँची आवाज में कहा—"हे नगर वासियो! मुझे तुमसे कुछ आवश्यक बातें कहनी हैं। मेरे पास आकर सुनो।" प्राचीर पर कुछ प्रमुख व्यक्ति आए। उस स्त्री ने तब परदा उठाकर कहा—"मैं दाहिर पत्नी लादी हूं। राजा मारा गया है और उनका सिर काटकर दमिश्क भेज दिया गया है। राज-ध्वज और राज-छत्र भी भेजा जा चुका है। अपने आपको बरबाद मत करो।" (क्या सुन्दर प्रलोभन है जिसमें हम आजतक फँसते चले आ रहे हैं) [illegible] अब पीछे हटी और [illegible] रोकर शोक-गीत गाने लगी।

प्राचीर के व्यक्तियों ने वीरता से उत्तर दिया—"तुम झूठ बोलती हो। इन चाण्डालों और गौ-भक्षियों से मिलकर तुम एक हो गई हो। हमारे राजा जीवित हैं···तुमने अपने आपको इन अरबों से अपवित्र करा लिया है। हमारे राजा की अपेक्षा तुमने उनकी सरकार को पसन्द किया है।"

मगर विश्वासघात ने पुनः अपना सिर उठाया। ५०० अरबी लोगों के साथ एक अरबी अल्लाफ़ी बहुत दिनों से दाहिर की सेना में नौकरी कर रहा था। एक रात उसने क़ासिम के लिए नगर-द्वार खोल दिया और नगर क़ासिम के कब्जे में चला गया। इस प्रकार अपनी भलाई करने वाले हिन्दू की पीठ में एक अरब मुसलमान ने छुरा घोंप दिया। सभ्य और सीधे-सादे हिन्दुओं ने कभी यह नहीं सोचा था कि उनकी सेना में एक भी मुसलमान का होना देशद्रोह और विश्वासघात के साँप को दूध पिलाना होगा।

क़ासिम तीन वर्ष तक लगातार सिन्ध को रौंदता रहा। उसकी मुलतान (मूलस्थान) की लूट काफ़ी सफल रही। यहाँ एक विख्यात सूर्य-मन्दिर था। जहाँ सोने से भरपूर ४० घड़े थे। इनका वज़न १३,२०० मन था। सूर्य की प्रतिमा रक्तिम स्वर्ण की बनी हुई थी। आँखें लाल चमकीले रत्नों की थीं।

इसके अतिरिक्त मोतियों की झालरें, अन्य बहुमूल्य हीरे, रत्न, जवाहरात और बेहिसाब ख़ज़ाना प्राप्त हुआ। अरेबियन नाइट की अली-बाबा, क़ासिम, चालीस घड़े और चोरों की कहानी क़ासिम की मुलतान की लूट और अन्त में खलीफ़ा की आज्ञा से क़ासिम की मृत्यु पर ही आधारित है। इस लूट के बाद क़ासिम के पास हज्जाज का पत्र आया कि इस अभियान पर ख़लीफ़ा ने ६० हज़ार दिहराम खर्च किए हैं। वादे के अनुसार उसे इसका दुगुना ख़लीफ़ा को देना है। सूदखोरों की यह साधारण और सर्वविदित चाल है। मूलधन को वे चालाकी से खूब बढ़ा-चढ़ा देते हैं। सिन्ध की सम्पदा को लगातार लूट-लूटकर क़ासिम ने मूलधन का कई गुना अधिक भुगतान कर दिया था। इसके बावजूद तीन वर्ष के बाद भी धूर्त सूदखोरों की भाँति हज्जाज की रक़म क़ासिम के ज़िम्मे सूद सहित बाकी थी। धन और शक्ति की लिप्सा के अनुरूप इन पिशाचों का लेखा-जोखा बराबर बदलता रहता था।

हज्जाज के पत्र से यह रहस्योद्घाटन होता है कि किस प्रकार भारत

के मन्दिरों को मस्जिदों में बदला गया है। यह पत्र उसने क़ासिम को भेजा था। सर एच० एम० इलियट ने अपने ग्रंथ के भाग १, पृष्ठ २०६-२०७ पर इस पत्र को उद्धृत किया है। हज्जाज लिखते हैं—"जहाँ कहीं भी प्राचीन महल, नगर, शहर हो वहाँ मस्जिद, मीनार और अज़ान-मंच (धर्मोपदेश-मंच) बनाकर कुतबा पढ़ा जाना चाहिए।"

ब्रह्मनाबाद की लूट की उथल-पुथल में एक स्त्री को आसानी से धन प्राप्त करने का एक अवसर मिला। क़ासिम के आदमी दाहिर-पुत्रियों की खोज बड़ी सरगर्मी से कर रहे थे। इस पर पुरस्कार भी था। राजा दाहिर की पुत्रियाँ सूर्यदेवी और परिमल देवी कहकर इसने दो युवतियों को क़ासिम के आदमियों के हाथ में सौंप दिया।

यह चारा क़ासिम के मनोनुकूल भी था। ख़लीफ़ा को यह कहने का साहस उसे नहीं था कि वह दाहिर परिवार को पकड़ने में सफल नहीं हो सका है। स्पष्ट है कि दाहिर-पत्नी लादी पकड़ी नहीं गई थी। अलोर के नागरिकों ने उस स्त्री के छद्मवेश का पर्दाफ़ाश कर ही दिया था। आगे स्पष्ट हो गया है कि सूर्यदेवी नामी उस लड़की का नाम वास्तव में जानकी था। ये हिन्दू लड़कियाँ चाहे वे किसी भी परिवार की हों, प्रातः स्मरणीय हैं। अपनी प्रतिष्ठा की रक्षा करने में, अपने बधिक का सिर कुचलने में इन्होंने बड़ी वीरता और अनोखी प्रतिभा का परिचय दिया था। घोड़ों की पूंछ में बँधी कष्टदायक मृत्यु का इन वीरांगनाओं ने हँसते-हँसते आलिंगन कर अपना और हिन्दुत्व के अनादि गौरव का सिर ऊँचा किया।

लूट और गुलामों के झुण्ड के साथ ये वीर बालाएँ दाहिर की पुत्री के भ्रम में दमिश्क पहुँचीं। मार्ग में मुरझाई वीर बालाओं की सेवा शुश्रुषा कर उन्हें पेशी-योग्य बनाया। एक अरबी इतिहासकार के अनुसार, ख़लीफ़ा ने इन्हें अपने हरम में भिजवा दिया।

दो महीने के बाद उन्हें ख़लीफ़ा के सामने पेश किया गया। अगम मार्गों को पार कर हज़ारों मील दूर तक विदेशी राज्य में इन्हें घसीटकर लाया गया था। मार्ग की कठिनाइयों, गुण्डों की भीड़ और छीन-झपट ने इन्हें एकदम असंतुलित कर दिया था। यह बात दो महीने के लम्बे समय से ही स्पष्ट हो जाती है।

ग्रंथ १ में पृष्ठ २०१ पर सर एच० एम० इलियट कहते हैं कि ख़लीफ़ा

वालिद ने दुभाषिए से बड़ी-छोटी का पता लगाने को कहा ताकि बड़ी का भोग पहले और छोटी का बाद में हो सके। बड़ी को अपने पास रखकर ख़लीफ़ा ने छोटी को वापिस हरम में भेज दिया। इतिहासकार के अनुसार, "ख़लीफ़ा उसकी सुन्दरता से मुग्ध हो गया था। उसने उसके कमनीय शरीर पर अपना हाथ रख, उसे अपनी ओर खींचा।"

वीर बाला की आँखों में ख़ून उतर आया। रोष और प्रतिशोध की आग धधक उठी। उसकी इज्ज़त ख़तरे में थी। वह उस शैतान के खेमें में थी जहाँ युवतियों के कौमार्य से खेला जाता था। उसका नाम जानकी था। मगर उसे दाहिर पुत्री सूर्यदेवी का रोल करना था। विश्वासघात, धोखे और कायरता से ब्रह्मनाबाद के पतन पर, दाहिर की वीर पुत्रियाँ अपनी वीर जननी के संग जौहर में अमर हो चुकी थीं।

विद्युत् गति से जानकी खड़ी हो पीछे हट गई। एक बाण से अपने दोनों शत्रु क़ासिम और ख़लीफ़ा का संहार करने पर वह तुली हुई थी। परिस्थिति को नापते हुए जानकी ने ख़लीफ़ा से पूछा—"यह कैसा बीभत्स नियम आप लोगों में है जिसके आधार पर आपके पास भेजने के पूर्व क़ासिम ने मुझे तीन रात अपने पास रखा। सम्भवतः अपने नौकरों की जूठन खाने का ही रिवाज आप लोगों में है। शायद इसी में ही आप लोग आनन्दित होते हैं।"

इन तीखे शब्दों ने कामुक ख़लीफ़ा के हृदय को बेध दिया। विवेक को कामुकता के धुएँ ने पहले ही धुंधला कर दिया था। वह इस अनजान युवती के तीखे शब्दों से क्षण-भर में ही विलीन हो गया। "धैर्य की बागडोर उसके हाथ से छूट गई।" एक इतिहासकार ने टिप्पणी की।

उसी क्षण ख़लीफ़ा ने स्याही और लेखनी मँगाकर एक आज्ञा-पत्र लिखा कि जहाँ कहीं जिस अवस्था में भी क़ासिम हो उसे ताज़े काटे हुए साँड़ के चमड़े के भीतर सीकर ताबड़-तोड़ दमिश्क लाया जाए।

बहुत से अरब क़ासिम से जलते थे। अपने उद्दण्ड अपराधी जीवन में क़ासिम ने अपने शत्रु और मित्र की प्रतिष्ठा, प्रसिद्धि और जीवन को बिना भेदभाव के समान रूप से नष्ट किया था। उसकी मृत्यु के इस परवाने का पालन करने के लिए वे सभी उत्सुक थे।

उस समय क़ासिम बीकानेर के उत्तर में उधवपुर (उदयपुर) में था।

मृत्यु-दूत वहाँ जा पहुँचे। ख़लीफ़ा की अपनी शक्तिशाली टुकड़ी उस विशिष्ट संवाद-वाहक के साथ आज्ञा-पूर्ति के लिए थी ही। ख़लीफ़ा का आदेश-पत्र पढ़कर क़ासिम स्तम्भित रह गया। ऊँचे आसन से नीचे घसीटकर हाथ-पैर बांध उसे साँड़ के कच्चे चमड़े में सी दिया गया। वह ख़ूनी बण्डल पेटी में बन्द कर दमिश्क लाया गया। क़ासिम की लाश के पहुँचने की सूचना ख़लीफ़ा को दी गई। उसने अपने दरबारियों के साथ उन दो वीर बालाओं को भी बुलवाया जिनके संकेत पर पाप के अवतार शैतान को अनन्त यात्रा पर भेजा गया था।

ख़लीफ़ा के हाथ में उस समय एक हरा पैधा था। पेटी खोली गई। क़ासिम के ठण्डे शरीर की ओर पैधे से संकेत करते हुए ख़लीफ़ा ने बड़े घमण्ड से लड़कियों को कहा—"मेरी पुत्रियो, देखो! किस प्रकार मेरे आदमियों ने मेरी आज्ञा का पालन किया है" चमड़े में बन्द क़ासिम घुट-घुटकर दो दिन में मरा था। यह क्षण उन दो हिन्दू बालाओं की महान् विजय का क्षण था। उनका जल्लाद उनके चरणों पर पसरा पड़ा था। पर उन्हें एक वार और करना था।

हतप्रभ ख़लीफ़ा को जानकी उर्फ़ सूर्यदेवी ने कहा—(पृष्ठ २११, इलियट और डाउसन)—"निस्सन्देह आपकी आज्ञा की पूर्ति हुई। पर आपका मस्तिष्क न्याय और विवेक से एकदम खाली है। साधारण समझ भी आप में नहीं है। कासिम ने हमारा स्पर्श तक नहीं किया था। मगर उस शैतान ने हमारे राजा की हत्या की, हमारे देश को तहस-नहस कर दिया, हमारे सम्मान को नष्ट कर हमें गुलामी के दलदल में धकेल दिया। इसीलिए प्रतिशोध और बदले के लिए हमने झूठी अफ़वाहों का सहारा लिया। उसने हमारे जैसी १० हज़ार स्त्रियों को बन्दी बना अपवित्र किया था, ७० शासकों को मौत के घाट उतार कर, मन्दिरों के बदले मस्जिद, मीनार और भाषण-मंच (Pulpit) बना दिये थे।"

ख़लीफ़ा वालिद सुन्न हो गया। इतिहासकार कहते हैं कि शोक की तीव्र लहर में ख़लीफ़ा ने अपनी हथेली काट खाई। वह अत्यन्त मूर्ख बन गया था। शर्म, शोक और ग़लती का उसे इतना कठोर आघात पहुँचा कि अन्ततः जनवरी ७१५ ई० में मर गया।

हज्जाज़ अपने भाईजान और दामाद की इस दर्दनाक मौत के सदमे से

६ महीने पूर्व ही जून ७१४ ई० में मर चुका था। हज्जाज़ पर ख़लीफ़ा ने यह इलज़ाम लगाया था कि उसी के कारण क़ासिम ने उन बालाओं को अपवित्र किया था।

क़ासिम, हज्जाज़ और ख़लीफ़ा के तिहरे पतन पर परवर्ती ख़लीफ़ा सुलेमान हतप्रभ हो चुका था। भयंकर परिस्थितियों में जकड़ी इन वीर हिन्दू बालाओं की अनोखी प्रतिभा, मानसिक-सन्तुलन, अदम्य साहस और महान् गौरव की भावना से वह घबरा उठा। उसने इन चमत्कारिक बालाओं से अपना कोई भी सम्बन्ध न रखने का निर्णय कर लिया। इसीलिए उसने इन हिन्दू बालाओं को घोड़ों की पूँछ से बाँध, दमिश्क की सड़कों पर घसीटकर मार देने की आज्ञा दे दी।

ऐतिहासिक शिक्षा—तत्कालीन अरबी इतिहास भ्रमात्मक हैं। नियमानुसार न तो उनके लेख ही स्पष्ट हैं न उन्होंने कोई तिथि ही दी है। यह भी निश्चित नहीं है कि वे दमिश्क की सड़कों पर घसीट कर मार डाली गईं या दीवार में चिनवा दी गईं। कुछ के अनुसार वालिद ने नहीं वरन् सुलेमान ने ही क़ासिम को पकड़वा कर मँगवाया और मरवाया था। इन सभी विरोधात्मक विवरणों को पढ़कर यही पता लगता है कि वालिद ने ही अपने अपमान का उत्तरदायी हज्जाज़ और क़ासिम को माना था। मगर सच्चाई के ज्ञान ने उसकी जान ले ली। परवर्ती ख़लीफ़ा ने भयभीत हो इन वीर बालाओं को मरवा दिया।

इस बीभत्स, भयंकर और दुखान्त विवरण में दाहिर का परिवार हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान के वीर देशभक्तों के रूप में आकाश गंगा की भाँति चमकता है। अलौकिक विवेक जैसा चमत्कारी प्रदर्शन इन वीर बालाओं ने किया है वह संसार के इतिहास में बेजोड़ है। कृतज्ञ देश अपने इन वीरों और वीर-बालाओं को अवश्य स्मरण रखेगा।

शोक का विषय है कि इन वीर बालाओं के नामों को भी अरबी इतिहासकारों ने भ्रष्ट करके ही प्रस्तुत किया है। दाहिर का भी संस्कृत नाम कुछ और होना चाहिए।

मुहम्मद क़ासिम की तीन वर्षों की विनाश-लीला में सारा सिन्ध बरबाद हो गया। अलोर, देवालयपुर (करांची), ब्रह्मनाबाद, बुधिया, नीरून, शीरशम, शिव-स्थान, निल्हम, शैलज, वहितलुर, कन्ध-बेल, बैत, सागर,

रावेर, जयपुर, नारायणी, काजीजात, बहरूर, दहलीला, चानीर, बतिया, जालावती, मुलतान, महल सवन्धी, दन्दा करबाहा, बहरावर, लोहाना, सिहटा, ब्रह्मपुर, अजताहद, करूर, रोरी और उधवपुर आदि फलते-फूलते नगरों को जलाकर धुआँ देने वाले खण्डहर बना दिया गया। हरे-भरे खेतों, रमणीय झीलों से परिपूर्ण जगमगाते प्रान्त को क़ासिम की ऐतिहासिक गुण्डागर्दी ने रेगिस्तान बना दिया। आबादी के एक बड़े भाग को उनके देश और भाइयों से छीन कर मुसलमान बना दिया गया। नगर और दुर्ग राख हो गए। मन्दिर मस्जिदों में बदल गए।

इस भयकारी नाटक का गौरवशाली भाग वही है जिसमें भारत की दो वीर बालाओं ने इस नाटक के खल-नायकों को पवित्र भारत-भूमि और इसके धार्मिक निवासियों पर शैतानी-चक्र चलाने के अनुरूप उचित दण्ड दिया। हमारे इस कृतज्ञ राष्ट्र को इन वीर बालाओं की याद सर्वदा रखनी चाहिए।

भारत को अपनी अभागी स्थिति और सिन्ध-विनाश से सबक सीखना है कि वह सीमा पर खड़े शत्रु को कभी भी सहन नहीं करेगा। मुसलमानी आक्रमण से हमें सीखना है कि संग्राम पूर्णरूप से संग्राम है और जो देश नर-संहार का नर-संहार से, पीड़ा का पीड़ा से, धर्म-परिवर्तन का धर्म-परिवर्तन से, नाखून का नाखून से और दाँत का दाँत से प्रतिशोध नहीं लेगा वह देश अपनी भूमि और अपनी जनता को खो देगा।

सबसे बढ़कर हमें अरबी फौजी अफ़सर अफ़ीफ़ को स्मरण रखना है जिसने अपने हिन्दू शरणदाता की पीठ में छुरा घोंपा। अगर भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र के रूप में पनपना है तो दाहिर वाली भूल दुहराई नहीं जानी चाहिए।

(मदर इण्डिया, अगस्त १९६६)

: २ :

महमूद गजनवी

तीन वर्ष तक लगातार सिन्ध पर अत्याचार करने वाले मुहम्मद क़ासिम का दर्दनाक अन्त देखकर पश्चिम एशिया के दुष्टों के होश फ़ाख्ता हो गये थे। ढाई सौ वर्ष तक उन्होंने अपने हृदय में हिम्मत और साहस का संग्रह किया और तब वे पुनः भारतीय सीमा पर पाशविक उत्पात मचाने के लिए तैयार हुए।

उन दो वीर हिन्दू बालाओं ने शैतान लुटेरे मुहम्मद क़ासिम से पाई-पाई बदला चुकाया था। "जैसा और जहाँ कहीं भी वह था" उसे ताज़े साँड़ के चमड़े में सीकर भारत से दमिश्क की कब्र में पार्सल कर दिया गया था। भारतीय सीमा रक्षक भी पीछे नहीं रहे। प्रायः सारी भूमि को उन्होंने फिर से अपने अधिकार में कर लिया। मगर अपहृत स्त्रियों, बच्चों और मृत मनुष्यों का एक खूनी-चिह्न भी क़ासिम अपने पीछे छोड़ गया था। इनके जीवित भाई-बन्धु न इधर के रहे न उधर के। कोड़े मार-मारकर, तलवार की धार के नीचे उन्हें मुसलमान बनाया गया था। एक ओर वे नए इस्लाम धर्म से घृणा करते थे, दूसरी ओर हिन्दू धर्म के मूर्ख रूढ़िवादी ठेकेदारों ने उनके हिन्दू धर्म में वापिस लौटने का मार्ग ही बन्द कर रखा था। अपने और अपने पूर्ववर्ती भाइयों के बीच उन्होंने खाई-सी खोद दी थी। ये भाई विदेशी मुस्लिम बर्बरता के शिकार थे। इन्हें सहानुभूति और सहारे की आवश्यकता थी। पर इन्हें दुत्कार दिया गया। विवश होकर इन्हें भारत के शत्रुओं का पक्ष लेना पड़ा। शत्रुओं की संख्या और भी बढ़ गई। शान्तिप्रिय, धर्म-भीरु और देश-भक्त भारतीय लुटेरे हो गए। उन्होंने जिस माँ का दूध पिया था उसी का खून चूसने लगे। जिस धरती पर उन्होंने चलना सीखा था, उसी को वे कुचलने लगे।

अलप्तगीन के समय ९६१-९६९ ई० में पश्चिम एशिया के दुष्ट पुनः भारत को नोचने-खसोटने लगे। वह समानिद शासक के अधीन ख़ुरासान प्रान्त का शासक था। समानिद राजा क्षत्रिय जाति के थे। इस्लाम के जहर ने इनके हिन्दुत्व को नष्ट करके इन्हें मुसलमान बना दिया था। अलप्तगीन के आठ वर्ष के शासन काल में उसके तुर्की सेनापति सुबुक्तगीन ने सीमा को नोचने, फसल को जलाने, असहाय रोती हुई स्त्रियों का हरण करने, और बिलखते बच्चों का हरण करके उन्हें नए मुसलमानी देशों के नए पनपते गुलामों के बाज़ारों में बेचने का भार लिया। तुर्किस्तान के बाद हिन्दू-अफ़ग़ानिस्तान का एक-एक टुकड़ा धीरे-धीरे इस्लाम के पेट में समा रहा था। इससे पहले ईरान, इराक़ और अर्बस्थान आदि हिन्दू देश इस्लाम के पेट में हज़म हो चुके थे।

पंजाब और अफ़ग़ानिस्तान के एक भाग के शासक जयपाल को इस नए शत्रु का सामना करने में बड़ी कठिनाई हो रही थी। वे सेना के सामने न आकर चारों ओर लुटेरों की भाँति गाँवों को लूटकर, मन्दिरों को बरबाद कर, असहाय नागरिकों का हरण कर और खड़ी फ़सलों को जला कर अत्याचार के अनोखे उदाहरण प्रस्तुत कर रहे थे।

पिता अपने पुत्रों को गुणवान और चरित्रवान बनने की शिक्षा देते हैं। अपनी दुष्टता के अनुरूप सुबुक्तगीन अपने पुत्र को छोटी अवस्था से ही लूटमार की शिक्षा दे रहा था।

इन अपराधियों को दण्ड देने के लिए जयपाल ने अपनी सेना लामाघन भेजी। इधर सुबुक्तगीन गज़नी से चला। साथ में लायक पुत्र महमूद भी था। वह डकैती की शिक्षा में अभी तक ग्रेजुएट नहीं हुआ था। सदा की भाँति खान-पान का मार्ग बन्द कर दिया गया। युद्ध के सभी नियमों को तोड़ दिया गया। कोई नीच उपाय बाकी नहीं रहा। प्रदेश में जीवनयापन असम्भव हो गया। मगर इस बार भयंकर पाला पड़ा। पाले की सर्दी ने दोनों पक्षों को शान्त कर दिया। उन्हें अपने-अपने स्थानों को लौटना पड़ा।

शीत-काल के बाद सुबुक्तगीन ने धूर्त्तता की। उसका एक प्रतिनिधिमण्डल जयपाल के दरबार में लाहौर आया। अपनी कैद में पड़े हिन्दू नागरिकों को सता-सताकर मार देने की धमकी देते हुए उन्होंने जयपाल

से युद्ध का हरजाना माँगा। सुबुक्तगीन की बर्बरता के उत्तर में जयपाल ने इस धृष्ट-मण्डल को सींखचों में बन्द कर दिया।

बस दूसरे युद्ध की शुरुआत हो गई। इसे तो सिर्फ़ एक जरा-सा बहाना ही चाहिए था। सुबुक्तगीन की सेना लामाघन के असहाय नागरिकों पर टूट पड़ी। दुर्ग, खेत और खलिहानों को जला दिया गया और सारी सम्पत्ति झाड़-पोंछकर लूट ली गई।

दिल्ली, अजमेर, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं ने संकट को परखा। जयपाल की सहायता के लिए उन्होंने अपनी सैन्य-टुकड़ियाँ भेजीं। कुछ आर्थिक सहायता भी दी। यह संयुक्त सेना लामाघन घाटी की ओर बढ़ी। इस सेना की राजभक्ति बिखरी हुई थी। सभी अपना-अपना प्लान प्रस्तुत कर रहे थे। उधर सुबुक्तगीन का पूर्ववर्ती विध्वंस मुँह फाड़े हुए था। दोनों ने इस सेना को प्रभावहीन कर रखा था। सुबुक्तगीन की ५०० घुड़सवार सेना अत्याचारों की वर्षा कर रही थी। हिन्दू सेना को पीछे हटना पड़ा। पेशावर शत्रुओं के जाल में फँस गया। आज तक हिन्दू पेशावर का उद्धार नहीं कर सके।

मुस्लिम शब्दकोश में फ़तह का अर्थ है—निर्धन नागरिकों को निचोड़ना। सुबुक्तगीन ने दो हजार सैनिकों के साथ टैक्स कलक्टरों को पेशावर में नियुक्त किया। लूट की मीठी जबान है कर-वसूली। मुस्लिम काल में उस मीठी जबान की आड़ में कोड़ों से मार-मारकर हाथ-पैर तोड़े गए और तब उन्हें सिक्कों की मधुर झनकार सुनाई दी।

२० वर्ष तक कर्मठ डाकू का जीवन व्यतीत करने के बाद ९९७ ई० में सुबुक्तगीन बलख लौट गया। पाप के दलदल और क्रूरता के खूनी कीचड़ में फलता-फूलता महमूद अपने बाप को भी झाड़ देता था। इस लिए उसने गद्दी की वसीयत अपने छोटे बेटे इस्माइल के नाम कर दी। जो दुराकांक्षी महमूद अपने पिता को शासन करते देखकर सुलगता रहता था, वह क्या कभी अपने अनुज को गद्दी पर देखकर सिर झुका सकता था ? वह नैशापुर से गज़नी चला। इस्माइल बलख़ से लौटा। भयंकर झड़पें हुईं और इस्माइल जुरजन दुर्ग में बन्दी बन गया।

३० वर्ष की उमर में महमूद अन्तर्राष्ट्रिय चोर-दल का नेता हो गया। वह सिर्फ़ नाम मात्र को ही गज़नी के राजाओं के अधीन था।

चेचक-चिह्नों से कुरूप महमूद साधारण ऊँचाई का था। स्त्रियों और बच्चों के रक्त से खड्ग रँगने वाला यह क्रूर कसाई एक बार दर्पण में अपना चेहरा देख भयभीत हो उठा। उस दिन के बाद से उसने कभी दर्पण में अपना मुँह नहीं देखा।

साम्प्रदायिक मुस्लिम इश्तहारों ने इसे साहित्य और कला के महान् रक्षक और शिल्पी के रूप में चित्रित किया है।

पक्का मुसलमान—"गजनी का सुलतान महमूद" शीर्षक पुस्तक में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी के प्राध्यापक मुहम्मद हबीब इस दावे का खण्डन करते हुए लिखते हैं—"धन और शक्ति के लोभ से ही उसने भारत पर धावा किया था ... सुलतान का जीवन साफ़-साफ़ बतलाता है कि वह चाहे जो भी हो, भले गुणों का आदर्श रूप कदापि नहीं था, जैसाकि धर्मोन्मादी मुसलमानों ने उसे चित्रित किया है। उसका नैतिक चरित्र परवर्ती शासकों के समान ही था; न अच्छा, न बुरा। शराब, साक़ी और संग्राम में वह उन्हीं की श्रेणी का था। तुर्की गुलामों को अपने अधीन रखने के लिए वह उन्हीं के समान अपने अधीन अफ़सरों से छीना-झपटी करता रहता था। उसकी अनेक अनैतिक सन्तानें भी थीं (लाहौर का परवर्ती सेनाधिकारी अहमद—नियालतिजिन, मसूद आदि)।"

महमूद के वेतनभोगी इतिहासकार अल-बरूनी ने लिखा है—"महमूद ने देश की प्रगति का सत्यानाश कर दिया था। नानी की कहानियों की भाँति उसने ऐसे-ऐसे चमत्कार दिखाए कि हिन्दू चूर-चूर होकर धूल के कणों की भाँति चारों ओर बिखर गए। उनके बिखरे हुए टुकड़ों ने मुसलमानों से घृणा करने की एक ऐसी प्रवृत्ति को जन्म दिया है जो कभी समाप्त नहीं होगी। इसी कारण जिन प्रदेशों को हम ने जीता है, उन देशों से बहुत दूर काश्मीर, बनारस आदि स्थानों में, अपने ज्ञान-विज्ञान के केन्द्रों को वे उठाकर ले गए। राजनीतिक और धार्मिक कारणों से इनमें और विदेशियों में बैर-भाव बढ़ता ही रहा है।"

हिन्दुओं के प्रति उसकी घृणा का कारण बर्लिन के स्वर्गीय विद्वान् डॉ० एडवर्ड साचू बतलाते हैं—"महमूद के लिए सारे हिन्दू काफ़िर हैं। वे सभी जहन्नुम भेजने योग्य हैं क्योंकि वे लुटने से इंकार करते हैं।"

प्रो० हबीब के अनुसार महमूद भारत के किसी भी मुस्लिम राजा से

अलग नहीं था। इससे साफ़ है कि हिन्दू पसीने को पीने और हिन्दू धरती पर मोटे होने वाले इन सभी मुस्लिम राजाओं ने (अकबर तक) हिन्दुओं को इस्लामी जहन्नुम पहुँचाने में कोई भी कोर-कसर उठा नहीं रखी। सिर्फ़ इसीलिए कि हिन्दुओं ने अपना धन, अपनी प्रतिष्ठा, अपनी स्त्रियाँ, अपनी भूमि और अपने धर्म को लुटवाना स्वीकार नहीं किया।

यह साम्प्रदायिक दावा एकदम झूठा है कि महमूद साहित्य और कला का पोषक था। डॉ० साचू कहते हैं कि—"हाथी के पैरों से कुचलकर मरने से बचने के लिए, अपनी जान लेकर अमर फ़िरदौसी को वेष बदलकर भागना पड़ा था।" अल-बरूनी की अवस्था भी कोई अच्छी नहीं थी। महमूद के हाथों कहीं वह मसला न जाए इसलिए उसे सदा चाक-चौकन्ना रहना पड़ता था। इसके अतिरिक्त प्रमाणों को देखकर आप स्वयं अनुमान लगा सकते हैं कि डाकुओं का वह दलपति, जिसने जीवनभर सभ्यता और संस्कृति को पैरों से रौंदा है, क्या कभी साहित्य और कला का पोषक हो सकता है? इन विध्वंसकारियों के चारों ओर खुशामदी और चापलूस एकत्रित थे। इनाम के लालच ने अत्याचारों और अनाचारों को जादुई कविता का जामा पहना दिया और गंगा उलटी बहने लगी। साम्प्रदायिक मुसलमानों ने तान छेड़ी है कि मुस्लिम इतिहास के ये तमाम चापलूस मुस्लिम दरबार के महान् कवि और महान् इतिहासकार हैं।

प्रो० हबीब कहते हैं—"शेख सादी और उनकी गुलिस्ताँ के बारे में महमूद के विचार बड़े नीच थे।" वे आगे लिखते हैं कि, "सुलतान महमूद की बड़ाई की अधिकांश कहानियाँ, दिल्ली और दौलताबाद के अर्ध-तुर्की शासनकाल में गढ़ी गई थीं। इस्लामी "फुतुहअस-सुलतीन" की ऊल-जलूल बकवासों में इन कहानियों का एक अच्छा उदाहरण पाया जाता है।"

लालची लोगों की भाँति महमूद का विध्वंस कार्य भी अपने घर से ही प्रारम्भ हुआ। अपने पिता की अन्तिम इच्छा को ठुकरा, भाई को बन्दी कर, वह 'समानैद' शासक की ओर झुका। प्रान्तीय शासक के रूप में इसने समानैद शासन के प्रति राजभक्ति की शपथ खाई थी। अब उत्तराधिकार के झगड़े की आड़ में वह इस वंश को नष्ट-भ्रष्ट करने पर तुल गया। षड्यन्त्र में कासगर के खान को मिलाया। लूटा हुआ राज्य दोनों चोरों के बीच बँट गया। ओमसस नदी, जिसका संस्कृत नाम अश्वक

नदी है, ९९९ ई० में विभाजक रेखा बनी और विजित राज्य टूटकर उनकी सीमाओं में जुड़ गया।

ख़लीफ़ा इस उगते काले सूरज की दोस्ती का इच्छुक था। उसन एक पाक-परिधान और अनेक उपाधियाँ इसे भेजीं—"सुलतान-अमीन-उल् मिलमत यामिनुद्दौलाह" आदि। ख़लीफ़ा की आध्यात्मिक छत्रछाया में समानैद शासकों के स्थान पर अब महमूद बैठा था। प्रो० हबीब अब उसके नए इस्लामी कर्तव्यों पर ध्यान देते हैं (पृष्ट २३)। "महमूद गज़नवी ने प्रतिज्ञा की कि वह प्रत्येक साल हिन्दुओं पर 'जिहाद' का कुठार चलाएगा। ३० वर्षों की लुटेरी जिन्दगी में उसने १७ बार हिन्दुओं पर धावा किया। तीस बार की सारी कसर उसने १७ बार में ही निकाल ली। इसलिए यह सत्य है कि उसने अपनी प्रतिज्ञा शत-प्रतिशत पूरी की।"

कासगर के ख़ान और महमूद के बीच में फँसे हुए थे हिन्दू तातार। अपनी प्रतिज्ञा को पूरी करने का बड़ा सुनहरा अवसर था। चक्की के दो दुष्ट पाटों ने उनके हिन्दू विश्वास को पीस डाला। जो मुसलमान नहीं बने वे नरक की भट्टी में जीवित ही झोंक दिए गए।

पहला डाका—दूसरे साल से महमूद ने भारत पर डाका डालने की शुरुआत की। इसके हाथों गुण्डागर्दी भी एक कला बन गई थी। चोरी, डकैती, लूटमार और गुण्डागर्दी को अन्तर्राष्ट्रिय स्तर पर पहुँचाने का सम्मान इसे अवश्य ही मिलना चाहिए।

१००० ई० में विशाल लुटेरे गिरोह ने सिन्धु नदी पार की। देहाती नगरों और असुरक्षित दुर्गों को लूटकर बन्दी स्त्रियों और बच्चों की एक फौज़ लेकर वह लौटा। हिन्दू बच्चों को मुस्लिम लूट की शिक्षा देनी थी ताकि बाद में वे अपने ही भाइयों को मार, अपनी बहनों की लूट में हाथ बँटा सकें। जिस भारतीय प्रदेश को इसने रौंदा वह रेगिस्तान बन गया। खून के दरिया में तैरकर वे ही जीवित रह सके जिन्होंने इस्लाम स्वीकार किया। सारे हिन्दू मन्दिर मस्जिद बन गए।

इस माल को पचाकर, नर-भक्षी महमूद १००१-२ ई० में पुनः लौटा। इस्लामी शपथ उसे पूरी करनी थी। पेशावर से थोड़ी दूर उसने अपना तम्बू तान दिया। २८ नवम्बर, १००१ ई० को मुस्लिम हमलावरों और जयपाल में संग्राम हुआ। हिन्दू सेना के १५ क्षत्रिय राजकुमार नर-राक्षसों

के हाथ पड़ गए। समर भूमि में पाँच हजार हिन्दुओं ने वीर-गति प्राप्त की। मालूम होता है कि यहाँ महमूद को निश्चित और निर्णयात्मक विजय प्राप्त नहीं हुई क्योंकि उसे सभी बन्दी हिन्दू राजकुमारों को मुक्त कर देना पड़ा। मुसलमानी विध्वंस, अपवित्रीकरण और पीड़ामय ख़तरे से अपनी हिन्दू प्रजा को सुरक्षित रखने के ईश्वर-प्रदत्त कर्तव्य का पालन करने में अपने आप को असफल होता देख, पश्चात्ताप की पीड़ा से उदास जयपाल ने सच्ची क्षत्रिय परम्परा के अनुसार अपने आप को अग्नि की चिता में समर्पित कर दिया।

इसके बाद दो वर्ष तक महमूद राज्य के पश्चिम भागों के विप्लव को दबाने और सिसतान (शिवस्थान) को अपने अधिकार में करने में ही व्यस्त रहा। महमूद ने अपना भारत के विरुद्ध जिहाद सदा शीतकाल में ही छेड़ा था। इससे वह अपने देश के कड़ाके की सर्दी से बचकर, भारत की गरम जलवायु में तपने आ जाता था।

१००५ ई० की शरद ऋतु में सिन्धु पार कर वह जेहलम में भेदा के सामने आया। यहाँ के राजा विजयपाल ने न तो कभी सुबुक्तगीन की चिन्ता की थी, न जयपाल की ही। सलाम करना तो दूर की बात थी, तीन दिन तक डटकर संग्राम चलता रहा। यह राक्षस-दल एक कोने में कस-कसा-सा गया। चौथे दिन की दोपहर तक संग्राम अनिर्णीत ही रहा। मरता क्या न करता, महमूद ने सेना संचालन की बागडोर अपने हाथ में ली और दल को जोरों से हाँका। हिन्दुओं की सेना बीच से दो भागों में टूट गई। बची-खुची सेना ने प्राचीर के भीतर नगर में शरण ली। दुष्टों ने सारे क्षत्रिय प्रदेश को कुचल डाला। जो मिले वे मारे गए या मुसलमान बना लिये गये। (भेदा नमकीन क्षेत्र के भीतर जेहलम के पश्चिमी तट पर है। प्राचीन खण्डहर यहाँ दूर-दूर तक फैले हुए हैं। दूसरी ओर बुरारी के खण्डहर हैं।) मध्य रात्रि में विजयपाल ने अन्तिम प्रयास किया और वीरगति पाई।

सफल डाकुओं की भाँति उसने सर्वदा नयी-नयी दिशाओं में ही डाका डाला था। शताब्दियों के परिश्रम और पसीने की जोड़ी हुई कमाई को वह हिन्दुओं से एक ही झटके में छीनता रहा। १००५-१००७ के जाड़े में वह सिन्ध पर लपका। प्रायः तीन शताब्दियाँ पहले मुहम्मद कासिम ने

सिन्ध को अधमरा कर ही दिया था। आधी जनसंख्या को उसने मुसलमान बना दिया था। इस बार इस्लामी हमलावर मुल्तान की ओर मुड़े। यहाँ एक भूतपूर्व हिन्दू, दाउद के नये नाम से गद्दी पर था। महमूद ने प्राचीर से घिरे नगर को घेर लिया। फिर उसके क्रूर जबड़ों ने आस-पास के क्षेत्रों को चबाना प्रारम्भ कर दिया। विवश दाउद को बन्धकी के रूप में २०,००० दिहराम देने को तैयार होना पड़ा। मगर सन्धि-पत्र के पूर्ण होने से पूर्व ही महमूद को ताबड़तोड़ वापिस भागना पड़ा। उसे समाचार मिला कि उसका भूतपूर्व सहायक और कानूनी भाई ईलाक ख़ान अश्वक सीमा पारकर उसके क्षेत्र में घुस आया है।

१००१-२ ई० के पेशावर-संग्राम में महमूद ने जयपाल के पौत्र, आनन्दपाल के पुत्र सुखपाल को बन्दी बना लिया था। नियमानुसार मार-मारकर इसका भी खतना कर दिया गया था। बाद में भेदा को जीतकर महमूद ने सुखपाल को भेदा का शासक नियुक्त कर दिया और उसका नाम शाह रखा। अपने परिवार पर हुए अत्याचारों के कारण सुखपाल इन असुरों से बहुत घृणा करता था। उसने अपने आपको हिन्दू घोषित कर दिया। महमूद के अफ़सरों ने सुखपाल को धोखे से बन्दी बना, महमूद के सामने प्रस्तुत कर दिया। डाकुओं की शिष्ट परम्परा के अनुसार सुखपाल के परिवार को लूटा गया और उसे जीवन भर जेल में सड़ा दिया गया।

भेदा को अपने खूनी पंजों में दबाए महमूद दक्षिण मुलतान पर और इससे पहले आनन्दपाल पर धावा कर सकता था। हिन्दुस्तान का द्वारपाल अब आनन्दपाल था। यह महमूद से घृणा करता था। इस नर-राक्षस ने उसके पिता, पुत्र और प्रजा नृशंसता पूर्वक को चबा डाला था। कुछ अरबी इतिहासकारों ने एक बड़ी ही मजेदार कहानी लिखी है कि ई-लाक-खान की बढ़ती सेना से टकराते हुए महमूद की परिस्थिति बड़ी चिन्ताजनक हो गई थी। तब आनन्दपाल ने अपने इस शत्रु-लुटेरे महमूद की सहायता के लिए हिन्दू सेना की एक टुकड़ी भेजी। उन लोगों के अनुसार आनन्दपाल न उसे लिखा कि "मैं तुम्हें पराजित होते नहीं देख सकता। तुम्हारे हाथों पराजय की पीड़ा का मैं भुक्तभोगी हूँ। इसलिए तुम्हारी सहायता के लिए मैं अपनी सेना की शक्तिशाली टुकड़ी भेज रहा हूँ।" बाद की घटनाओं को जब हम तराजू पर तोलते

हैं तब ऐसा प्रतीत होता है कि अरेबियन नाइट के गप्पियों ने इस उल्टी-सीधी कहानी को मनमाने ढंग से गढ़ा है। आगे आनन्दपाल ने महमूद का मुकाबला दृढ़ता से किया था। फिर भी कुछ देर के लिए यह मान भी लिया जाए कि उसने यह पत्र लिखा था तो यह बिना मतलब एक ग़लती के लिए उदार बन जाने की हिन्दुओं की कमजोरी को ही दर्शाता है कि उन्होंने खून का बदला खून से और पत्थर का जवाब पत्थर से न देने की भयंकर भूल की।

क्रूर भाग्य—पृष्ठ २८ पर प्रो० हबीब कहते हैं, कि "सतलुज पार के एक मन्दिर में हिन्दुओं ने पीढ़ियों से धन चढ़ाया था। इस पंजाबी कोष और फलती-फूलती जमीन को अपने अधिकार में करने के लिए आनन्द-पाल को हराना आवश्यक हो गया था।" इसी बीच हिन्दुस्तान के रायों ने आनन्दपाल के रुकावट डालने के महत्त्व को समझा। ऐसा प्रतीत होता है कि भेदा के 'बिजीराय' कुछ अभिमानी और अमिलनसार स्वभाव के थे। इसी कारण महमूद की चढ़ाई के समय हिन्दुस्तान के राजा उस की सहायता के लिए नहीं दौड़े। धर्म-त्यागी, नए मुसलमान होने के कारण मुलतान के शासकों की सहायता के लिए कोई भी पड़ोसी राजा नहीं आया। सिर्फ आनन्दपाल ने ही महमूद का मार्ग रोकने का प्रयास किया था क्योंकि उसकी राज्य-सीमा सिन्ध में भी थी।

१००८ ई० की वर्षा ऋतु के बाद आनन्दपाल ही महमूद का शिकार बना। यह देखकर उज्जैन, कालिंजर, ग्वालियर, कन्नौज, दिल्ली और अजमेर के राजाओं ने आनन्दपाल की सहायता के लिए सैन्य-टुकड़ियाँ भेजीं। भारत पर कभी समाप्त न होने वाले अपने विध्वंसकारी आक्रमणों के निशाचरी अभियान पर एक बार फिर डाकू, चोर और अन्त-र्राष्ट्रिय लुटेरा महमूद चुपचाप निकला। उत्तरी भारत में चारों ओर ख़तरे की घंटी बज गई। गक्खर जाति भी इस सामूहिक संकट का सामना करने को पंक्तिबद्ध हो आ डटी। प्रो० हबीब लिखते हैं कि सामूहिक संकट और आपसी सम्बन्धों की ऐसी बिजली कौंधी कि "हिन्दू स्त्रियों ने अपने आभूषणों को बेचकर दूर-दूर से विक्रय-राशि भेजी। देश की ग़रीब बहनों ने बुखार में भी चर्खे चलाकर, मजदूरी करके देश की सुरक्षा में योगदान दिया।"

दुर्भाग्य से विभाजित राजभक्ति की खिचड़ी सेना कदम मिलाकर न चल सकी। आनन्दपाल अगुवा अवश्य था पर इतना प्रभावशाली नहीं था कि अपनी आज्ञा मनवा सके। मुस्लिम लुटेरों के प्रहार से उसका परिवार चूर-चूर हो गया था। सम्भवतः दुःख की इस परिपक्व अवस्था ने उसके प्रभाव को कम कर दिया था।

आनन्दपाल वाहिन्द उर्फ उन्द की ओर एक विशाल सेना के साथ बढ़ा। सेना की संख्या देख, महमूद सामने आने का साहस न कर सका। अपने पड़ाव के चारों ओर उसने खाई खुदवा दी। ४० दिन तक वह प्रतीक्षा करता रहा। इधर आनन्दपाल की सेना बढ़ती रही। नयी सैन्य टुकड़ियाँ आ-आकर मिलती रहीं। जिसने भी मुस्लिम लुटेरों के संकट को सुना, हिन्दुस्तान की सदा सिकुड़ती सीमा पर आ खड़ा होना उसने अपना कर्तव्य समझा।

हिन्दू सेना के इस विस्तार से आतंकित हो महमूद ने भिड़ने की ठानी। एक हजार धनुष-धारियों को उसने हिन्दू खेमों पर बाणों की वर्षा करने की आज्ञा दी। नंगे सिर और नंगे पैर हजारों वीर गक्खरों ने समर-ध्वनि की गूँज से आकाश को वेध दिया, और मुस्लिम पड़ाव से जा टकराये। खाइयों को फाँद, तम्बुओं को पारकर वे मुस्लिम घुड़सवारों पर टूट पड़े। घोड़े और जिहादी सिपाही इस प्रकार गाजर-मूली की तरह कटने लगे कि देखते ही देखते, एक इतिहासकार के शब्दों में, "तीन से चार हज़ार मुसलमानों ने शहीदी शराब पी ली।"

ठीक उसी समय सदा की भाँति भाग्य ने अपना क्रूर और कपटी मुँह दिखाया। पश्चिमी एशिया के लुटेरों के हाथों दासता, हीनता और लूट के प्रहारों को सहते हुए हिन्दुस्तान ने लम्बी शताब्दियाँ व्यतीत की थीं। अब यह एक सुनहरा समय था जब डाकू सरदार अपनी पीठ पर लाठियाँ खाता हुआ भागता और उसके ऊँटों की पीठ हिन्दुस्तान की विजयी सेना पूरी तरह से तोड़ देती। मगर ऐसा होना नहीं था। गक्खरों के सामूहिक आक्रमण के समय आनन्दपाल एक हाथी पर था। हाथी को छूते हुए एक अग्नि-पिंड विस्फोट कर उठा। पीड़ा से हाथी तड़पा, चीखा और भागा। सैन्य टुकड़ियाँ विभिन्न प्रदेशों से आई थीं। उनके अधिकारी मामूली पद के थे। भागते हाथी को देख, उन्होंने सोच लिया कि आनन्दपाल उन्हें

छोड़कर भाग रहा है। अतएव बिना किसी कारण के उन्होंने अपनी सैन्य टुकड़ियों को पीछे हटने की आज्ञा दे दी। बड़ी उमंग से सामूहिक जमाव हुआ था। बड़े आराम से सामूहिक पलायन हो गया। जीतते-जीतते हिन्दू सेना हार गई। यह विजय एक महान् गौरवशाली विजय होती जो सम्भवतः इन दुष्टों को जड़-मूल से ही साफ कर देती।

लुटेरों के बदले हिन्दू सेना ही सिर पर पाँव रखकर भाग खड़ी हुई। महमूद ने जी भरकर इन मूर्खों को खदेड़ा। लगातार दो दिन और दो रात नर-संहार होता रहा। हिन्दू रक्त-धारा बहती रही। स्वप्न अच्छा है कि जब हिन्दू खून ख़त्म हो जाएगा तब ये आप ही भूखों मर जाएँगे। यह अन्तिम संयुक्त हिन्दू विरोध था। एक छोटी-सी भूल ने महमूद को बचा लिया।

अब महमूद नगरकोट के सम्पन्न और प्रसिद्ध मन्दिर की ओर दौड़ा। यह कोट काँगरा और भीमदुर्ग के नाम स विख्यात है। उत्तरी व्यास के तीर की एक पहाड़ी पर यह स्थित है। नगर सैनिकों से शून्य था। सभी सीमा पर खड़े होने चले गए थे। नगर का घिराव हो गया। नगरवासियों के साहस को तोड़ने के लिए, आसपास के क्षेत्रों और निवासियों को इस्लाम के नाम पर नष्ट किया गया। फिर भी नगर पर अधिकार करने में सात दिन लग गए।

जो सम्पत्ति महमूद को मन्दिर से मिली वह कहानियों की बात है। शताब्दियों से अपना पसीना बहाकर हिन्दुओं ने इसे जमा किया था। मुस्लिम डाकुओं ने उसे गजनी की राह पर बहा दिया। एक हजार ऊँटों को मन्दिर के बाहर श्रेणीबद्ध खड़ा किया गया और ढो-ढोकर हिन्दुओं का धन उन पर लादा गया। प्रो० हबीब लिखते हैं कि यह महमूद की पहली प्राप्ति थी। स्वभावतः उसकी भूख और विकराल हो गई। इस मन्दिर में महाभारत काल से ही धन एकत्रित होता आ रहा था। सात लाख सोने की दीनार, सात सौ मन सोने-चाँदी के पात्र, दो सौ मन चाँदी और बीस मन बहुमूल्य रत्नों को वह ढो ले गया।

वाहिन्द की इस दूसरी लड़ाई ने आनन्दपाल की प्रतिष्ठा को चूर-चूर कर दिया। फिर भी वह दृढ़ था। बिना उसे जीते महमूद का मार्ग निरापद नहीं था। दूसरे वर्ष १००९-१० ई० में भारत की लूट को

हज़म कर महमूद, पश्चिम एशिया के किराए के सिपाही और दुष्टों के विशाल दल को लेकर फिर आ धमका। उन्हें बहकाया-फुसलाया गया था कि जवाहरात, शराब, ग़ुलाम और खूबसूरत औरतों में वे खुल कर खेलेंगे। जो चाहें सो करेंगे। कोई माई का लाल रोकने वाला नहीं होगा। इस बार भयंकर युद्ध सामने नहीं था। उन्हें सिर्फ हिन्दुओं का कत्ले-आम करना था; चाहे जहाँ कहीं भी मिलें। हिन्दुस्तान की सदा सिकुड़ती सीमा पर स्थित एकान्त देहातों में मिलें या भीड़ भरे नगरों में। हिन्दू राजाओं को एक नए ढंग का बैरी मिला। वह स्त्रियों और बच्चों के संहार और बलात्कार पर विश्वास करता था। यह एक ऐसा अमोघ हथियार था जो विशाल सुसज्जित सेना से भी हथियार रखवा लेता था। उनकी आँखों के सामने उनके सम्बन्धियों पर पाशविक अत्याचार होते थे। अपनी प्यारी असहाय प्रजा का हाहाकार आनन्दपाल से नहीं देखा जा सका। प्रतिवर्ष 'दो हज़ार गुलाम और ३० हाथी' पर उसने सन्धि कर ली।

महमूद के क्रूर दमन के विरोध में १०१० ई० में जंगली जाति घोर ने विद्रोह कर दिया। पहाड़ी गुफ़ाओं में डटकर मुक़ाबला हुआ। वहाँ चूँकि वे अजेय थे, महमूद बहाना बनाकर पीछे भागा। विजयोल्लास से घोरों ने पीछा किया। मैदान में कसाई-दल मुड़ा। एक-एक को चुन-चुन कर काट डाला गया। कुछ बन्दी भी बनाए गए। एक बन्दी का नाम सूरी था। उसके सामने बाक़ी बन्दियों पर ऐसे-ऐसे पाशविक अत्याचार किए गए, ऐसी भीषण यन्त्रणायें उन्हें दी गई कि सूरी सह नहीं सका। विषाक्त हीरा चूस कर महमूद के सामने उसने अपने प्राण दे दिए।

१००५-६ ई० के धावे में उसे मुलतान को निचोड़ने का अवसर नहीं मिला था। ई-लाक-खान के कारण उसे सरपट वापिस आना पड़ा था। फिर कभी इतमीनान से इसे लूटने का उसने निर्णय किया था।

सोने की नगरी—मुलतान में एक प्रसिद्ध हिन्दू मन्दिर था। हजारों वर्षों से दूर-दूर के तीर्थयात्री यहाँ श्रद्धांजलि अर्पित करने आते थे। इस प्रकार मुलतान के मन्दिर में कुबेर का धन एकत्रित हो गया था। मुलतान सोने की नगरी के रूप में विख्यात था। मगर अफ़सोस ! महमूद गज़नवी तीन सौ वर्ष देर से पहुँचा। पहले लुटेरे कासिम ने

इसे खाली ही कर दिया था। इसका परवर्ती मुसलमान शासक (भूतपूर्व हिन्दू) इस लूटे देवस्थान का दोहरा उपयोग करता था। सर्वप्रथम यह देवस्थान मछली फँसाने का चारा बन गया। दूर-दूर के तीर्थयात्री यहाँ आकर अपनी भेंट अर्पित करते थे। वहाँ का शासक अब मूर्ति-रक्षक नहीं, मूर्ति-भंजक था। दूसरा उपयोग काक-भगोड़े का-सा था। जब भी आसपास के हिन्दू-शासक मुलतान को पुनः हिन्दुस्तान में मिलाने के लिये सेना का संग्रह करते थे, वह देव-प्रतिमा को चूर-चूर कर देने की धमकी दे देता था। बस कौवे सहम जाते थे।

सन् १०१०-११ ई० में महमूद के दुष्ट दल ने मुलतान को एक बार फिर लूटा। अनाचार के मूल्य पर नगर बिक गया। कहा जाता है कि—"धर्मात्माओं (मुसलमानों) को सिर्फ प्रसन्न करने के लिए ही कुछ लोगों के हाथ-पैर काटकर फेंक दिए गए और बाकी लोगों को चीर-फाड़ दिया गया।" स्पष्ट है कि मध्य युग में भारतीयों को भीषण यन्त्रणा दे कर रक्तोत्सव मनाया जाता था।

सन् १०११-१२ ई० में पंजाब में स्थानेश्वर तीर्थयात्रियों का एक प्रमुख देवस्थान था। यहाँ चक्रधारी विष्णु का एक प्राचीन 'चक्रस्वामी' मन्दिर था। अत्याचार की पराकाष्ठा से आनन्दपाल महमूद का गुलाम-सा हो गया था। एक इतिहासकार के अनुसार महमूद ने आनन्दपाल को स्थानेश्वर की लूट का प्रबन्ध करने की आज्ञा दी कि गुण्डे गिरोह के कष्ट निवारणार्थ मार्गों पर दुकानें लगाई जाएँ। खान-पान की पूरी व्यवस्था हो। स्वयं आनन्दपाल का भाई मार्ग-निर्देश करे। अनुमान लगाइए कि इन स्वागतकर्ता व्यापारियों और दुकानदारों पर क्या बीती होगी। इस कसाई-गिरोह के लिए संसार की कोई भी क्रूरता, पीड़ा और यन्त्रणा साधारण बात थी, और बिना कारण भड़कना उनका स्वभाव था। दो हजार अंगरक्षकों के साथ आनन्दपाल का भाई उनके साथ हुआ। भाग्य का कैसा कठोर खेल था! मगर भाग्य को दोष क्यों दिया जाए? भाग्य तो हमारे ही अपने कर्मों का परिणाम है। जैसा कर्म वैसा फल। हमारे अनेक कर्मों में से एक कर्म "अहिंसा परमोधर्मः", स्वाद में मीठी पर प्रभाव में कड़वी दवा सिद्ध हुआ जिसके कारण वीर प्रसू भारत में नपुंसक पैदा होने लगे। फिर भी बची-खुची वीरता के रूप अभी भी

हमें देखने को मिल जाते हैं। शक्ति का सिद्धान्त सनातन है। दुर्बल शरीर को रोग नष्ट कर देता है। वे भारतीय पहरेदार जिन्हें मुस्लिम लुटेरों से भारत की रक्षा करनी थी, अन्तर्राष्ट्रिय लुटेरों के गाइड थे ताकि वे पूर्ण सुरक्षित होकर भारत को जी भर लूट सकें, छीन सकें, और भारत की इज्जत से मनमाना खेल खेल सकें।

मुलतान के सूर्य मन्दिर की भाँति स्थानेश्वर का चक्र-स्वामी मन्दिर भी कुबेर-गृह ही था। शताब्दियों से तीर्थयात्री वहाँ धन बरसाते रहे थे। कोषागारों को परखने की महमूद की दृष्टि चोर-डाकुओं के समान ही पैनी थी। स्थानीय दुर्ग-रक्षकों ने उसका दृढ़ विरोध तो किया मगर मुस्लिम यन्त्रणा की बाढ़ ने उन्हें उखाड़ फेंका। मन्दिर को झाड़-पोंछकर लूटा गया। असीम धन के साथ चक्रपाणि की मूर्ति को भी महमूद गज़नी ले गया। आज भी वह प्रतिमा गज़नी के घुड़दौड़ मैदान में गड़ी पड़ी है। कभी गज़नी प्राचीन हिन्दू सभ्यता का केन्द्र था। आज वह विख्यात हिन्दू देव-प्रतिमाओं की कब्रगाह है।

हमारे विदेशी राजदूतों का यह सांस्कृतिक कर्तव्य है कि वे इन बहु-मूल्य प्राचीन कलाकृतियों को खोजकर उन्हें वापिस भारत लाएँ।

रत्नों, सोने-चाँदी की ईंटों और बहुमूल्य वस्त्रों के अतिरिक्त महमूद के साथ "नौकरों और गुलामों की बड़ी भारी भीड़ भी" गई। कोई भी आसानी से अनुमान लगा सकता है कि 'भीड़' की इन अभागी स्त्रियों और लोगों को न जाने कितनी यन्त्रणाएँ, पीड़ा, निरादर, अपमान और निराशा का सामना कर पश्चिम एशिया के दास-बाजारों में सामानों की भाँति बिकना पड़ा होगा।

आनन्दपाल, उसका भाई और अनुचर वर्ग भीतर ही भीतर सुलग रहे थे। उनकी आँखों के सामने ही उनके भाइयों को यन्त्रणा और अपमान के ऊखल में कूटा गया था। उस दबी आग की झलक हमलावरों को भी मिल रही थी। क्योंकि जब सफलता के आनन्द और आवेग के हवाई घोड़े पर सवार हो महमूद ने पूरब की ओर कूच कर लूट बटोर लाने की ठानी तो मुस्लिम अफसरों ने उसे समझाया की कि वे दूर पूरब की ओर बढ़ेंगे तो उन्हें आनन्दपाल तथा अन्य हिन्दू राजाओं की दया पर निर्भर होना पड़ेगा। अनिच्छापूर्वक महमूद ने बिन-लुटे भारतीय कोषों की ओर

लोलुप दृष्टि डाली, एक लम्बी ठंडी साँस खींची और पीठ फेर ली।

सन् १०१२-१३ ई० : इस बार अपनी छीन-झपट यात्रा में भारत की ओर नज़र न फेर महमूद ने घरीचिस्तान को धर दबाया। फिर इस्लाम के आध्यात्मिक और भौतिक प्रधान ख़लीफ़ा से खुरासान के उन ज़िलों का अधिकार माँगा जो ख़लीफ़ा के अधिकार में थे। सूद के रूप में प्रसिद्ध राजनगर समरकन्द की भी माँग की। ख़लीफ़ा धौंस में नहीं आया तो महमूद उबल उठा। उसने समाचार भेजा—"क्या आप चाहते हैं कि मैं एक हज़ार हाथियों को लेकर आपकी राजधानी में प्रवेश करूँ ?" उस समय शक्तिशाली भारतीय हाथी मुस्लिम हृदय को थर्रा देते थे। इन हाथियों के नाम से ही ख़लीफ़ा के छक्के छूट गए। अपनी छीन-झपट यात्रा में महमूद इन हाथियों को भारत से हाँक लाया था। ख़लीफ़ा ने चुपचाप इसकी माँग पूरी कर दी। तब इसने अपने धर्म-प्रधान ख़लीफ़ा के पास क्षमा-याचना का एक टुकड़ा काग़ज़ भेज दिया।

स्थानेश्वर की लूट से आनन्दपाल को गहरा सदमा पहुँचा। मुसलमानों से शान्ति-सन्धि का उसे अच्छा सबक मिला था। महमूद की पवित्र स्थानों की वार्षिक लूट से नष्ट होते हुए भारत की रक्षा करने में अपने को असमर्थ पा, वह दुःख, पीड़ा, और सदमें से मुक्त हो गया। आनन्दपाल की मृत्यु ने महमूद के एक विनीत सहायक को छीन लिया। उसका पूरा प्लान गड़बड़ा गया। आनन्दपाल का पुत्र त्रिलोचन पाल दुर्बल मस्तिष्क का व्यक्ति था। अपने प्राणों के मूल्य पर वह महमूद की सहायता के लिए राजी था। मगर भारतीय नागरिकों और शासकों ने मुस्लिम शान्ति-सन्धि का प्रत्यक्ष प्रतिफल भोग लिया था। उन लोगों ने अब विरोध का ही निर्णय किया। अतः त्रिलोचनपाल के बदले शासन की बाग-डोर उसके पुत्र भीमपाल के हाथों में दे दी गई।

वीर भीमपाल—भीमपाल ने आनन्दपाल की नीतियों को उलट दिया। उन सभी अपमानजनक सन्धियों को उसने तोड़ दिया जिन्हें उसके दादा ने विवश होकर माना था। महमूद को उसने खुले खेल के लिए ललकारा। टैक्स भेजना बन्द कर दिया। अधीनता के सारे चिह्नों को उखाड़ फेंका। अपने राजपरिवार की खोई प्रतिष्ठा को पुनः प्राप्त करने और अपने देश के सम्मान पर लगे कलंक को अपनी रक्त-धार से धोने-

पोंछने के लिए वह कटिबद्ध हो गया। लाहौर के इस गर्वीले हिन्दू शिशु शासक को कुचलना महमूद के लिए आवश्यक हो गया था।

१०१३ ई० के शरद्काल में महमूद गज़नी से चला। मगर सर्दी की भयंकरता के कारण उसे रुक जाना पड़ा।

१०१४ ई० की बसन्त ऋतु में हमलावरों का विशाल दल भारत की ओर बढ़ा। महमूद के बढ़ने को रोकने के लिए भीमपाल ने मार्गला घाटी को उचित समझा। यह घाटी जेहलम के तट पर बालानाथ की पहाड़ियों में थी। इसकी ढाल खड़ी और गहरी थी। मार्ग संकीर्ण था। चुनाव उत्तम था।

भीमपाल के ओजस्वी नेतृत्व से प्रभावित होकर कुछ हिन्दू राजाओं ने अपनी सैन्य टुकड़ियाँ भी भेजीं। मुस्लिम छल-कपट से अनजान भीमपाल ने तब महमूद के दुष्ट दल से खुले मैदान में न्याय-युद्ध करने का निर्णय कर लिया। मूर्ख हिन्दू यह भूल गए कि काँटे से काँटा निकलता है। जैसे को तैसा उत्तर देने की वैदिक परम्परा के त्यागने से ही आज यह दुर्दशा हुई। मुसलमान गिरोह ने हिन्दू विरोध को विफल कर दिया। भागती सेना का एक भाग बालानाथ पहाड़ियों के निन्दूना दुर्ग में जा छिपा। दूसरा भाग भीमपाल के साथ काश्मीर की ओर भाग गया। निन्दूना दुर्ग का घिराव हुआ। रसद मार्ग बन्द हुए। दुर्ग समर्पित हुआ। नागरिक संहार की रक्तिम गाथा, दुर्ग-रक्षकों का कत्लेआम, धर्म-परिवर्तन, मस्जिदीकरण, बलात्कार, व्यभिचार, अनाचार, अत्याचार, हाहाकार और उन्मादी नारे दुहराए गए। मुसलमान लूटते रहे, हिन्दू लुटते रहे। अब महमूद भीमपाल की खोज में चला। पर उसने सघन-वन में मार्ग भूल जाने और लुट जाने का ख़तरा मोल नहीं लिया। इस बार भीमपाल का पीछा छूट गया।

भीमपाल से महमूद की हार—१०१५ ई० की सर्दियों में महमूद ने भीमपाल को लुटने से इन्कार करने की सजा देने के लिए पुनः प्रयाण किया। ऐसी बात नहीं थी कि उसने अपनी धन-लिप्सा, मूर्ति भंजन और क्रूर मैथुन पर विजय प्राप्त कर ली थी। उसे अनुभव हो गया था कि जिस ओर भी वह निकलेगा उसे धन के ढेरों की प्राप्ति होगी। इस बार उसने भीमपाल को बंदी बनाने और काश्मीर की देव-प्रतिमाओं को लाने

का निश्चय किया।

इस बार उसने लोहाकोट दुर्ग के समीप, काश्मीर घाटी से होकर निकलने का प्रयास किया। मगर तुषार-वर्षा ने राह रोक दी। नगरों के अभाव में लूटें क्या और खाएँ क्या ? प्रकृति ने सफल घिराव कर दिया। लोहाकोट दुर्ग से लगातार बाणों और पत्थरों की वर्षा हो रही थी। भारतीय धन को हजम करके मोटे होने वाले इस खूंखार मुस्लिम डाकू को अपने जूते ही खाने पड़े। इस बार हिन्दू सेना ने उसे पीछे धकेल दिया। अपने प्रयत्न में असफल होकर, चुपचाप खाली हाथ उसे गज़नी लौटना पड़ा।

सन् १०१६ ई० : इस हार की क्षति-पूर्ति के लिए उसने इस बार ख्वाराज़्म पर दाँत गड़ाया। ख्वाराज्म का शासक उसका बहनोई था। सारे मुस्लिम शासक अपनी क्रूरता, सम्भोग-वृत्ति और व्यभिचार के लिए विख्यात और घृणा के पात्र हैं। यही हाल ख्वाराज्म के शासक अब्दुल-अब्बास मामुन का था। निकाह के बाद साल भर में ही वह एक उपद्रव में मारा गया। उपद्रव को कुचलने के बहाने महमूद ने कूच किया। हजार-अस्प दुर्ग में युद्ध हुआ। ख्वाराज्म उनके राज्य में मिला लिया गया। उसकी बहन मुँह देखती रह गई।

स्पष्ट है कि हजार-अस्प संस्कृत शब्द सहस्त्रअश्व का ही बिगड़ा रूप है।

सन् १०१८ ई० : मौनसून का अन्त था। भीमपाल को सज़ा देनी थी। लूट की प्यास भी तेज हो गयी थी। गिरोह को विशालतम होना चाहिए। अतएव सारे पश्चिम एशिया में ढोल पीट दिया गया कि इस बार महमूद ने उपजाऊ ज़मीन को बंजर करने और उन मन्दिरों को लूटने की योजना बनाई है जिनके स्वप्न वह बराबर देखता आ रहा था। लुटेरों में हलचल मच गई। भारत को लूटने की सुनहरी आशा से खुरा-सान से लेकर तुर्किस्तान तक के बीस हज़ार बर्बर जंगली और अपराधी जमा हो गए। भारत के विनाश, लूट, ध्वंस, और नरसंहार में एक लाख धर्मोन्मादियों की सहायता करने ये २० हजार भी महमूद के हरे झंडे के नीचे कतार बाँधकर खड़े हो गए। इनके चेहरों पर अब प्राचीन हिन्दू संस्कृति का एक चिह्न भी बाकी नहीं था।

त्रिलोचनपाल और भीमपाल अभी तक महमूद से जहाँ-तहाँ तलवार बजा उठते थे। लगातार मुस्लिम हमलों ने उनकी सेना को बुरी तरह मथ दिया था। मुस्लिम ललकार से लोहा बजाने के लिए अब सेना की भरती पुर्नविभाजन, पुनर्गठन और प्रशिक्षण अनिवार्य हो गया था।

महमूद के दुष्टदल और उसकी आतंक कला से भयभीत होकर काश्मीर के राजा ने शान्ति-सन्धि कर ली। महमूद के लुटेरे दल की अग्रिम टुकड़ी को सकुशल गंग-सिन्धु के मैदान में उतार दिया गया। सारे क्षेत्र को कुचलते, बरबाद करते, लूटते, पाटते मुफ्तखोरों के इस टिड्डी दल ने २ दिसम्बर, १०१८ को यमुना पार की। बुलन्दशहर का घिराव हो गया। स्थानीय शासक राय हरदत्त ने एक हज़ार लोगों के साथ आत्मसमर्पण कर खतना करवा लिया। बुलन्दशहर के एक-एक मन्दिर को मस्जिद बना दिया गया और लूट की सम्पत्ति को ऊँटों पर लाद दिया गया।

अब महमूद महाबन की ओर बढ़ा। यहाँ का राजा राय कुलचन्द कठोर धातु का बना हुआ था। घने-बन के बीच वह दुष्टों के सामने आ डटा। डटकर मुकाबला हुआ। आत्म-समर्पण और धर्म-परिवर्तन से मृत्यु को श्रेयस्कर समझ, अपनी पत्नी और पुत्र के साथ उसने अपनी छाती में कटार भोंक ली।

मथुरा का मलीदा—यमुना के दूसरी ओर पवित्र प्राचीन नगरी मथुरा थी। इसके चारों ओर पत्थर की प्राचीर थी। दो द्वार नदी की ओर खुलते थे। नदी के दोनों ओर एक हज़ार मन्दिर थे। सभी लोहे की कीलों से जकड़े हुए थे। नदी के किनारे-किनारे धारा में झाँकते विशाल, भव्य, ऊँचे, कई मंज़िले महल चौड़े और ठोस खम्भों के सहारे खड़े थे। नगर के मध्य में सभी महलों से बड़ा और मज़बूत एक विशालकाय मन्दिर था। मुस्लिम इतिहासकार इसकी भव्यता का "न तो वर्णन करने में समर्थ हैं न खाका खींचकर पेश करने में ही। जनसंख्या और भवनों की भव्यता में मथुरा नगर अद्वितीय था। मानव वाणी इसके ऐश्वर्य का वर्णन करने में असमर्थ थी।" शोक! आज मथुरा एक भग्न प्रतिमा है। महमूद और परवर्ती शासकों ने इसे इतना लूटा, चूसा और निचोड़ा कि इसका सारा वैभव सूख गया।

प्रत्येक विदेशी मुस्लिम शासक ने एक शहर से दूसरे भारतीय शहर को लूटने के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं किया, फिर भी, इतिहास की वर्तमान पाठ्य-पुस्तकों ने उन्हें भारत में शहरों, मस्जिदों और असंख्य मकबरों के निर्माण का श्रेय दिया है।

मथुरा असुरक्षित था। पड़ोस की सारी सेनायें या तो काटकर फेंक दी गई थीं या उन्हें बन्दी कर लिया गया था। कोई विरोध नहीं था। उस समय नगर में लाखों नागरिक और हजारों तीर्थयात्री थे। अपनी लूट-खसोट के लिए महमूद मुक्त था। उसने आज्ञा दी कि प्रत्येक मन्दिर को अग्निपिंडों और मशालों से जलाकर राख कर दिया जाए। प्रो० हबीब कहते हैं, "मालूम होता है कि ईर्ष्या से महमूद का माथा पागल हो गया था।"

महमूद ने गज़नी में अपने दरबारियों को समाचार भेजा। एक समाचार में वह लिखता है—"शहर में हज़ारों गुम्बद वाले महल हैं। अधिकांश विशाल पत्थरों के बने हुए हैं। मन्दिर इतने अधिक हैं कि उन्हें गिना नहीं जा सकता। यदि इनमें से एक महल को भी कोई बनाना चाहे तो उसे एक लाख दीनार खर्च करने पड़ेंगे और कुशल कारीगरों को दो सौ वर्षों तक परिश्रम करना होगा।"

मथुरा को तसल्ली से लूटा गया। ८८००० मिसक्वाल स्वर्ण-प्रतिमाएँ उन्हें मिलीं। चाँदी की २०० प्रतिमाएँ इतनी विशाल थीं कि बिना तोड़े उन्हें नापना उनके लिए असम्भव था। ५००० दीनार मूल्य के दो बड़े लाल रत्न, ४५० मिसक्वाल का एक नीलम, और इसी प्रकार अन्य बहुमूल्य रत्नों को लूटा गया जो मथुरा जैसे सम्पन्न नगर में ही प्राप्त हो सकते थे। भगवान् कृष्ण के जन्म-स्थान पर निर्मित भव्यतम मन्दिर को मस्जिद बना दिया गया! आज तक उस मस्जिद को फिर से मन्दिर बनाकर हिन्दुओं के साथ न्याय नहीं किया गया है। मथुरा का तलपट तक लूटकर महमूद मथुरा के समीप भगवान् कृष्ण के बाल-क्रीड़ा स्थल वृन्दावन की ओर चला। इस खूबसूरत नगरी में सात दुर्ग थे। थोड़े से दुर्ग-रक्षक भी थे जो महमूद का मुकाबला करने योग्य नहीं थे। वृन्दावन को भी भली-भाँति लूटकर सारी सम्पत्ति इकट्ठी कर ली गई। गंगा नदी के नीचे फ़तहपुर के समीप राय चान्दल मोर का आस्नि दुर्ग था। कन्नौज

के राजा से इसका बैर था। अपने पड़ोसी से तो संग्राम करने में वह प्रायः डटा ही रहता था पर वैसे ही दृढ़ विरोध का प्रदर्शन इसने महमूद के सामने नहीं किया। निर्मम शत्रु के सामने वह मित्र-विहीन था। मुस्लिम इतिहासकार के अनुसार आगत-आतंक के दुःस्वप्न से जागकर चान्दल राय अस्नि से भाग गया। रक्षकों को मार, नागरिकों को काट, मन्दिर को मस्जिद बना अस्नि को लूटा गया।

अब महमूद दक्षिण, मुँजदुर्ग (मुझवन) की ओर बढ़ा। अस्नि के विपरीत मुँज दुर्ग ने तलवार बजा दी। भीषण मार-काट मची। अल्प दुर्ग-रक्षकों की स्त्रियों और बच्चों ने शत्रु के हाथों अपमानित होने की अपेक्षा अग्नि का आलिंगन कर लिया। जब से मुस्लिम आक्रमणों का प्रारम्भ हुआ, अभागी असहाय स्त्रियों और बच्चों को बार-बार जौहर का व्रत करना पड़ा। अपनी स्त्रियों और बच्चों को अग्नि-देव के अंक में सुरक्षित रखकर मुँज-रक्षकों ने रक्त की अन्तिम बूँद तक शत्रु का संहार किया।

महमूद का दूसरा शिकार सर्वा का शासक चान्दराय था। मुस्लिम दलों के पिछलग्गू अरबी इतिहासकारों और चापलूसों ने जो विलक्षण और असत्य विवरण लिख छोड़ा है उसके लिए वे उस प्रशंसा के पात्र नहीं हैं, जो आज उन्हें मिल रही है। पाप की उपज के भागीदार होने के लालच में उन्हें अपने स्वामियों की डींग हाँकनी थी। अतएव महत्त्वपूर्ण तिथियाँ देना तो दूर की बात है, उन्होंने भारतीय नामों को ही बिगाड़ दिया है। इसलिए हम नहीं बता सकते कि सर्वा से उनका क्या अभिप्राय था। यह सर्वा कालिंजर और बन्दा के बीच केन नदी तट का 'सिउरा' भी हो सकता है या फिर कुन्च के समीप पहोन्ज तट का श्रीवागढ़ भी।

सर्वा का राजा अपने पूर्व में स्थित लाहौर-शासक अभागे त्रिलोचनपाल को परेशान करता रहता था। अब महमूद ने पश्चिम से इस पर दबाव डाला। इस बैर-भाव को समाप्त करने के लिए त्रिलोचनपाल ने अपने पुत्र भीमपाल का विवाह भी सर्वा-शासक की पुत्री से कर दिया था। फिर भी तनाव बना ही रहा। एक बार भीमपाल अपनी पत्नी को लाने सर्वा गया। वहाँ उसे रोक लिया गया। मगर अब संकट दोनों पर था जिसने दोनों में समझौता करा दिया।

घिराव में भूखे मर आत्म-समर्पण कर देने की आशंका से चाँदराय ने सर्वा दुर्ग त्याग दिया। सर्वा पर अधिकार कर महमूद चाँदराय के पीछे चला। ६ जनवरी, १०१६ को संग्राम हुआ। चाँदराय के कुछ हाथियों को पकड़कर महमूद गजनी चला गया।

इस्लाम का कलंक—महमूद के अन्तर्राष्ट्रिय डाकू-चरित्र की सफलता से ख़लीफ़ा फूला नहीं समा रहा था। उसने एक विशिष्ट दरबार का आयोजन किया। भारतीय स्त्रियों और बच्चों के अपहरण और बलात्कार से प्रतिवर्ष गजनी में बरसती असीम सम्पत्ति के विस्तृत विवरण और डकैती पर महमूद के निबन्धों को ख़लीफ़ा ने सादर ग्रहण किया और बड़े गौरव से उसे दरबारियों को सुनाया।

प्रो० हबीब कहते हैं—(पृष्ठ ४४)—महमूद "असीम सम्पत्ति में लौटता था। भारतीय उसके धर्म से घृणा करने लगे। लुटे हुए लोग कभी भी इस्लाम धर्म को अच्छी नजर से नहीं देखेंगे····जबकि इसने अपने पीछे लुटे मन्दिर, बरबाद शहर और कुचली लाशों की सदा जीवित रहने वाली कहानी को ही छोड़ा है। इससे धर्म के रूप में इस्लाम का नैतिक पतन ही हुआ है, नैतिक स्तर उठने की बात तो दूर रही। उसकी लूट ३०,००,००० दिहराम आँकी गई है।"

हज़ारों की संख्या में साधारण असहाय भारतीय कृषक, डोम, स्त्रियों, बच्चों को गजनी तक घसीटकर ले जाया गया था। उनका मूल्य बाजारों में दो-तीन दिहराम था। अतएव मोहरों, सोने-चाँदी की ईंटों, रत्नों, जवाहरातों की लूट के अतिरिक्त हजारों की संख्या में भारतीय बन्दियों को गुलामों के बाजारों में बेचकर कई मिलियन (१० लाख का १ मिलियन) बनाया। असीम लूट लेकर डाकू महमूद के वापिस लौटने का समाचार विद्युत्-सा चारों ओर फैल जाता था और भावारुन, नाहर, इराक़, खुरासान आदि दूर-दूर स्थानों से झुण्ड-के-झुण्ड मुसलमान चटपट वहाँ पहुँच जाते थे।

क्रेता और विक्रेता के बीच की छीना-झपटी में तड़फड़ाती मछलियों और फड़फड़ाते पक्षियों के समान भारतीय नर-नारियाँ और बच्चे इधर-उधर घसीटे जाते थे। उन्हें पिंजरों में बन्द कर, पशुओं की भाँति बाँध-कर लकड़ियों की नोक से कुरेदा जाता था। उसके बाद क्रेता तिरछी

नज़रों से उन्हें देख, उनके भावी उपयोगों को तोलते थे कि वे उसकी वासनापूर्ति में आनन्ददायक होंगे या पशुओं की तरह उपयोग में लाये जा सकेंगे। फिर मोल भाव होता था। काले हों या गोरे, अमीर हों या गरीब, छोटे हों या बड़े, उस मेले का एक ही मापदण्ड था। उन सबकी एक ही श्रेणी थी। वे सभी गुलाम थे।

बिना समझे-बूझे या जांच-प्रमाण के गजनी में एक मस्जिद और एक विद्यालय बनाने का श्रेय महमूद को दिया जाता है। महमूद इतना मूर्ख और इतना उदार नहीं था कि वह किसी भवन-निर्माण पर एक पैसा भी व्यय करे। उसके पास इतना फ़ालतू समय भी कहाँ था कि वह निर्माण की बात सोच सके। प्रत्येक साल के बारहों महीने वह दूर देशों पर धावा करने की योजना ही बनाया करता था। बीच का थोड़ा-सा समय यदि किसी प्रकार निकल ही आता था तो वह लूट की राशि को गजनी में जमा करने दौड़ पड़ता था ताकि हलका होकर फिर अपने काम में लग सके। गजनी की जिस मस्जिद और विद्यालय को महमूद द्वारा निर्माण कराया माना जाता है वह गज़नी के मुस्लिम-पूर्व भारतीय क्षत्रिय राजाओं का बनवाया हिन्दू मन्दिर और हिन्दू विद्यालय ही हो सकता है, और कुछ नहीं।

त्रिलोचनपाल और भीमपाल हार अवश्य गए थे, परन्तु कुचले नहीं जा सके थे। अभी भी दो-आब में मस्तक उठाए वे खड़े थे। बुन्देलखण्ड में कालिंजर के राजा रायनन्द और ग्वालियर के राजा ने कन्नौज के राजा से युद्ध किया क्योंकि इसने आत्म-समर्पण कर अपनी प्रजा को लुटवाने में महमूद की सहायता की थी। अपनी सेना का त्याग करने, क्षत्रिय कर्म की अवहेलना कर देशघाती होने के अपराध में कन्नौज के राजा का अन्त कर दिया गया। उसे यह बताने का अवसर नहीं दिया गया कि उसका क्षत्रिय कर्म 'अहिंसा परमोधर्मः" हो चुका है। महमूद के भावी आक्रमणों को रोकने के लिए दोनों ने त्रिलोचनपाल की सहायता करने का निर्णय किया।

१०१९ ई० के शीतकाल में अनुमानित आक्रमण हुआ। महमूद ने पंजाब की पाँचों नदियों और गंगा-यमुना को पार किया। त्रिलोचनपाल रामगंगा से पीछे हटा। कटी गायों के फूले शवों पर तैरकर महमूद के दुष्ट

दल ने नदी पार की। त्रिलोचनपाल के साधारण अवरोध को नष्ट कर गंगा के पूर्व में नये निर्मित नगर को लूटकर महमूद ने बरबाद कर दिया। मुसलमानी आक्रमण ने कन्नौज को नष्ट कर दिया था। बड़े शोक की बात है कि विदेशी आक्रमणकारियों ने जबकि अपने सहस्रवर्षीय शासन-काल में एक नगर से दूसरे भारतीय नगर को लूटने, नष्ट करने और जलाने के अतिरिक्त और कुछ नहीं किया, फिर भी आधुनिक भारतीय इतिहास पाठ्य-पुस्तकें उन्हें अनेक काल्पनिक नगरों के निर्माण का श्रेय देती हैं।

त्रिलोचनपाल की सेना के बिखर जाने के बाद भी, मिलकर सामना करने के बदले नन्द की सेना अकेली ही महमूद का सामना करने चली। मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार राय नन्द की सेना में ३६,००० घोड़े, ४०,००० पैदल, और ६४० हाथी थे। पर्वतीय दुर्ग से, नन्द की मिली-जुली सैन्य-पंक्ति को नीचे अपनी ओर आती देख महमूद का दिल बैठ गया। इस बार अपने मूर्खतापूर्ण अभियान के लिए उसने अपने आप को धिक्कारा भी। रायनन्द भी दिन भर की कूच के बाद महमूद के पड़ाव के समीप पहुँच चुका था। दूसरे दिन के अवश्यम्भावी संग्राम के बारे में वह सारी रात सोच-विचार करता रहा। उषाकाल के पूर्व ही उसने विचार बदल लिया। बिना लड़े ही उसकी हिम्मत पस्त हो गई—(अहिंसा परमोधर्मः के इन्जेक्शन का प्रभाव)। सारे साजो-सामान को छोड़-छाड़कर वह चटपट सिर पर पैर रखकर भाग खड़ा हुआ। सूर्योदय के बाद महमूद की पर्यवेक्षक टुकड़ी ने शत्रु-क्षेत्र में गतिहीनता देख कर अपने आपको दिलासा दिया कि यह कोई जाल नहीं है। तब खेमों पर झपटकर महमूद ने उन्हें बिखेर दिया। नन्द की सेना के ५८० और त्रिलोचनपाल की सेना के २८० हाथी उसके हाथ लग गए थे। इस बार उसने इतने ही पर सन्तोष कर लिया। उसे ज्ञात था कि अशान्त पंजाब अभी भी उसका मार्ग बन्द कर सकता है। अतः वह शीघ्र ही अपनी लूट सम्भालकर गज़नी चला गया।

अन्तर्राष्ट्रिय डाकू जीवन से उसे आशा से अधिक मुनाफ़ा मिल रहा था। इस बार उसने पंजाब को एकदम शान्त कर उसे मुस्लिमिस्तान बनाने की सम्भावना पर विचार किया। ताकि उसे भारत को और

अधिक लूटने के लिए यहीं एक स्थायी निवास प्राप्त हो जाए।

उसका प्रथम प्रहार स्वात, बाजूर, और काफिरिस्तान की सीमान्त जातियों पर हुआ। ये शाक्य-सिंह (गौतम बुद्ध, अहिंसा परमोधर्मः) की पूजा करते थे। अभी तक "उनकी गर्दन पर इस्लाम का जुआ नहीं रखा गया था" काबुल नदी की सहायक नदियाँ नूर और कीर के तीरों पर किरात और नार्धिन (नूर) क्षत्रों में ये सीधे-सादे बनवासी रहा करते थे। महमूद का क्रूर प्रहार हुआ और "अहिंसा परमोधर्मः से 'हिंसा लूट परमोधर्मः' ही इनका धर्म हो गया। ये मुसलसान बना लिये गए।

लाहौर लुप्त हो गया—काश्मीर घाटी की रक्षा करने वाले शक्तिशाली अवरोध लोहाकोट के आधे मार्ग तक महमूद आया। जिसने अपने प्रहारों से सभी अवरोधों को चकनाचूर कर दिया था उसी को लोहाकोट से दुम दबाकर भागना पड़ा था। यह अपमान निरन्तर उसे खाए जा रहा था। यह उसके बाहुबल का अपमान था। उसने एक बार पुनः प्रयास किया। पर उसे पीछे हटना पड़ा। तब उसने अपना ध्यान पंजाब के मैदानी क्षेत्रों को विनष्ट करने पर केन्द्रित किया। रामगंगा संग्राम के तुरन्त बाद ही त्रिलोचनपाल सुरधाम सिधार गया था। निराशा, दुर्भाग्य, और अपमान की पीड़ा ने उसे और उसके परिवार को तोड़ दिया था। लाहौर के अवरोध में असफल होने के कारण हिन्दुत्व ने लाहौर को खो दिया। महमूद ने लाहौर में एक मुस्लिम शासक नियुक्त किया। इस पवित्र क्षेत्र के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर उसने उप-शासकों की नियुक्ति की। उनके अधीन सैन्य-टुकड़ियों को छोड़ दिया गया। इस प्रकार पंजाब में कल्लूर-वंश के शासन की समाप्ति हो गई। कल्लूर के राज-परिवार के बारे में तत्कालीन इतिहासकार अल-बरूनी लिखते हैं—"वे उच्च विचार और सभ्य आचार के महान् व्यक्ति थे। अपनी महानता के कारण वे अच्छे और सच्चे कामों को करने से कभी भी पीछे नहीं हटे। अन्तिम जीवित उत्तराधिकारी भीमपाल अजमेर के राय के पास चले गए। वहाँ १०२६ ई० में उसकी मृत्यु हुई।"

जब स्वयं अल-बरूनी जैसा महमूद का दिन-रात का साथी, शिविर-अनुयायी, और वेतन-भोगी अनुचर लाहौर के हिन्दू कल्लूर राजपरिवार के लोगों के महान् और उच्च गुणों की इस प्रकार प्रशंसा करता है तो

यह साफ़ है कि उस महान् परिवार का विनाश करने वाले महमूद की वह खुले आम निन्दा और बुराई कर रहा है।

इस्लाम के लिए पंजाब को पाक करने के बाद महमूद बे-रोकटोक लाहौर आ सकता था।

१०२२ ई० के शीतकाल में गज़नी से चलकर उसने ग्वालियर को घेर लिया। नियम के अनुसार बाहरी गाँवों को लूटकर जला दिया गया। निवासियों को सताया गया। बहुतों को मुसलमान बना लिया गया। मगर हिन्दुत्व की दृढ़ चट्टान की भाँति ग्वालियर दुर्ग मस्तक ऊँचा किए खड़ा रहा। अपनी विजय असम्भव देख, महमूद अपनी नाक बचाने के लिए नज़राना पाकर लौट जाने पर ही राजी हो गया। इस जानवर से छुटकारा पाने के लिए उसे ३५ हाथी दे दिए गए। अधिक सम्भावना इसी बात की है कि उसने दुर्ग के बाहरी अस्तबल से हाथियों को खोल लिया और नज़राने का भूठा बहाना गढ़कर लिख दिया। मुस्लिम इतिहासकारों की यह साधारण कमजोरी रही है कि विजय और प्रतिष्ठा के झूठे चमकदार विवरणों के परदे में उन्होंने अपनी कटी नाक को छिपाया है। (सच्ची बात तो यह है कि हम लोगों ने खुशामदियों, चापलूसों और चाटुकारों को इतिहासकार की पदवी दे देने की भूल की है। अगर ये अपने स्वामी की बढ़ाई की डींग नहीं हाँकेंगे तो उनका पेट कैसे भरेगा ?)।

ग्वालियर से खाली हाथ लौटने के बाद महमूद दूसरी ओर मुड़ गया। इस बार उसने रायनन्द की राजधानी कालिंजर पर घेरा डाल दिया। यहाँ उसे सफलता नहीं मिली। आसपास के गरीब महावतों को डरा-धमकाकर और कुलीन व्यक्तियों के निर्जन अस्तबलों में से खोज-बीनकर ३०० हाथियों को जमा किया और यह दावा किया की नन्द ने ३०० हाथियों की क़ीमत देकर चैन ख़रीदा है। महमूद जैसा आवारा अपराधी, जिसका हाथ हमेशा यन्त्रणा और विनाश, धर्म-परिवर्तन और विध्वंस, बलात्कार और खून-खराबी के लिए खुजलाया करता था, उस मिट्टी का बना हुआ नहीं था, जो बिना किसी मजबूरी के ३३५ हाथियों का उपहार लेकर ही चुपचाप गज़नी चला जाता।

महमूद के भक्तों और साम्प्रदायिक मुस्लिम विवरणों ने उसकी

प्रशंसा में कुछ स्वनिर्मित स्तुतियों को प्रचलित किया और यह दावा किया कि महमूद के घोर शत्रु रायनन्द ने महमूद की प्रशंसा में इन स्तुतियों की रचना की है।

सभी जानते हैं कि हाथी के पैरों के तले कुचलकर मरने से बचने के लिए अरबी का प्रसिद्ध कवि फिरदौसी छिपता-भागता फिरता रहा था; महमूद के शिकारी कुत्ते उसका पीछा करते रहे। ऐसा महमूद नन्द की कुछ कविताओं से प्रसन्न नहीं हो सकता। दूसरी ओर उसका भीषण वैरी नन्द महमूद की अन्तर्राष्ट्रिय लूटपाट की प्रशंसा में कभी भी काव्य-रचना नहीं करेगा।

देहाती क्षेत्रों को लूट, जला, निराश हो महमूद ने पीठ फेरी। उसके सितारे गर्दिश में थे। अन्तर्राष्ट्रिय चोरी के लिए ऊपर-नीचे पड़ते उसके झुंड-के-झुंड साथी पहले की भाँति निर्दोषों की गर्दन मरोड़ने और अबलाओं की इज्ज़त लूटने की अपनी प्रथा को मथकर भरपूर मुनाफ़े का मक्खन नहीं पा रहे थे। पाप का लाभ कम हो रहा था।

पूर्व की ओर लुटेरा महमूद कालिंजर तक ही आया। उसकी आवारा ज़िन्दगी से उसका स्वास्थ्य चौपट हो गया था। क्षय रोग के प्रत्येक चिह्न प्रकट होने लगे। शारीरिक और मानसिक रूप में वह कठोर शिविर-जीवन-यापन के अयोग्य हो गया था। मगर अभी भी भारत में कुछ विख्यात मन्दिर शेष थे जिनकी पावन-प्रतिमाओं का अपमान कर वह उन्हें लूटना चाहता था।

ग्वालियर-कालिंजर से हारे-थके हुए गज़नी लौटकर उसने अपनी सशस्त्र सेना का वृहत् सम्मेलन किया। कुछ पापी सहयोगियों का वह आवारा डाकू-दल कई गुना बढ़कर, भारतीय धन और रक्त को चाटने वाले टिड्डी दल में परिणत हो गया था। गुण्डों और अन्तर्राष्ट्रिय अपराधियों के गिरोह में ५४ हज़ार घोड़े, १३०० हाथी (कहा जाता है कि मृत्यु के समय महमूद के पास २५०० हाथी थे) और एक लाख से अधिक पैदल सेना थी।

इस विशाल गिरोह के साथ महमूद ने ओक्सस नदी पार करके नदी पार के शासकों को आतंकित किया। समरकंद का शासक अप्तगीन पकड़-जकड़कर महमूद गज़नवी के सामने पेश किया गया। सता-सताकर इसे कर

जेलरों की खूनी आँखों के सामने धीरे-धीरे सड़-मरने के लिए हिन्दुस्तान की जेल में भेज दिया गया।

महमूद गजनवी और परवर्ती मुस्लिम शासकों ने, समरकंद के फलते-फूलते हिन्दू नगर को अपने क्रूर और खूनी आक्रमणों से मुस्लिम कंद बना दिया। तैमूर लंग का मकबरा पूर्वनिर्मित भी एक हिंदू राजभवन ही है। इसके हिंदू होने के प्रमाण में मकबरे के भीतर ही 'सूर-सादूल' की चित्रकारी को पेश किया जा सकता है। संस्कृत में सूर-सादूल (सूर्य-शार्दूल) का अर्थ है "सूरज और शेर"। मकबरे के भीतर की यह चित्रकारी अभी भी सूर-सादूल ही कहलाती है। यह प्रमाण यथेष्ट है कि यह भवन पहले संस्कृत-भाषी भारतीयों का ही था।

समरकन्द के पास एक वीर हिन्दू जाति सेल्यूक (शायद चालुक्य) रहती थी। क्रूर यन्त्रणाओं के बाद भी वे प्राचीन हिंदू धर्म से चिपके ही रहे। अपने चतुर्दिक् क्षेत्रों को सम्पूर्ण मुस्लिम बनाने के लिए महमूद ने सेना को आदेश दिया कि चार हज़ार सेल्यूक परिवारों को ओक्सस (अश्वक क्षेत्र, एवं नदी) पार खदेड़ कर परशियन चरागाहों में बसा दिया जाय। गज़नी सेना की खूनी नज़रों के सामने जब यह जाति नदी पार कर रही थी तब महमूद के असंख्य कपटी कप्तानों में से एक, अस्सालन हाजिब ने इस जिद्दी जाति को झपटकर डुबो देने की सलाह दी। मगर महमूद डर गया कि कहीं तटवर्ती जाति कोई समुचित अवसर पाकर प्रतिशोध में उसकी पैदल सेना को ही न डुबो दे। उसने इस विचार को मान्यता नहीं दी।

महमूद के मरने के बाद इन दुर्निवार्य सेल्यूकों ने उसके अभिमानी साम्राज्य को तहस-नहस कर दिया।

सोमनाथ की लूट—१८-१०-१०२५ ई० को महमूद अपने क्रूरतम अभियान पर निकला। क्रूर अत्याचारों और हिंदू जनता की लूट का यह चरम उत्कर्ष था।

नियमित और अनियमित गुण्डों का सबसे बड़ा दल उसने जमा किया। चारों ओर ढोल पीट दिया कि महमूद अपने जीवन के सर्वाधिक लाभदायक लूट-अभियान पर निकल रहा है। जो कोई भी काफ़िर हिंदुओं को लूटने, देव-प्रतिमाओं को चूर-चूर करने और उनकी स्त्रियों का हरण-

व्यभिचार करने का सबाब लूटकर इस्लाम की सेवा करना चाहता है, महमूद के दल में शीघ्र आ मिले। हज़ारों के झुण्डों में डाकुओं, चोरों और हत्याकारों का दल महमूद के वेतन-भोगी दल में समा गया। महमूद की सुरक्षा में खुलेआम लूट-मार, बलात्कार और नर-संहार के आनन्दोत्सव की अपेक्षा में वे उछल रहे थे। भारत के पश्चिमी तट पर स्थित सोमनाथ का मन्दिर कितना प्राचीन है, नहीं कहा जा सकता। शताब्दियों से इस मन्दिर की शिवप्रतिमा की पूजा छोटे-बड़े, ऊँचे-नीचे, अमीर-ग़रीब, विद्वान्-मूर्ख आदि सभी हिन्दुओं ने, यहाँ तक कि स्वयं अवतारी भगवान् श्री कृष्ण ने भी की थी। अनवरत वरुण (सागर) सोमनाथ के चरण पखारता रहता था। सारा वर्ष दूर-दूर से लाखों भक्त पूजा करने आते रहते थे। शिवरात्रि जैसे धार्मिक उत्सवों में भीड़ का सागर लहराने लगता था। सैकड़ों पुजारी रात-दिन शिवाराधना किया करते थे। यह क्रम टूटता ही नहीं था।

मुस्लिम इतिहासकर कहते हैं कि मन्दिर में दो सौ मन की एक सोने की जंज़ीर थी। इसमें अनेक घंटियाँ बँधी हुई थीं। पूजा के समय की घोषणा करने के लिए इसे बजाया जाता था। मन्दिर और यात्रियों की सेवा, सफ़ाई के लिए नियुक्त असंख्य लोगों के अतिरिक्त मन्दिर में ५०० देव-दासियाँ, २०० गायक और ३०० नाई भी थे। मन्दिर के प्रांगण में ५६ स्वर्णविष्टित पाषाण स्तम्भ थे।

शिवलिंग पाँच गज़ लम्बे थे। दो गज़ भू-भीतर और तीन गज़ ऊपर। तारीख़-ए-जयमुल-मा-असीर बतलाता है कि लटकते दीपों पर जड़े अनेक रत्नों का प्रतिबिम्ब, कई गुना अधिक बिखरकर अंधेरे गर्भ-गृह में चम-चम और दिप-दिप करता रहता था।

आधे नवम्बर में महमूद मुलतान पहुँचा। राजस्थानी रेगिस्तान पार करने की योजना उसने बड़ी सावधानी से बनाई। कई दिनों का खान-पान काफ़ी परिमाण में ले लेने की आज्ञा सभी को दी गई। इसके अतिरिक्त ३००० ऊँटों पर और अन्न-जल लाद लिया गया। मार्ग ही में भूख-प्यास से बेहाल हो डाकू-दल कहीं विद्रोह कर दे तो? फिर लौटते समय लूट ढोने के काम में भी तो ये आएँगे।

मार्ग में तबाही करते इस टिड्डी दल का आना सुन, कहा जाता है

कि अजमेर का राय भाग गया। असुरक्षित अजमेर लूट लिया गया। यहाँ इतिहासकारों को ध्यान देना चाहिए कि प्राचीन नगर-मध्य स्थित राज-महल जैसे स्मृति-भवन तथाकथित मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा और अढ़ाई दिन का झोंपड़ा, मुस्लिम आगमन के पहले का निर्माण है। मुस्लिम शासकों को इसके निर्माण का श्रेय झूठमूठ ही दिया जाता है। अजमेर के राजा तथा इनके पूर्वज इन भवनों में रहते थे। इन्हीं लोगों ने इसे बनवाया था, मुसलमानों ने नहीं।

सारे रास्ते गायों को काटता-खाता, मन्दिरों को नष्ट-भ्रष्ट करता, गाँवों को लूटता-जलाता और आतंक फैलाता हुआ महमूद गुजरात की राजधानी अनहिल वाड़ पाटण की ओर बढ़ा। समृद्धशाली पाटण को भी खाली कर दिया गया। महमूद ने सारी सम्पत्ति समेट ली। शहर भीषण अकाल और बरबादी का शिकार हुआ। मानो चूहों और टिड्डियों का दल एक साथ शहर पर छा गया हो। सरस्वती नदी के साथ-साथ महमूद की रक्त चूसने-चाटने और जीभ चटकारने वाली सेना सोमनाथ की सीमा पर १०२६ ई० की जनवरी के दूसरे सप्ताह में पहुँची।

महमूद के लूटने-जलाने से पहले सोमनाथ एक भव्य शहर था। इसके चारों ओर पत्थर की दीवार थी। भीतर भव्य-भवन, विशाल गुम्बद (टावर) और ऊँचे स्तम्भ (मीनार) मस्तक ताने खड़े थे मानो हिन्दू कला, गौरव, उन्नति, उद्योग और पुण्यों के स्मृति-चिह्न हों।

बृहस्पतिवार के दिन महमूद सोमनाथ शहर के बाहर पहुँचा। तम्बू लगाने में दिन ढल गया। इन गुण्डों की पहुँच का समाचार भीतर पहुँचते ही प्राचीर पर नागरिकों की भीड़ हो गई। उनके चेहरों से चिन्ता झलक रही थी। इस्लाम के नाम पर जो जुल्म और सितम महमूद ने भारत पर ढाया था उन थर्राने वाली कहानियों को उन्होंने सुन रखा था।

दूसरे दिन प्रातः १०२६ ई० की जनवरी के दूसरे सप्ताह के शुक्रवार को महमूद की भयंकर शैतानी मशीनों ने पवित्र शहर के भीतर अग्नि-पिंडों एवं पत्थरों की वर्षा प्रारम्भ कर दी। दोपहर तक एक बुर्ज में छेद हो गया। उन्होंने प्रवेश का प्रयास किया पर वे पीछे धकेल दिए गए। रात में भी महमूद ने चैन नहीं लिया। अग्नि-पिंडों की वर्षा जारी रही। तीर्थ-यात्रियों से भरी पूरी धर्मशालाओं और नागरिकों के गृहों में आग लगती

रही। शनिवार की सुबह शैतानी सेना ने नगर के बाहरी रक्षा-कवच (प्राचीर) को भेद ही दिया। अब अन्तिम युद्ध की तैयारी हुई। सोमनाथ पर अब अपनी श्रद्धांजलि और जलांजलि नहीं, अपनी अन्तिम रक्तांजलि चढ़ाने के लिए नगर-निवासी और तीर्थयात्री तैयार हो गए। कसाइयों के क्रूर आक्रमणों के सामने जो कुछ भी उन्हें मिला वही लेकर, सीना तानकर खड़े हो गए। शहर के सैंकड़ों द्वारों पर लोग लड़ने, कटने और मरने लगे। वीर हिन्दू रक्षकों की लाशों को कुचलता हुआ महमूद का भयंकर शैतानी दल भीतर मन्दिर में घुसने के लिए भयंकर दबाव दे रहा था। ज्यों-ज्यों वे गर्भ-गृह के समीप पहुँच रहे थे, विरोध तीव्रतर और रक्तिम होता जा रहा था।

पश्चिम सागर में सूर्य अस्त हो गया। मगर सोमनाथ को अभी तक कला-भंजक मुस्लिम नहीं छू पा सके थे। मुट्ठी भर रक्षकों के अनन्य और अनोखे विश्वास ने हमलावरों को तीन दिन और तीन रात रोके रक्खा था। शत्रु को खाड़ी के कई स्थानों पर रोका गया, प्राचीरावेष्टित नगर की चक्राकार गलियों के हर मोड़ पर रोका गया। मगर बाहर से कोई भी सहायता नहीं आई। देश के लिए चुल्लू भर पानी में डूब मरने की बात थी कि कोई भी पड़ोसी शासक मुस्लिम लुटेरों को ललकारता, बिना साँस लिए, सरपट दौड़ा नहीं आया जबकि वे हिन्दू नागरिकों और तीर्थयात्रियों को सोमनाथ में ज़िबह कर रहे थे, उनके घरों में आग लगा रहे थे, उनकी स्त्रियों और बच्चों से व्यभिचार और बलात्कार कर रहे थे।

रविवार को प्रातः महमूद को समाचार मिला कि वास्तव में एक हिन्दू सेना सोमनाथ की ओर आ रही है। उसके कान खड़े हो गए। अगर हिन्दू सेना विद्युत्‌ गति के साथ, अपने अग्रिम कूच को एकदम गुप्त रखने का प्रयास कर, चुपचाप आ महमूद को धर-दबोचती तो वह बुरा फँसता। सोमनाथ के निवासियों को काट-गिराने तथा घेरे को चालू रखने के लिए सेना की एक टुकड़ी उसने भीतर छोड़ दी। बाकी सेना लेकर वह उस हिन्दू सेना का सामना करने बाहर की ओर मुड़ा जो पवित्र सोमनाथ के विध्वंस का प्रतिशोध लेने अब आई थी।

शहर से कुछ मील दूर दोनों सेनाएँ टकरायीं। निशाचर मुस्लिम

हत्याकाण्ड का समाचार चारों ग्रोर फैल चुका था। पास-पड़ोस के छोटे शासक इस सेना को कुमुक पहुँचाने का प्रयास कर रहे थे। फिर भी हिन्दू सेना महमूद की इस टुकड़ी से बहुत ही कम रही। वीरप्रसू भारतभूमि में ग्रब सैनिक नहीं ग्रहिंसक जन्म ले रहे थे। दूसरे, एक केन्द्रीय नेतृत्व का ग्रभाव था। तीसरे, मुसलमानों जैसे धार्मिक उन्माद का भी ग्रभाव था। इतना होने पर भी वे इतनी वीरता से जूझे कि महमूद की हालत नाज़ुक हो गई। पहली बार उसका गिरोह ग्रौर गुण्डादल साहस छोड़ने लगा। मरता क्या न करता। महमूद ग्रपनी रिज़र्व सेना लेकर एक ही नारे के साथ ग्रागे बढ़ा—"करो या मरो।" किसी प्रकार वह हिन्दू सैन्य-पंक्ति को तोड़ सका। इसके बाद भयंकर नर-संहार की बारी थी ही।

ग्रब महमूद की ग्रवशिष्ट सेना ग्रपने साथियों की सहायता के लिए वापिस मन्दिर की ग्रोर मुड़ी जो सोमनाथ मन्दिर को चूसने में लगे हुए थे। इन खूनी बहादुरों के पहुँचते ही युद्ध-पस्त नागरिक काट गिराए गए। मन्दिर में प्रवेश करते ही पुजारियों को टुकड़े टुकड़े करके बिखेर दिया गया। सैकड़ों ग्रनुचरों के हाथ-पाँव काट दिए गए। पाशविक पीड़ा, यन्त्रणा ग्रौर हाहाकारों की गणना कौन कर सकता है?

मन्दिर के कोष-कक्षों को तोड़ दिया गया। सारी सम्पत्ति के हज़ारों बण्डल बना दिए गए।

धार्मिक उन्माद में गुर्राते हुए महमूद ने शिवलिंग पर एक हथोड़े का वज्र प्रहार किया। शिवलिंग चूर होकर दो बड़े भागों में बिखर गया। सोने ग्रौर हीरे के गहनों तथा जड़ाऊ बेल बूंटों के परिधानों से लिपटे शिवलिंग के एक भाग को गज़नी भेज दिया गया। बाद में शिवलिंग का वह भाग गज़नी के घुड़दौड़ मैदान में चक्रस्वामी प्रतिमा के पार्श्व में गाड़ दिया गया। सोमनाथ लिंग का दूसरा भाग गजनी की ज़ामा मस्जिद (प्राचीन हिंदू मन्दिर) की सीढ़ियों पर जड़ दिया गया ताकि धर्मपरस्त मुसलमान उस पर ग्रपने जूते के तले पोंछ भगवान् का भजन करने मस्जिद में प्रविष्ट हो सकें।

यह ग्रफ़वाह झूठी है कि भग्न शिवलिंग के भीतर से चमकते रत्न बाहर उछल पड़े थे। सोमनाथ का शिवलिंग एक ठोस पत्थर का बना हुग्रा है। रत्न मन्दिर के कोष-गृह से लूटे गए थे।

सोमनाथ का विध्वंश-कार्य समाप्त हुआ। पवित्र मन्दिर पहली बार मस्जिद बन गया। महमूद ने अपनी सेना को फिर से सजाया और अनहिलवाड़ पाटण की ओर बढ़ा। पाटण के परमदेव राय ने रक्षा-सहायता का कार्य कर महमूद को एक बार निराशा की अन्तिम सीमा पर पहुँचा दिया था। सोमनाथ की रक्षा के संग्राम में बिखरी सेना को संगठित करने का अवसर इन्हें नहीं मिल पाया था। महमूद की ललकार का सामना करने के अयोग्य होने के कारण इन्होंने पश्चिमी तटीय खाण्डाह द्वीप-दुर्ग में शरण ली। वहाँ भी उसने इनका पीछा नहीं छोड़ा। कहावत को सत्य करते हुए राय 'शैतान और समुद्र' के बीच में बुरे फँस गए। किसी प्रकार वे भाग सकने में समर्थ हुए। दुर्ग की सारी सम्पत्ति शैतान के पेट में समा गई।

महमूद सोमनाथ की देखभाल का भार देवसुरन को सौंप कर आया था। मुसलमानों ने इन्हें देवसीलीम ग़लत लिखा है। यह संन्यासी उन्हीं में से एक था जो थोड़े-बहुत किसी प्रकार जीवित बच गए थे। लोगों से टैक्स वसूल कर कुछ दिनों तक तो इसने गज़नी भेजा, मगर बाद में लोगों ने इसे समाप्त कर दिया।

तीन हज़ार ऊँटों, हज़ारों घोड़ों और हाथियों पर खज़ाना लादा गया। हिन्दुस्तान के किसी भी राजा के पास इस सम्पत्ति का सौवाँ भाग भी नहीं था।

सोमनाथ का पतन सुनकर राजस्थानी राजाओं ने अपनी-अपनी सेनाएँ एकत्रित कीं। महमूद को पवित्र लूट के साथ वापिस न जाने देने का निर्णय किया गया। इस सम्भावना पर विचारकर, इससे बचने के लिए उसने सिन्ध की मरुभूमि से होकर मुलतान जाने की सम्भावना पर विचार किया।

सोमनाथ के एक हिन्दू भक्त को जबरदस्ती गाइड बनाया गया। पर वह स्वयं भ्रमित हो गया। दुष्ट-दल मार्ग खो बैठा। कुछ दिनों तक दुष्ट दल बिना पानी के चलता रहा। फिर ग़लत राह पर ले जाने के अपराध में महमूद ने क्रोध में उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए। बाद में उन्हें पानी तो मिला, पर जाट गुरिल्लों के साथ। जाटों ने इन्हें नचा मारा। हिन्दुस्तान की अधिकांश लूट सहित किसी प्रकार वह गज़नी पहुँचा। राजपूतों की

संयुक्त संगठित सेना ने फिर से एक बार परम्परागत हिन्दू कमजोरी का परिचय दिया कि वे कुछ भी सीख नहीं सकते, भूल सब कुछ सकते हैं। इस प्रकार इतिहास का सर्वाधिक साहसी और क्रूर-कर्मी डाकू अपनी अलौकिक लूट लेकर चला गया और हिन्दू सेना राजस्थानी पहाड़ियों में अपने पैर सेंकती रही।

महमूद का चिड़चिड़ा स्वभाव बहुत दिनों तक बदले की भावना को संजोकर रखता था। जाटों के गुरिल्ले विरोध की हूक रह-रहकर उसके दिल में उठती थी। लोहाकोट की उद्दंडता ने उससे बार-बार दुर्ग पर असफल आक्रमण करवाया था। अतः गजनी में लूटी सम्पदा को ताला लगा वह धृष्ट जाटों को सज़ा देने वापिस लौटा। मुलतान में सिन्धु पर १४०० नावों की एक जल-सेना उसके पास थी। प्रत्येक पर अग्निबाणों से सुसज्जित १४ धनुर्धर रहते थे। मुस्लिम इतिहासानुसार जाटों के पास ४००० नावों की जल-सेना थी। टक्कर का विरोध हुआ। सम्भव है कि जाटों के पास १४०० नाव ही हों और महमूद के पास चार हजार। क्योंकि उनके विवरणों में हमलावरों की ही बड़ाई प्रायः होती है। महमूद की नावों में नुकीले लौह-दण्ड लगे हुए थे। ज्यों ही जाट नावें निकट आतीं, इनसे टकराकर उलट जातीं। अतएव महमूद को इनसे विशेष सहायता प्राप्त हुई। अनेक जाट डूब गए। उनकी पत्नियाँ सिन्धु द्वीपों में उनकी प्रतीक्षा कर रही थीं। वहाँ मुस्लिम हमलावर पहुँचे, उन्हें ज़बरदस्ती भोगा और मुस्लिम हरमों में बन्द कर दिया। बहुतों को सता-सताकर मार दिया। जाट बच्चों का खतना हुआ। उन्हें गुलामों के बाज़ार में बेच दिया गया।

महमूद का अन्तिम काल अशान्त रहा। उसके धर्मोन्मादी और क्रूर अफ़सरों के अत्याचार से अशान्त हो नागरिक विद्रोही हो गए। उन्हें दबाने में असमर्थ सेनापतियों ने अदम्य विद्रोह को मसलने के लिए शैतान का आह्वान किया। अपनी सनातन क्रूरता से महमूद ने उन्हें हराकर बिखेर दिया। मगर फिर उनके ग्रामीण-दल संगठित हो गए। इसी बीच महमूद की सेना ने राय के कुवाइहिद राज्य को उखाड़ फेंका। वहाँ अपनी शक्ति सुदृढ़ करने महमूद नवविजित क्षेत्र में चला गया। वहाँ की जनता विद्रोह कर बैठी। पर उन्हें मार-काट डाला गया।

कुरूप महमूद का अन्त—डाकू सम्राट का अन्त समीप था। उसका

अदम्य उत्साह बीते जमाने की यादगार हो गई। ज़रा-सी भी कठिनाई या श्रम वह नहीं झेल सकता था। साँस लेने के लिए उसे मुँह बाकर हाँफना पड़ता था। थोड़ी देर खड़े रहने पर ही वह लड़खड़ाकर जमीन पर पसर जाता था। नम्रता के तिरस्कर्ता ने अपनी अभिमानी उद्दंडता में कभी स्वप्न में भी नहीं सोचा था कि कोई शक्ति उसे कुचल भी सकती है। सबको सुलाने वाली, विश्वव्यापी-शान्ति कर्त्री मृत्यु ने अब अपना अचूक फन्दा महमूद के गले पर फेंका और उसे धीरे-धीरे पाताल लोक में घसीटने लगी। वहाँ उसे अपने भयप्रेरक कुकर्मों का उत्तर देना था।

मौत महमूद की आँखों में झाँक रही थी। उसे यह जानकर काफ़ी कष्ट हो रहा था कि वह अपने ख़ज़ाने के विशाल ढेर में से एक तुच्छ आभूषण भी अपने साथ नहीं ले जा सकता। इसे उसने ३३ वर्ष के अन्त-र्राष्ट्रिय डाकू जीवन में जमा किया था। असीम कष्ट और यथेष्ट विस्मय भी उसे था कि एक अदृश्य "शत्रु" उसे घसीटे लिये जा रहा है और वह, अतीत का एक सर्वशक्तिशाली डाकू-सम्राट, एक अंगुली भी उठा नहीं पा रहा है।

अब वह ६३ वर्ष का था। २६ अप्रैल, १०३० ई० को वह अपनी भौतिक सम्पत्ति के नुकसान से समझौता नहीं कर सका जो उसके हाथों से फिसल रही थी। और वह धीरज नहीं रख सका। महमूद ने अपने सारे ख़जाने को अपने सामने फैला देने की आज्ञा दी। कट्टर लोभी और प्यासे कंजूस की भाँति वह हीरों-रत्नों को आँखों से पीकर, हृदय में जमा करना चाहता था। इसे उसने हजारों निर्दोष नागरिकों का गला निचोड़ कर जमा किया था। पीड़ित बच्चों की चीख़ और बिलखती स्त्रियों के क्रन्दन उसे स्वप्न में भी चैन नहीं लेने दे रहे थे। इस हाहाकार को दबा, उन्हें अनसुनी करने के लिए, और अपना ध्यान दूसरी ओर बटाने के लिए उसने जगमगाते जवाहरातों, चकमती चाँदियों और शोभायमान सोनों को भरपूर नजर से पीने के लिए एक के ऊपर एक कौंधती कतारों में सजवा दिया। इन सभी की तुच्छता से निराश हो, विवेक की चुभन से कातर हो, रोती आँखों से उसने यह सम्पत्ति अपने कोष-गृह की सन्दूकों में बन्द करवा दी। अभी भी उसे आशा थी कि शायद वह स्वस्थ हो जाए, शायद किसी जादुई चमत्कार से पुनः जीवित हो जाए तो वह हराम

के इन गहनों और ताबीजों को फिर से शरीर पर सजा लेगा।

अट्ठाईस अप्रैल, १०३० ई० को उसकी आज्ञा से हाथियों, घोड़ों और ऊँटों की पंक्तियाँ उसके सामने लाई गईं। फिरिश्ता के अनुसार वह ५० वर्ष की हराम की कमाई का लेखा-जोखा ले रहा था। फिरिश्ता कहते हैं कि वह उन पशुओं की ओर देख रहा था, वे पशु अपनी पूँछ हिला-हिला कर बड़े आनन्द से उसे विदाई दे रहे थे। महमूद बड़े जोर से फफककर रो पड़ा।

शनैः-शनैः क्षय करने वाले रोग ने उसे चारों ओर से जकड़ लिया। ३० आक्रमणों का महा अभिमानी डाकू हीरो महमूद जो व्यभिचार और बलात्कर, लूटपाट और आगज़नी, नर-संहार और नारकीय अत्याचार, गौकशी और बालहरण पर उत्सव मनाता था, अपने देश गज़नी में ३० अप्रैल, १०३० को मर गया।

उसका बदसूरत शरीर एकदम ठंडा हुआ पसरा पड़ा था। अभिमानी मुंह और क्रूर हाथ हमेशा-हमेशा के लिए हिलने बन्द हो गए। उसकी रूह को घसीट-घसीटकर ले जाया गया था। उसे उत्तर देना था अपने असंख्य पाशविक, निर्मम, क्रूर, दानवी, राक्षसी और हैवानी अत्याचारों का जो सचमुच एक नंगा शैतानी नाच था, जिससे एक हाथ में लप-लप करती लाल आग थी और दूसरे में खून टपकती लाल तलवार।

वह आदमी इस्लाम का घृणित और नियमहीन रक्षक था। उसने अपने धर्म पर कलंक का अमिट टीका लगाया है।

(मदर इण्डिया, सितम्बर १९६६)

: ३ :

मुहम्मद गौरी

त्रिदेवों की भाँति त्रिराक्षस भी हैं—मुहम्मद बिन क़ासिम, महमूद गज़नवी और मुहम्मद गौरी। भारत आदि देशों पर इन्होंने खून और भय की भरपूर वर्षा की। इस देश के दुर्भाग्य ने ही इन महामारियों को अपनी ओर खींचा था। शांति दूत पैग़म्बर के नाम पर इन्होंने जी भर कर खिलवाड़ किया। शर्म इनके पास फटकी भी नहीं। किशोर-भोगियों की इस निराली जाति के आतंक और अत्याचार एवं खून-खराबी के काले कारनामों के कारण सारी इंसानियत का सिर शर्म से नीचा हो गया है। मगर भारत के कतिपय मुसलमान इन लोगों के निन्दनीय और शर्मनाक काले-कारनामों को दुत्कारते नहीं, धिक्कारते नहीं, वरन् इनकी बड़ाई करते हुए और दो कदम आगे बढ़ जाते हैं और सिर्फ़ इन्हीं राक्षसों के ही नहीं वरन् इनके परवर्ती सभी शासकों के काले-कारनामों को "महान्-कार्य" बतलाते हैं। बर्बरता और अत्याचार, लूट और बलात्कार को अगर ये 'महान् कार्य' मानेंगे तो क्या कभी हिन्दू और मुसलमान के बीच मैत्री और समझौता हो सकता है? आज भी ये दोनों एक हो सकते हैं यदि आज के मुसलमान इन अत्याचारियों के काले कारनामों पर क्षोभ प्रकट करें और क्षमा माँगें, हमलावरों को गाज़ी कहना छोड़ दें और खून से लाल अपने अतीत से अपना मनोवैज्ञानिक नाता तोड़ लें। यह तो साधारण सी समझ की बात है अगर संबंध सुधारना है तो अतीत से नाता तोड़ना होगा। तभी शान्ति और मैत्री के फल लगेंगे। मगर इसके ठीक विपरीत हमारी पाठ्य-पुस्तकों ने बड़ी सफलता से इनके क्रूरकर्मों पर पर्दा डाल दिया है, इनके अत्याचारी और काले शासन को झूठे प्रताप, नक़ली चमक, मिथ्या तड़क-भड़क और बनावटी वैभव की कपटी कलई से रगड़-रगड़ कर चमकाया है।

हिंदू-मुस्लिम एकता के नाम पर हमारे इतिहासकारों को अब हिंदू और मुसलमान दोनों के सामने सच्चाई रख देनी चाहिए। उन्हें बता देना चाहिए कि वास्तव में क्या घटना घटी, कैसे घटी और क्या घटी। हमारी प्रजा को अब अफ़ीम की इस पिनक में नहीं रहना चाहिए कि भाईचारे के गहरे प्यार के कारण ही मुस्लिम राजाओं ने हिन्दुओं का खून बहाकर उनकी लाशों को रौंदा है। ग़लत अनुमान और झूठे तर्क देकर आज तक इतिहास का मखौल ही उड़ाया गया है। इतिहास के नाम पर जो भी कूड़ा-कचरा आज स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाता है उसमें मुस्लिम-साम्प्रदायिकता कूट-कूटकर भरी हुई है। जबकि मुग़ल-दरबारों से नर-मैथुन (लौंडेबाजी), वेश्यावृत्ति, हिजड़ों, रखैलों, हरमों, मादक द्रव्यों, शराब की नदियों और अनन्त खूनी अभियानों की सड़ान्ध आती है, हमारी निकृष्ट इतिहास-पुस्तकें मुग़ल दरबारों को राजकीय प्रताप, महानता और न्याय की सुखद छत्रछाया आदि कहकर लोगों की आँखों में धूल झोंकती हैं। हिन्दुस्तान का हजार वर्षीय मुस्लिम युग उनकी बर्बर लूट, हिन्दुओं की नृशंस हत्या, हिन्दुओं का भीषण-संहार, हिन्दू देव-स्थानों का विनाश, हिन्दू स्त्रियों के साथ निर्मम बलात्कार, हिन्दू किशोरों का क्रूर हरण और लाखों हिन्दुओं को गुलाम बनाकर बेच देने की खून खौलाने वाली कहानी है। इसी युग को बड़ी बेशर्मी से हमारे इतिहास का आदर्श युग माना गया है।

सच्चाई की इस तोड़-मरोड़ से हमारा इतिहास हिन्दू और मुसलमान दोनों को गुमराह कर रहा है। एक ओर वह मुसलमानों को यक़ीन दिलाता है कि उनके पूर्वजों ने जो भी अन्याय और अत्याचार किया है वह महान् है। इस प्रकार हमारा इतिहास उन्हें सुधरने का अवसर नहीं देता। उलटे उनके काले कारनामों को और भी कलापूर्ण तरीकों से दोहराने का निमंत्रण-सा देता है। दूसरी ओर हिन्दुओं को झूठा भरोसा देता है कि हज़ार वर्षीय मुस्लिम युग का नारकीय व्यवहार स्वागत योग्य है, सर्वोत्तम है और हमें उसका स्वागत करना चाहिए। इस प्रकार हमारा इतिहास हिन्दुओं के विवेक पर ही नहीं इनकी वीर परम्परा पर भी लात मारता है।

जो इतिहास आज भारतीय स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाता है,

जिसे सरकार संसार के सामने रखती है, उसमें मन-गढ़न्त कहानियों के सिवाय और कुछ नहीं है। हजार वर्षों के इस लम्बे पर उदास शासनकाल के काले, बर्बर और खूनी कारनामों को उसके रोमाँचकारी वर्णनों के साथ जनता के सामने पेश करके, यह विश्वास और भरोसा देकर जनता को सरासर धोखा दिया जा रहा है कि रक्त टपकाती तलवारों और ग्रामीण हिन्दू जनता को घेरने वाले चोरों, डाकुओं, दुष्टों, लुटेरों, मूर्तिभंजकों, बूचड़ों और विध्वंसकारियों के गिरोह के नेता क़ासिम, गज़नवी, गौरी, गुलाम, खिल्जी, लोदी, तुग़लक, बाबर, हुमायूँ, शेरशाह, अकबर, जहाँगीर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब और इनके सारे पतित वंशजों का युग शांति, उन्नति और साम्प्रदायिक मैत्री का बड़ा खुशहाल युग था और खुशहाल युग के अलावा और कुछ नहीं था। इससे और कुछ तो नहीं होगा सिर्फ़ मुसलमानों के मन में अपने उन पूर्वजों के लूटपाट और नरसंहार के उस त्यौहार को मनाने की इच्छा बलवती होगी जिसकी प्रशंसा में हमारी पाठ्य-पुस्तकों के पन्ने रँगे हुए हैं। अगर लोगों को इतिहास पढ़ाने का यही अर्थ है कि वे पिछली भूलों को भूलकर, अतीत की असफलताओं को दोहराने से बचें तो वर्तमान इतिहास को एकदम उलटा अभिनय करना होगा। उसे सच्ची बातें कहनी होंगी।

उसी खूनी युग में गौरी ने भारत में प्रवेश किया था। क़ासिम और गज़नवी के हिन्दू-विनाशकाल में ३०० वर्ष का अन्तर था। मगर गज़नवी और गौरी के नृशंस आक्रमणों के बीच सिर्फ़ १४० वर्ष का ही व्यवधान था। गौरी के बाद मुस्लिम शासन का अत्याचारी और रक्त-चूसक फन्दा भारत के गले में स्थायी रूप में फँस गया।

भारतीय इतिहास का यह युग अपने छात्रों, शासकों और जनता को अगर कोई शिक्षा देता है तो वह शिक्षा यही होगी कि सीमा के प्रथम आक्रमण से ही देश को जागकर गतिशील हो जाना होगा और हमलावरों को उपद्रवी और जंगली पशु मानकर उन्हें उनकी माँद तक खदेड़, चाहे वह माँद दूर अरब में ही क्यों न हो, समाप्त कर सदा-सर्वदा का झंझट साफ़ करना होगा।

भारत की पवित्र धरती पर क़ासिम के नारकीय नृत्य होने के पूर्व ७५ वर्ष में भारत ने यह कार्य नहीं किया। पृथ्वीराज से नेहरू तक के

शासकों ने ऐसा करने का महान् अपराध किया है। जिसके कारण इसने एक भयंकर समस्या का रूप धारण कर लिया है और हिन्दू राष्ट्र के रूप में भारतवर्ष का जीवन समाप्त होने जा रहा है।

अविश्वसनीय हिन्दू इतिहासकार—चोरी और डकैती से संचित गजनवी की सम्पत्ति एवं साम्राज्य को उसके वंशजों ने शीघ्र ही चौपट कर दिया। विनाश और विध्वंश एवं पाप और दुराचार के उस मलवे से एक दूसरा शैतान लुटेरा गौरी प्रकट हुआ। गज़नबी और गौरी में यद्यपि १४० वर्ष का अन्तर है, फिर भी इतिहास में इन दोनों का नाम इकट्ठा ही आता है। कारण, इन दोनों के नृशंस आक्रमणों से भारत का जो विनाश हुआ है उस विनाश में काफी समानता है। इन दोनों का ही उद्भव गज़नी से हुआ था। अन्तर केवल दोनों के अन्त में है। गज़नवी जहाँ भारत की सारी लूट सही-सलामत गजनी ले जाने में सफल हुआ था, वहाँ गौरी अपने नृशंस जीवन के बीच में ही मार डाला गया।

इतिहासकार इस नर-पशु गौरी को जीभ ऐंठने वाली भारी भरकम उपाधि देते हैं—"सुलतानुल् गाज़ी मुइज्जुद्दुन्या वाउद दीन अब्दुल मुजफ्फ़र मुहम्मद बिन साम"।

'दिल्ली सुलतानेट ७११ ई०" शीर्षक हिन्दी पुस्तक के पृष्ट ८५ पर डा० आशिर्वादीलाल श्रीवास्तव लोगों को बतलाते हैं, कि "एक पक्के मुसलमान होने के नाते गौरी ने भारत में मूर्ति-पूजा का विध्वंस कर पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों का प्रचार करना अपना पवित्र कर्तव्य समझा।" आगे श्रीवास्तव जी फ़रमाते हैं कि गौरी के अन्य कार्य भी प्रशंसनीय हैं। भारत के इतिहास के नाम पर जो बकवास ठूँस-ठूँसकर भरी गई है, यह उसका एक उदाहरण है। क्या भारत में पवित्र उपदेशों का अकाल और अभाव था? क्या भारत के पास कृष्ण की गीता, शंकराचार्य का एकेश्वरवाद, वेद और उपनिषद् नहीं था? यह कुतर्क, कपट और चापलूसी की धुन है कि क़ासिम, गजनवी, गौरी, विलासी अकबर और कपटी औरंगजेब जैसे डाकुओं, दुष्टों और हत्यारों ने पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों को बड़े सराहनीय ढंग से फैलाया। हमारे इतिहासकारों के लिए यह बड़े शर्म और शोक की बात है।

भारतीय इतिहासकारों के अनुसार, पैगम्बर मुहम्मद के उपदेशों का

प्रचार और प्रसार करने गौरी का प्रथम आक्रमण ११७५ ई० में हुआ। सोने की नगरी और पवित्र तीर्थस्थान मुलतान ही उसका पहला शिकार बना। क़ासिम के बाद से ही इसकी लूट का लम्बा सिलसिला शुरू हो चुका था। एक के बाद दूसरे मुस्लिम लुटेरों ने इनके बहुमूल्य रत्नों, जवाहरातों, मोतियों, और स्वर्ण-शिलाओं को लूट-लूटकर अपना-अपना कारवाँ भरा था।

उस समय मुलतान के सिंहासन पर हिन्दू राजा का मुसलमान वंशज आसीन था। इसके पूर्वज को इस्लाम का अमृत तलवार की धार पर पिलाया गया था। ये नए मुसलमान एक ओर नृशंस और खूनी कारनामों के कारण इस्लाम से घृणा करते थे; दूसरी ओर मूर्ख पुरानपंथी हिन्दुओं ने इसके हिन्दू-धर्म में वापिस लौटने के मार्ग को बन्द कर रक्खा था। सदा की भाँति गौरी ने एक बार फिर मुलतान को खून से नहला दिया और एक-एक दाना लूट यहाँ के निवासियों को अकाल, भूख, गरीबी और पीड़ा के बीच तड़प-तड़पकर मरने के लिए छोड़ दिया। वह आया और चला गया। मगर इतनी देर में ही हँसता-खेलता और फलता-फूलता मुलतान मुचा, खुचा, ठंडा, पसरा पड़ा था।

इसके बाद गौरी ऊपरी सिन्धु-क्षेत्र के भट्टी राजपूतों की राजधानी 'उच' की ओर बढ़ा। धोके और बहाने से इसके अधिकांश लोग नगर-प्राचीर के भीतर चले गए। भट्टी शासकों को काट-काटकर फेंक दिया गया। उनकी बिलखती पत्नी और भयभीत पुत्री गौरी के हरम में घसीट लाई गईं। लुटे-पिटे शहर को जलकर बरबाद होना था ही। लूट के माल के ढेर लगाए गए। प्रथम लूट की सफलता से फूलकर गौरी ने अत्यधिक उमंग और उत्साह से दूसरा धावा किया और संकट में फँस गया। बेचारा···! इस बार उसने गुजरात के खिलते-महकते राजनगर अनहिल-वाड़ पाटण को नोचना-खसोटना चाहा था। बघेल वंशज भीमदेव द्वितीय वहाँ का शासक था। इस युवक हिन्दू राजा ने बड़े ओज और उत्साह से पीट-पीटकर गौरी के दुष्ट-दल की सिर्फ़ पीठ ही नहीं तोड़ी वरन् भारत की सीमा के बाहर तक उसे रगेद-रगेदकर मारा। इस मार से गौरी इतना भयभीत हो गया कि इसकी याद ने ही उसे आगामी २० वर्ष तक गुजरात पर बुरी नजर डालने से रोका।

हिन्दू राज्यों की शक्ति और कमर तोड़ पिटाई का स्वाद चखने के बाद उसने उधर से ध्यान हटाकर पहले मुस्लिम शासकों से पंजाब ही छीनने का निर्णय किया। सन् ११७६ ई० में वह पेशावर पर चढ़ बैठा और गज़नवियों से इसे छीन लिया।

अपने इस आरम्भिक अभियान में, पंजाब के दुर्बल और गुणहीन गज़नवी शासकों पर विजय पाकर उत्साहित हो, गौरी लाहौर के दुर्ग की ओर बढ़ा। क़ासिम से भी सैकड़ों वर्ष पूर्व लाहौर के दुर्ग का निर्माण हिन्दुओं ने किया था। फिर भी हमारे इतिहासकार इसके निर्माण का झूठा श्रेय अकबर को देते हैं क्योंकि जहाँगीर ने अपने पिता के पक्ष में यह झूठी गवाही दी है कि लाहौर के दुर्ग का निर्माण उसके पिता अकबर ने किया है। उसी लाहौर-दुर्ग को, जिसका निर्माण अकबर ने किया था, अकबर से सैकड़ों वर्ष पूर्व ही गौरी ने गज़नवी के अपहर्त्ता ख़ुसरो मलिक से ११८१ ई० छीन लिया था। अत्र मलिक को गौरी की इस्लामी भूख मिटानी थी। उसे सारा ख़ज़ाना दे देना पड़ा। बंधकी में गौरी ने उसके पुत्रों को अपने पास रख लिया। पैग़म्बर मुहम्मद और ख़ुदा की क़सम खाने वाले इन बर्बर इस्लामी लुटेरों ने ही इस क्रूर और जंगली नियम की बिसमिल्लाह की थी। इन बर्बर मुस्लिम गुण्डों की ख़ूनी तलवार ने पैतृक और पारिवारिक सम्बन्ध को बीच से तोड़ दिया। अब वे अभागे बच्चे अपने माता-पिता से सैकड़ों कोस दूर उस ख़ूनी दरबार में थे जहाँ इस्लाम की लपलपाती नंगी तलवार कच्चे धागे से बँधी सीधी उनके सिर पर लटक रही थी। दोनों ही एक दूसरे से दूर, एक दूसरे की चिन्ता में व्याकुल थे। भवितव्यता का विचार कर वे सिर्फ काँप ही सकते थे। अपने विनाशकारी उन्माद में गौरी ११८२ ई० में देवल (कराँची) से जा टकराया। एक ही झपट्टे में उसने अरब सागर तक के क्षेत्र को समतल कर डाला और ऊँटों पर सारी लूट लादकर वह गज़नी लौट गया।

दो वर्ष के बाद ही ११८४ ई० में गौरी एक बार फिर पंजाब की आब उतारने चला आया। कारण सिर्फ़ इतना ही था कि नाममात्र के राजा ख़ुसरो मलिक को, जिसे अपनी हस्ती से बाहर टैक्स देना पड़ता था, मजबूरन टैक्स भेजना बन्द कर देना पड़ा। फल पंजाब को भोगना पड़ा। इन दो मुस्लिम लुटेरों की चलती चक्की ने, पंजाब की जनता का

कूट-पीस-छानकर मलीदा बना दिया और गौरी ने अपने अनुचर हुसैन खारमिल को स्यालकोट दुर्ग सौंप दिया।

अपनी राजकीय सम्पत्ति और अधिकार लुट जाने से उत्तेजित होकर खुसरो ने हिन्दू गक्खर जाति से सहायता माँगी और स्यालकोट दुर्ग घेर लिया। दुर्भाग्य से काश्मीर के हिन्दू शासक राजा चक्रदेव से गक्खरों का बैर था। फलतः राजा चक्रदेव ने गौरी की सहायता की। अपनी ही भूल से हिन्दू-काश्मीरी और हिन्दू-गक्खरों ने आपस में ही टकराकर हिन्दुओं के विनाश का न्यौता विदेशी मुसलमानों को दे दिया।

खुसरो मलिक को स्यालकोट का घेरा उठाना पड़ा। गौरी की सेना की दूसरी टुकड़ी ने लाहौर-दुर्ग घेर लिया था। इस बार काश्मीर के राजा की सहायता लेकर वह लाहौर-दुर्ग को बचाने दौड़ा। अपने प्रत्येक हमले में गौरी को पीठ दिखाकर मैदान छोड़ना पड़ा था। इसलिए वह कपट-जाल पर उतर आया। उसने कपटपूर्ण समाचार भेजा कि यदि खुसरो मलिक स्वयं सन्धि-वार्ता के लिए आवें, तो वह घेरा उठाकर गज़नी वापिस लौट जाएगा। खुसरो मलिक सन्धि-वार्ता के लिए गौरी के तम्बू में आए और गौरी उन्हें बाँधकर घरीचिस्थान घसीट लाया। बाद में ११९२ ई० में गौरी के आदेश से उसे बन्दीगृह में हलाल कर दिया गया। अतएव इन लोगों के पास सन्धि-वार्ता के लिए जाना भी जान-बूझकर विनाश को न्यौता देना है। प्रबल शत्रु को लोभ-लालच दे, शांति सन्धि-वार्ता के बहाने अपने दुर्ग में बुलाकर फिर उन्हें बन्दी बनाकर तहख़ाने में धकेल, हलाल कर देने की प्रशंसनीय परिपाटी मुसलमानों के खून में समाई हुई है। 'महान् और प्रतिष्ठित' अकबर भी इस मुस्लिम हथियार का उपयोग करता था। गौरी के प्रायः चार शताब्दियों बाद 'महान्' अकबर ने उसी उपाय से असीरगढ़ का विनाश किया था।

गज़नवी शासन के अन्त से सिन्ध और पंजाब पर गौरी का एकाधिकार हो गया। जिस प्रकार पाकिस्तान आज इन्हीं दो हिन्दू स्थानों से उछलकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करता है, ठीक उसी प्रकार गौरी ने भी इन्हीं दो स्थानों से दिल्ली और अजमेर के तत्कालीन शासक पृथ्वीराज को धर दबोचने की योजना बनाई थी।

प्रायः चार सौ वर्ष तक हिन्दू-भूमि बर्बर मुस्लिमों के आक्रमणों के

सामने सिकुड़ती और सिमटती पीछे खिसकती रही। इस पर भी हिन्दू राजधानियाँ विनाश के इस स्पष्ट और प्रकट लेख को नहीं पढ़ सकीं। अपनी वैयक्तिक और विभाजित राजसत्ता का त्याग कर, एक सार्वभौम सत्ता को जन्म देने के बदले, वे अपने विभाजित और क्षुद्र झगड़ों को ही रगड़ते रहे। इस प्रकार अपनी मूर्खता से उन्होंने मुसलमानों के हाथों अपनी मौत को बेरोक-टोक बुलवाया था। पौरुषहीन नकली वीरों और काग़जी शेरों की भाट-स्तुति के कारण हिन्दुत्व को आत्मसमर्पण कर, अपमानित हो, घुटने टेकने पड़े जबकि उसे शिवाजी और राणा प्रताप जैसे वीरों की आवश्यकता थी।

जब से मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भारत में पाँव रोपे, उन्होंने पड़ोसी हिन्दू-क्षेत्रों की लूट से ही अपना पेट पाला। इस प्रकार चाहे वह गौरी हो या पंजाब का मुस्लिम अपहर्त्ता खुसरो मलिक, हिन्दुस्तान की सदा सिकुड़ती सीमा को ही ये लूट-लूटकर खाते और पचाते रहे। इसी हज़ार वर्षीय पुरानी आदत ने अभी तक हिन्दुस्तान को अपने जबड़ों में जकड़ रक्खा है।

देशद्रोही हिन्दू—११९१ ई० में मुहम्मद गौरी ने हिन्दुस्तान के भीतर घुसकर विनाश का खेल खेलने का आयोजन किया। अपने दुष्ट-दल के साथ उसने सरहिन्द (भटिण्डा) की ओर प्रयाण किया। दुर्ग में थोड़े ही रक्षक थे। ये अचानक उन पर टूट पड़े। फिर भी वीर क्षत्रियों ने गौरी के छक्के छुड़ा दिए। इन गिनती के कुछ मुट्ठीभर वीरों के हाथों हार खाने के भय से गौरी ने छल और कपट की माया फैलाई। दुर्गरक्षकों के सम्मुख उसने घेरा हटाकर लौट जाने का प्रस्ताव रख दिया। शर्त सिर्फ़ इतनी ही थी कि हिन्दू सेनापतिगण उसके खेमें में शांति-सन्धि के नियमों पर वार्तालाप करने आएँगे। सीधे, सच्चे और भोले हिन्दू इस मायाजाल में फँस गए। आराम से वे सन्धि-वार्ता करने गए और सीकचों में बन्द होकर रह गए। दुर्ग सैनिकों को समाचार भेज दिया गया कि या तो वे घुटने टेककर आत्मसमर्पण कर दें अन्यथा उनके अधिकारियों को भीषण यन्त्रणाएँ देकर धरती से साफ़ कर दिया जाएगा।

अपनी माया से सरहिन्द (भटिण्डा) पर अधिकार कर लेने के बाद गौरी ने इसे जियाउद्दीन को सौंप दिया। इस संकट का समाचार सुनकर

दिल्ली के वीर शासक पृथ्वीराज ने अपनी सेना भेजकर सरहिन्द के नगर-दुर्ग को घेर लिया। चापलूस मुस्लिम इतिहासकार अपनी घातक आदत से लाचार थे। हमेशा वे हिन्दू सेना का बढ़ा-चढ़ाकर और मुस्लिम लुटेरों की संख्या का घटाकर वर्णन करते थे। अन्त में मुस्लिम विजय की घोषणा होती थी। इस उदाहरण में उनके अनुसार पृथ्वीराज की इस हिन्दू सेना में २,००,००० पैदल और ३०,००० घुड़सवार सैनिक थे। संख्यायों की इस झूठी भूमिका के आधार पर वे शायद यह बतलाना चाहते हैं कि पृथ्वीराज ने गौरी को करारी मात दी।

१३ महीने के घिराव के बाद भटिंडा (सरहिन्द) को वापिस हिन्दू क्षेत्र में मिला लिया गया। इस सम्पूर्ण समर्पण के समाचार से गौरी मुस्लिम लुटेरों के टिड्डीदल को लेकर ताबड़तोड़ भागा आया। पृथ्वीराज के वीर और दृढ़ देशभक्तों के सामने गौरी के गुण्डों की गिनती स्वल्प थी। वह पृथ्वीराज से तलवार बजाने का साहस नहीं बटोर सका। मगर कन्नौज के देशद्रोही राजा जयचन्द ने गौरी को चुपचाप सहायता के आश्वासन का समाचार भेज दिया। बशर्ते कि वह पृथ्वीराज से तलवार टकरा ले। रण-स्थल के बारे में विवाद है कि वह पानीपत के पास का नारायण गाँव था या तरावड़ी या तराइन (थानेश्वर से १४ मील) था। इस संग्राम में देशद्रोही जयचन्द की सहायता-प्राप्त गौरी का गिरोह और किराये के सिपाही अपने सिर पर पैर रखकर नौ दो ग्यारह हो गए। कुछ मुस्लिम इतिहासकारों के अनुसार हताश गौरी, जिसने भीषण अन्तिम आक्रमण स्वयं किया था, अपनी जान लेकर भाग गया था। मगर कुछ अन्य इतिहासकारों के अनुसार उसे बन्दी बना, हाथ-पैर बाँधकर पृथ्वीराज के सामने पेश किया गया था। पराजित और निःशस्त्र अक्षम्य शत्रु को भी क्षमा कर देने की परम्परागत हिन्दू दुर्बलता का गौरवशाली प्रदर्शन करते हुए, पृथ्वीराज ने बड़ी शान से गौरी को मुक्त कर दिया। इधर गौरी ने भी हरजाने में ८००० घोड़े देने का वचन दे दिया।

हिन्दू शक्ति को ललकारने के परिणामस्वरूप गौरी की यह दूसरी हार थी। पहली बार उसे अनहिलवाड़ पाटण के राजा भीमदेव द्वितीय ने हराया था। स्पष्ट है कि गौरी के समय में पृथ्वीराज और भीमदेव में से कोई अकेला ही मुस्लिम लुटेरों को मार भगाने में पूर्ण सक्षम था।

विवेक, राजनीती और दूरदर्शिता से काम लेकर यदि उन दोनों ने अपनी सेनाओं को एक कर लिया होता तो वे दोनों अफ़गानिस्तान की सीमा के उस पार तक इन उन्मादी और जंगली जानवरों को खदेड़कर, इनकी जड़ें खोदकर, सदा सर्वदा के लिए इस मुस्लिम संकट को झाड़-पोंछ कर साफ कर सकते थे। मगर ठीक इसके विपरीत वे दोनों, पृथ्वीराज और भीमदेव आबू की राजकुमारी के लिए आपस में लड़ पड़े और अपनी शक्ति का अपव्यय कर बैठे।

पृथ्वीराज के कुल-भ्राता, चित्तौड़ के शासक समरसिंह एवं दिल्ली के राय गोविन्दराय ने गौरी पर ऐसा आघात किया था कि उसके शरीर से रक्त की धारा फूट पड़ी थी। वह समर-भूमि में संज्ञाहीन होकर गिर पड़ा और बन्दी बना लिया गया। दिल्ली की सड़कों का नाम इन्हीं वीरों पर होना चाहिए।

बन्दीगृह से अभूतपूर्व, उदारतापूर्ण मुक्ति पाकर गौरी समर्पण की शर्म से सिर लटकाए गज़नी लौट गया। पराजय की स्मृति बार-बार उसके मस्तिष्क को भेद रही थी। इधर देशद्रोही जयचन्द ने गौरी से अपना सम्पर्क बराबर बनाये रक्खा था। धीरे-धीरे गौरी में नयी आशा ने जन्म लिया। पुनः एक बार उसने तुर्की, ईरानी, अरबी और अफ़गानी गुण्डों में से हत्यारों और लुटेरों को छाँट-छाँटकर जमा किया और एक विशाल गिरोह लेकर ११९२ ई० में भारत की ओर कूच कर दिया। उसकी पैदल सैना में १,२०,००० सैनिक थे।

लाहौर पहुँचने के साथ ही उसने अपनी माया फैलानी शुरू कर दी। किवाम-उल्-मुल्क को उसने अपना दूत बनाकर पृथ्वीराज के पास भेज दिया। उसने गौरी का जागीदारी-पट्टा पृथ्वीराज के चरणों पर रख दिया। बड़ी आशा थी कि भोला-भाला पृथ्वीराज अपने जागीदार को सेना सहित दिल्ली आने की अनुमति दे देगा और बस एक बार दिल्ली के भीतर किसी प्रकार घुस तो जाऊँ फिर दिल्ली और दिल्लीपति दोनों को ही देख लूँगा। सौभाग्य से पृथ्वीराज के सलाहकार विवेकशील थे। वे इस चाल को ताड़ गए। उन्होंने अन्य राजपूत राजाओं को भी सचेत कर दिया। सभी को हिंदू भगवा-ध्वज के नीचे एकत्रित होने की सूचना भेज दी गई। [illegible] हिन्दू

सेना का बढ़ा-चढ़ाकर वर्णन करने की आदत से लाचार मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार पृथ्वीराज की सेना में पैदल सैनिकों की तो बात छोड़िए, सिर्फ़ घुड़सैनिकों की संख्या ही ५,००,००० थी और हाथियों की ३,००० ।

भयंकर युद्ध छिड़ गया । हिन्दुओं के प्रहारों से गौरी-सेना की अगली पंक्तियाँ त्राहि-त्राहि करके बिखर गईं । उन्होंने रणभूमि से भागकर कई मील उत्तर में तरावड़ी में शरण ली । सायंकाल गौरी ने रात्रि-युद्ध-बन्दी की प्रार्थना की । धर्म-युद्ध की परम्परा के अनुसार पृथ्वीराज ने इसे स्वीकार कर लिया और बर्बर मुस्लिम गुण्डों को खदेड़कर मारने वाले हिन्दू वीरों के हाथ रोक दिए गए ।

ठीक आधी रात को जबकि हिन्दू सेना बड़ी शांति से सो रही थी, गौरी ने चुपचाप और एकाएक धावा बोल दिया । छल और कपट के माया-जाल में फँसे सोते वीर हिन्दू सैनिकों को गौरी के कसाई दल ने हलाल कर दिया । इस धोखेधड़ी के संग्राम में पृथ्वीराज ने वीरगति प्राप्त की ।

कुछ इतिहासकारों के अनुसार पृथ्वीराज को बन्दी बनाकर मारा गया था । कहा जाता है कि यंत्रणा से विह्वल हो, मृत्यु से पहले पृथ्वीराज ने गौरी को उस दिन का स्मरण दिलाया था जबकि पृथ्वीराज ने उसे उदारतापूर्वक मुक्त कर दिया था । तब अपनी चारित्रिक दुष्टता से मुहम्मद गौरी ने उत्तर दिया कि वह इतना बुद्धू नहीं है कि हाथ में आए शत्रु को छोड़ दे । कुछ दूसरे इतिहासकारों के अनुसार गौरी ने पृथ्वीराज को अपना गुलाम बनाकर उसे वापिस अजमेर लौटने की आज्ञा दी और बाद में उसे हलाल कर दिया ।

पृथ्वीराज के राजकवि चंदभट्ट के महाकाव्य 'पृथ्वीराज-रासो' ने दावा किया है कि राजकवि और राज्य-रक्षक दोनों को ही बंदी बनाकर गज़नी लाया गया । वहाँ गौरी एवं उसके क्रूर दरबारियों तथा नागरिकों ने शराबी-आमोद में उन्मत्त हो पृथ्वीराज के विख्यात धनुकौशल को देखने की तीव्र इच्छा प्रकट की । असहाय बंदी पृथ्वीराज को रंग-भूमि के मध्य में खड़े होकर दूर स्थित लौह-पात्रों का लक्ष्य-वेध करना था । शब्द-लक्ष्य-वेधी के रूप में पृथ्वीराज विख्यात थे । तदनुसार एक-एक कर लौह-पात्रों को बजाया गया और पृथ्वीराज लक्ष्य-वेध करते रहे । इस अलौकिक

प्रदर्शन से प्रभावित हो मदोन्मत्त गौरी वाह-वाह कर उठा। शैतान के अट्टहास को सुनकर वीर पृथ्वीराज ने उसका भी लक्ष्य-बेध कर दिया और लुटेरा मर गया। इन सभी विवरणों में अधिक तर्कसंगत विवरण वही है जिसमें पृथ्वीराज की रणभूमि में वीरगति प्राप्ति का वर्णन किया गया है।

तरावड़ी का दूसरा संग्राम निर्णायक था। अन्तिम हिन्दू साम्राज्य समाप्त हो गया। मुसलमानों के क्रूर, बीभत्स और घृणित शासनकाल में हिन्दुस्तान हाहाकार करने लगा। मुहम्मद गौरी के बर्बर गुण्डे बलात्कार, हत्या और लूट के प्रमोद में खुलकर खेलने लगे। मार्ग का काँटा पृथ्वीराज हट चुका था। सरस्वती से नीचे अजमेर तक हाहाकार और कुहराम मच गया। प्रत्येक स्थान पर स्त्रियों, निरपराध बच्चों और पुरुषों का भयंकर संहार हुआ। सभी मन्दिर मस्जिद बन गए और पहली बार हिन्दुस्तान के पवित्र राजसिंहासन को विदेशी मुस्लिम लुटेरे ने गंदा किया। कुचले, मसले और रौंदे गए क्षेत्रों की देखभाल एवं निगरानी के लिए मुहम्मद गौरी ने अपने गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक को दिल्ली में छोड़ दिया। गौरी के गुलाम के रूप में पृथ्वीराज के पुत्र गोला ने अजमेर की जागीर सम्भाल ली। इसी समय अजमेर के भव्य राज-प्रासादीय दुर्ग को मोइनुद्दीन चिश्ती का मकबरा बना दियागया और विशालदेव की पाठशाला को मस्जिद। यह पाठशाला रूपी मस्जिद आज "अढाई दिन का झोंपड़ा" के नाम से विख्यात है। ढाई दिनों के इस बुतशिकन उन्माद ने इस ललित जगमग भवन को ध्वस्त कर दिया।

इधर मुहम्मद गौरी अजमेर से वापिस लौटा, उधर अजमेर ने मुस्लिम जुआ उतार फेंका और घृणित मुस्लिम शिकंजे के विरुद्ध विद्रोह की पताका फहरा दी। अन्य स्थानों पर भी इसका प्रभाव पड़ा। हिन्दू शासक जटवान ने हाँसी के मुस्लिम रक्षकों को घेर लिया। गौरी का दिल्ली दास ऐबक तुरन्त सहायता के लिए आया। बागद के निकट भीषण संग्राम छिड़ गया। हिन्दू शक्ति को उभारने के प्रयास में वीर जटवान ने प्राणों की बाजी लगा दी और समर-भूमि में खेत रहा।

अपने स्वामी की कपट-रण-चातुरी में ऐबक पूरी तरह मँजा हुआ था। बुलन्दशहर के शासक डोर राजपूतों से ऊपरी मित्रता जताकर कपटी माया के प्रसार से उनके नेताओं का हरण कर अपने पास गिरवी

रख लिया। फिर उनको भीषण यातनाएँ दे, कुछ को मार और खपाकर दुर्ग-रक्षकों से दुर्ग का समपर्ण करवाया।

इस पर भी डोर सेनापति (चौधरी) चन्द्रसेन ने कुतुबुद्दीन का दृढ़ता से सामना किया। मगर ऐन मौक़े पर उसका अपना ही सम्बन्धी अजयपाल मोटी घूस प्राप्त कर ऐबक से जा मिला। इस प्रकार उसने अपने देशभक्त हिन्दू भाइयों के रक्त से धरती को लाल किया।

इस विजय से मेरठ मुस्लिम शासन के अधीन आ गया। ११९३ ई० में ऐबक ने दिल्ली के तोमर शासक को इस बहाने से गद्दी से उतार दिया कि राजनगर के मेहमान बर्बर मुस्लिम गुण्डों की उचित ख़ातिरदारी करने में वह पूर्णरूपेण असफल रहा। इस प्रकार भारत पर मुस्लिम शासन का प्रारम्भ हो गया।

इधर पृथ्वीराज के भाई हेमराज ने मुस्लिम अधिकृत दुर्ग रणथम्भोर को घेर लिया। यहाँ का दुर्गपति ऐबक का सिपहसालार किवाम-उल्-मुल्क था। उधर गौरी की गुलामी स्वीकार कर अपने वीर पिता के नाम और अपने परिवार पर कलंक लगाने वाले पृथ्वीराज के पुत्र गोला से अजमेर के कुछ वीर चौहानों ने शासन छीन लिया। स्पष्ट है कि उग्र हिन्दुत्व ने कभी भी दुर्बल और देशद्रोही राजा को मान्यता नहीं दी। पृथ्वीराज के पुत्र गोला को अजमेर से भागना पड़ा। अजमेर और रणथम्भोर पर मुस्लिम गाँठ को कसने के लिए ऐबक आया। मुहम्मद गौरी के संरक्षण में गोला पुनः अजमेर की गद्दी पर बैठा। मगर वीर हेमराज अभी तक अजेय था। बारन के डोर राजपूत भी अपनी स्वतन्त्रता के प्रयास में लगे हुए थे। ऐबक को अपना गिरोह लेकर यमुना-पार दौड़ना पड़ा। इसी समय उसने उस स्थान को ध्वस्त किया जो आज अलीगढ़ के नाम से विख्यात है।

अलीगढ़ नगर, इसके तथाकथित मुस्लिम विश्वविद्यालय और इसके तथाकथित मुस्लिम निवासियों को उस दिन की याद करनी चाहिए जिस दिन ऐबक ने उनके हिन्दू पूर्वजों को खूनी तलवार की धार पर मुसलमान बनाया था। धर्म-परिवर्तन का इनका गौरव एकदम खोखला है। वह दिन था उनके व्यक्तिगत अपमान का, आतंक और यन्त्रणा का; वह दिन हिन्दुस्तान, हिन्दू पूर्वजों और हिन्दू राज्यों के लिए लज्जा का दिन था। भारत उस दिन एक सम्पन्न और संगठित देश होगा जिस दिन अलीगढ़

नगर अपनी प्राचीन परम्परा को स्वीकार करेगा और उसके निवासी वापिस अपने हिन्दू विश्वास में लौटेंगे जिसे उनके पूर्वजों को भयभीत होकर त्यागना पड़ा था।

जयचन्द ने देशद्रोह का स्वाद चखा—छल, कपट और माया से दबे राजपूत पुनः सिर उठा रहे थे। गौरी के गुलाम ऐबक के हाथों से शासन की लगाम छूटने वाली ही थी। यह समाचार सुनकर गौरी एक बार फिर धर्मोन्मादी लुटेरों को बटोरकर भारत आ पहुँचा। ऐबक की भारतीय मुस्लिम सेना भी इससे आ मिली। इस भारतीय मुस्लिम सेना में धर्म बदले नए मुसलमान भी थे। इन दोनों का ही लक्ष्य अब देशद्रोही और बन्धु-घाती जयचन्द था जिसे अब अपने ही पाप की फ़सल काटनी थी। भूतपूर्व साथी होने के कारण मुहम्मद गौरी उसके सारे रहस्यों, सारी चालों और समूची दुर्बलताओं से परिचित था। देशद्रोही और म्लेच्छ-सहयोगी होने के कारण इसने अपने हिन्दू बान्धवों की सहानुभूति भी खो दी थी। उसका शासन कन्नौज से वाराणसी तक फैला हुआ था।

मुहम्मद गौरी को अपने ऊपर ही चढ़ते देख जयचन्द ने अपने भूतपूर्व मित्र और वर्तमान शत्रु को रोकने के लिए अपनी सेना की अग्रिम टुकड़ी भेजी और वह मार खाकर वापिस भाग आई। अन्ततः उसे स्वयं सेना लेकर मैदान में उतरना पड़ा। शत्रु सेना की गति रुक गई। कन्नौज और इटावा के बीच में यमुना तट के चन्दावर स्थान पर घनघोर संग्राम हुआ। जयचन्द की सेना ने अपनी वीरता से गौरी के छक्के छुड़ा दिए। हताश गौरी शान्ति-सन्धि की भीख माँगने ही वाला था कि दैव ने करवट बदली और संग्राम का हिन्दू पलड़ा एकाएक हल्का हो गया। उसकी आँख से होकर शत्रु के एक बाण ने जयचन्द की खोपड़ी बेध दी। जयचन्द मारा गया। अपने सेनापति के धराशायी हो जाने पर विजयी होती हिन्दू सेना अपनी सफलता की आशा छोड़कर इधर-उधर भागकर तितर-बितर हो गई। यही चन्दावर में भी हुआ। अपना पासा सीधा पड़ता देख गौरी भागती सेना को क्रूरतापूर्वक रगेदने लगा। हताश मुहम्मद गौरी अब धर्मोन्माद के नपुंसक आवेग में था। बिखरे सिरों की गिनती नहीं थी। खून पीते-पीते धरती भी थक गई। हज़ारों की संख्या में हिन्दू स्त्रियों को छीना और लूटा गया। कटे मेमनों की तरह शिशुओं का कीमा चारों ओर बिखरा हुआ था।

११९२ ई० के तरावड़ी संग्राम से पृथ्वीराज के साम्राज्य का अन्त हुआ और ११९४ ई० के चन्दावर संग्राम से जयचन्द का विशाल राज्य गौरी के पैरों तले आ गया।

अब गौरी का गिरोह हिन्दू तीर्थयात्रियों के पवित्रतम तीर्थ वाराणसी की ओर बढ़ा। वाराणसी जयचन्द की ही दूसरी राजधानी थी। जयचन्द की मृत्यु के बाद गौरी के गुण्डों को रोकने-टोकने वाला कोई नहीं रहा था। इससे हिंदुओं को शिक्षा लेनी चाहिए कि प्रत्येक नगर और स्थान पर उसकी अपनी सुरक्षा सेना हो ताकि हमलावरों को हर स्थान का मूल्य, रक्त के सिक्कों में चुकाते-चुकाते रक्तहीन हो जाना पड़े।

मुस्लिम सेना ने १००० हिन्दू मन्दिरों को लूटकर उन्हें मस्जिद बना दिया। पवित्र शिवस्थान दूसरी मुस्लिम गुंडागर्दी का शिकार बना। इससे पहले १५० वर्ष पूर्व अहमद-नियालतिज़ीन ने इसे लूटकर निर्ममता से बरबाद किया था। गौरी की यह लूट दूसरी मुस्लिम लूट थी। वाराणसी के विश्वनाथ मन्दिर, जयचंद के राजप्रासाद, नागरिकों और व्यवसायियों को लूटकर मुहम्मद गौरी के सामने सोने-चाँदी का विशाल पहाड़ खड़ा कर दिया गया। नर-संहार और क़त्ल-ए-आम के उत्सव में लपकती और ललकती मुस्लिम सेना ने नगर में प्रलय मचा दी। कोई घर ऐसा नहीं बचा जिसमें सुन्नत न हुई हो।

१४०० ऊँटों पर लूट का सामान लादकर गौरी का कारवाँ गज़नी की ओर चल पड़ा।

कन्नौज अभी तक भी अविजित ही था। इसकी सुरक्षा-व्यवस्था सुदृढ़ थी। अतएव मुहम्मद गौरी ने अभी इसके साथ छेड़-छाड़ करना उचित नहीं समझा।

गौरी के गजनी लौटते ही उत्तर-भारत के राजपूतों ने अपनी-अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी और ऐबक मुस्लिम जुए को ज़बरन लादने तथा स्वतन्त्रता के प्रयासों को कुचलने में तल्लीन हो गया।

मुस्लिम संरक्षण से मुक्त होने में अलीगढ़ सबसे आगे था। मगर इसके निवासियों के एक बड़े भाग को मजबूरन मुसलमान ही बना रहना पड़ा। अलीगढ़ का प्राचीन नाम कोइल है।

ऐबक जल्दी ही वहाँ पहुँचा और स्वतन्त्रता की घोषणा करने वाले

सिर उठाते हिन्दू वीरों के सिरों को उसने पाशविक क्रूरता से कुचलकर मसल डाला। उधर राजस्थान में वीर हेमराज देशभक्तों का नेता था। मुसलमानों की चरण-सेवा में प्रसन्न रहने वाले गोला को उसने एक बार फिर गद्दी से उतार फेंका। अजमेर पर अपना प्रभाव जमा, हेमराज राजपूतों की सेना लेकर दिल्ली-मुक्ति की तैयारी में व्यस्त हो गया। उसने राजस्थान के अन्य राजपूत राजाओं से सम्पर्क स्थापित किया ही था कि ऐबक ने अजमेर को घेर लिया। यहाँ की सुरक्षा हिंदू सेनापति जाटराय के अधीन थी। अपनी राजधानी को ग्रहण-ग्रस्त देखकर हेमराज मुट्ठीभर वीर सैनिकों के साथ वहाँ पहुँचा। मुस्लिम लुटेरों ने सीमावर्ती क्षेत्रों को नष्ट-भ्रष्ट कर आपूर्ति मार्ग बन्द कर दिया था। हिन्दू रक्षक भूखे मरने लगे। वीर हेमराज भूख की लपलपाती ज्वाला को नहीं सह सका; साथ ही वह बर्बर मुस्लिम शत्रुओं की सादर परोसी खीर नहीं खा सका। वह चिता में प्रविष्ट हो गया।

नगर-प्रवेश के बाद ऐबक ने एक बार फिर मुस्लिम तलवार की धार पर अजमेर को रक्त-स्नान से पाक और साफ़ किया; मन्दिरों को पुनः मस्जिद बनाया, हिंदू स्त्रियों को अपने कब्जे में किया और हिंदू होने के कारण एवं मुस्लिम रीति का अत्याचार न ढा सकने के कारण पृथ्वीराज के दुर्बल पुत्र गोला को हटाकर, एक मुस्लिम दुष्ट को वहाँ का राज्यपाल नियुक्त किया।

११९५-९६ ई० में मुहम्मद गौरी एक दूसरा गिरोह लेकर एक बार फिर भारत आया और उसने यादव भट्टी राजपूतों के केन्द्र बयाना को घेर लिया। तीव्र प्रतिरोध के बावजूद मुस्लिम लुटेरे राजा कुमारपाल से थानगीर-दुर्ग और विजयगढ़ मन्दिर छीनने में लफल हो गए। नियमानुसार मुस्लिम अत्याचारों और बलात्कार की बारी आई। लुटेरे शासक के रूप में उसने बहाउद्दीन तुघ्रिल को वहाँ नियुक्त कर दिया। एक हिन्दू दुर्ग का नाम उसने सुलतानगढ़ रख दिया।

दक्षिण की ओर मुड़कर अब गौरी ने ग्वालियर को जा घेरा। राजा सुलक्षण पाल ने अपने दुर्ग की रक्षा बड़ी ही वीरता से की। अन्त में गौरी को अपना घेरा उठाना पड़ा। उसे भय था कि विदेशी क्षेत्र में भूख की ज्वाला से बेहाल होकर उसके गुण्डे कहीं घुटने न टेक दें। बाद में आदत से लाचार

कपटी गौरी ने अपने वचन को भंग कर बहाउद्दीन तुग्रिल को दुर्ग घेरने भेज दिया। आपूर्ति मार्ग को बन्द करने में तुग्रिल किसी प्रकार सफल हो गया। आपूर्ति मार्ग के बन्द हो जाने के उपरान्त भी उसे १८ महीने तक घेरा डाले पड़े रहना पड़ा। अन्त में विवश हो दुर्ग-रक्षकों ने इन हमलावरों के लिए दुर्ग खाली कर दिया और पीछे हट गए।

११९६ ई० में राजस्थान के मेदों और चौहानों ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। अजमेर के मुस्लिम दुर्ग-रक्षकों को उन्होंने घेर लिया। ऐबक इनकी सहायता के लिए पहुँचा और हारकर दुर्ग में शरण ली। इसी बीच मुहम्मद गौरी की एक और सैन्य टुकड़ी वहाँ आ पहुँची और राजपूतों को घेरा उठाना पड़ा।

अपने आक्रमणों से तहस-नहस भारत में कुतुबुद्दीन ऐबक को छोड़कर गौरी गज़नी वापिस लौटा। उसे पश्चिम एशिया के शत्रुओं को भी शान्त करना था। अन्धखुद के संग्राम में ख्वारिज्म के शासकों ने गौरी को १२०४ ई० में बड़ी बुरी तरह हराया। बड़ी कठिनाई से गौरी किसी प्रकार ज़िन्दा वापिस गज़नी लौट सका। परवर्ती सन्धि के अनुसार उसे ख्वारिज्म के शाह अलाउद्दीन को पश्चिम एशिया का अपना सारा भू-भाग सादर समर्पित कर देना पड़ा।

इस पराजय के समाचार के साथ-साथ उसकी मृत्यु की अफ़वाह भी पंजाब तक पहुँच गई और जनता ने उसके शासन के विरोध में विद्रोह कर दिया। मुस्लिम दरबारी ऐबक-बक ने मुलतान के शासक को हलाल कर सत्ता पर अपना कब्जा कर लिया। लाहौर एवं गज़नी के बीच में गक्खर आदि जातियों ने विद्रोह की पताका फहरा दी।

मुहम्मद गौरी ने भारत की जितनी भूमि रौंदी थी वहाँ चारों ओर उथल-पुथल मच गई। न किसी का जीवन सुरक्षित था न सम्पत्ति। चोर, डाकू आदि लोगों के कारण शान्तिपूर्ण जीवनयापन सपना बन गया था। अतएव अपने स्वामित्व की मोहर-छाप पुनः लगाने के लिए गौरी फिर एक बार एक विशाल गिरोह लेकर आया और कुतुबुद्दीन को पंजाब में मिलने का समाचार भेज दिया। अत्याचारी मुस्लिम जुए को उतार फेंकने को उत्सुक वीर पंजाबियों ने हर जगह और हर स्थान पर ऐबक को रोका। सारे रास्ते लड़ता-भिड़ता, गिरता-पड़ता और मरता-बचता ऐबक

किसी प्रकार अपने स्वामी से आ मिला।

अशान्त क्षेत्रों को मसान-सा शान्त कर दोनों लाहौर पहुँचे। इसके बाद मुहम्मद गौरी ने गज़नी के लिए प्रस्थान किया। मार्ग में उसने दमयक में पड़ाव डाला। तब १५-३-१२०६ ई० को वीर हिन्दुओं का एक छोटा दल तलवार से वपञ्जात करता मुहम्मद गौरी के खेमे तक आया और एक ही झटके में गौरी का सिर कटकर भूमि पर लुढ़कता दूर तक चला गया। इस प्रकार एक और मुस्लिम लुटेरे का अन्त हो गया।

(मदर इण्डिया, नवम्बर १९६६)

: ४ :

बख़्तियार ख़िल्जी

मानव प्रगति के इतिहास में मुहम्मद-इब्न-बख़्तियार ख़िल्जी एक अधम नाम है। सारे संसार में विख्यात हिन्दू शिक्षा-केन्द्र खोज-खोजकर नष्ट करने में उसने अपनी दुष्टता का परिचय दिया था।

यह शैतान गुलामों के बाज़ारों में कई बार बिका था। अनेक बार नौकरियों से निकाला गया था। मगर इसका नाम बड़ा लम्बा-चौड़ा, भारी-भरकम, उच्चारण में क्लिष्ट और तड़क-भड़क वाला था—"मलिक गाज़ी इख़्तियार उद्-दीन मुहम्मद इब्न बख़्तियार ख़िल्जी।"

आदम-काल से मानवता ने ज्ञान एवं प्रगति की वृद्धि एवं सुरक्षा के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगा रखा है। मगर बख़्तियार ख़िल्जी शैतान मुस्लिम हमलावरों के उस गिरोह का सदस्य था, जिसने पुस्तकों, ग्रन्थों और हिन्दू शिक्षा एवं विद्या-केन्द्रों को दीमक की तरह चाट लिया था।

बघेरों एवं भेड़ियों के इस इन्सानी गिरोह में उसका पद प्रतिष्ठा का था। क्योंकि दूसरे मुसलमान लुटेरों की तरह वह अपनी सीमा में ही सन्तुष्ट नहीं था। वह चारों ओर सूँघता फिरता था। अपने राक्षसी उन्माद में वह प्राचीन प्रसिद्ध हिन्दू शिक्षा-केन्द्रों को खोजता फिरता था। हथौड़े, संडासी, मशाल, तलवार, कुल्हाड़ी, छेनी और भाले आदि लेकर वह उनपर टूट पड़ता था और उन्हें गिराकर ही दम लेता था। नालन्दा विश्वविद्यालय इन्हीं में से एक था।

बख़्तियार ख़िल्जी पापियों का शाहज़ादा और मानव-जाति का काला धब्बा था। फिर भी इसीके नाम पर बिहार राज्य में एक नगर बख़्तियार-पुर है। बगल में ही इसके शिकार नालन्दा की लाश भी पड़ी है। जिसके नाम ने इस देश को बदनामी और बरबादी दी, उसके नाम पर यहाँ नगर

हैं। आश्चर्य होता है कि यह कैसा देश है। यह दोहरी बातें मृत, शान्त और डरपोक भारत की अपनी विशेषता है। इस अभागे देश के शहरों, नगरों और गाँवों के नाम अभी भी ऐसे ही हैं। इलाहाबाद, अहमदाबाद, महमूदाबाद, नजीबाबाद हिन्दुस्तान की गुलामी की चमचमाती मोहर-छाप हैं। न जाने कब गुलामी की यह मोहर-छाप छूटेगी ?

इस राक्षस के खूनी और नारकीय कारनामों के बावजूद 'तबक़ात-ए-नासिरी' के लेखक मिनहज-अस्-सिराज ने लिखा है—"वह एक बहुत ही स्फूर्तिशाली, निर्द्वन्द्व, वीर, साहसी, बुद्धिमान और अनुभवी आदमी था।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ ३०५)। सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने वास्तव में हिंस्र पशु एवं शैतानों की प्रशंसा की ऐसी ही डींग हाँकी है। सर एच० एम० इलियट ने अपना विचार प्रकट किया है कि भारत के मुस्लिम युग का इतिहास "एक धृष्ट और मनोरंजक धोखा है।"

मुहम्मद बख़्तियार गर्मसिर प्रान्त के 'गोर' स्थान का एक ख़िल्जी था। जन्मजात उत्पाती और दुष्ट होने के कारण वह लूटमार में सिद्धहस्त होने के लिए शैतान लुटेरे मुहम्मद गौरी के पास आया। उसने उस अन्तर्राष्ट्रिय डाकू सरदार की हर तरह से ख़िदमत की। घरेलू कामों में भी हाथ बँटाया और उसकी कामाग्नि में झोंकने के लिए औरतों एवं लड़कों की दलाली भी उसने की।

बख़्तियार दीवाने-अर्ज़ (प्रार्थना कार्यालय) में नियुक्त हुआ। मगर अयोग्यता का प्रमाण पत्र दे, उसे शीघ्र ही वहाँ से निकाल दिया गया। तब मुस्लिम लुटेरों के साथ मिलकर वह भारत में घुस आया। दिल्ली के समीप विदेशी मुस्लिम नगर-सैनिकों के पास उसे फिर पहले जैसी ही नौकरी मिली। यहाँ से भी अयोग्यता का कलंक ले उसे निकलना पड़ा।

उत्तर भारत उस समय भूकम्प की-सी अवस्था में था। मुस्लिम आक्रमणों के आतंक और पीड़ा के मलबे चारों ओर बिखरे पड़े थे। इस हड़कम्प का फ़ायदा उठा लुढ़कते पत्थर-सा बख़्तियार लुढ़कता हुआ मैदान से दूर बदायूँ तक जा लुढ़का। उसने यहाँ के मुस्लिम लुटेरे दलपति हिजबर-उद्-दीन हसन की नौकरी कर ली और हिन्दू-हत्या अभियान में अपनी योग्यता का नगाड़ा उसने पीट ही दिया। उच्च मर्दानगी की कुंजी उसे मिल गई। वह कुंजी थी हिन्दू घरों को लूटना, हिन्दू स्त्रियों पर बलात्कार

करना, हिन्दू सम्पत्ति को बटोरना, हिन्दू हाथी-घोड़ों को चुराना और मुस्लिम गुण्डों एवं दुष्टों को बटोर, पाप की फ़सल का लोभ देकर उन्हें उकसाना। बस, उसे इतना ही करना था। धीरे-धीरे वह भी एक दुष्ट दल का सरदार हो गया।

मलिक हिसामुद्दीन उघबालक अवध में तैनात मुहम्मद गौरी का एक गुर्गा था। बख़्तियार की प्रतिभा को उसने ताड़ लिया और हिन्दू-हत्या अभियान पर उसे नियुक्त कर दिया।

"व्यापार के सामानों का अपना निजी संग्रह भी वह करने लगा था", यानी हथियार, घोड़े और मुस्लिम लुटेरे दल का नियोजन। निजी आक्रमण-अभियानों में उसे अधिक फ़ायदा नज़र आया तो उसने "कई स्थानों पर बड़ी लगन और फुर्ती दिखाई" (वही पृष्ठ ३०५)। मुस्लिम इतिहास के इस कथन का अर्थ है कि उसने आधी रात में हिन्दू घरों पर चढ़ाई कर, हिन्दुओं का वध किया, हिन्दू-स्त्रियों का शील-भंग एवं अपहरण कर हराम का इतना माल बटोरा कि वह एक बड़ा डाकू शासक बन बैठा। इन आक्रमण-अभियानों के दौरान उसने दो शहरों पर भी कब्ज़ा जमा लिया और सहलत एवं सहली उसकी अपनी जागीर हो गई।

गौरवशाली भारत—भारत में इन मुस्लिम डाकुओं की प्रलयंकारी डकैतियों का स्वाद लेते हुए तबक़ात के अनुसार, "साहसी और उद्यमी होने के कारण मुनीर (मुंगेर) और बिहार के ज़िलों पर प्रायः आक्रमण कर, वह प्रचुर लूट जमा करता रहा था। इस प्रकार उसके पास घोड़े, हथियार एवं सैनिकों की प्रचुरता हो गई। उसकी वीरता एवं लुटेरी चढ़ाइयों की ख्याति दूर-दूर तक फैल गई और दूर-दूर से आ-आकर ख़िल्जियों का एक दल उसके पास जमा हो गया। उसके कारनामों का समाचार कुतुबुद्दीन के पास भी पहुँचा। एक पोशाक भेज उसने उसको बड़ा सम्मान दिया।"

उत्तर प्रदेश एवं बिहार के सारनाथ, कुशीनारा, नालन्दा आदि प्राचीन विश्वविख्यात हिन्दू शिक्षा-केन्द्रों के खण्डहरों में हम उसकी विनाश-लीला के दर्शन कर सकते हैं। इन पाषाण भवनों की नींव तक उसने खोद डाली है। तबक़ात का यह वर्णन नगाड़े की चोट पर लोगों को बतलाता है कि बख़्तियार ने इन स्थानों पर लगातार आक्रमण किया, बार-बार वार किया, उन्हें जलाया और वहाँ का सारा धन बटोरकर ले गया। वास्तव में

भारतीय मुस्लिम शासन का यह "सुनहरा युग" था मगर मुसलमानों के लिए। वे हिन्दू घरों को आग और खून से लाल कर, सारा सोना लूट, बटोर ले जाते थे।

इन अद्भुत शिक्षा-केन्द्रों में शिक्षा पाने के लिए सारे संसार से, सुदूर मिस्र एवं अरब से लेकर चीन और जापान तथा दक्षिण द्वीप-समूह से लेकर रूस तक के छात्र आते थे और हिन्दू गुरुजनों एवं शिक्षकों के चरणों में बैठकर विभिन्न विषयों का सांगोपांग ज्ञान प्राप्त करते थे—

कताई, बुनाई, खुदाई (Mining), आयुर्विज्ञान, शल्य, मेटालरजी (धातु-विज्ञान), राजनीति, कूटनीति, शासन-कला, बैंकिंग, अर्थशास्त्र, शस्त्र-निर्माण, युद्ध-कला, धनुर्विज्ञान, प्रक्षेपण-शास्त्र (राकेट्री), गणित, ज्योतिष, नक्षत्र-विज्ञान, अध्यात्मवाद (मेटाफ़िज़िक्स) दर्शन-शास्त्र, मनोविज्ञान, तर्कशास्त्र, सैन्यापूर्ति, ऋतु-विज्ञान, मेनसूरेसन, कैलक्यूलस, डायनेमिक्स, स्टेटिस्टिक्स, गायन, संगीत, नृत्य, मूर्तिकला, वास्तुकला, चित्रकला, इंजीनियरिंग, जीव-विज्ञान, स्त्रीरोग-विज्ञान और काम-शास्त्र आदि।

उस ज़माने में कई गज़ अरज वाले सूती वस्त्रों की कताई और बुनाई होती थी जो इतने महीन और मुलायम होते थे कि एक अंगूठी के आर-पार हो जाते थे। बड़ी आसानी से ये एक छोटी डिब्बी में बन्द हो जाते थे। फिर भी तह के दाग़ उसपर नहीं पड़ते थे। आज की अच्छी-से-अच्छी टेरेलीन भी उसके आगे बेकार थी। सबसे महत्त्वपूर्ण बात इसका उत्पादन-मूल्य था, एकदम सस्ता। आँख मूँदकर चलने वाले ये अर्थशास्त्री, बड़ी-बड़ी योजना बनाने वाले ये मन्त्री और लम्बी-लम्बी बातें करने वाले ये शासकगण अपनी विद्वत्ता की डींग हाँकते हैं फिर भी पर्याप्त रोटी, कपड़ा और आवास साधारण लोगों को मुयस्सर नहीं हैं। मगर प्राचीन भारत में अनोखे उत्पादन ज्ञान के कारण उत्तम चीज़ इतनी सस्ती थीं कि साधारण श्रेणी का व्यक्ति भी उन्हें ख़रीद सकता था। यह उन्हीं दिनों की बात है जब अनजान राही राह चलते किसी मकान से पानी का एक घूँट माँगता था तो उसे दूध का एक गिलास मिलता था। आज जब हम दूध खरीदते हैं तो पानी मिलता है क्योंकि गायें बची नहीं, मुस्लिम लुटेरे उन्हें चट कर गए।

शान्ति और समृद्धि का विश्वविख्यात भारत अकाल और हड़तालों का अखाड़ा बन गया। एक जादुई कारनामा हो गया। मुसलमानों के लुटेरे आक्रमण और शासन ने हज़ार वर्षों तक इसपर परिश्रम किया। क़ासिम, गज़नवी, गौरी, बख़्तियार, अलाउद्दीन, बाबर, हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, औरंगज़ेब आदि पिशाचों के योजना-बद्ध लगातार स्पर्श से भारत इतना मुरझा गया है कि कई पंच-वर्षीय योजनाओं तक से इसमें सिहरन तक नहीं हुआ; हज़ार वर्षीय मुस्लिम तबाही और बरबादी की मरम्मत होनी तो दूर रही। बख़्तियार इस भय-सर्जक धूमकेतु का एक जगमगाता सितारा था।

'तबक़ात' के अनुसार—"विश्वसनीय आदमियों ने कहा है कि वह (बख़्तियार) सिर्फ़ दो सौ घुड़सवारों के साथ बिहार दुर्ग के द्वार तक गया और बेख़बर शत्रुओं (यानी छात्र एवं शिक्षक-गण) पर टूट पड़ा। बख़्तियार के अनुचरों में दो बड़े बुद्धिमान भाई थे। एक का नाम निजामुद्दीन था, दूसरे का शम्सुद्दीन। बख़्तियार ख़िल्जी द्वार पर पहुँचा और लड़ाई प्रारम्भ हो गई। तब इन दो बुद्धिमान भाइयों ने बहादुरों की उस सेना में बड़ी चुस्ती दिखाई। मुहम्मद बख़्तियार ख़िल्जी ने बड़ी वीरता और सतर्कता दिखाई और द्वार से दुर्ग में प्रवेश कर महल पर अपना अधिकार कर लिया। लूट का काफ़ी माल विजेताओं के हाथ लगा। महल के अधिकांश निवासी केश-मुण्डित ब्राह्मण थे। उन सभी को ख़त्म कर दिया गया। वहाँ मुहम्मद ने पुस्तकों के ढेर को देखा। उसकी जानकारी पाने के लिए उसने आदमियों की खोज की तो पता लगा कि सारे लोग मर चुके हैं। पर यह मालूम हुआ कि वह सारा दुर्ग और नगर अध्ययन का स्थान (मदरसा) था।"

"इस विजय के बाद लूट के माल से लदा बख़्तियार ख़िल्जी कुतुबुद्दीन के पास आया जिसने उसका काफ़ी मान और सम्मान किया।" (वही पृष्ठ ३०६, ग्रन्थ २)।

ध्यान देने की बात है कि मुस्लिम शैतान बख़्तियार बिना कारण और अचानक हिन्दू विद्या-केन्द्र पर टूट पड़ा था। इसको मुस्लिम लेखक बहादुरी का बेहतरीन कारनामा कहता है। अध्ययन और अध्यापन में लगे सारे छात्रों और शिक्षकों का ख़ूनी नर-संहार हुआ। उसपर यह दावा भी हुआ

कि इससे इस्लाम का सिर ऊँचा हुआ है। एक ओर बर्बर मुसलमानों ने हिन्दुस्तान में हिन्दुओं की हत्याएँ कीं, दूसरी ओर मुस्लिम लेखकों का नगाड़ा बज उठा कि बख्तियार और उसके गुर्गे निज़ामुद्दीन और शम्सुद्दीन ने बड़ी समझदारी का काम किया है।

गज़नी के गौरी दरबार एवं दिल्ली के ऐबक दरबार से जिसे अयोग्य मानकर हटा दिया गया था उसी बख्तियार को अब योग्यता का स्पेशल प्रमाण-पत्र मिला। हिन्दू सिर फोड़, इस्लाम के नाम पर चार चाँद लगाने वाले हत्यारे को मुस्लिम कुलीन लोगों का स्थान मिला। इस पर कसाई कामों के लिए उसको सम्मान मिला।

इस सम्माननीय ऊँची प्रगति से कुछ दरबारी जलने लगे। "अपनी प्रमोद पार्टियों में वे इस पर व्यंग्य करते, हँसते और मुस्कराते हुए उसका मज़ाक उड़ाते थे। यह बैर-भाव यहाँ तक बढ़ गया कि उसे श्वेत-महल में हाथी से लड़ना पड़ा। अपनी कुल्हाड़ी से उसकी सूंड़ पर इसने ऐसा वार किया कि हाथी भाग खड़ा हुआ। इसने उसको रगेदा। इस विजय-प्राप्ति से प्रसन्न हो, कुतुबुद्दीन ने अपने (हिन्दुओं से लूटे) शाही ख़जाने के उपहारों से मालामाल कर दिया। अपने कुलीन लोगों को भी उसने उसे प्रचुर उपहार देने की आज्ञा दी, जिसका विवरण देना सम्भव नहीं है। सुलतान से पोशाक पा वह बिहार लौट आया। लखनौटी, बिहार, बंग (बंगाल) और कामरूप के काफ़िरों (हिन्दुओं) के दिमाग़ में उसका भयंकर डर बैठ चुका था।"

इस उद्धरण की कई बातें ध्यान देने योग्य हैं।

१. हिन्दुओं को लूटने, हिन्दुओं का संहार करने और हिन्दू स्त्रियों, बच्चों का अपहरण करने की होड़ मुसलमानी गुलामों एवं गुर्गों में मची हुई थी। इस निन्दनीय दौड़ एवं होड़ में जो बाज़ी मार ले जाता था उससे सभी जलने लगते थे।

२. दूसरा महत्त्वपूर्ण संकेत श्वेत महल का वर्णन है। यह साफ़-साफ़ लाल क़िले के दीवाने-ख़ास का वर्णन है। इसलिए यह वर्तमान धारणा कि लाल क़िला (और भीतर का श्वेत महल यानी दीवाने-ख़ास) का निर्माण मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ ने किया है एकदम ग़लत और भ्रमपूर्ण है।

३. तीसरे, तबक़ात के अनुसार बख़्तियार ख़िल्जी अपने राक्षसी

अत्याचारों के कारण हिन्दुस्तान के पूर्वी भागों में एक डरावना भूत था। इसलिए मुस्लिम सभ्यता एवं संस्कृति का मुसलमानी दावा एकदम झूठा हो जाता है। हिन्दुस्तान में मुसलमान कोई सभ्यता और संस्कृति लेकर नहीं आए। भयंकर बर्बरता, मौत, विनाश, तबाही और बरबादी लेकर वे यहाँ आए और बेशुमार सम्पत्ति, मनुष्यों, स्त्रियों एवं बच्चों को उठाकर ले गए।

उस समय बंगाल का राजा राय लक्ष्मणसेन था। नदिया उसकी राजधानी थी। मुस्लिम इतिहास तबक़ात-ए-नासिरी में उल्लेख है—"छोटा हो या बड़ा, किसी के साथ भी उसने कभी अन्याय नहीं किया। जो कोई भी उसके पास दान माँगने जाता था वह प्रत्येक को एक लाख देता था।"

पाठक प्रायः पूछते हैं कि हम मुस्लिम इतिहासों को खुशामद और चापलूसी से भरा हुआ झूठा वर्णन मानते हैं फिर जब कभी वे हिन्दुओं के पक्ष में कुछ अच्छी बातें लिख देते हैं तो उसे ज्यों-का-त्यों क्यों स्वीकार कर लेते हैं। कुछ विचार करने पर यह पता लगेगा कि ऐसा करने में हम कोई अन्याय और अपराध नहीं कर रहे हैं। मानवीय व्यवहार में अगर कोई पक्का झूठा भी साधारण एवं विरोधहीन बात कहे तथा वह बात एकदम सम्भव, विवेकपूर्ण, तर्क-संगत और तथ्यों से मेल खाती हो तो तुरन्त स्वीकार कर लेनी चाहिए। मगर भौतिक विषयों में जिस आदमी पर यह शंका होती है कि वह अपने स्वार्थ के लिए सच्चाई को दबाकर, उसके बदले झूठी कहानियाँ गढ़ रहा है तो वहाँ उसका तुरन्त विरोध होना ही चाहिए।

मुस्लिम दग़ाबाज़ी—कभी-कभी लोगों को यह कहकर बहकाया जाता है कि बख़्तियार ने बंगाल की राजधानी नदिया को सिर्फ़ १८ घुड़सवारों के साथ जीता था। यह सरासर झूठ है। मिनहज-अस्-सिराज़ अपनी तबक़ात-ए-नासिरी में लिखता है—"एकाएक नदिया शहर के सामने वह १८ घुड़सवारों के साथ आया। उसकी बाक़ी सेना उसके पीछे-पीछे आ रही थी।" (पृष्ठ ३०८-९)।

इससे मालूम होता है कि बड़ी दोस्ती जताता बख़्तियार १८ घुड़सवारों के साथ नदिया में प्रविष्ट हुआ। बाद में उसकी शेष सेना भी उसी

बहाने से नदिया में प्रविष्ट हो गई। फिर चारों ओर बिखरकर वे लोग एकाएक गरीब, असुरक्षित और हथियारहीन नागरिकों पर टूट पड़े। खून, लूट और बलात्कार का उन्मादी और नंगा मुसलमानी नाच होने लगा।

तबक़ात के अनुसार बख़्तियार ने नदिया में कपट-माया से प्रवेश किया था। उसके अनुसार—"बख़्तियार ने किसी भी आदमी से कुछ भी छेड़खानी नहीं की। बिना दिखावे के बड़ी शान्ति से वह आगे बढ़ता गया ताकि कोई भी यह न भाँप जाय कि वह कौन है। लोगों ने तो यह सोचा कि वह कोई व्यापारी है जो बेचने के लिए घोड़े लाया है। इसी प्रकार वह राय लखमिनिया के महल-द्वार तक चला आया। तब अपनी तलवार खींच उसने आक्रमण कर दिया। इस समय राय भोजन पर बैठे हुए थे। खाद्य-पदार्थों से परिपूर्ण सोने और चाँदी के पात्र सामने परोसे हुए थे। एकाएक महल-द्वार एवं शहर से ज़ोर-ज़ोर से चीखने और चिल्लाने की आवाज़ें आने लगीं। इससे पहले कि उन्हें माजरा मालूम हो, महल में घुस बख़्तियार ख़िल्जी ने कई लोगों को तलवार के घाट उतार दिया। महल के पिछवाड़े से राय नंगे पाँव भाग गए। उनका सारा ख़ज़ाना, उनकी सारी पत्नियाँ, दासियाँ और नौकरानियाँ उसके कब्ज़े में आ गईं। अनेक हाथियों को भी उसने अपने अधिकार में कर लिया। लूट का इतना माल हाथ लगा कि उसकी गिनती नहीं हो सकी'''बख़्तियार ख़िल्जी ने नदिया को नष्ट कर लखनौटी को अपने शासन-क्षेत्र का केन्द्र बनाया।"

इससे ज्ञात होता है कि मुसलमानों ने अपनी जन्मजात दग़ाबाज़ी का सहारा ले हिन्दुस्तान के एक-एक क्षेत्र का दमन कर, सारे नगरों एवं शहरों को नष्ट कर डाला। सारे ग्रामीण क्षेत्र भी तबाह हो गए। प्रत्येक मुस्लिम लुटेरे ने बार-बार इन मुस्लिम कारनामों को दोहराया है। फिर भी भारतीय स्कूलों एवं कालिजों में यह गन्दगी बड़े धूम-धड़क्के के साथ फैलाई जा रही है कि मुसलमान भारत में नई संस्कृति, नई सभ्यता और नये प्रकार का भवन-निर्माण-ज्ञान लेकर आए। अगर बलात्कार, लूट, धोखे-बाज़ी, झूठ, नर-संहार, विश्वासघात, आगज़नी, चोरी और तबाही सभ्यता है तो यह सत्य है कि मुसलमानों ने सारी दुनिया में सभ्यता का प्रसार किया। उन्हें नई सभ्यता के आविष्कर्ता और अगुवा, प्रचारक एवं प्रसारक होने की बधाई अवश्य ही मिलनी चाहिए।

मुस्लिम माया, विश्वासघात और छल-कपट स्वयं-सिद्ध है। क़ासिम के समय से ही हिन्दुओं को इसकी जानकारी हो गई थी। फिर भी आश्चर्य है कि प्रत्येक हिन्दू राजा ने बार-बार इन गोरियों और ख़िल्जियों पर विश्वास कर अपने राज्यों को तबाह कराया। क्या सारे हिन्दू राजनीतिज्ञ सोने चले गए थे? क्या राज्य का गुप्तचर विभाग छुट्टियाँ मना रहा था? क्या सारी साधारण सावधानियों एवं सतर्कताओं को तिलाँजलि दे दी गई थी?

दुर्भाग्य से राय लक्ष्मणसेन की शान्त निद्रा आज भी भारतीय शासकों पर सवार है। हज़ार वर्ष की मुस्लिम बर्बरता, विश्वासघात, बलात्कार और लूट की माया इन लोगों ने देखी फिर भी मानो इन लोगों ने क़सम खा रखी है कि वे सीखेंगे कुछ नहीं, भूलेंगे सब-कुछ।

पृष्ठ ३०९ पर सिराज़ कहता है कि बख़्तियार ख़िल्जी ने "समीपवर्ती महलों को अपने कब्ज़े में कर अपने नाम की घोषणा करवा दी और उसे सिक्कों पर छपवा दिया। चारों ओर मस्जिद, मकबरे एवं कालिज (मदरसे) खड़े किए गए···अपनी लूट का एक बड़ा भाग उसने कुतुबुद्दीन के पास भेज दिया।"

इस वर्णन से इतिहासकारों को समझ लेना चाहिए कि अन्यायी और मायावी मुसलमानों ने अपने सिक्कों का निर्माण भी नहीं किया। सिर्फ़ उन्होंने हिन्दू राजाओं के ही सिक्कों पर अपने नाम की चिप्पी लगवा दी। इतिहासकारों को पवित्र नन्दी आदि चिह्न-युक्त सिक्कों पर जब अरबी और फ़ारसी भाषा के अक्षर मिलते हैं तब आनन्दमग्न हो वे कहते हैं कि मुसलमानों में इतनी सहनशीलता थी कि उन्होंने हिन्दू देवताओं का भी आदर किया। उनके इस भोले-भाले और सीधे-सादे विश्वास पर तरस आता है। इस बात की दो ही सम्भावनाएँ होंगी—१. सिक्कों की परम्परागत पवित्रता हिन्दुओं की भावनाओं में गहरी पैठी हुई थी। अतएव मजबूरन लूट के सिक्कों पर हिन्दू चिह्नों के ही साथ अपना नाम छापना पड़ा। २. आर्थिक और यान्त्रिक जानकारी के अभाव में उन्हें मजबूरन हिन्दू सिक्कों पर ही अपना नाम छापकर सन्तोष करना पड़ा क्योंकि लूट या भारी टैक्सों से प्राप्त हिन्दू सिक्कों पर ढले हिन्दू चिह्नों का मिटाना उन लोगों के बूते के बाहर की बात थी। अतएव अधिकांश मध्यकालीन सिक्के हिन्दू सिक्के ही हैं। इन सिक्कों के हिन्दू चिह्नों को या तो उन लोगों ने

मिटा दिया या फिर उन्हीं चिह्नों के साथ अपने मुस्लिम नाम भी थोप दिए।

सिराज साफ़-साफ़ स्वीकार करता है कि बंगाल के सारे मध्यकालीन मकबरे, मदरसे और मस्जिदें हिन्दू मन्दिर, महल और पाठशालाएँ ही हैं। मुसलमानों के लम्बे शासन समय के दौरान लोग इन मुस्लिम अपहर्त्ताओं और विध्वंसकारियों को ही इन भवनों के निर्माता मानने की भूल कर बैठे हैं।

आसामी वीर राय—ज़र और ज़मीन की बख़्तियार की भूख बढ़ती ही गई। माया, आतंक और यातना के हथियारों का प्रयोग उसने चीनी तुर्किस्तान एवं तिब्बत में भी करना चाहा। "इस इरादे से दस हज़ार घोड़ों की एक सेना तैयार की···उसके नायकों में से एक नायक कूच (बिहार) की स्थानीय जाति का था। इसका नाम अली मिच था। बख़्तियार ख़िल्जी ने इसे मुसलमान बनाया था। पहाड़ी मार्गों को बतलाना उसने स्वीकार कर लिया।" इससे ज्ञात होता है कि मुसलमान बनने के बाद किस प्रकार हिन्दू अपनी ही जाति और देश के दुश्मन और ग़द्दार हो गए। फिर अकबर, शाहजहाँ और बहादुरशाह आदि विदेशी मुसलमानों ने भारतीय ज़मीन के साथ बलात्कार किया तो आश्चर्य ही क्या?

हिन्दू से मायावी मुसलमान बना अली मिच बख़्तियार को वर्धानकोट नगर तक ले आया। ब्रह्मपुत्र नदी के किनारे बसा कभी यह बंगमती नाम से भी विख्यात था। बीस खम्भों का एक प्राचीन हिन्दू पुल इस नदी पर था। साधारण पर्यटक, इतिहास के छात्र एवं शिक्षक, शोधकर्ता और सरकारी अधिकारियों को यह जानकर जाग जाना चाहिए कि मध्यकालीन पुलों का निर्माण मुसलमानों ने नहीं किया है वरन् मुस्लिम-पूर्व हिन्दू कारीगरों ने ही इनका निर्माण किया है। मुसलमानी दरबारों के रिकार्ड में कहीं भी इस बात का ज़रा भी प्रमाण नहीं है कि मुसलमानों ने कोई भी नहर, पुल, महल, दुर्ग, मकबरा या मस्जिद बनाया है। इधर-उधर जो बयान हैं वे मरम्मत सम्बन्धी हैं। इसी मरम्मत को उन लोगों ने बढ़ाकर अपना मौलिक निर्माण कहा है। उसपर मरम्मत का खर्चा और भार भी हिन्दू जनता पर ही लादा गया। फ़तहपुर सीकरी, ताज या आगरा दुर्ग से

सम्बन्धित अरबी लेखों का अनुवाद करते समय पश्चिमी विद्वानों ने अपनी-अपनी टिप्पणियाँ देकर इसे एकदम स्पष्ट कर दिया है।

बख़्तियार ख़िल्जी ने, एक पक्के चोर की भाँति पुल की सुरक्षा के लिए अपनी एक मज़बूत सैन्य-टुकड़ी वहाँ छोड़ दी ताकि भागने का मार्ग साफ़ रहे। बाकी सेना के साथ वह आसाम में घुस गया और तिब्बत की ओर बढ़ा। १२४३ ई० की एक रात उसने बनगाँव और देवकोट के बीच अपना पड़ाव डाला। एकाएक आसामी शासक की हिन्दू सेना ने उसपर चढ़ाई कर दी। पहली बार एक हिन्दू ने इन दुष्टों की नाड़ी पकड़ अपनी सूझ-बूझ का परिचय दिया। आसामी राय की गिनती उन थोड़े हिन्दू राजाओं में की जानी चाहिए जिन्होंने अपनी सुरक्षा के प्रति सतर्क रह परिस्थिति को पूरी तरह समझा। पवित्र उषाकाल में हिन्दुओं ने आक्रमण किया था। दोपहर होते-होते हिन्दू सेना ने "बड़ी संख्या में मुसलमानों को मार दिया और घायल कर दिया।" आश्चर्य है कि (तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार) "शत्रुओं (यानी हिन्दुओं) के पास बाँस के भाले थे और उनकी ढाल, कवच तथा शिरस्त्राण सिर्फ़ कच्चे रेशम के ही बने हुए थे जो आपस में एक दूसरे से बँधे और सिले हुए थे। सभी के पास लम्बे-लम्बे धनुष और बाण थे।"

भयभीत, आतंकित और पराजित बक़्तियार को उसके जासूसों ने ख़बर दी कि कुछ ही दूरी पर एक विशाल हिन्दू शहर कुर्मपट्टन है जो चारों ओर दीवारों से आवेष्टित है। "उस नगर के बाजार में प्रतिदिन प्रातः १५०० घोड़ों की बिक्री होती थी और उस शहर में ३५,००० वीर तुर्कों (यानी हिन्दुओं) की सेना धनुष-बाणों से तैयार खड़ी थी।"

"बख़्तियार ख़िल्जी ने देखा कि उसके आदमी थके और हताश हैं, अनेक मारे गए हैं और काफ़ी घायल हैं। उसने नायकों से सलाह-मशवरा करके लौट जाना ही ठीक समझा ताकि दूसरे साल पूरी तैयारी से वे फिर उस देश में आ सकें।"

मायावी मुस्लिम लुटेरों को बुरी तरह हराने के बाद आसामी हिन्दू सेना ने इस बात का भी पूरा ध्यान रक्खा कि वापिस भागते मुस्लिम हैवानों को खाने का एक दाना भी न मिले और न उनके जानवरों को घास का एक तिनका ही। इसपर "मजबूर होकर वे लोग अपने घोड़ों को मारकर खा गए।"

बख्तियार वापिस भागता हुआ पुल तक आया और सन्न रह गया। यह देखकर उसे बड़ा धक्का लगा कि उसकी टुकड़ी का सफ़ाया कर हिन्दुओं ने पुल तोड़ उसके भागने का मार्ग एकदम बन्द कर दिया है।

समीप में ही "एक मज़बूत गगनचुम्बी मन्दिर था जिसमें सोने और चाँदी की अनेक प्रतिमाएँ थीं। सोने की एक प्रतिमा बड़ी विशाल थी जिसका वज़न दो तीन हज़ार मिस्कल से भी अधिक था। बख्तियार एवं उसकी बाक़ी सेना ने इसमें पनाह ली और बेड़ों से नदी पार करने के इरादे से वे लोग लकड़ी एवं रस्सी के प्रबन्ध में लग गए।" यहाँ यह बतलाना बेकार ही है कि उन मायावी मुसलमानों ने मन्दिर को अपनी विधि के अनुसार अपवित्र कर, स्वर्ण प्रतिमाएँ गला दीं और उसे मस्जिद बना दिया---यह एक ऐसी कहानी है जिसे हज़ार वर्ष के इतिहास में इतनी बार दोहराया गया कि लोग पढ़ते-पढ़ते ऊब जाते हैं।

हिन्दुस्तान के वीरों की कतार में आसामी राय को रखना ही पड़ेगा क्योंकि उसने अपने देश और अपनी प्रजा की रक्षा की ; क्योंकि उसने जागरण, चेतना और दूरदर्शिता का परिचय दिया, क्योंकि उसने अपने कर्तव्य का पालन किया। अपने निष्फल क्रोध में हर चीज़ को तोड़ता, फोड़ता और चबाता यह मायावी मुस्लिम पशु जबतक उसके राज्य पर मँडराता रहा, उसने चैन की एक सांस भी नहीं ली।

"उसने अपने क्षेत्र के सारे हिन्दुओं को एकत्रित होने की आज्ञा प्रसारित कर दी और लोग हिन्दू मन्दिर (तथा परिवर्तित मस्जिद) के चारों ओर एकत्रित होने लगे। वे चारों ओर आड़े एवं तिरछे बाँस के भाले गाड़ने लगे ताकि चारों ओर एक प्रकार की दीवार बन जाए।"

मुसलमान ने ही मारा—पिंजरे में बन्द हो घिर जाने के भय से बख्तियार ने निकटवर्ती जंगल में भाग जाने का निर्णय किया। आसामी हिन्दू सेना का सामना करने का साहस उसमें नहीं था। हर हालत में नदी पार करने की ठान जब वह नदी तट की ओर बढ़ा तो यह देख उसके होश फ़ाख़्ता हो गए कि आसामी शासक की वीर और चौकन्नी सेना अभी तक उसके पीछे लगी हुई है। हड़बड़ाहट और घबराहट में मायावी मुस्लिम सेना ब्रह्मपुत्र की तीव्र धारा में कूद पड़ी। "पीछा करने वाले हिन्दुओं ने नदी तट पर अपना अधिकार कर लिया। शत्रु धारा के बीच में पहुँच गए,

जहाँ पानी बहुत गहरा था और प्रायः सभी डूब गए। कुछ घोड़े, जिनकी संख्या १०० के आस-पास होगी और मुहम्मद बख़्तियार ख़िल्जी बड़ी कठिनाई से नदी पार कर इस पार आ सके।" वह भी बहती हुई मुस्लिम लाश का सहारा लेकर।

"इस विपत्ति की परेशानी का मारा बख़्तियार ख़िल्जी देवकोट पहुँचकर बीमार पड़ गया। वह कभी भी बाहर नहीं निकलता था। नदी में डूबे लोगों की स्त्रियों एवं बच्चों को देख उसे शर्म महसूस होती थी। जब कभी वह घोड़े पर बाहर निकलता तो मर्द, औरत और बच्चे सड़कों और घरों पर खड़े हो चीखते-चिल्लाते उसे गालियाँ देते थे।" प्रायः इसी समय गौरी, जो बर्बर मायावी मुसलमानों का एक चमकता सितारा था, जिसके चारों ओर बख़्तियार ख़िल्जी जैसे ग्रह नाचते और चक्कर काटते थे, मारा गया।

इस सितारे के पतन के बाद अल्लाह ने बख़्तियार की जान भी इसी प्रकार निकाली। एक हत्यारे के चाकू ने दूसरे हत्यारे की हत्या कर दी।

जिस प्रकार यह गुलाम मायावी मुस्लिम लुटेरा दूर देवकोट में मरा उसमें एक प्रकार का दैवी न्याय भी है। अपना काला चेहरा यह जनता को नहीं दिखा सकता था। शान्त और पवित्र पाठशालाओं पर साँप की तरह अचानक उछल और शैतान की तरह मचल इसने लोगों का जीवन जहरीला कर दिया था। ऐसे मायावी मुस्लिम पिशाच को अली मरदान ख़िल्जी ने कुचला। आसामी पराजय में इसका कोई प्यारा रिश्तेदार काम आया था। १२०५ ई० में शर्म से मुँह छिपाए बख़्तियार एकान्त में पड़ा हुआ था। मृत्यु दूत की भाँति अली मरदान सुदूर कुनी से आया। तेज़ी से तम्बू में प्रवेश कर झटके से परदे को नोच, फुर्ती से चाकू निकाल वह गालियाँ दे देकर चाकू भोंकने लगा। वह तबतक चाकू भोंकता रहा जबतक उसका छिन्न-विच्छिन्न शरीर गर्म खून में लथपथ हो ठण्डा और कड़ा नहीं हो गया। 'राक्षस-हन्ता' का सारा श्रेय आसाम के वीर हिन्दू शासक को मिलना चाहिए, जिसने बिना विलम्ब किये एक मायावी मुस्लिम डाकू को जड़-मूल से साफ़ कर अपनी जागरूकता और कर्तव्यपरायणता का परिचय दिया। हे भगवान्! हमें अनेक और ऐसे ही वीर और प्रतापी हिन्दू योद्धा प्रदान करो।

हिन्दुत्व के हीरो आसाम के वीर शासक को हम भूले बैठे हैं, जिसने

मायावी बख्तियार को हड्डियों तक नोच, नंगा कर, उसके दुष्कर्मों से साधुओं का परित्राण किया। इसका नाम स्वर्णाक्षरों में लिखा जाना चाहिए।

लोक-सभा, सुरक्षा कार्यालयों एवं अन्य सरकारी दफ्तरों में इसके चित्र लगाने चाहिए ताकि सम्बद्ध सभी लोगों को आसाम के इस हिन्दू शासक की वीरता, सतर्कता, युद्धकला, दूरदर्शिता, कर्तव्यपरायणता और देश भक्ति का बराबर स्मरण होता रहे।

मुहम्मद गौरी का मुस्लिम गिरोह एक सहस्रमुखी मायावी अजगर था। गजनी से वाराणसी तक इसने आग और ज़हर उगला। भारत के वीर राजपूतों ने कई स्थानों से इस अजगर को काट, इसके कई टुकड़े कर दिए। मगर मरते-मरते भी इस अजगर ने कई स्थानों पर दुष्कर्मों का अण्डा दे ही दिया।

कुतुबुद्दीन, अल्तमश, बख्तियार आदि कई धर्मान्ध मुस्लिम गुलाम इन अण्डों से पैदा हुए और सारे देश को घुन एवं दीमक-सा चाट गए। बख्तियार भी इन्हीं में से एक था। इसका आकार धीरे-धीरे विशाल होता जा रहा था। उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल एवं आसाम इन चार प्रान्तों को इसने कुचला, रौंदा। अन्त में, आसाम के वीर हिन्दू योद्धा शासक ने इसे घेरकर, रगेदकर मारा।

(मदर इण्डिया, मार्च १९६७)

: ५ :

कुतुबुद्दीन ऐबक

यह विधाता का कैसा क्रूर व्यंग्य है कि प्रथम विदेशी राजा, जिसने भारतीयों को गुलाम बनाया, जिसने इस्लाम के नाम पर पाशविक, अत्याचार कर दिल्ली के प्राचीन हिन्दू राजसिंहासन को अपवित्र किया, स्वयं एक गुलाम था। इसे पश्चिम एशिया के इस्लामी देशों में अनेक बार ख़रीदा-बेचा गया था।

उसका नाम कुतुबुद्दीन ऐबक था। इतिहास 'तबक़ात-ए-नासिरी' का कहना है कि उसकी छोटी अंगुली तोड़ दी गई थी और इसीलिए उसे ऐबक कहा जाता है, ऐबक यानी "हाथ से पंगु"। कुछ इतिहासकार विश्वास करते हैं कि ऐबक एक जाति की उपाधि होनी चाहिए। दूसरे कहते हैं कि 'मूल पाठ का बयान सही नहीं हो सकता।' इससे स्पष्ट है कि मध्यकालीन मुस्लिम इतिहास की पुस्तकें झूठे बयानों की पिटारी हैं।

इन्हीं झूठे इतिहासों पर आधारित आधुनिक इतिहास पुस्तकें जनता और सरकार को पथभ्रष्ट करती हैं कि मुस्लिम शासकों और कुलीनों की लम्बी वंश-परम्परा, जिन्होंने आतंक और अत्याचारों की झड़ी लगा दी, जिनके हज़ार वर्षों के लम्बे शासनकाल का हर एक दिन खून से चिपचिपा है, उस लम्बी वंश-परम्परा के सभी वंशज दयालु, न्यायी और सभ्य थे।

उदाहरण के लिए हम पहले कुतुबुद्दीन को ही लेंगे। इसे जो गुणों का प्रमाण-पत्र दिया जाता है, उसे परखेंगे। फिर हम जाँचेंगे कि इन गुणों का मिलान उसके जीवन-चरित्र से होता है या नहीं।

'तबक़ात' के अनुसार,—"सुलतान कुतुबुद्दीन दूसरा हातिम था, वह एक बहादुर और उदार राजा था···पूर्व से पश्चिम तक उस समय उसके समान कोई राजा नहीं था। जब भी सर्वशक्तिमान खुदा अपने लोगों के

सामने महानता और भव्यता का नमूना पेश करना चाहते हैं, वे वीरता और उदारता के गुण अपने किसी एक गुलाम में भर देते हैं'''अतएव यह राजा दिलेर और दरियादिल था और हिन्दुस्तान के सारे के सारे क्षेत्र मित्रों (यानी मुसलमानों) से भर गए थे और शत्रुओं (मतलब हिन्दू) से साफ़ हो गए थे। उसकी लूट और क़त्ले-आम मुसलसल था।" (पृष्ठ २९९, ग्रन्थ २, इलियट और डाउसन)।

इस उद्धरण से स्पष्ट है कि मुस्लिम इतिहास और यथार्थ में सारे मुसलमान हिन्दुस्तान के हिन्दुओं के लगातार क़त्लेआम का(स्पष्ट ही इसमें उनकी स्त्रियों के बलात्कार, उनकी सम्पत्ति की लूट और उनके बच्चों का हरण भी शामिल है) ऊँचे दर्जे की उदारता, धार्मिकता, वीरता और महानता का काम मानते हैं। साम्प्रदायिकता से सराबोर और राजनीति से दुर्गन्धित भारतीय इतिहासों ने बलात्कार, लूट, हरण और नर-संहार से अपनी आँखें एकदम मूँद ली हैं। उन्होंने सिर्फ़ इन्हीं शब्दों को कसकर पकड़ रक्खा है कि मुस्लिम बादशाह "उदार और कुलीन" थे।

इसीलिए भारतीय जनता और सरकार को अवश्य ही महसूस करना चाहिए कि बिना एक भी अपवाद के, भारत का प्रत्येक मुस्लिम शासक नृशंस और अत्याचारी था। इनके दुष्कर्मों से मनुष्य की ही नहीं पशु की भी गर्दन शर्म से झुक जाती है। इसलिए हमारे स्कूलों और कालिजों की पाठ्य-पुस्तकों में समुचित सुधार कर लेना चाहिए। कठोर सत्य का स्वागत करना चाहिए। झूठी स्तुति और मनगढ़न्त गप्पबाज़ी में डुबकी नहीं लगानी चाहिए।

कुतुबुद्दीन एक गुलाम था। कौन उसकी जन्म-तिथि में सिर खपाए? इसलिए इतिहास को उसकी जन्म-तिथि का ज्ञान नहीं है। इतिहास को सिर्फ़ इतना ही पता है कि वह एक तुर्क था। उसके परिवार को मुस्लिम धर्म मानना पड़ा था। गुलामी से श्रापित उसे अनेक लोगों के साथ भेड़ की भाँति बेचने के लिए एक बाज़ार से गुलामों के दूसरे बाज़ार में हाँका गया था।

उसका पहला ख़रीददार अज्ञात है। मगर उसे निमिषपुर में ख़रीदकर औने-पौने भाव पर बेचा गया था। इस नाम से महाभारत में वर्णित नेमिषारण्य का स्मरण हो आता है। नेमिषारण्य यानी नेमिष अरण्य यानी

बन। निमिषपुर से हिन्दुओं को अपने उस विस्तृत, विशाल और दूर-दूर तक फैले हुए अपने साम्राज्य का कम-से-कम एक बार स्मरण अवश्य ही कर लेना चाहिए क्योंकि यह एक संस्कृत शब्द है।

निमिषपुर में गुलाम कुतुबुद्दीन के स्वामी ने उसे निमिषपुर के प्रमुख काज़ी तथा शासक के हाथों बेच दिया। कुतुबुद्दीन के नए स्वामी का नाम फख़रुद्दीन अब्दुल अज़ीज़ था।

जो भी शिक्षा-दीक्षा कुतुबुद्दीन को काज़ी के घर मिली वह सिर्फ़ इतनी ही थी कि कैसे कुरान पढ़ी जाय और किस प्रकार काफ़िरों (हिन्दुओं) का क़त्ले-आम किया जाय।

कुरूप और पंगु गुलाम में अनुरक्ति न होने के कारण काज़ी ने इसे एक सौदागर-दल के हाथ बेच दिया। आज के व्यापारियों की भाँति, मध्ययुगीन मुस्लिम व्यापारियों के पास मनों काले रुपये नहीं थे मगर टनों 'लाल' धन अवश्य था जो क़ासिम से गौरी-जैसे लुटेरों के क्रमिक लुटेरे-अभियानों में हिन्दू घरों से लूटा जाकर हिन्दुओं के क़त्लेआम से निकली खून की नदियों पर बहता हुआ उस देश में जा पहुँचा था।

कुतुबुद्दीन अब किशोर अवस्था को पार कर रहा था। उसका मूल्य भी बढ़ रहा था क्योंकि डाका डालने और हिन्दुओं को मार-लाने की क्षमता भी वृद्धि पर थी। जबकि काज़ी ने स्वयं कुतुबुद्दीन को "लाल बाज़ार" की मोटी रक़म लेकर बेचा था, उसके नए व्यापारी स्वामी ने शैतान लुटेरे मुहम्मद गौरी से, गज़नी में, उसका अनाप-शनाप 'लाल बाज़ारी' मूल्य वसूल किया था।

भारत के सभी मुस्लिम बादशाह और लुटेरे सिर्फ़ रात ही नहीं वरन् दिन भी शराब के आमोद और वासना के प्रमोद में व्यतीत करते थे। उसी परम्परा के अनुसार गौरी भी "प्रायः संगीत और आनन्द में डूब जाता था"। तबक़ात में वर्णन मिलता है कि "एक रात उसने पार्टी दी और आनन्दोत्सव के बीच में उसने अपने नौकरों को सोने और चाँदी के टुकड़े बड़ी उदारता से दिये। और लोगों के साथ-साथ कुतुबुद्दीन को भी उसका भाग प्राप्त हुआ। मगर जो कुछ भी उसे मिला'''मजलिस से बाहर आने पर, उसने अपना सारा हिस्सा तुर्की सिपाही, पहरेदार और नौकरों में बाँट दिया।"

जिस समय कुतुबुद्दीन मुहम्मद गौरी की सेवा में आया, उस समय तक उसके पास कोई भी उल्लेखनीय विवेक नहीं बचा था। कोई भी काम कितना ही गन्दा और गिरा हुआ क्यों न हो, वह उसके लिए तैयार रहता था। इससे उसे अपने नियमहीन स्वामी की कृपादृष्टि प्राप्त होती थी। "जबतक उसकी कृपा से वह 'घोड़े का स्वामी' नहीं बना था" उसे महत्त्वपूर्ण कार्य सौंपा जाता था।

घुड़सवारों का नायक होने के नाते कुतुबुद्दीन को खुरासान के विरुद्ध एक अभियान में भाग लेना पड़ा था। इसमें तीन शासकों ने भाग लिया था, गोर, गज़नी, और बामियाँ। बामियाँ अफ़गानिस्तान का ही एक क्षेत्र है जहाँ कि विशाल बुद्ध प्रतिमा और कलाकृतियों से अलंकृत गुफाएँ प्राचीन भारतीय साम्राज्य के विस्तार और विजय का स्मरण कराती हैं। कुतुबुद्दीन ने इस अभियान में तथा बाद के अभियानों में व्यावहारिक ज्ञान पाया। इससे बाद में उसे भारत में अपना नृशंस और खूँखार चक्र चलाने में काफ़ी सहायता मिली। "वह पशुओं के दाना-पानी जुटाने वाले दल का नायक था और एक दिन जबकि वह चारे की खोज में था, शत्रुओं के अश्वारोहियों ने उसपर आक्रमण कर दिया।" उसे बन्दी बना, बेड़ियाँ पहना दी गईं। बाद में किसी प्रकार उसके बन्दी-कर्ता सुलतान शाह के हारने पर, कुतुबुद्दीन को बेड़ियों के साथ ही ऊँट पर लादकर उसके स्वामी मुहम्मद गौरी के पास लाया गया।

कुतुबुद्दीन को मुक्त कर कहराम का क्षेत्र उपहार में दिया गया। उस समय ऐसे उपहारों का अर्थ होता था कि वह खुला गुलाम उस प्राप्त जागीर की प्रजा पर खुल्लम-खुल्ला अत्याचार कर सकता था। यह उसका अधिकार था जिसकी कहीं कोई सुनवाई नहीं थी।

गौरी ने १६ वर्ष पूर्व ही भारत पर अपना नृशंस आक्रमण प्रारम्भ कर दिया था। उसके गुलाम कुतुबुद्दीन ने काफ़ी उत्साह दिखाया। उसने अपने आपको स्वामी का पक्का एवं निपुण गुर्गा प्रमाणित कर दिया जो अपने स्वामी के रक्त-रंजित चरण-चिह्नों पर चलकर शान्तिप्रिय, अर्धनिद्रित (अहिंसा के नशे में) हिन्दू सभ्यता को ध्वस्त करने के लिए कमर कसकर तैयार था।

अपनी चारित्रिक विशेषता के कारण हसन निज़ामी का इतिहास

'ताजुल्-मा-आसीर' (पृष्ठ २२६, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) घोषणा करता है कि "कुतुबुद्दीन ऐबक मुसलमान और इस्लाम का तम्भ है... काफ़िरों का विध्वंसक है,...उसने अपने आपको धर्म और राज्य के शत्रुओं (मतलब हिन्दुओं) को उखाड़ फेंकने में लगा दिया, उसने हिन्द की ज़मीन को उन लोगों के कलेजे के खून से इतना सराबोर कर दिया कि क़यामत के दिन मोमिनों को खून का दरिया नावों से ही पार करना होगा—जिस भी दुर्ग और गढ़ पर उसने धावा किया उसे अपने कब्ज़े में कर लिया, उसकी नींव और खम्भों को...हाथियों के पैरों तले रौंदकर धूल में मिला दिया। ...ताजधारी रायों का सिर काट उसे सूलियों का ताज बना दिया—अपनी तलवार के दमदार पानी से मूर्तिपूजकों के सारे संसार को जहन्नुम की आग में झोंक दिया—प्रतिमाओं और मूर्तियों के स्थान पर मस्जिद और मदरसों की नींव रक्खी—और (इस प्रकार उसके कारनामों से) लोग नौशेरवाँ, रुस्तम और हातिमताई को भी भूल गए...।"

यह उद्धरण गला फाड़कर ज़ोर से चिल्ला-चिल्लाकर साफ़-साफ़ बतला रहा है कि मुस्लिम "उदारता और प्रताप" का मतलब क्या है। साथ ही यह भी स्वीकार और मंज़ूर करता है कि मध्ययुगीन मकबरे और मस्जिदें, जिन्हें मुस्लिम उपयोग के लिए ज़बरदस्ती ज़ब्त किया गया, हक़ीक़त में हिन्दू मन्दिर ही हैं जिन्हें मीठी ज़बान में मस्जिद और मदरसा कहा गया है। इस उद्धरण से हमारी सरकार, हमारे पर्यटन विभाग और हमारी जनता पर यह सच्चाई प्रकट होनी चाहिए कि जिसे हम बड़े गौरव से महान् मुस्लिम महल कहकर प्रशंसा करते हैं, वे और कुछ नहीं सिर्फ़ अपहृत (ज़ब्त) और दुर्व्यवहृत हिन्दू महल और मन्दिर ही हैं।

११९१ ई० में कुतुबुद्दीन ने सर्वप्रथम भारत में प्रवेश कर मेरठ पर धावा किया था। सारे दुर्ग विदेशी मुसलमानों ने बनाए हैं—इस प्रचलित विश्वास को झूठा साबित करता हुआ ताजुल्-मा-आसीर, (पृष्ठ २१६, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) कहता है—"जब वह मेरठ पहुँचा, जो सागर जितनी चौड़ी और गहरी खाई, बनावट तथा नींव की मजबूती के लिए भारत भर में एक प्रसिद्ध दुर्ग था, तब उसके देश के आश्रित शासकों की भेजी हुई एक सेना उससे आकर मिल गई। दुर्ग ले लिया गया। दुर्ग में एक

कोतवाल की नियुक्ति की गई और सभी मूर्ति-मन्दिरों को मस्जिद बना दिया गया।"

कितने दु:ख की बात है कि प्रत्येक मुस्लिम इतिहासकार इस प्रकार बार-बार जोरदार आवाज़ में यह घोषणा करता है कि हिन्दू महलों को, मन्दिरों और राजप्रासादों को, मस्जिदों (और मकबरों) में परिणत कर दिया, इसके बावजूद भी हमारी सरकार और हमारी जनता यह दृढ़ विश्वास करती है कि भारत के मध्ययुगीन भवनों का निर्माण मुसलमानों ने किया है।

एक मुस्लिम इतिहासकार कहता है कि मेरठ लेने के बाद कुतुबुद्दीन दिल्ली की ओर बढ़ा जो "सम्पत्ति का स्रोत और ऐश्वर्य का आगार था।" विदेशी मुस्लिम विजेता कुतुबुद्दीन ने "धन और ऐश्वर्य के आगार" उस शहर को विध्वंश कर नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। "शहर और इसके समीपवर्ती क्षेत्र को मूर्तियों और मूर्ति-पूजकों से मुक्त कर, देव-स्थानों की जगह मस्जिदों का निर्माण किया।"

कुतुब मीनार—आजकल दिल्ली में जिसे हम कुतुब मीनार कहते हैं वह हिन्दू राजा विक्रमादित्य के राज्यकाल का प्राचीन हिन्दू नक्षत्र-निरीक्षण स्तम्भ है। जब कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर धावा किया था तब इसके चारों ओर मज़बूत दीवार थी। विनाश के एक नंगे नाच के बाद जिसमें प्रतिमाओं को बाहर फेंक उसी मन्दिर को क़वातुल् इस्लाम की मस्जिद बनाया जा रहा था, कुतुबुद्दीन ने पूछा कि इस स्तम्भ का मतलब क्या है ? उसे अरबी भाषा में बताया गया कि यह स्तम्भ एक "कुतुब मीनार" है यानी उत्तरी ध्रुव के निरीक्षण का स्तम्भ। नक्षत्र-निरीक्षण-स्तम्भ (खगोल विद्या सम्बन्धी) के इस अरबी रूपान्तर से इतिहासकार भ्रम में पड़ गए और इसका सम्बन्ध कुतुबुद्दीन से जोड़ दिया।

इस मुस्लिम लुटेरे ने १२०६ से १२१० तक सिर्फ़ चार वर्ष राज्य किया था। इस स्तम्भ की योजना और निर्माण के लिए चार वर्ष पर्याप्त नहीं हैं। इस बात को तो अभी छोड़ ही दिया जाय क्योंकि कुतुबुद्दीन ने कहीं भी यह नहीं कहा है कि उसने इस स्तम्भ का निर्माण किया है। दूसरी ओर उसने लौह स्तम्भ की ओर जाने वाले एक वृत्त-खण्ड पर एक लेख

खुदवा दिया है कि उसने पत्थर-स्तम्भ के चारों ओर स्थित २७ मंचों को नष्ट-भ्रष्ट कर बरबाद किया है।

दिल्ली-विजय के तुरन्त बाद कुतुबुद्दीन को समाचार मिला कि पृथ्वी-राज के भाई हेमराज ने हिन्दू-स्वाधीनता का झण्डा बुलन्द किया है। उसने मुस्लिम अधिकृत रणथम्भोर दुर्ग को घेर लिया। उसने अजमेर की ओर भी कूच करने की धमकी दी है जहाँ कि मुसलमानों के घृणित और लालची संरक्षण में सिर्फ़ नाम के लिए पृथ्वीराज के पुत्र का शासन था। हेमराज के प्रयत्न सफल नहीं हुए। मगर कुतुबुद्दीन ने इस मौके से खूब फ़ायदा उठाया। अधिक-से-अधिक धन, जहाँ तक वह निचोड़ सका, पृथ्वीराज के पुत्र से उसने निचोड़ा क्योंकि ताजुल्-मा-आसीर हमें बतलाता है, कि "इस मित्रता के बदले में उसने(पृथ्वीराज के पुत्र ने)भरपूर ख़ज़ाना भेजा…साथ में तीन सोने के तरबूज थे जिन्हें बड़ी कुशलता एवं निपुणता से पूर्ण चन्द्र की आकृति में ढाला गया था"। इस वर्णन से मालूम होता है कि मुस्लिम दरबारों में अकल्पित धन कहाँ से आया। साथ ही इसी विवरण से यह भी ज्ञात होता है कि अशिक्षित विदेशी मुस्लिम गिरोह को किसी भी आभूषण या भवन-निर्माण का प्रारम्भिक ज्ञान तक भी नहीं था। इन कला-कृतियों के निर्माण में जितना समय लगता है उतना फ़ालतू समय ही इनके पास नहीं था।

अभी कुतुबुद्दीन मुश्किल से अजमेर में मुस्लिम शक्ति का सिक्का जमा ही पाया था कि उसे समाचार मिला कि दिल्ली के हिन्दू शासक, ने जिसे गद्दी से हटाकर राजसिंहासन मुस्लिम अपहर्त्ताओं ने छीना था, अपनी सेना एकत्रित कर ली है और वह सीधा कुतुबुद्दीन की ओर बढ़ा चला आ रहा है। घिर जाने के डर से कुतुबुद्दीन अजमेर से बाहर निकल आया। घमा-सान युद्ध हुआ। दिल्ली का राजपूत शासक वीरता से युद्ध करता हुआ वीरगति को प्राप्त हुआ। कायर मुसलमानों ने "धड़ से उसके सिर को तराश लिया और उसे उसकी राजधानी और निवास स्थान दिल्ली भेज दिया।"

कुतुबुद्दीन ने अपनी दुर्ग-विजयों, मज़बूत चौकियों और जिहाद का लम्बा-चौड़ा विवरण लिखकर गौरी का कृपापात्र बनने के लिए गज़नी भेज दिया।

अपने स्वामी का निमन्त्रण पाकर कुतुबुद्दीन दूर गजनी पहुँचा। उसके आगमन पर एक उत्सव का आयोजन किया गया एवं "बहुमूल्य रत्नों एवं श्रेष्ठतम शस्त्रों और गुलामों का उपहार" कुतुबुद्दीन को दिया गया।

मगर कुतुबुद्दीन इस महान् सम्मानजनक भोज का उपयोग नहीं कर सका। वह बीमार पड़ गया था। कुतुबुद्दीन दरबार के मन्त्री जिला-उल्-मुल्क के साथ ही ठहरा हुआ था। सम्भव है कि जिला-उल्-मुल्क ने जलन में आकर कुतुबुद्दीन को ज़हर दे दिया हो। बाद में उसे गौरी के मेहमान-ख़ाने में लाया गया। अभी भी वह स्वस्थ अनुभव नहीं कर रहा था। उसने हिन्दुस्तान वापिस लौटने का निर्णय किया। गौरी ने उसे अपना परवाना दिया। इसके अनुसार अब वह हिन्दुस्तान के पददलित, अपहृत और अपवित्र क्षेत्रों में गौरी का प्रतिनिधि था।

भारत की ओर बढ़ते हुए कुतुबुद्दीन ने काबुल और बन्नू के बीच बंगाश देश के कारमन स्थान पर अपना पड़ाव डाला। वहाँ के मुखिया को धमकाकर उसकी पुत्री को अपने घृणित गुलामी के हरम में घसीट लाया गया।

दिल्ली लौटकर कुतुबुद्दीन स्थानीय जनता को पहले की भाँति अपने नृशंस कारनामों से सताने लगा। ११९४ ई० में उसने कोल एवं वाराणसी की ओर कूच किया। ताजुल्-मा-आसीर के अनुसार—"कोल हिन्द का सर्वाधिक विख्यात दुर्ग था।" वहाँ की रक्षक-टुकड़ी में "जो बुद्धिमान थे उनका इस्लाम में धर्म परिवर्तन हुआ, मगर जो अपने प्राचीन धर्म पर डटे रहे, उनको हलाल कर दिया।" इससे स्पष्ट है कि हिन्दुस्तान के आज के मुसलमान हिन्दुओं के ही वंशज हैं, जिनके बाप-दादाओं को सता-सता कर मुसलमान बनाया गया था। "मुस्लिम गिरोह ने दुर्ग में प्रविष्ट होकर भर-पूर ख़ज़ाना और अनगिनत लूट का माल जमा किया जिसमें एक हज़ार घोड़े भी थे।" यह सरासर झूठ है जो मुस्लिम इतिहासकारों की चरित्र-हीनता को प्रकट करता है। यह मुस्लिम इतिहासकार बड़ी दूरदर्शिता से यह लिखने से कतरा जाता है कि दुर्ग को जीतकर अपने अधिकार में किया गया। मुस्लिम इतिहास में इस प्रकार क्रम टूटना, व्यवधान होना ही एक स्पष्ट स्वीकृति है कि मुस्लिम धावे को भयंकर नुक़सान के साथ पीछे धकेल दिया गया और कोल अविजित खड़ा रहा। मुस्लिम इतिहासों में इस प्रकार

की घटनाओं एवं झूठी विजयों के वर्णन करने के बाद उसी स्थान पर मुसलमानों के बार-बार आक्रमण करने का वर्णन भी मिलता है।

इसी बीच गौरी मुस्लिम लुटेरों के विशाल गिरोह को लेकर भारत में बढ़ आया। अपनी गुलामी के नज़राने के तौर पर कुतुबुद्दीन ने "श्वेत चाँदी और लाल सोने से लदा एक हाथी, एक सौ घोड़े और अनेक प्रकार के सुगन्धित द्रव्य पेश किए।" इन सबको हिन्दू घरों से लूटा गया था। कैसी विडम्बना है कि एक भाड़े का डाकू अपने डाकू-सरदार को अपनी पाप की कमाई नज़र कर रहा है।

ये दोनों मुस्लिम सेनाएँ मिलकर मुस्लिम लुटेरों का एक विशाल गिरोह हो गया। इसमें पचास हजार तो सिर्फ़ सवार सेना ही थी। वे सभी कवच से ढके हुए थे। अब पैदल सेना का अनुमान लगा लीजिए, जिसमें धर्म-परिवर्तित हिन्दू भी थे, जिन्हें कोड़े मार, तलवार की धार पर मुसलमान बनाया गया था।

देश-जाति द्रोही जयचन्द—कुतुबुद्दीन के नियन्त्रण में मुहम्मद गौरी ने अपनी लुटेरी सेना की एक टुकड़ी आगे भेज दी। इनके ज़िम्मे काम था असुरक्षित नगरों और देहातों को लूटना, खलिहानों को जला देना, खड़ी फ़सल कुचल देना, जलाशयों में जहर घोल देना, हिन्दू स्त्रियों को मुस्लिम हरमों में घसीट लाना, हिन्दू मन्दिरों को अपवित्र कर देना और रुकावटों को उखाड़ फेंकना। अपना काम पूरा कर कुतुबुद्दीन वापिस लौटकर मुहम्मद गौरी से आ मिला। हिन्दुओं को इस बहादुरी से विनष्ट करने के उपलक्ष्य में उसको यथेष्ठ इज़्ज़त बख्शी गई।

जयचन्द पृथ्वीराज का प्रतिद्वन्द्वी था। उसका राज्य कन्नौज से वाराणसी तक फैला हुआ था। वीर पृथ्वीराज से लड़ने के लिए धोखेबाज़, लालची और विदेशी-म्लेच्छों को भारत आने का निमन्त्रण दे इसने भयंकर भूल की थी। वह अब हक्का-बक्का होकर देखता रह गया कि मुसलमान प्रत्येक हिन्दू का उत्कट-शत्रु है, जिसे एक-एक करके नष्ट करना ही उनका पवित्र कर्तव्य है। मुहम्मद गौरी की तन, मन, धन से सहायता करने वाले ने देखा कि वह मुस्लिम शैतान उसके फलते-फूलते क्षेत्रों को ही रौंदकर सन्तुष्ट नहीं है वरन् स्वयं उसीको बन्दी बनाकर मारने पर तुला हुआ है। विश्वासघाती मुस्लिम दोस्त की धोखेबाजी से कंपित हो जयचन्द अपनी

सेना ले उससे जा टकराया। विषाक्त मुस्लिम बाण से वह हौदे से नीचे गिर गया। "भाले की नोक पर उसके सिर को उठाकर सेनापति के पास लाया गया, उसके शरीर को घृणा की धूल में मिला दिया गया।...तलवार के पानी से बुत-परस्ती के पाप को उस ज़मीन से साफ़ किया गया और हिन्द देश को अधर्म और अन्धविश्वास से मुक्त किया गया" ठाठ के साथ ढीठ मुस्लिम इतिहास कहता नहीं शरमाता।

"बेशुमार लूट मिली...कई सौ हाथी कब्ज़े में आए और (मुस्लिम) सेना से अस्नि दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया, जहाँ कि राय का ख़ज़ाना जमा था।"

जयचन्द हार गया, मारा गया। वाराणसी का प्रसिद्ध हिन्दू तीर्थ असुरक्षित हो गया। मुस्लिम सेना वाराणसी की ओर बढ़ी। एक हज़ार मन्दिरों की मस्जिद बना दिया गया। मुस्लिम लुटेरों की यह लूट पवित्र तीर्थस्थान की दूसरी लूट थी। पहली बार महमूद गज़नवी की मौत के तुरन्त बाद ही इसे अहमद ने लूटा था। सिर्फ़ औरंगजेब को ही पवित्र वाराणसी के विनाश का कारण बताना बेकार है। जिस भी मुस्लिम शासक की सेना ने इस पवित्र तीर्थ में प्रवेश किया था उनमें से प्रत्येक ने इस पावन नगरी को नष्ट-भ्रष्ट कर इसके मन्दिरों को मस्जिदें बनाया था। मुस्लिम लुटेरों की इस चमकती कतार में स्वयं अकबर भी है, जिसने प्रयाग को अछूता नहीं छोड़ा।

जब-जब वाराणसी पर मुस्लिम आक्रमण हुआ, प्रसिद्ध काशी विश्वनाथ मन्दिर को लूटा गया। मगर पुनर्गठित हिन्दू शक्ति ने इसे बार-बार हिन्दू पूजा के लिए अपने अधिकार में किया। तब औरंगजेब ने इसे एक बार फिर २६० वर्ष पूर्व इस्लाम के नाम पर लूटा। तबसे वह पवित्र मन्दिर अभी तक मस्जिद बना हुआ है। यह कबतक मस्जिद बना रहेगा यह हिन्दू शक्ति और हिन्दू मर्दानगी पर निर्भर करता है।

समीपवर्ती क्षेत्र में मुस्लिम अत्याचार और आतंक का पागल और शैतानी नंगा नाच हुआ। इसके बाद मुहम्मद गौरी गज़नी लौट गया।

झूठे मुस्लिम विवरणों के आधार पर यह प्रमाणित किया जा चुका है कि वे लोग कोल को जीत नहीं सके थे। इसलिए वाराणसी से लौटते समय कुतुबुद्दीन ने उसपर पुनः आक्रमण किया। ताजुल्-मा-आसीर के अनुसार,

"इस क्षेत्र को मूर्ति एवं मूर्ति-पूजकों से मुक्त किया गया और काफ़िरपन की नींव को नष्ट कर दिया गया", इसका मतलब है कि सब मन्दिरों को मस्जिद और हिन्दुओं को मुसलमान बना दिया गया।

दिल्ली लौटने पर, कुतुबुद्दीन नामी इस दोग़ले गुलाम के बारे में ताजुल्-मा-आसीर बड़े जोशो-खरोश से यह दावा करता है कि "इसका न्याय बिना भेद-भाव के एकदम निरपेक्ष था जिसके फलस्वरूप भेड़ और भेड़िया एक ही घाट पर एक साथ पानी पीते थे।" गिरवी रक्खी क़लम से खिल-वाड़ करते हुए मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकार कहाँ तक चापलूसी, झूठे तर्क और ढीठता की सीमा तक पहुँच सकते हैं, यह इसका एक छोटा-सा उदाहरण है। इसीलिए सर एच० एम० इलियट भारत के मध्ययुगीन इति-हास के चरित्र की नाड़ी पकड़ इसे "एक धृष्ट परन्तु मनोरंजक धोखा" कहते हैं और इनका कहना एकदम फ़िट बैठता है।

११९२ ई० में मुहम्मद गौरी पुनः एक बार भारत आता है। कुतुबुद्दीन सेना के साथ इससे आ मिलता है। वे दोनों बयाना दुर्ग को घेर लेते हैं। मगर दुर्ग की सेना से लड़ने के बदले मुस्लिम सेना हमेशा की भाँति समीप-वर्ती देहातों में रहने वाले असुरक्षित निवासियों और उनकी असहाय स्त्रियों और बच्चों पर अपनी बहादुरी दिखाते हैं। अपनी संकटग्रस्त प्रजा को बलात्कार, हत्या, लूट, अपहरण और आगज़नी से बचाने के लिए कुँवर-पाल आत्म-समर्पण कर देते हैं।

मुस्लिम ख़ानाबदोशों का झुण्ड अब ग्वालियर की ओर बढ़ा। इसका शासक सुलक्षणपाल था। इसने ऐसा विकट संग्राम किया कि गौरी का सारा गौरव चकनाचूर हो गया। उसे वापिस भागना पड़ा। मगर इस डूब मरने वाली हार को भी कपटी मुस्लिम इतिहासकारों ने गाल बजा-बजाकर ढकने का प्रयास किया है कि हिन्दू राजा ने "क्षमा-याचना की···कानों में गुलामी का रिंग पहना···नज़राना देना स्वीकार किया और शान्ति-उपहार स्वरूप दस हाथी भेजे, जिसके कारण उसे शाही सुरक्षा प्रदान कर, दुर्ग में रहने की अनुमति दे दी गई।" लुटा-पिटा-सा गौरी गज़नी लौट गया और कुतुबुद्दीन दिल्ली पहुँच गया।

प्रायः इसी समय देश-भक्त हिन्दू शक्तियाँ अनहिलवाड़-शासक के कुशल नेतृत्व में संगठित होने लगीं। विदेशी मुसलमानों को ललकारा

गया। कुतुबुद्दीन चारों ओर से घिर गया। जीवन समाप्ति की सीमा तक संकटग्रस्त हो गया। उसने ताबड़तोड़ अपने स्वामी के पास यह कुसमाचार भेजा और मुहम्मद गौरी से अतिशीघ्र सहायता और पर्याप्त कुमुक की माँग की। गौरी का भोजन और आहार लूट ही था। कुतुबुद्दीन इसे हिन्दुस्तान में एकत्रित करके गजनी भेजता था। अतएव उसने देखा कि कुतुबुद्दीन की समाप्ति से उसका अपना अस्तित्व ही मिट जाएगा। लुटेरों और गुण्डों के एक विशाल गिरोह को जमा करके अनहिलवाड़ भेजा गया। आबू पर्वत के नीचे एक संकरे रास्ते पर राय कर्ण एवं अन्य राजपूत अधिकारियों के अधीन एक सशक्त हिन्दू सेना एकत्रित थी।

उस सशक्त स्थिति में आक्रमण करने का साहस मुसलमान नहीं बटोर सके। विशेषकर उसी स्थान पर एक बार मुहम्मद गौरी स्वयं भी घायल हो चुका था। ऐसा विश्वास उन्हें हो गया था कि वह स्थान मुस्लिम ख़ानाबदोशों के लिए मनहूस है। फलतः वे पीछे हटे। तब हिन्दू सेनाओं ने अपने पर्वतीय स्थानों को छोड़ दिया और मुस्लिम सेना पर टूट पड़ीं। खुले मैदानों में आमने-सामने लड़ाई हुई। हमेशा की भाँति मुस्लिम वर्णनों ने मुस्लिम विजय का दावा किया है। परन्तु इन पंक्तियों को पढ़ने पर पत्ता चलता है। कि मुस्लिम सेना ने हारकर अजमेर में शरण ली और वहाँ से वह दिल्ली लौट गई।

असुरक्षित हिन्दू घरों को बरबाद कर जो लूट कुतुबुद्दीन को प्राप्त होती थी उसका पाँचवाँ भाग वह गौरी को भेजता था। दूसरे, वह इससे भी पहले गौरी का निजी गुलाम था। प्रत्येक महत्त्वपूर्ण संग्राम के बाद अपनी हार पर झूठी जीत का रंग चढ़ाने के लिए उसे नज़राना भेजना पड़ता था ताकि कहीं मालिक नाराज़ होकर वापिस बुलाने का विचार न कर ले। इसी कारण भारत में हुई प्रत्येक मुठभेड़ पर मुसलमानों की झूठी जीत की पालिश की गई है चाहे हार में मुसलमानों की नाक ही क्यों न कट गई हो। इसी कारण अपने स्वामियों के पास गुलाम सरदारों ने जितने भी समाचार भेजे सभी में हिन्दुओं के साथ हुए प्रत्येक संग्राम में मुसलमानों की जीत का ज़ोरदार नगाड़ा बजाया गया।

अशिक्षित दरबारों में चक्कर काटने वाले खुशामदी लेखक मोटी रक़म इनाम में पाकर हार को जीत लिखने के लिए तैयार ही बैठे रहते थे। इस

लिए साधारण जनता और विद्वानों को इस सफ़ेद झूठ के प्रति जागरूक हो जाना चाहिए और इन लोगों के वर्णन का वास्तविक निष्कर्ष स्वयं ही निकालना चाहिए।

१२०२ ई० में एक दूसरे पालतू गुलाम अल्तमश के साथ कुतुबुद्दीन ने कालिंजर दुर्ग को घेर लिया। यह दुर्ग परमार राजाओं की राजधानी था। सदा की भाँति ताजुल्-मा-आसीर नामक इतिहास दावा करता है कि हिन्दू राजा पराजित हुआ और भाग गया। उसने शान्ति-सन्धि की प्रार्थना की और राज कर देते रहने पर उसे अपना राज्य रख लेने की अनुमति दे दी गई, ऐसा लिखा गया है। मगर बाद में यह भी जोड़ दिया गया है कि उसने स्वाभाविक मृत्यु पाई और शान्ति-सन्धि की किसी भी शर्त को पूरा नहीं किया। इन पंक्तियों से साफ़ झलकता है कि मुस्लिम सेना को ही हार-कर लौटना पड़ा था। हालाँकि हमेशा की भाँति अपनी हार की मार छिपाने के लिए पालतू इतिहासकारों ने इस मुठभेड़ पर मुस्लिम जीत का रंग चढ़ाने का पूरा प्रयास किया है।

दूसरी बार मुस्लिम सेना ने इसपर फिर चढ़ाई की। इस बार की स्थायी सेना में हज़ारों नए मुसलमानों का ही ज़ोर नहीं था वरन् नए विदेशी मुस्लिम लुटेरों को भी भरा गया था। मृत शासक के मुख्यमन्त्री अजदेव ने बड़ी वीरता से दुर्ग की रक्षा की।

बाद में दुर्ग आतंक, माया और धोखे से कब्ज़े में हुआ। फिर सदा की भाँति "मन्दिरों को मस्जिद बनाया गया और बुतों (देव-प्रतिमाओं) का नामोनिशान तक मिटा दिया गया। पचास हज़ार लोगों के गले में गुलामी का फन्दा कसा गया और हिन्दुओं के रक्त से सारी जमीन रंजित हो गई।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृ० २३६) इससे साबित होता है कि इस्लाम के नाम पर गुलामी के गीत गाए गए और गुलामी के नाम पर इस्लाम की शोभा बढ़ाई गई।

अब कुतुबुद्दीन महोबा से जा टकराया मगर मुस्लिम इतिहासकारों की चुप्पी से साबित होता है कि वहाँ उन लोगों को काफ़ी नुक़सान उठाना पड़ा था। इसी प्रकार का एक प्रयास बदायूँ पर भी किया गया "जो नगरों की जननी और हिन्द देश के प्रमुख नगरों में से एक था।" (इसलिए हिन्दुओं को बेवकूफ़ी से भरा यह विचार अपने दिमाग से एकदम निकाल देना

चाहिए कि इन नगरों का निर्माण मुसलमानों ने किया है; वरन् इसके ठीक विपरीत मुस्लिमों ने इन्हें बड़ी बुरी तरह नष्ट-भ्रष्ट कर बरबाद किया है)। बदायूँ-अभियान भी बड़ी बुरी तरह कुचला गया था।

इसी समय एक दूसरा मुस्लिम पिशाच कुतुबुद्दीन के गिरोह में आ मिला। यह एक शैतान लुटेरा और पालतू गुलाम था। बाद में इसीने पूर्वी भारत के विहारों के साथ-साथ नालन्दा का भी नाश किया था। पहले इसकी हिन्दुओं की हत्या, नर-संहार और लूट की शक्ति को नापा और परखा गया। सन्तोषजनक पाने पर इसे मुहम्मद गौरी के गुलाम गिरोह-नेताओं के कैबिनेट का सदस्य बना लुटेरे दल में सम्मिलित किया गया। (बख़्तियार ख़िल्जी)

महोबा और बदायूँ में हिन्दू तलवारों से हुए घावों को चाटता, भीगी बिल्ली-सा कुतुबुद्दीन दिल्ली वापिस लौटा।

१२०३ ई० में मुहम्मद गौरी भारत पर अपने धावों के क्रम को क़ायम रखते हुए, गज़नी से चला। मार्ग में खीता की हिन्दू-सेना ने इसे रोककर ललकारा। अनखुद की सीमा पर संग्राम छिड़ गया। परिणाम में गौरी को इस बुरी तरह कुचलकर हराया गया कि वह भय से काँपता मैदान से भाग खड़ा हुआ। अफ़वाह तो यहाँ तक फैली कि वह युद्ध में मारा ही गया। इस भगदड़ में उसके एक महत्त्वाकांक्षी गुलाम ऐबक-बक ने मौके को सूँघा और एक टोली लेकर वह मुलतान गया। फिर गवर्नर के कानों में गुप्त समाचार कहने के बहाने उसकी हत्या कर दी।

भारत में मुस्लिम आक्रामकों और लुटेरों के आपसी द्रोह और उथल-पुथल के अवसर से लाभ उठाते हुए, बाकन और सरकी में खोक्कर जाति के हिन्दू शासकों ने अपनी सेना एकत्रित की और भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए जोरदार अभियान की योजना बनाई। सतलज और जेहलम नदी के तट के आस-पास स्थित मुस्लिम अधिकृत क्षेत्रों पर दायें और बायें से आक्रमण किया गया। एक बार तो मुस्लिम शासन उखड़ ही गया। संग-वान का मुस्लिम शासक बहाउद्दीन मुहम्मद अपने भाई के साथ हिन्दू सेना से टकराने चला। "मगर वर्षा की बूंदों या जंगल के पत्तों के समान उसकी सेना के बहुत से आदमी या तो बन्दी बना लिये गए या मारे गए···उनकी

शक्ति दिन-प्रतिदिन बढ़ती ही गई···दुश्मनों (यानी हिन्दुओं) की अत्यधिक संख्या के कारण सुलेमान नामक सिपहसालार को भाग जाना पड़ा।"

इस प्रकार हिन्दुओं ने पंजाब के कुछ भाग से मुस्लिम जुआ उतार फेंकने में सफलता पाई। अनखुद की पराजय और हिन्दुओं की इस लगातार सफलता से आतंकित होकर मुहम्मद गौरी ने कुतुबुद्दीन के पास सहायता का समाचार भेजा। इसने अपनी शक्तियों को एकत्रित किया और अपने स्वामी गौरी की सहायता के लिए चल पड़ा। गौरी इस समय निराशा के कगार पर झूल रहा था।

सिर उठाती हिन्दू शक्ति और गुलामों तथा लुटेरों की मुस्लिम सेना के बीच भयंकर संग्राम छिड़ गया। वीर और देशभक्त हिन्दू सेना का नेतृत्व वीर खोक्कर राय के हाथ में था। उसके एक साहसी पुत्र ने जुद के पर्वतीय दुर्ग से आती हुई मुस्लिम सेना को अपनी खड्ग का भरपूर स्वाद चखाया।

स्पष्ट है कि मुस्लिम सेना अपना मार्ग नहीं बना सकी। निरुत्साहित मुस्लिम सेना लाहौर में एकत्रित हुई। हताश और हारे हुए गौरी ने यहाँ डबडबाई आँखों से अपने गुलाम-गुट से विदा ली। वापिसी में इन लोगों ने अपना पड़ाव दमयक के निकट के एक बाग में डाला था। यहीं पर शैतान लुटेरे गौरी को वीर हिन्दू सेना की एक टुकड़ी ने, जो समीपवर्ती क्षेत्रों से मुस्लिम लुटेरों का सफ़ाया कर रही थी, मारकर समाप्त कर दिया।

चूंकि मुहम्मद गौरी का कोई पुत्र नहीं था अतएव गौरी की मृत्यु के बाद उसका भतीजा गियासुद्दीन मुहम्मद उसका उत्तराधिकारी हुआ। इस उत्तराधिकारी ने गुलाम कुतुबुद्दीन को मुस्लिम अधिकृत भारतीय भू-भाग सौंप दिया। इस विलयन के चिह्न स्वरूप गियासुद्दीन ने एक ताज, एक सिंहासन और एक छत्र उसके पास भेजा, जिसे पूर्ववर्ती मुस्लिम आक्रमणकारी लूट लाए थे। मगर इन सबके पहुँचने से पूर्व ही कुतुबुद्दीन को दिल्ली त्याग, देशभक्ति को कुचलने लाहौर जाना पड़ा। लाहौर में १२०६ ई० में उसने अपने आपको सुलतान घोषित किया परन्तु सुलतान ताजुद्दीन ने इसका विरोध किया। परवर्ती संग्राम में ताजुद्दीन हारकर भाग गया। अपनी महत्त्वाकांक्षा से फूलकर कुतुबुद्दीन सीधा गज़नी आया और यहाँ ४० दिन तक अधिकारी शासक के समान रहा। उसके बाद वह दिल्ली लौट

आया। २६ जून, १२०६ को उसने विधि-विधान के साथ राजा का ताज पहना।

भारत के इतिहास का वह दिन कलंक से एकदम काला दिन है, जिस दिन प्राचीन पवित्र हिन्दू राजसिंहासन को, जिसे पाण्डव, भगवान् कृष्ण और विक्रमादित्य जैसे नर-रत्नों ने पवित्र और सुशोभित किया था, एक घृणित विदेशी मुस्लिम ने, जिसे कई बार पश्चिम एशिया के गुलामों के बाज़ारों में ख़रीदा और बेचा गया, अपवित्र और कलंकित कर दिया।

अपने ४० दिन के गज़नी-वास में, अपने स्वामी गौरी की मृत्यु से बेलगाम कुतुबुद्दीन ने धर्मत्यागी नए मुसलमान सरदारों की बहू-बेटियों को छीन-घसीट अपने हरम में भर लिया।

कुतुबुद्दीन १२०६ से १२१० ई० तक हिन्दुस्तान के मुस्लिम अधिकृत भू-भाग का नाममात्र का सुलतान रहा। अत्याचारी मुस्लिम शासन में उपद्रव होना तो मामूली बात है। कुतुबुद्दीन का अधिकांश समय जगह-जगह भाग-दौड़कर विद्रोह दबाने में व्यतीत हुआ।

कुतुबुद्दीन और उसके स्वामी गौरी को कई बार भारत के वीर देश-भक्त हिन्दुओं के हाथों बुरी तरह हारना पड़ा था। अतः अब वह इतना साहस ही एकत्रित नहीं कर सका कि देशभक्तों से जा भिड़े। जबतक गौरी का सिर कटकर नहीं गिरा तबतक कुतुबुद्दीन को भारत में गौरी का शिकारी कुत्ता बनना ही था। मगर एक बार स्वामी का जुआ उतरते ही उसने किसी भी अभियान को चलाने का साहस नहीं किया।

नवम्बर, १२१० ई० के प्रारम्भिक दिनों में, लाहौर में चौगान (पोलो) खेलते समय कुतुबुद्दीन घोड़े से गिर गया। घोड़े की जीन के पायदान का नुकीला भाग उसकी छाती में धँस गया और वह मर गया। अल्लाह ने जैसे-को-तैसा बदला दिया। यह दारुण और दोगला मुस्लिम पशु एक पशु द्वारा ही मारा गया। इसके पीछे २० वर्षों का लुटेरा इतिहास है। इसमें से प्रायः ४ वर्ष तक वह सुलतान बना रहा।

ऊपर के विवरण से स्पष्ट है कि किसी भी इतिहासकार ने उसे कुतुब मीनार बनाने का श्रेय नहीं दिया है। इसपर भी भूल और झूठ से भरपूर भारतीय इतिहास कुतुबुद्दीन को उस स्तम्भ के निर्माण का श्रेय देता है।

अरबी भाषा में 'कुतुब मीनार' का अर्थ है "नक्षत्र निरीक्षण का स्तम्भ"। चूंकि हिन्दू स्तम्भ का उपयोग नक्षत्रों के निरीक्षण के लिए होता था इसीलिए मुस्लिम बातचीत और पत्रों में उसे "कुतुबु मीनार" कहा गया है। मगर इतिहासकारों ने उस साधारण अरबी शब्द को कुतुबुद्दीन के साथ उलझा दिया है और अर्धनिद्रा में "कुतुबु मीनार" के निर्माण का श्रेय कुतुबुद्दीन को दे दिया। जो भी खुदाई उस क्षेत्र में कुतुबुद्दीन ने की है वह है उसके हाथों उस क्षेत्र का विनाश। उस स्थान के विनष्ट मन्दिर का नाम रक्खा गया 'कुवत-उल्-इस्लाम' उर्फ 'अमा मस्जिद'।

मन्दिरों का सिर्फ़ नाम बदलकर मस्जिद नाम रख देना ही उन लोगों के लिए निर्माण है। भारत के मुस्लिम शासनकाल में यही होता आया है, बिना ज़रा भी परिवर्तन के। इससे सर एच० एम० इलियट के कथन की भी पुष्टि होती है कि भारत में मुस्लिम युग का इतिहास "एक धृष्ट परन्तु मनोरंजक धोखा है।" इसलिए हिन्दू विक्रम-स्तम्भ के चतुर्दिक् विस्तृत विनाश का श्रेय ही मुस्लिम दास लुटेरे कुतुबुद्दीन को मिलना चाहिए, इसके निर्माण का नहीं।

निकटवर्ती नगर महरौली साफ़-साफ़ इस सत्य की ओर संकेत करता है कि विक्रमादित्य, जो वेध-शालाओं और निरीक्षण शालाओं के निर्माण के लिए विख्यात है, ही इस नक्षत्र-निरीक्षण स्तम्भ एवं आस-पास के २७ मंचों के निर्माता हैं। उनका दरबारी नक्षत्रज्ञ मिहिर अपने सारे गणितज्ञ और यंत्रज्ञ सहयोगियों के साथ निकटवर्ती नगर में रहता था। इसी कारण इस नगर का नाम पड़ा मिहिर-अवली यानी मिहिर पंक्ति (अनुयायियों की)। इसलिए भारतीयों को इस भव्य-स्तम्भ को विक्रम स्तम्भ ही कहना चाहिए। इसका सम्बन्ध किसी मुस्लिम गुलाम से जोड़कर इसकी पवित्र परम्परा को अपवित्र नहीं करना चाहिए, जिसने प्रत्येक भारतीय चीज़ को छीना है, प्रत्येक हिन्दू चीज को अपवित्र किया है।

(मदर इण्डिया, जनवरी १९६७)

: ६ :

अल्तमश

मुसलमानों द्वारा बरबाद किए गये और उजड़े हिन्दू मन्दिर-मण्डल से आवृत्त तथाकथित दिल्ली की कुतुब मीनार के पास एक कोने में दबी गड़ी पड़ी है अल्तमश की लाश—मुस्लिम गुलामों के गुलाम का शव। इसके खूनी कारनामों ने दिल्ली के पवित्र और प्राचीन राजसिंहासन पर कालिमा की अमिट छाप लगा दी है।

दिल्ली का दूसरा गुलाम शासक अल्तमश एक गुलाम था और कुतुबुद्दीन का दामाद भी। इधर कुतुबुद्दीन स्वयं भी डाकू एवं लुटेरों के सरदार मुहम्मद गौरी का एक नाचीज़ गुलाम था।

पुनर्गठित हिन्दू शक्तियों ने बड़ी सफलता से एक ही साथ दो इन्सानी राक्षस गौरी और बख़्तियार ख़िल्जी की पीठ तोड़, उनका सफ़ाया कर पृथ्वी का भार हल्का कर दिया था। उन दोनों की विषाक्त मुस्लिम-साँसों से गज़नी से लेकर वाराणसी तक के उत्तर भारतीय क्षेत्र तबाह और बरबाद हो गए थे। (आज भले ही गज़नी अफ़गानिस्तान, जिसका प्राचीन संस्कृत नाम अहिनस्थान है, का एक भाग हो, स्वयं अफ़गानिस्तान, भी प्राचीन भारत का ही एक भाग था।) दुर्भाग्य से फिर भी काफ़ी देर हो चुकी थी। मुस्लिम दुष्ट-दल का सरदार गौरी अपने पीछे अनेक पापी मुस्लिम गुलामों को छोड़ गया था। इनकी जड़ें भारत की पवित्र धरती में गहरी गड़ चुकी थीं। इन्हीं पापी गुलामों में से एक गुलाम कुतुबुद्दीन था। अल्तमश इसी गुलाम का एक गुलाम था और दामाद भी।

मध्ययुग में कुतुबुद्दीन ही वह पहला मुसलमान था जिसने हिन्दू भारत की सार्वभौमिकता विधिवत ग्रहण करने के बाद, अपने पापी और खूँरेज़ी

कारनामों से, इस महान् प्राचीन देश के राजसिंहासन एवं राजमुकुट की पवित्रता भंग करने का महान् अपराध किया था।

उसके बाद इस अपहृत सिंहासन पर गुलामों का गुलाम और दामाद अल्तमश आसीन हुआ। अतुलनीय मुसलमानी दुष्कर्मों में अपने भाग का योगदान कर इसने भारत में मुस्लिम कुशासन की सड़ान्ध और घनीभूत कर दी। मुस्लिम अन्धविश्वास, कड़ी सूदखोरी, नोंच-खोंच, छीन-झपट, मार-काट, विनाश, विध्वंस, वेश्यावृत्ति, बलात्कार, शील-हरण, अपहरण, पीड़ा, यन्त्रणा एवं लूट आदि का ढेर और ऊँचा हो गया। सारा वातावरण विषाक्त हो गया।

बिना एक भी अपवाद के भारत का प्रत्येक मुसलमान शासक कुमार्गी और कसाई था। वे नृशंस अत्याचारों के प्रणेता थे। फिर भी समझ में नहीं आता कि हमारे इतिहासों एवं प्रश्न-पत्रों में क्यों इन दानवों और राक्षसों की "महानता" के गीत गाए गए हैं। शायद वे अपनी दुष्टता में अद्वितीय थे, इसीलिए। सच्चाई की यह तोड़-मरोड़ बन्द होनी चाहिए। अगर यह बन्द नहीं होती है तो जनता को अपनी आवाज़ बुलन्द करनी चाहिए। हमारे वीर और निष्कलंक छात्रों के मस्तिष्क को इस तोड़-मरोड़ से हमें विषाक्त नहीं होने देना चाहिए।

अल्तमश ऐसा ही शासक था—एक पापी और अत्याचारी। एक मामूली नौकर जिसे बार-बार खरीदा और बेचा गया था। मगर इसकी प्रशंसा में रचे गए गीत आधुनिक भारतीय इतिहासों में आसमान को छूते हैं। यह इल्तमश के नाम से भी कुख्यात है। इसकी उपाधि बड़ी लम्बी-चौड़ी थी—'सुलतान शम्सुद दुन्या बाउद्दीन अब्दुल मुज़फ़्फ़र अल्तमश।' वह तुर्किस्तान की अलबेरी जाति का था।

दूसरों की तो बात ही छोड़िए, स्वयं इनके भाई-बन्द ही इन मुस्लिम दुष्टों से घोर घृणा करते थे। इसकी परख आप इस सच्चाई से कर सकते हैं कि उसके अपने भाई ही उसके शारीरिक सौंदर्य से जल-भुनकर राख रहते थे। 'तबक़ात-ए-नासिरी' क अनुसार—"घोड़ों के झुण्ड को देखने के बहाने उसे उसके माता-पिता से दूर भेज दिया गया।" (पृष्ठ ३२०, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन)।

अल्तमश एक खूबसूरत लड़का था। मुस्लिम शासन में यह शारीरिक

आकर्षण वरदान नहीं, अभिशाप था; क्योंकि उसपर नर-भोगियों का आक्रमण होता रहता था। अगर कहीं वह शारीरिक सौंदर्य क्रय-विक्रय की आँधी में पड़ जाता था तो उसके मूल्य निर्धारण का आधार नर-भोग ही होता था। इसके साथ ही उसपर घरेलू कार्यों का बोझ भी लद जाता था।

हमने ऊपर देखा है कि मध्य-युगीन मुस्लिम जीवन का सारा वातावरण इतना विषाक्त था कि हर प्रकार के पापों के कीटाणु इसके खून में पाए जाते थे। इसी कारण उसके अपने घर से ही अल्तमश का अपहरण उसके अपने भाइयों ने ही किया। अपहरण उनके खून में ही नहीं, सारे वातावरण में था। नर-भोग और नर-हत्या का भी यही हाल था।

अश्व-झुण्ड दिखाने के बहाने, अश्व-व्यापारी के हाथ गधे की भाँति अल्तमश को बेच दिया गया। अल्तमश का भोगकर घोड़ों के सौदागर ने बुख़ारा में उसे एक स्थानीय निवासी के हाथ बेच दिया। फिर हाजी बुख़ारी ने उसे उस निवासी के पास से ख़रीदा। इस प्रकार बाज़ारू सामानों की भाँति बिकता हुआ अल्तमश जमालुद्दीन चश्त काबा के पास आ पहुँचा। जमालुद्दीन चश्त काबा गुलामों का व्यापारी था। उसकी पैनी व्यापारिक नज़रों ने ताड़ लिया कि इस खूबसूरत छोकरे की अच्छी क़ीमत उठ सकती है, यदि इसे मुहम्मद गौरी जैसे विलासी, शराबी और मदक्की दुष्टपति के हाथों बेचा जाय।

अप्राकृतिक सम्भोग सामिग्री—जूतों की भाँति जोड़ों में ही गुलामों को बेचने की प्रथा मुसलमानों में थी। ऐबक नामक एक तुर्की के साथ अल्तमश का जोड़ा लगा। उसके सौन्दर्य को अपनी कामुक आँखों से चाटते हुए मुहम्मद गौरी ने प्रत्येक का दाम "एक हज़ार शुद्ध सोने की दीनार" लगाया। यानी एक जोड़े का दो हज़ार। मगर जमालुद्दीन चश्त काबा के अनुसार अल्तमश की क़ीमत बहुत ज्यादा थी। उसने उसे इस दाम पर बेचना स्वीकार नहीं किया।

इस मुनाफ़ाखोरी से क्रोधित होकर गौरी ने अल्तमश की ख़रीद पर रोक लगा दी। निराश और क्रोधित होकर जमालुद्दीन को अपना बचा-खुचा सामान लेकर वापिस लौटना पड़ा। आगामी तीन वर्षों तक अल्तमश को साईसी करनी पड़ी। इसी बीच जमालुद्दीन ने उसे और माँसल बनाकर उसकी सौन्दर्य-वृद्धि का प्रयास किया और उसे गज़नी में "बाज़-निज़ाम"

मूल्य पर बेचने के लिए खड़ा कर दिया। मगर अभी तक अन्यायी गौरी का प्रतिबन्ध लागू था। किसी में भी अल्तमश को ख़रीदने की हिम्मत नहीं हुई। सभी दूर खड़े-खड़े कामी नज़रों से उसे चाटते रहे।

जमालुद्दीन अल्तमश के साथ गजनी में ही चिपक गया। इस इंसानी सामान को बेचने के लिए वह द्वार-द्वार गया और प्रत्येक मुस्लिम विलासी का दरवाज़ा खटखटाया। ठीक इसी समय गौरी का गुलाम गुर्गा कुतुबुद्दीन भी गज़नी आ पहुँचा। हिन्दुस्तान में आतंक और यन्त्रणा की चक्की चलाने की सोल एजेन्सी इसीके पास थी। हिन्दुस्तान की अगाध लूट उसके पास थी। अपने नर और मादा हरम को ठूँसकर भरने के लिए वह मनचाही इन्सानी भोग-सामग्री खरीद सकता था। अल्तमश के सौन्दर्य पर लट्टू होकर उसने गौरी से उसे खरीदने की अनुमति माँगी। खून से लथपथ हिन्दुस्तानी लूट के अबाध आयात के लिए उसे कुतुबुद्दीन के क्रूर हाथों पर ही निर्भर रहना पड़ता था। अतएव वह उसका निवेदन न ठुकरा सका।

मुहम्मद गौरी अपनी प्रचलित आज्ञा रद्द करना भी नहीं चाहता था, कम-से-कम गज़नी में तो नहीं। अतएव उसने कुतुबुद्दीन को इन्सानी सामानों के साथ जमालुद्दीन को दिल्ली ले जाकर अपनी ख़रीद-फ़रोख्त-कर लेने की सलाह दी।

तदनुसार अल्तमश और ऐबक का जोड़ा दिल्ली में बिका। कुतुबुद्दीन स्वयं भी एक ऐबक ही था। जमालुद्दीन को इस युग्म का दाम एक सौ हज़ार चीतल मिला।

अल्तमश अंगरक्षकों का नायक बना, मगर उसका अपना सुन्दर शरीर, सम्भवतः, अपने बदसूरत स्वामी कुतुबुद्दीन की कामुक कारगुज़ारियों से सुरक्षित नहीं था। तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार, "कुतुबुद्दीन उसे बेटा कह-कर पुकारता था और उसे हमेशा अपने पास ही रखता था।" इससे स्पष्ट है कि वह उसे सदा अपने समीप ही रखता था। अल्तमश के ऊपर उसने पचास हज़ार चीतल बेकार नहीं बहाए थे। अन्यायी मुसलमानों ने हमेशा अपनी कामुकता का ऊँचा मूल्य चुकाया है।

कुतुबुद्दीन के शारीरिक प्यार और कामुक आकर्षण का केन्द्र अल्तमश, क्यों न दिन दूनी रात चौगुनी तरक्की करता। पहले वह शिकारियों का नायक बना; फिर ग्वालियर-पतन एवं परवर्ती लूट के बाद उसे इसकी

जागीर मिल गई। कुछ अन्य खूनी अभियानों के बाद—"बारन शहर और ज़िले की सारी तहसील" उसकी जागीर में जुड़ गई। बाद में बदायूँ भी इसीको मिला।

अपने पतित जीवन के अन्तिम भाग में मुहम्मद गौरी अन्दखुद के संग्राम में हिन्दुओं से बुरी तरह हारा था। कोखर (गक्खर) जाति ने उसकी पीठ तोड़ दी थी। अल्तमश के साथ कुतुबुद्दीन अपने मालिक की मालिश करने दौड़ा। तीनों की संयुक्त सेनाएँ भी गौरी की टूटी पीठ न जोड़ सकीं। उसके हृदय में साहस का संचार न हो सका। इसके कुछ दिनों के बाद ही कुछ वीर हिन्दुओं ने गौरी को इस्लामी दोज़ख में पार्सलकर उसे अपने नारकीय जीवन से मुक्ति दे दी।

इन विपन्न दिनों में जब पुनर्गठित हिन्दू सेनाओं से भयभीत होकर गौरी, एक पागल कुत्ते की तरह, एक छोर से दूसरे छोर तक भाग-दौड़ कर था, उसे अल्तमश के साहचर्य का आनन्द-भोग प्राप्त हुआ। स्पष्ट है कि उसने गौरी से कुतुबुद्दीन की कामुकता की शिकायत की थी, क्योंकि उसने कुतुबुद्दीन को अल्तमश से अच्छा व्यवहार करने की आज्ञा दी। सर्व शक्ति-शाली कुतुबुद्दीन उसके मौखिक आदेश का पालन करेगा ही, इस पर निश्चिन्त होकर गौरी ने "उसे (अल्तमश का) मुक्ति-पत्र लिखने की आज्ञा दे, बड़ी उदारता से उसे स्वतन्त्र कर दिया।"

१२१० ई० में कुतुबुद्दीन की मृत्यु हो गई और मुसलमानों द्वारा अपवित्र दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन पर अल्तमश जा जमा। तबक़ात के अनुसार दिल्ली और उसके आस-पास के स्थानीय (हिन्दू) सरदारों ने राज-भक्ति स्वीकार नहीं की और विद्रोह करने का निश्चय कर लिया। "दिल्ली से बाहर आकर और गोलाकार रूप में एकत्रित होकर, उन लोगों ने बग़ावत का झण्डा बुलन्द कर दिया।"

यह संग्राम उसका पहला बड़ा अभियान था। अल्तमश दिल्ली के सिंहासन पर २५ वर्षों तक जमा रहा जिसके बीच १३ बड़े अभियानों एवं अनेक विद्रोह के कारण उसे क्षण-भर की भी शान्ति नहीं मिली। असन्तोष और विद्रोह व्यापक था।

अपहर्त्ता मुस्लिम गुलाम अल्तमश एवं संयुक्त हिन्दू शक्तियों के बीच

दिल्ली के बाहर यमुना तट पर संग्राम हुआ जिसमें न तो अल्तमश ने ही पूर्ण विजय प्राप्त की, न हिन्दू-शक्ति ही उसे पदच्युत कर सकी।

लाहौर, तबरहिंद एवं कहराम को हथियाने पंजाब के क्षेत्रीय अपहर्त्ता लुटेरे मलिक नासिरुद्दीन कबाचा के साथ उसकी कई बार टक्कर हुई। लड़ाई वर्षों लम्बी चली। कई बार झड़पें हुईं। अन्त में कबाचा की हार हुई।

अपने सुलतान का हत्यारा—तबक़ात-ए-नासिरी से ज्ञात होता है कि "हिन्दुस्तान के विभिन्न भागों के नायकों और तुर्कों के साथ उसका बराबर युद्ध चलता रहा।"

गज़नी गद्दी के नाम-मात्र के उत्तराधिकारी सुलतान ताजुद्दीन थे। ख्वारिज्म सेना के हाथों वे बड़ी बुरी तरह पराजित हुए। भागे-भागे वे लाहौर आए। उन्होंने सोचा था कि गुलामों के मुस्लिम-बाज़ारों में सामानों की भाँति दर-दर बिकने वाला, गुलामों का गुलाम अल्तमश अवश्य ही संकटग्रस्त गज़नी शासक का स्वागत, सहायता और सम्मान करने दौड़ा आएगा। मगर कृतज्ञता और राजभक्ति ये दो ऐसे गुण हैं जिनसे मुसलमानों का दूर का रिश्ता भी नहीं है। कैसी कृतज्ञता और कैसी राजभक्ति! पंजाब में ताजुद्दीन की उपस्थिति देखकर अल्तमश ने सोचा कि मेरी नव-प्राप्त सार्वभौमिकता ख़तरे में है। ताजुद्दीन को कोई भी क्षेत्र देना उसे नहीं जँचा। मुस्लिम परम्परा के अनुसार सारे विवादों का अन्त समझौता नहीं संग्राम है। १२१५ ई० में दोनों की सेनाएँ विख्यात नारायण मैदान में उतर पड़ीं। परिणाम वही हुआ जो होना चाहिए था। सुलतान ताजुद्दीन विदेशी था। उसे ज्ञात नहीं था कि भारत में कहाँ-कहाँ मुस्लिम नगर-सैनिक तैनात हैं। हिन्दुस्तान में पीड़ा और यातना से बने नए मुसलमानों की निष्ठा से भी अनजान था। अल्तमश विजयी हुआ और सुलतान ताजुद्दीन याल्दुज बन्दी बनाकर दिल्ली पार्सल कर दिए गए। इससे पहले कि उनके सहयोगियों की भीड़ जमा हो, अल्तमश ने उन्हें दूर बदायूँ में बन्द कर दिया। इसके बाद बिना किसी धूम-धड़क्के के अल्तमश ने उन्हें मारकर चुपचाप गाड़ दिया।

क्रूर मुस्लिम शासन में सिर्फ़ हिन्दू ही मुस्लिम अपहर्त्ता शासक से घृणा नहीं करते थे, वरन् सुलतान के अपने भाई-बन्द भी बराबर विद्रोह करते रहते थे।

मलिक नासिरुद्दीन कबाचा अपनी भूतपूर्व हार के कारण कुलबुला रहा था। उसे शैतान अल्तमश से दिली घृणा थी। उसने एक दूसरी सेना बटोरी और लड़ने के लिए अल्तमश को ललकारा। १२१६ ई० के संग्राम में कबाचा की फिर हार हुई।

हिन्दुस्तान की सदा सिकुड़ती सीमा के भीतर महत्त्वपूर्ण सैनिक गति-विधियाँ एक खतरनाक मोड़ ले रही थीं। ठीक आज की-सी परिस्थिति थी। आज भी हिन्दुस्तान की सीमा पर दो दुश्मन मँडरा रहे हैं। एक ओर इस्लाम का चाँदरूपी हँसुआ चमक रहा है तो दूसरी ओर चीनी अजगर अपना मुँह फाड़े खड़ा है। अल्तमश के समय में एक ओर मुसलमान जोंक की तरह चिपटे हिन्दुस्तान की जीवन-शक्ति चूस रहे थे तो दूसरी ओर विशाल मंगोल गिरोह खुरासान और ख्वारिज्म पर अपना फन मार रहे थे। कभी ये दोनों क्षेत्र भारतीय हिन्दू-शासन के अन्तर्गत थे। मगर लुटेरे मुसलमानों ने इन्हें बरबाद कर अपने खूनी रंग में रँग लिया था। भयानक चंगेज़ खाँ मुस्लिम दृष्टि से काफ़िर था क्योंकि वह पैर पकड़कर गिड़गिड़ाने वाले मुस्लिम लुटेरों के दिमाग़ में अल्लाह का भय भर रहा था। वे लोग उसकी तलवार के भयंकर वारों से भयभीत होकर उल्टे पैरों भाग रहे थे। इस्लाम यानी शान्ति के नाम पर इन लोगों ने सैकड़ों वर्षों तक लाखों निर्दोष लोगों को पीड़ाएँ और यातनाएँ दीं। इस तरह इन लोगों को भी पीड़ा और यातना का स्वाद चखना पड़ा।

चंगेज़ खाँ की प्रगति से घबराकर ख्वारिज्म के शासक सिर पर पैर रखकर भाग खड़े हुए। संकट से बौखलाकर वे सीधे भारत में प्रविष्ट हो गए। वे पश्चिमोत्तरी सीमा की ओर नहीं जा सकते थे क्योंकि वहाँ एक-से-एक भालू और बाघ डाकुओं, लुटेरों, चोरों और दुष्टों के दलपतियों का रूप धारणकर बराबर विचरण करते रहते थे। उनके प्रवेश से अल्तमश ने अपनी दिल्ली की गद्दी के लिए फिर ख़तरा सूँघा। कहाँ गुलामों के बाज़ारों में बार-बार लुढ़कता और बिकता अल्तमश और कहाँ जलालुद्दीन एक सर्व-शक्तिशाली, गुलामों का स्वामी, गद्दीपति सार्वभौम सुलतान।

अपने देश ख्वारिज्म से सुरक्षा की खोज में निकली जलालुद्दीन की सेना मरने-मारने पर उतारू थी। अल्तमश के लाहौर रक्षक (या भक्षक ?) उसे अधिक दिनों तक रोक नहीं सकते थे। अतएव १२१८ ई० में अल्तमश

अपनी प्रमुख सेना लेकर दिल्ली से चल पड़ा। उसे अपनी नव-प्राप्त उपाधि की रक्षा करनी थी। जलालुद्दीन अपनी सेना के हारी, थकी, हताश होने के कारण लड़ना नहीं चाहता था। वह सिन्ध और शिवस्थान की ओर भाग गया।

अब बंगाल के खिलजियों ने अल्तमश के लिए ख़तरा पैदा कर दिया। उन लुटेरों की शक्ति दिन-ब-दिन बढ़ रही थी। अल्तमश काफ़ी दिनों से उनके दमन का विचार कर रहा था। अन्त में, १२२५ ई० में उसे बहाना मिल ही गया। प्रत्येक मुस्लिम शासन की भाँति वहाँ भी आन्तरिक विरोध और विद्रोह रोम-रोम में मचल रहा था। इस कारण लूट-भाग भेजने में थोड़ा विलम्ब हो गया। बस, अल्तमश सेना लेकर लखनौटी आ धमका। सदा की भाँति यह दावा किया गया है कि कुछ झड़पों के बाद ख़िल्जी नेता गियासुद्दीन ने शान्ति-सन्धि की प्रार्थना की। कुछ भी हो, सन्धि के नियमों से यह स्पष्ट हो जाता है कि स्वयं अल्तमश भी संकट से बाहर नहीं था। उसे कोई स्पष्ट विजय प्राप्त नहीं हुई।

राजपूतों ने दिल्ली से उसकी अनुपस्थिति का लाभ उठाने का प्रयास किया। इन राजपूतों ने विलासी और क्रूर मुस्लिम शासन से कभी समझौता नहीं किया था। वे लोग भारत के मुस्लिम राज्य पर आक्रमण करने की तैयारियाँ करने लगें। इस नये संकट की सूचना से अल्तमश घबरा गया। जैसे-तैसे ख़िल्जी-झगड़े पर सन्धि की चिप्पी लगाई। अपनी नाक बचाने सन्धि-पत्र में दो-चार धाराएँ ठूँस दीं और दिल्ली की ओर चल पड़ा।

रणथम्भोर दुर्ग पुनर्जीवित राजपूतों का शौर्य केन्द्र था। इस दुर्ग का मूल संस्कृत नाम "रण-स्तम्भ-भ्रमर" है। प्रत्येक मुस्लिम इतिहास के समान तबक़ात-ए-नासिरी ने यह दावा किया है कि—"कुछ ही महीनों में शम्सुद्दीन (यानी अल्तमश) के हाथ से १२२६ ई० में इस दुर्ग का पतन हो गया।" झूठ का डंका पीटने वाले मुस्लिम इतिहासकारों की पोल अब खुल चुकी है। अबतक के अध्ययन से हम लोग जान चुके हैं कि यहाँ मुसलमानों की विजय नहीं हुई क्योंकि जब मुसलमानों की सचमुच जीत होती है तो ये मुस्लिम इतिहासकार अनिवार्य रूप से (१) मार-काट और लूट-हरण का ब्यौरेवार वर्णन पेश करते हैं, (२) ताजा कटी गायों के खून से सारे मन्दिरों को साफ और स्वच्छ करने का चित्र खींचते हैं तथा (३) दुर्ग पर मुस्लिम

अधिकारी नियुक्त करते हैं। यहाँ तबक़ात का लेखक मिनहज-अस्-सिराज चलते-फिरते ढंग से रणथम्भोर दुर्ग के घिराव और कुछ मास बाद इसके पतन हो जाने की सूचना भर देता है। इससे प्रतीत होता है कि अल्तमश को वीर राजपूतों के सामने से मुँह छिपाकर भागना पड़ा था।

इस पराजय के कारण अल्तमश के नव-प्राप्त राजकीय सम्मान को गहरी ठेस लगी। उसकी मरम्मत और मरहम-पट्टी के लिए वह शिवालिक की पहाड़ियों के माण्डूर दुर्ग की ओर बढ़ा। यह भी एक राजपूत दुर्ग था। हमेशा की भाँति यहाँ भी उसे १२२७ ई० में विजयी घोषित किया गया। मगर ऊपर लिखी कसौटी पर कसने के बाद यही पता चलता है कि हिमालय के इस पहाड़ी-तल से भी उसे अपमानित होकर दुम दबाकर भागना पड़ा।

सम्मानहीन अल्तमश के सामने अब एक दूसरा ही ख़तरा था। अक्षम्य नासिरुद्दीन कबाचा फिर एक सेना बटोर लाया था। वह सिन्ध में उछ के समीप अमरावती दुर्ग के निकट पड़ाव डाले बैठा था (मुस्लिम इतिहासकारों ने अमराबती को अमरावत लिखने की भी भयंकर भूल की है)। उछ में एक माह तक युद्ध चलता रहा। मई, १२२८ ई० में अल्तमश ने इसपर अपना अधिकार कर लिया। अल्तमश ने १२२८ ई० में कबाचा को उछ से अमरावती तक रगेदकर मारा। कबाचा सिन्धु में डूब मरा। मरने से पहले उसने अपने पुत्र मलिक अलाउद्दीन बहराम शाह को अल्तमश की सेवा में भेज दिया ताकि उसका जीवन किसी प्रकार बच जाए। अल्तमश ने कबाचाँ की सारी सम्पत्ति अपने कब्जे में कर ली। हरम भी निश्चय ही उस सम्पत्ति का ही एक भाग था। कबाचा के मुस्लिम लुटेरों की इस्लामी राजभक्ति तो बड़ी आसानी से बदल ही गई थी। रातों-रात अब वे अल्तमश के सेवक और अनुचर हो गए।

कबाचा की पराजय और मौत से आतंकित होकर देवल (देवालय यानी कराँची) के धर्मान्तरित शासन ने अल्तमश से सन्धि कर ली। सिन्ध पर उसी का अधिकार था। बाद में अगस्त, १२२८ में अल्तमश दिल्ली लौट आया।

उन पतित मुस्लिम सुलतानों की सेवा करने, कदमबोसी करने और गिडगिडाने वाले इन दासानदास मुस्लिम जासूसों ने कितना सफेद झूठ

लिख मारा है। फिर भी ये लोग अपने आपको इतिहासकार कहते हैं। तबक़ात-ए-नासिरी के लेखक मिनहज-अस्-सिराज़ के लेख से ही इस सफ़ेद झूठ का पर्दाफ़ाश भी हो जाता है।

मिनहज-अस्-सिराज़ हमें बतलाता है कि "उछ-पड़ाव के पहले ही दिन उस महान् और धार्मिक (?) राजा से इस किताब के लेखक ने भेंट की और उपहार पाया। जब हुजूरे आला उस दुर्ग से लौटे तब तथ्य-संग्रह-कर्ता भी उस अपराजेय (?) राजा की विजयी सेना के साथ दिल्ली आ गया।"

(इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ २६)

शैतान रूपी सुलतान को एक नीच और पतित अनुचर "महान् और धार्मिक···अपराजेय" कहता है। सिर्फ़ इसीलिए कि उससे उसने "उपहार पाया" था। इस प्लेग के फन्दे में मध्ययुगीन सभी मुस्लिम इतिहासकार फँसे हुए हैं और यह संक्रामक रोग हिन्दुस्तान के सारे इतिहासों में फैल गया है। ये अपनी झूठ का स्पष्ट डंका स्वयं पीट रहे हैं। फिर भी भारतीय विवेक त्यागकर तोते की तरह इन्हीं झूठी बातों को रटते चले जा रहे हैं।

काफ़िरों (हिन्दुओं) को सताने, मारने और लूटने वाले मुस्लिम लुटेरों को सिर्फ़ नाम के प्रधान ख़लीफ़ा ने हमेशा अपना संरक्षण दिया है। उन्होंने अब अनुभव किया कि राजा की उपाधि धारण करने वाला, गुलामों का गुलाम अल्तमश इस्लामी पुरस्कार पाने का पूरा अधिकारी हो गया है। मिनहज-अस्-सिराज़ ने लिखा है कि "ख़लीफ़ा की गद्दी से पोशाक लेकर दूत नागौर की सीमा पर पहुँचे और (१२२९ ई० की) एक सोमवार को उन्होंने राजधानी में प्रवेश कर शहर को पवित्र किया। इस्लाम के केन्द्र से प्राप्त पोशाकों से राजा, उनके कुलीन नायकों, उनके पुत्रों, अन्य कुलीनों एवं नौकरों को सम्मानित किया गया।" (पृष्ठ ३२९)।

अल्तमश बंगाल का दमन कर उसे अपने राज्य में नहीं मिला सका था। यह असफलता बहुत दिनों से उसके दिल में चुभ रही थी। १२२९-३० ई० में उसने फिर एक अभियान का आयोजन किया। ऐसा प्रतीत होता है कि इस बार भी उसे सफलता प्राप्त नहीं हुई। मगर चापलूस मुस्लिम इतिहासकार हमेशा अपने अभिभावक सुलतान की विजय का डंका पीटते हैं और अपने-अपने सुलतान के बिरोधियों की बुराई करना अपना धर्म समझते हैं। उनकी नलेखनी से प्रकट होता है कि बंगाल का मुस्लिम

अपहर्त्ता अविजित ही रहा। अल्तमश निराशा से अपने हाथ मलता वापिस लौटा और मलिक अलाउद्दीन जानी लखनौटी का मुस्लिम सार्वभौम शासक बना ही रहा।

मध्यकालीन इतिहासों में सिर्फ़ सफ़ेद झूठ ही भरा हुआ नहीं है। इसके अतिरिक्त जब कभी भी उन्होंने हिन्दुओं का वर्णन किया है तो हमेशा गालियों से ही बातें की हैं। हिन्दुस्तान में रहकर और हिन्दुस्तान का नमक-पानी खा-पीकर हिन्दुओं को "कुत्ता, डाकू, चोर, शत्रु, शैतान" आदि कहा गया है। इस प्रकार उन्होंने नीचता की हद कर दी। जिस थाली में खाया उसी में छेद किया। मिनहज-अस्-सिराज ने फ़रमाया है कि १२३० ई० में अल्तमश ने "ग्वालियर की ओर कूच कर दिया। जब उनका शाही तम्बू दुर्ग की दीवार के नीचे तन गया तब घृणित बासिल के घृणित पुत्र मलिक देव ने लड़ाई छेड़ दी...।" यानी अपनी रक्षा करना, अन्याय का प्रतिकार करना एक घृणित कार्य था।

छात्रों की झूठी पढ़ाई—कितने बड़े शर्म और शोक की बात है कि जो लोग स्कूलों एवं कालिजों में इतिहास पढ़ाते हैं, जिन्हें हमारी मूर्ख जनता भ्रम से इतिहासकार मानती है, उन लोगों ने मुस्लिम इतिहासों की गालियों और सफ़ेद झूठों के बारे में हमारी जनता को एकदम अँधेरे में रक्खा है। हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाने वाला हिन्दुस्तान का इतिहास गप्प-बाज़ियों और कल्पित कहानियों पर आधारित है। इसे उन लोगों ने लिखा है जो हिन्दुओं को हिन्दू-भूमि के डाकू और दुष्ट कहकर पुकारते थे।

"मुहम्मद तुग़लक का मूर्खतापूर्ण मुद्रा-सुधार, शाहजहाँ का स्वर्ण युग, अकबर का भू-कर सुधार, शेरशाह का सुधार" आदि विषयों का वर्णन करने के लिए प्रश्न-पत्र बड़े हर्ष से विभिन्न परीक्षाओं में बार-बार वितरित किया जाता है। मुस्लिम दग़ाबाज़ी, आतंक और यातना को नज़र-अन्दाज़-कर आकस्मिक संयोग से जिस संग्राम में हिन्दुत्व की हार हुई है, उसकी बड़े प्रेम से विशद व्याख्या करने के लिए छात्रों को कहा जाता है। वे शिवाजी, राणा प्रताप, पृथ्वीराज आदि अनेक देशभक्तों को एकदम भूल जाते हैं। क्या वे लोग जनता को यह समझाना चाहते हैं कि हिन्दुस्तान में ज़बरदस्ती घुसने वाले ये मुस्लिम लटेरे हिन्दू जनता को प्रताप, शिवाजी

और पृथ्वीराज से ज्यादा प्यार करते थे ? क्या हम विश्वास कर लेंगे कि अनन्त मानव-संहार और मन्दिर-विनाश में लीन निरक्षर भट्टाचार्य, नम्बरी शराबी, नशाखोर और कामुक पापी मुस्लिम सुलतानों ने सराय, कुएँ, सड़क, भवन का निर्माण कराया तथा निर्दोष शासन-प्रवन्ध में ही अपनी सारी शक्ति, समय और सम्पत्ति का व्यय किया था ? यह झूठ और असंगति की इन्तिहा है जिसे भारतीय स्कूलों और कालिजों में नीची कक्षा से लेकर पी-एच० डी० तक के छात्रों को पढ़ाया और रटाया जाता है।

जो इतिहास पढ़ते और पढ़ाते हैं, मैं उन दोनों को ही बतला देना चाहता हूँ कि शाहजहाँ का शासनकाल कोई स्वर्णयुग नहीं था क्योंकि उसने ९९ प्रतिशत जनता पर (जोकि हिन्दू थे) लगातार अत्याचारों की वर्षा की थी। उसने उनके मन्दिरों को नष्ट कर दिया और उनको सामूहिक रूप से हाथियों के पाँव-तले कुचलवा दिया क्योंकि उन्होंने मुसलमान बनना स्वीकार नहीं किया। हत्या और खून तो महज़ मामूली बात थी। क्या हम ऐसे युग को जिसमें अधिकांश लोगों ने भय से थर-थर काँपते हुए अपना जीवन बिताया है, स्वर्णिम युग कह सकते हैं ?

अकबर का बहु-प्रशंसित भू-कर सुधार भी जनता के खून चूसने की सुसंगठित प्रणाली के सिवाय और कुछ नहीं था। अकबर के भारी टैक्सों को वसूल करने के लिए बीच चौराहों पर कोड़ों से निर्दयतापूर्वक पीट-पीट-कर जनता की चमड़ी उधेड़ ली जाती थी। अकबर के क्रूर-करों को चुकाने के लिए लोगों को अपनी पत्नियों और बच्चों को बेच देना पड़ता था। क्या यह भू-कर सुधार गर्व करने योग्य है ?

मुहम्मद तुग़लक की जन्मजात मानसिक दुर्बलता को 'विस्मयकारी आर्थिक आविष्कार मानने की भूल की गई है। आश्चर्य होता है कि पागल राजा होने का इनाम किसे दिया जाय—खुद मुहम्मद तुग़लक़ को या उसके पागलपन पर आश्चर्यचकित होने वाले हमारे शिक्षा-सुलतानों को। मुहम्मद तुग़लक़ की शराबी-सनक, अन्धी हठधर्मी और पीड़ादायक अत्याचारों को उच्च आर्थिक उपाय कहकर उसकी बड़ाई करना ठीक वैसा ही है जैसा ताली बजा-बजाकर उस साँप की बड़ाई करना जिसने परिवार-नियोजन की सफलता के लिए लोगों को काट-काटकर जनसंख्या में कमी की हो।

और शेरशाह के बारे में ! शेरशाह ने स्वीकार किया है कि वह मल्लू-खाँ के पास बहुत दिन तक डाकुओं के दल में सीखतड़ रहा है। इसीसे उसके पाशविक जीवन की पूर्ण व्याख्या हो जाती है। भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासक के जीवन का ऐसा ही घृणित और कुत्सित रिकार्ड रहा है। इसपर भी हमारी साधारण जनता और इतिहास के छात्रों को हर साल धोखा दिया जा रहा है। उन्हें बड़े परिश्रम से मुस्लिम शासकों के उन गुणों का पाठ पढ़ाया जाता है, जो गुण उनमें थे ही नहीं।

भारत में स्कूल की पाठ्य-पुस्तकों के मध्यकालीन इतिहास में मुसल-मानी नाम ठूँस-ठूँसकर भरे गए हैं। तत्कालीन हिन्दू राजाओं के बारे में प्राय: नहीं के बराबर ही प्रश्न दिया जाता है। हिन्दुस्तान की प्रमुख हिन्दू भूमि में आदि से अन्त तक सिर्फ़ मुसलमान-ही-मुसलमान की चीख़ो-पुकार का एक अजीब रोग पैदा हो गया है। "फूट डालकर शासन करने" वाली नीति अंग्रेजों के लिए ठीक हो सकती थी। मगर आज के स्वतंत्र भारत में और वह भी इतिहास में उसी अवास्तविक, भ्रमपूर्ण और झूठे वातावरण की सृष्टि करना कहाँ तक उचित है ? क्या हम इसे सहन करेंगे ? देखें कौन इतिहासकार, शिक्षक या सरकारी अधिकारी सामने आकर इस ऐति-हासिक शिक्षा एवं परीक्षा के दम-घोंटू वातावरण को स्वच्छ करता है।

मिनहज-अस्-सिराज की तबक़ात-ए-नासिरी मध्ययुगीन झूठों का एक पुलिन्दा है। अगर हम मिनहज का विश्वास करें तो ग्वालियर का घिराव ११ महीने तक चलता रहा। उसके वर्णनों से यह निश्चय नहीं हो पाता है कि अल्तमश ग्वालियर दुर्ग पर अधिकार करने में सफल हुआ या नहीं क्योंकि वह जीत या हार का स्पष्ट वर्णन करने से कन्नी काटता है। मध्य-कालीन इतिहास के शिक्षक और छात्र इस माप-दण्ड को अच्छी प्रकार समझ लें कि जब कभी मुस्लिम अभियानों का अन्त अस्पष्ट या इधर-उधर की बातों में होता है तो यह निश्चित है कि आक्रमणकारी सुलतान को निराश हो, हारकर भागना पड़ा था। मिनहज-अस्-सिराज़ ने अपने विशिष्ट वर्णन में लिखा है कि श्रापित और घृणित मलिक देव रात में दुर्ग त्यागकर भाग गया। ७०० व्यक्तियों को शाही तम्बू के सामने दण्ड देने का आदेश दिया गया। नायकों एवं अधिकारियों की पदोन्नति कर दी गई ···मिनहज-अस्-सिराज़ (यही चापलूस इतिहासकार) को भी एक छोटा-

मोटा पद दिया गया। नमाज़ की निगरानी तथा सभी धार्मिक, नैतिक और न्याय-कार्य उसे सौंपे गए। क़ीमती ख़िल्लत और बहुमूल्य उपहार भी लोगों में बाँटे गए। सर्वाधिक दयालु और बहादुर राजा के उदार हृदय तथा पाक रूह की अल्लाह ताला सहायता करें (?)"। अल्तमश की सैन्य-पंक्तियों पर ग्वालियर की हिन्दू सेना ने इस प्रकार वज्र-प्रहार किया कि उसे, जबतक वह वहाँ रहा तबतक, अल्लाह की स्पेशल नमाज़ पढ़ने की आज्ञा लोगों को देनी पड़ी।

इस मुस्लिम गुलाम लेखक का यह विवरण ध्यान देने योग्य है। अल्तमश नें बिना किसी कारण के ही ग्वालियर को घेर लिया था फिर भी उसका अल्तमश को एक न्यायी, बुद्धिमान, उदार और दयालु राजा कहना जारी रहता है। दूसरी ओर उसने ग्वालियर नरेश मलिक देव की बातें गालियों से ही की हैं—"घृणिक बासिल का घृणित पुत्र मलिक देव"। उसके बाद उसने पाठकों को बतलाया है कि ११ महीने की घेराबन्दी के बाद भी वह ग्वालियर दुर्ग के बाहर नीचे अपने तम्बू में ही था। स्पष्ट है कि ग्वालियर दुर्ग उसका शिकार नहीं बन सका। बस, उसका असमर्थ इस्लामी रोष उबल पड़ा। अपने तम्बू के सामने उसने ६००(हिन्दू) लोगों की रक्त-धारा बहा दी। या तो उनकी हत्या कर दी या उन्हें पंगु बना दिया। कुछ पदोन्नतियाँ कर उसने लोगों की आँखें पोंछीं। उनकी स्वामि-भक्ति को सहारा दिया या फिर दुर्ग के वीर हिन्दू रक्षकों द्वारा मारे गए लोगों के खाली पदों पर उसने लोगों की पदोन्नति की। इस प्रकार अल्तमश को ग्वालियर दुर्ग से अपमानित होकर, सिर झुकाए, मुँह लटकाए वापिस लौटना पड़ा। ग्वालियर का विशाल हिन्दू दुर्ग शैतान मुस्लिम सुलतान अल्तमश के वीरों और प्रहारों के बीच अचल खड़ा रहा। उसकी मायावी झाड़-फूँक और धोखा-धड़ी से भी वह दुर्ग अप्रभावित ही रहा।

ग्वालियर-विजय के प्रयास से हताश होकर अल्तमश ने अन्य आसान शिकारों की ओर नज़रें दौड़ाईं। १२३३ ई० के प्रारम्भ में ही वह दिल्ली लौट आया था। एक वर्ष के बाद ही उसने भोपाल के समीप भिलसा नगर पर धावा कर दिया। मिनहज-अस्-सिराज़ हम लोगों को बतलाता है कि "वहाँ एक मन्दिर था जिसे बनाने में तीन सौ वर्ष लगे थे।" धन्यवाद दीजिये अल्तमश और उसके मुस्लिम गुर्गों का। वह प्राचीन शहर—वह प्राचीन

संसार का गर्व योग्य अद्‌भुत नमूना—भाँय-भाँय करने वाले खण्डहर में बदल गया। मिनहज-अस्-सिराज़ हमें बतलाता है कि "उसने (अल्तमश ने) उसे चूर-चूर कर दिया।"

प्राचीन मन्दिरों का विध्वंस—महमूद गजनवी ने मथुरा के विनाश और भव्य मन्दिरों का वर्णन किया है जिनको बनाने में, उसके अनुसार, दो सौ वर्ष लगे थे। स्पष्ट है कि उसने उन्हें चूर-चूर कर दिया था। अब मिन-हज-अस्-सिराज़ हमें बतलाता है कि भिलसा (विदिशा) में भी एक मन्दिर था, जिसके निर्माण में ३०० वर्ष लगे थे। निर्माण-काल की अवधि को लोग अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन मान सकते हैं पर उससे दो बातें स्पष्ट होती हैं कि (१) मुस्लिम लुटेरे भवन-निर्माण कला से इतने अनजान थे कि भारतीय भवनों को आँखें फाड़-फाड़कर ताज्जुब से देखते थे; (२) इतिहास के शिक्षकों एवं साधारण जनता को यह बात हृदय से निकाल देनी चाहिए कि दक्षिण भारत के समान उत्तर भारत में भव्य और आलीशान मन्दिर और महल नहीं थे। विदिशा और मथुरा के भव्य अलंकृत मन्दिरों की उपस्थिति के तथ्यों से प्रमाणित होता है कि उत्तर भारत में भी ऐश्वर्यशाली प्रासाद थे। अतएव यह कोई बिस्मय की बात नहीं है कि अद्वितीय ताजमहल और आगरा तथा दिल्ली के गौरवशाली संगमरमर (स्फटिक) के भवन मुस्लिम आगमन से शताब्दियों पूर्व का निर्माण हैं। इसलिए पाठकों को इस सच्चाई से सचेत हो जाना चाहिए कि अकबर और हुमायूँ के मकबरों जैसे असंख्य मकबरे और मस्जिद वास्तव में राजपूतों के महल और मन्दिर ही हैं।

भिलसा को नष्ट-भ्रष्ट करके और लूटकर अपनी अन्धी इस्लामी रोषाग्नि को तुष्टकर अल्तमश उज्जैन की ओर बढ़ा। वहाँ उसने भगवान् शिव के महाकाल मन्दिर का विनाश किया। इस स्थान पर मिनहज-अस्-सिराज़ एक बहुत महत्त्वपूर्ण विवरण देता है। वह कहता है कि उज्जैन में राजा विक्रमादित्य की एक भव्य मूर्ति थी, जिन्होंने अल्तमश के (१२३४ ई० के) उज्जैन-आक्रमण के १३१६ वर्ष पूर्व राज्य किया था और इन्हीं राजा विक्रम ने हिन्दू सम्वत् चलाया था। समय-समय पर ऐसे प्रमाण मिलते रहते हैं फिर भी विलायती और विलायत पास भारतीय विद्वान् विक्रमादित्य के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते, या फिर उनको राजा

शालिवाहन से मिला-जुला देते हैं जिन्होंने ७८ ई० में एक दूसरा सम्वत् चलाया था।

इस्लामी गुण्डागर्दी के जोश में बड़े धूम-धड़क्के के साथ अल्तमश उज्जैन के महाकाल मन्दिर का शिवलिंग उखाड़कर दिल्ली ले आया। साथ में कुछ ताम्र प्रतिमाएँ भी थीं। इन सभी का उसने क्या किया, यह अज्ञात है। मगर मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरे और अत्याचारियों के काले कारनामों को देखकर यह अनुमान सहज में ही किया जा सकता है कि उसने उन्हें मस्जिदों में परिवर्तित हिन्दू मन्दिरों की सीढ़ियों में जड़वा दिया होगा ताकि उनपर अपने जूते पोंछकर धर्मात्मा (मुसलमान) लोग नमाज़ पढ़ने भीतर जायें। अपने जन्मस्थान में प्रतिष्ठित भगवान् श्री कृष्ण की मूर्ति को औरंगजेब ने आगरा की केन्द्रीय मस्जिद की सीढ़ियों में जड़वा रक्खा है। यह मस्जिद भी एक प्राचीन राजपूत महल था। भगवान् कृष्ण के शिक्षा-निकेतन सन्दीपनी आश्रम एवं भक्त कवि भर्तृहरि के मठ आदि उज्जैन के धार्मिक स्थानों को भी मुसलमानों ने अपने हथौड़ों से चूर-चूर कर दिया।

वर्ष में कम-से-कम एक बार हिन्दू हत्या अभियान की आयोजना करना मुसलमानों का पुनीत धार्मिक कर्तव्य था ताकि वे अधिक-से-अधिक हिन्दुओं को हलालकर उनकी स्त्रियों को लूट सकें, मन्दिरों को पाक और साफ़ कर मस्जिद बना सकें, उनके बच्चों का अपहरण कर मुसलमानों की संख्या बढ़ा सकें तथा गाज़ी कहलाकर अधिक-से-अधिक सबाब लूट सकें। यह वार्षिक हिन्दू हत्या अभियान उनका रिवाज हो गया था, जिसका जन्मदाता डाकू सरदार महमूद गज़नवी था।

जबतक भारत के मुस्लिम अपहर्त्ता शासकों के पास सेना का एक टुकड़ा भी बचा, उन लोगों ने इस रिवाज का दृढ़ता से पालन किया था। एक भी मुस्लिम शासक इसका अपवाद नहीं था—अकबर भी नहीं।

उज्जैन से वापिस लौटने के तुरन्त बाद ही इस रिवाज के अनुसार अल्तमश ने एक दूसरे अभियान् की आयोजना की। मिनहज-अस्-सिराज़ के अनुसार यह अभियान बंनयान (सम्भवतः बयान) के विरुद्ध था। मगर फ़िरिश्ता, तारीखे बदायूंनी और तबक़ात-ए-नासिरी कहते हैं कि यह अभियान मुलतान के विरुद्ध था।

अब उसके विध्वंसों पर पूर्णविराम लगाने का निर्णय कर अल्लाह ने

इस शैतान सुलतान को बाँध लाने के लिए अपना दूत भेज दिया। अल्तमश बीमार पड़ गया। उसे लादकर दिल्ली लाया गया। अप्रैल, १२३६ ई० में उसकी मृत्यु हो गई। विक्रम-स्तम्भ को घेरने वाले २७ मन्दिरों वाले खण्ड-हरों में अल्तमश रहा करता था जिसे कुछ दशक पूर्व उसके ससुर और स्वामी कुतुबुद्दीन ने नष्ट किया था। हिन्दुस्तान की पवित्र भूमि पर आतंक, यातना और अन्धविश्वास का विष फैलाने वाले अल्तमश ने एक साँप से भी गया गुज़रा जीवन व्यतीत किया था, अतः उचित ही वह एक पूर्ववर्ती हिन्दू मन्दिर के गह्वर में गड़ा पड़ा है। कुछ ही कक्षों के बाद उसके बग़ल में एक दूसरा बीभत्स मुस्लिम शैतान अलाउद्दीन ख़िल्जी भी गड़ा हुआ है।

अल्तमश के मकबरे के ऊपर छत नहीं है क्योंकि किसी के पास भी छत बनाने के लिए आवश्यक समय, सम्पत्ति और स्नेह नहीं था। उसके चारों और सिर्फ़ प्राचीन हिन्दू मन्दिरों की दीवारें ही हैं। अतएव उसके निर्माण का प्रश्न ही नहीं उठता। फिर भी एक भावुक बकवास का नमूना देखिए। इसे सुदृढ़ ऐतिहासिक आधार देने का कैसा सुसंगठित प्रयास किया जा रहा है। बड़ी गम्भीरता से पर्यटकों को यह बतलाया जा रहा है कि अल्तमश के मकबरे पर छत क्यों नहीं है? इसलिए कि मरते समय उसने यह इच्छा प्रकट की थी, "मेरे और अल्लाह के बीच में कोई परदा नहीं होना चाहिए।"

इस लचर दलील को सुनकर पर्यटक ऊँचे आसमान पर बैठे अल्तमश की ओर टकटकी लगाए सोते हुए अल्तमश से साक्षात्कार करने की आशा कर बैठते हैं और उन्हें निराश होना पड़ता है। पर्यटक देखते हैं कि अल्तमश को उसी प्रकार गाड़ा गया है जिस प्रकार भारत में अन्य मुस्लिम लुटेरे गड़े पड़े हैं। एक प्राचीन हिन्दू मन्दिर के भूगर्भीय कक्ष (तहख़ाने) में वह गाड़ा गया है। उसकी कब्र भी उसी प्रकार मिट्टी, पत्थर और चूने से भरी हुई है। उसके ऊपर तहख़ाने की छत और ज़मीन की सतह है। कुछ ही सीढ़ियाँ नीचे तहख़ाने का अन्धकारपूर्ण कमरा है। एक असहनीय दुर्गन्ध इस तहख़ाने में व्याप्त है। स्पष्ट रूप से उसके काले कारनामों से परिपूर्ण उसके पशु-तुल्य जीवन ने ही इस दुर्गन्ध को उगला है और शताब्दियों से उगलता चला आ रहा है। इसमें यह दुर्गन्ध धीरे-धीरे अत्यधिक घनी हो गई है।

हमारे पुरातत्त्व विभाग को इसकी सारी गन्दगी साफ़ कर तहख़ाने में

प्रकाश की व्यवस्था कर देनी चाहिए ताकि पर्यटक स्वयं यह देख लें कि ये मुस्लिम आक्रमणकारी और लुटेरे अपने बनाए मकबरों में नहीं वरन् हिन्दू प्रासादों और मन्दिरों के तहख़ानों में बड़े आराम से सोए हुए हैं। ये सभी तहख़ाने एक सुरंग से संयुक्त हैं। कई स्थानों पर ऊपर इन कक्षों तक जाने के लिए सीढ़ियाँ भी बनी हुई हैं।

कुतुब मीनार का निर्माण—ऊपर हमने अल्तमश के शासन का वर्णन किया। इसमें यह कहीं भी नहीं लिखा हुआ कि अल्तमश ने कुतुब मीनार बनवाई है। साधारण पाठकों को शायद यह नहीं मालूम कि हमारे "अन्धे इतिहासकार" उनसे अन्धी आँखमिचौनी का खेल खेल रहे हैं। वर्तमान फ़ैशन के अनुसार "कुतुब-मीनार" से साधारण पाठक यह विश्वास कर लेते हैं कि इस भव्य गुम्बददार और अलंकृत स्तम्भ-निर्माण का झूठा मुस्लिम दावा कुतुबुद्दीन और सिर्फ़ कुतुबुद्दीन के पक्ष में ही है। मगर भाइयो, ऐसा नहीं है। इसे गढ़े गढ़ाए शब्द कुतुब-मीनार से भ्रमित "इतिहासकारों" का एक दल जब इसके निर्माण का श्रेय कुतुबुद्दीन के सिर मँढ़ता है तब एकाएक अल्तमश के प्रायः २०० वर्षों के बाद मैदान में आने वाले शम्स-ए-शिराज यफ़ीफ़ के बयान से उनका सामना हो जाता है।

प्रत्येक मध्ययुगीन मुस्लिम इतिहासकार के समान शम्स-ए-शिराज़ अफ़ीफ़ ने भी झूठों का एक पुलन्दा लिख छोड़ा है। इसका नाम तारीख़े-फ़िरोज़शाही है। कल्पना की एक भंग-तरंग में उसने लिख मारा है कि कुतुब-मीनार का निर्माण अल्तमश ने किया है। फलतः अन्धे और विचार-हीन इतिहासकारों के एक दल ने यह प्रचार करना प्रारम्भ कर दिया है कि अल्तमश ने ही कुतुब-मीनार (वेधशाला) का निर्माण किया था। यह प्रश्न करने पर कि तब इसका नाम कुतुब-मीनार क्यों है, वे यह समझाने का प्रयास करते हैं कि अपने स्वामी कुतुबुद्दीन के प्रति कृतज्ञता प्रकट करने के लिए अल्तमश ने इस स्तम्भ का निर्माण कराकर इसका नाम कुतुब-मीनार रख दिया है।

भारतीय इतिहास और पर्यटक साहित्य ऐसी ही हास्यास्पद ऊँची उड़ानों और झूठे बयानों पर आधारित हैं। कुतुबुद्दीन या अल्तमश के शासन-युग से अलग जो मौलिक तथ्य इस स्तम्भ-निर्माण का दावा करता है, उसकी सर्वथा उपेक्षाकर ये लोग उसे दबा देते हैं। हम जानते हैं कि

मुस्लिम लुटेरे भारतीय भवनों की भव्यता देख-देखकर एकदम हक्के-बक्के रह गए थे। अपने अज्ञान और विस्मय से वे यह विश्वास करते थे कि इन भवनों के निर्माण में अवश्य ही दो-तीन सौ वर्ष लगे होंगे। इन भवनों के बनाने योग्य न तो समय था न सम्पत्ति, न धीरज था न शान्ति। साथ ही "कुतुब-मीनार" जैसे स्तम्भ को बनाने योग्य आवश्यक यान्त्रिक-ज्ञान भी उनके पास नहीं था।

यह भी विचारणीय है कि इसका अलंकरण सम्पूर्ण रूप से हिन्दू परम्परा के अनुसार है। इसके अरबी लेख परवर्ती जालसाज़ियाँ हैं ताकि हिन्दू निर्माण के गौरव पर झूठी मुस्लिम पालिश की जा सके। इसके चारों ओर २७ मन्दिरों का समूह था। इसका प्रमाण कुतुबुद्दीन के खुदे लेखों में है। यह खुदा हुआ लेख स्पष्ट बतलाता है कि मन्दिरों के बीच में खड़ा यह हिन्दू स्तम्भ एक केन्द्रीय हिन्दू (वेधशाला) नक्षत्र-निरीक्षण-स्तम्भ था।

मुस्लिम बरबादी की याद दिलाने वाले इस तथाकथित कुतुब एवं इसके चारों ओर बिखरे खण्डहरों पर संस्कृत की खुदाई के अवशिष्ट अंश अभी भी देखे जा सकते हैं। कुतुब-मीनार एक अरबी शब्द है जिसका अर्थ है "नक्षत्र-निरीक्षण का स्तम्भ।" यह महरौली में स्थित है। महरौली (मिहिर-अवलि) एक संस्कृत शब्द है जो राजा विक्रमादित्य के दरबार के प्रसिद्ध ज्योतिषी मिहिर की यादगार में बनाए गए उपनगर की ओर संकेत करता है।

अतएव यह स्पष्ट है कि यह तथाकथित कुतुब-मीनार विक्रम स्तम्भ है। इसे प्रसिद्ध विद्वान् सम्राट् विक्रमादित्य ने नक्षत्रों के निरीक्षण के लिए ईसा से पहले बनाया था। इसका आकार, प्रकार और नक़्शा भी उनके प्रसिद्ध दरबारी ज्योतिषी मिहिर ने बनाया था। अतएव इस स्तम्भ के निर्माण का श्रेय किसी मुस्लिम-पिशाच कुतुबुद्दीन, अल्तमश या अलाउद्दीन खिल्जी को नहीं मिलना चाहिए। हाँ, कुछ भ्रमित इतिहासकार अलाउद्दीन खिल्जी का नाम भी रटते रहते हैं और तीनों ही भ्रमित दल अपनी-अपनी कहानियाँ पेश कर देते हैं।

ये भ्रमित इतिहासकार साधारण गरीब पर्यटक से लेकर चम्मच-पुष्ट अफ़सर तक को यह कह सकते हैं कि दिल्ली पर शासन करने वाले औरंगज़ेब और बहादुरशाह ज़फ़र तक के प्रत्येक विदेशी मुस्लिम अपहर्ता शासकों

ने अपनी-अपनी छेनियों से इस स्तम्भ (यानी कुतुब-मीनार) को वर्तमान रूप प्रदान किया है।

जितनी जल्दी इस सत्य की तोड़-मरोड़ बन्द होगी उतना ही अच्छा है। हमारे छात्रों, शिक्षकों एवं जनता को यह माँग करनी चाहिए कि लुटेरे और हत्यारे मुसलमानों के बारे में "अरेबियन नाइट" जैसी कल्पित कहानियाँ गम्भीर इतिहास कहकर अब न पढ़ाई जाएँ। साथ ही हिन्दुस्तान के पर्यटक साहित्य में भी ये अनिवार्य संशोधन किए जाएँ।

(मदर इण्डिया, अप्रैल १९६७)

: ७ :

रजिया

मध्यकाल का मुस्लिम-दरबार नरक की एक मशीन था। संगदिल, शैतान सुलतान इसका केन्द्रीय चक्का था तथा मुस्लिम कुल्हाड़ी माँजने वाले गुर्गों के दलपति इस मशीन के शेष कल-पुर्जे।

घूस, भाई-भतीजावाद, हत्या, नर-संहार, बलात्कार एवं लूट रूपी कोयले-पानी से चालित इस मशीन का काम हिन्दू एवं हिन्दुस्तान की महीन कटाई करना ही था।

कौवों और गिद्धों की भाँति हिन्दू मलबों पर टूटने वाली मुस्लिम अपहर्त्ताओं एवं उनके चुनिन्दा लोगों की यह मशीन बड़ी तेज़ी से चली और हज़ार वर्षों तक लगातार चलती ही रही। खूनी टुकड़े खूब विकीर्ण हुए। दमघोंटू दुर्गन्ध चारों ओर व्याप्त हो गई। कपट, कामुकता और विश्वासघात की गोद में लिपटे, जो इस मशीन से जाकर नहीं चिपटे, वे बड़ी बुरी तरह जले, गले और बरबाद हो गए। रज़िया का जीवन इसका ज्वलन्त प्रमाण है, हालाँकि वह स्वयं एक मुसलमान थी, एक मुसलमान गुलाम सुलतान की एक मुसलमान गुलाम बेटी।

रज़िया अल्तमश की अनाथ पुत्री थी। भेड़ियों से भरे मुस्लिम दरबार में उसकी जवानी सहज प्राप्य थी। ज़ोरों से चलते मशीन के पट्टे में वह बुरी तरह फँस गई। कुछ ही पलों में रज़िया राज-गद्दी से गेंद की भाँति ऊपर उछाल दी गई। उसका नारी-शील चूर-चूर होकर धूल में मिल गया।

दिल्ली की गलियों में अनेक मध्यकालीन मुस्लिम कब्रें फटे हाल पड़ी हुई हैं। इनमें से एक रज़िया की भी है। कैथल में बन्दी बनाकर, दिल्ली की गलियों में घसीटकर उसकी हत्या की गई। जिस स्थान पर उसकी हत्या हुई उसी स्थान पर उसे दफ़ना दिया गया। पुरानी दिल्ली के तुर्कमान

गेट के एक फर्लांग भीतर एक कब्रीला ढेर है। इसी के नीचे रज़िया गड़ी पड़ी है।

अप्रैल, १२३६ ई० के अन्त में अल्तमश की मृत्यु हुई। मुस्लिम दरबारी रिवाज के अनुसार 'बेटों' में गद्दी की छीन-झपट होने लगी। मध्यकालीन मुस्लिम दरबारी जीवन का 'बेटा' शब्द बहुत ही व्यापक और धुंधला है। मुस्लिम शासकों का लम्बा-चौड़ा हरम मुर्गियों के दड़बों से भी अधिक उपजाऊ होता था। मुर्गीराज हरम में मुख्य-द्वार से प्रवेश करते थे और चोर-द्वारों से गुप्त प्रेमीगण। बच्चों की पैदावार बड़ी तेज़ी से बढ़ती थी। काम दूसरों का था, मगर नाम सुलतान का। हर नये जन्म की घोषणा पर सुलतान का मुस्लिम सीना बित्ता-भर फूल जाता था।

गद्दी के शाही दावेदार अनेक होते थे। उत्तराधिकारी संग्राम का राजमार्ग सभी के लिए खुला था। गुलाम, भतीजे, भाई, भौजाई, अंग-रक्षक, चाचा, चाचियाँ, दादियाँ, पुकार-माँ, धाय-माँ, रसोइए, खोजे, पदचर और मन्त्री ही नहीं, वेश्या के दलाल भी इन निश्चित दंगों में भाग लेते थे।

नासिरुद्दीन मुहम्मद एक लापरवाह, चरित्रहीन और कामुक शाही जवान था। उसके पिता अल्तमश के जीवन में ही उसकी असामयिक मृत्यु हो गई थी। वह गुप्त रोगों का रोगी भी था। फिर भी चापलूस मिनहज-अस्-सिराज़ उसे 'विद्वान्, मेधावी, वीर, साहसी, उदार और दातार' कहने से नहीं चूकता। प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम ईतिहासकार ने इसी प्रकार दिल खोलकर हर शैतान की आरती उतारी है। मगर बाद में जब वे उनकी जीवन-घटनाओं का वर्णन करते हैं तो वही लूट, कामुकता और हत्या का बीभत्स खूनी किस्सा ही सामने आता है। प्रचलित भारतीय पाठ्य-पुस्तकों ने सरसरे तौर पर लिखी इन्हीं मशीनी-उपाधियों को चुन-चुनकर इकट्ठा किया और बड़े इतमीनान से मध्यकालीन मायावी मुसलमानों की काली करतूतों पर परदा डाल दिया। अब वे इस बात का नगाड़ा बड़े ज़ोरों से पीट रहे हैं कि उनमें से हर एक शासक न्यायी, कुलीन, बुद्धिमान, विद्वान्, उदार, धार्मिक और विवेकशील था।

अल्तमश के बाद रुकनुद्दीन फ़िरोज़शाह गद्दी पर बैठा। यह एक तुर्की-दासी का पुत्र था, जिसका शील कदापि सुरक्षित नहीं रहा होगा। विशेष

कर उस अवस्था में जब हम अल्तमश को हमेशा चारों ओर घूमता, फिरता और सूंघता पाते हैं।

प्रथा-पालन के लिए सिराज अपने सधे-सधाये सुर और स्वर में उसकी आरती उतारता है कि "दया और इन्सानियत से ओत-प्रोत (वह) एक उदार, सुन्दर राजा था।" मई, १२३६ में वह गद्दी पर बैठा। "उनके बैठने से (राज) गद्दी और ताज दोनों ही धन्य-धन्य हो गए।" यहाँ पर भी सदा की भाँति मायावी मुस्लिम इतिहास का कट्टर झूठ जन्म ले रहा है। दो ही पंक्तियों के बाद उसी मुस्लिम इतिहासकार ने लिखा है कि "अनुचित स्थानों पर (हिन्दू) जनता का धन लुटाते हुए उन्होंने अपने आपको महफ़िलों की मौज-मस्ती के हवाले कर दिया। कामुकता और विलासिता में वे इतना ग़र्क हो चुके थे कि सरकारी काम उपेक्षित होने के कारण एकदम उलझ गए। उनकी माँ शाह तुरकन देश के सरकारी कामों में दख़ल देने लगीं। पति के जीवनकाल में दूसरी औरतें उन्हें ईर्ष्या और घृणा से देखती थीं। उन सभी को सज़ा देने का अब इन्हें मौक़ा मिला। बदले के क्रोध में अन्धी होकर उन्होंने अनेक स्त्रियों को मौत के घाट उतार दिया। (अपनी एक प्रतिद्वन्द्विनी सौत के पुत्र) शाहज़ादे कुतुबुद्दीन की उन्होंने आँखें फुड़वा दीं और बाद में मरवा दिया।"

अल्तमश के बेटों में एक गियासुद्दीन मुहम्मद भी था। इसने रुकनुद्दीन से अवध में छेड़छाड़ प्रारम्भ कर दी। शाही लुटेरों का एक दल ख़ज़ाना लूटकर लखनौटी से दिल्ली ला रहा था। उसने इसे लूट लिया। इसके अतिरिक्त उसने हिन्दुस्तान के बहुत से शहरों को भी लूटा। बदायूं के शासक मलिक इजुद्दीन मुहम्मद सला री, मुलतान-शासक मलिक इजुद्दीन कबीर खाँ, हाँसी-शासक मलिक सैफ़ुद्दीन कोची और लाहौर-शासक मलिक अलाउद्दीन ने आपस में षड्यन्त्र रचकर विद्रोह कर दिया। मध्यकाल के मुस्लिम दरबारी और शासक ही नहीं, अपितु चपरासी भी कट्टर इस्लामी धर्मान्धता की वार्षिक तरंग में गोता खाता था। हिन्दू घरों को लूटकर ग्राम्य क्षेत्रों को तबाह करना तथा हिन्दू स्त्रियों एवं बच्चों का बलात् हरण-भोगकर उन्हें मुसलमान बनाना अपना पवित्र इस्लामी कर्तव्य मानता था। इसीलिए कट्टर मुस्लिम गुण्डों के ये दादा जब दिल्ली दरबार से विद्रोह करते थे, तब अपने उबलते-उफ़नते बेज़ोर इस्लामी जोश में हिन्दुओं की हत्या,

हरण, और लूट पर पिल पड़ते थे। मुसलमानी शासकों के दिल्ली-विद्रोह का एक ही अर्थ था कि वे हिन्दू धन की लूट का बँटवारा दिल्ली के सुलतान से नहीं करेंगे। हर हालत में हिन्दुओं को ही चढ़ाई का कड़ुआ स्वाद चाखना पड़ता था, चाहे वह काफ़िरों पर पवित्र वार्षिक इस्लामी चढ़ाई हो, चाहे क्रूर-भोगी कट्टर मुसलमानों का बेमौसम विद्रोहात्मक नाटकीय नृत्य।

रुकनुद्दीन विरोध का दमन करने दिल्ली से सेना लेकर निकला। क्रूर मुस्लिम शासन के हज़ार वर्ष एक बड़ा, विशाल कड़ाह-सा प्रतीत होता था, जिसमें असन्तोष और विद्रोह का उफान बराबर आता रहता था।

रुकनुद्दीन की अनुपस्थिति का लाभ उसकी पोष्य बहिन रज़िया ने उठाया। प्रतीत होता है कि मायावी मुस्लिम हरम अण्डा सेने की एक विशाल मशीन था, जिसमें से प्रत्येक दिन सैकड़ों पोष्य भाई, बहिन, पुत्र और पुत्रियाँ निकलती रहती थीं। रज़िया में राजगद्दी का भोग करने की तीव्र इच्छा जागृत हो गई। सहायता के लिए कुछ गुलाम, जो उसके चारों ओर चक्कर काटते रहते थे, आगे आए। उनकी नज़र शाही गद्दी और शाही जवानी, दोनों पर थी।

दरबार के धूर्त और कामुक मुस्लिम गिरोह-नेताओं के लिए रुकनुद्दीन की बूढ़ी माँ बेकाम थी। वे रजिया की सहायता के लिए आगे बढ़े ताकि परदे के बाहर खींचकर उसका अबाध भोग कर सकें। रुकनुद्दीन की बूढ़ी माँ क़त्ल कर दी गई।

१२३६ ई० में रज़िया राजगद्दी पर शान से बैठ गई। अपने पोष्य भाई के विरुद्ध एक पोष्य बहिन का गद्दी के लिए यह एक खुला विद्रोह था। गद्दी से दूर सुलतान को बन्दी बनाने के लिए उसने एक सेना भेज दी। जिस माह उसे बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया उसी माह उसकी मृत्यु हो गई। इससे स्पष्ट प्रतीत होता है कि रज़िया ने बड़े ठण्डे दिल से उसकी हत्या करवा दी ताकि न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसुरी।

इस प्रकार रुकनुद्दीन का इस्लामी शासन छः महीने २८ दिन का था। उसके बारे में हमें ज्ञात होता है कि "महफ़िल और काम-क्रीड़ा का वह ऐसा कीड़ा था कि गायकों, हँसोड़ों और लौण्डों पर वह प्रायः इनाम बरसाता रहता था। वह इतनी लापरवाही से धन लुटाता था कि शराब में मदमस्त

हाथी पर सवार होकर सड़कों और बाज़ारों में (मुस्लिम) जनता के लूटने के लिए सोने का लाल टंका वह फेंकता फिरता था।"

ठीक यही वर्णन भारत के प्रत्येक मायावी मुस्लिम शासन के ऊपर, ज़रा से फ़र्क से, एकदम फ़िट बैठता है। शराब और साक़ी की महफ़िलों में सभी लोगों ने आँख-बन्दकर हिन्दू-धन लुटाया था। मुस्लिम लुच्चे और गुण्डे इससे और मोटे होकर दूने उत्साह से हिन्दू-गृहों की लूट-भोग में पिल पड़ते थे। फ़र्क सिर्फ़ इतना ही था कि रुकनुद्दीन जैसे लोगों ने इसे खुले आम भारत के मुस्लिम क्षेत्रों (या दूर मक्का) में बरसाया जबकि औरंगज़ेब जैसे हृदयहीन और डंकदार लोगों ने इसे चुनिन्दा डाकुओं और हत्यारों के बीच बाँटा।

अब गद्दी पर रज़िया थी। तबक़ात-ए-नासिरी के लेखक मिनहज-अस्-सिराज रज़िया के जीवन-चरित्र की बिसमिल्लाह करते हैं। झूठ का ढिंढोरा पीटकर वे गुलामी आवाज़ में रज़िया की आरती उतारते हैं—"एक महान् साम्राज्ञी, बुद्धिमती, न्यायी और उदार, प्रजा-पालक, सच्चा न्याय करने वाली प्रजा-रक्षक" आदि, इत्यादि। मगर हम ऊपर देख चुके हैं कि षड्यन्त्र और हत्यारे मुसलमान लोगों से रज़िया भी कम फ़रेबी और कम खून की प्यासी नहीं थी। अपने ही सुलतान भाई रुकनुद्दीन की हत्या कर उसने गद्दी हड़पी थी। शायद उसकी माँ के खून से भी उसके हाथ लाल थे।

कुछ लोग कहते हैं कि अल्तमश ने रज़िया में नेता का गुण पाया था। अतएव उसकी आख़िरी ख्वाहिश थी कि रज़िया ही सुलताना बने। बकवास और कोरी बकवास। इस गप्प को रज़िया के गद्दीनशीन होने के बाद गढ़ा गया है। चापलूस दरबारियों ने इसे गढ़ा है क्योंकि अपनी मर्दानगी के अभिमान में ऐंठे कुछ मुस्लिम दरबारियों ने चोली-सरकार के सामने सिर झुकाना मंजूर नहीं किया। खुद वज़ीरे-आज़म निज़ामुल् मुल्क जुनैदी ने रज़िया को सुलताना नहीं माना। उसने रुकनुद्दीन से विद्रोह करने वाले अन्य अधिकारियों के साथ मिलकर संग्राम की घोषणा कर दी। लोग "देश के विभिन्न भागों से आ आकर दिल्ली के दरवाज़ों पर जमा होने लगे और काफ़ी दिनों तक दुश्मनी चलती रही।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृष्ठ ३३३)।

"दिल्ली के दरवाज़ों" के वर्णन से यह स्पष्ट होता है कि तुर्कमान गेट

(जिसके भीतर रज़िया गड़ी पड़ी है) तथा पुरानी दिल्ली के अन्य द्वार रज़िया बेगम के समय में विद्यमान थे। इसलिए यह विचार एकदम भ्रम-पूर्ण और सफ़ेद झूठ है कि पुरानी दिल्ली को शाहजहाँ ने १७वीं शताब्दी में बनवाया था।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात है कि रज़िया ने चार वर्ष से भी कम समय तक राज्य किया था। इसके अतिरिक्त उसका सारा शासन-काल तीव्र युद्ध, विद्रोह, दंगों और झगड़ों का अखाड़ा था। फिर कट्टर मुस्लिम लेखकों ने उसे नायाब हिरोइन के रूप में चित्रित करने का जी तोड़ प्रयास किया है। इन लेखकों के अनुसार रज़िया ने हिन्दू-मुस्लिम एकता का जी तोड़ प्रयास किया, जाति-भेद करने वाले अतिरिक्त हिन्दू करों को हटाया, जाति-भेद-हीन न्याय दिया और विचारवान सुधार लाने की कोशिश की। मगर सबसे ज्यादा आश्चर्यजनक और हास्यास्पद बात तो यह है कि ऐसी हास्यास्पद बकवास का दावा प्रत्येक भारतीय मुस्लिम शासक के बारे में किया गया है, जबकि बिना एक भी अपवाद के हर एक मुस्लिम शासक शैतान का ही अवतार था। अपने दुष्कर्मों से इन लोगों ने भारत में जहन्नुम जैसी आग जलाई थी, जिनमें हिन्दू जल-तड़प कर मरते थे।

मुस्लिम लेखकों की यह बकवास, यह कल्पना की रंगीन उड़ान, यह गप्पबाज़ी और ये झूठी कहानियाँ मुसलमानों के विचार और सुधार के बीच में अड़ी-गड़ी पड़ी हैं। उन्हें भारत का निष्ठावान नागरिक बनने में ये अड़ंगा लगाती हैं। भारतीय मुसलमानों को प्रारम्भ से ही यह बतला-बतला कर विश्वास दिलाया जा रहा है कि क्रूर पीड़ाएँ और सामूहिक नर-संहार, जिन्हें हज़ार वर्ष तक हिन्दुओं ने मुस्लिम कुशासन में भोगा है, "बुद्धिमानी और न्याय का अद्वितीय" उदाहरण हैं। फिर वे मूर्खता और अन्याय क्यों न करेंगे? स्वाभाविक ही है कि वे उस रोल में अपने बाप-दादाओं को भी मात देने का प्रयास करेंगे और उसी प्रकार का न्याय करने की और अधिक बुद्धिमानी दिखाएँगे।

इसके विपरीत प्रतिदिन स्कूलों और कालिजों में तथा सरकारी रिकार्डों के द्वारा हिन्दुओं के मस्तिष्क में यह भरा जा रहा है कि अमानुषिक मुस्लिम अत्याचार उनके हृदय की अद्भुत उदारता थी। उनका महान् गौरवशाली कार्य था। हिन्दुओं से यह प्रार्थना कराई जाती है कि भविष्य में भी उन्हें

ऐसी ही उदारता प्राप्त हो। इतिहास को झूठ का पुलिन्दा नहीं होना चाहिए। तथ्य और सत्य की शिक्षा तो दूर रही, साम्प्रदायिक मैत्री और राजनीतिक दृष्टिकोण से भी शिक्षा-प्रचार का अनुमोदन नहीं हो पाता। यह न्याय नहीं है।

गौरवमय युग मानकर बिलखते अतीत का झण्डा फहराना, मामूली भाई-भाई का रगड़ा कहकर अबाध खूनी कत्ल-ए-आम को टाल देना और क्रूरतम अत्याचार को दुलारा शासन कहकर पुचकारना साम्प्रदायिकता के कैंसर को छिपाना है। छिपाने से रोग मिटता नहीं, उल्टे वह दिन दूना और रात चौगुना बढ़ता ही जाता है।

रज़िया की गद्दी नशीनी में असन्तुष्ट अवध-शासक मलिक नासिरुद्दीन ने अपनी उन्नति का स्वप्न देखा। तुरन्त सेना बटोरकर दिल्ली जा पहुँचा। बहाना बड़ा सुन्दर था, मुसीबत में रज़िया की सहायता करना। इरादा था गद्दी और गद्दीवाली दोनों को हथियाना। चाल बड़ी चालू और पुरज़ोर थी। मगर यह दिन की कल्पना और रात का सपना चूर-चूर हो गया। बाग़ियों ने उसे पकड़कर मौत की गोद में सुला दिया।

दिल्ली घिराव में थी और रज़िया प्राचीर के भीतर बन्द। एक दुर्ग-द्वार के रक्षक कुछ विद्रोही सेना-नायक थे। रज़िया ने अपने हाव-भाव के बाण उधर छोड़े और वह अपनी सेना सहित घिरी हुई दिल्ली से दूर पहुँच गई।

यमुना किनारे पड़ाव डाले चैन की साँस ले उसकी सेना हिन्दू खेतों पर टूट पड़ी। उस प्रकार फ्रेश होकर दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। दोनों तृप्त सेनाओं में अनिर्णायक झड़पें होने लगीं। इस उथल-पुथल में रज़िया अब नाम की सुलताना थी। सैन्य-विजय की कोई आशा भी नहीं थी। तब कुछ विद्रोही और कपटी नायकों को जीतने अपने कामुक और कपटी हाव-भाव पर उतर आई। विरोधी नेताओं पर कुछ कामक संकेत आज़माए गये। मलिक इजुद्दीन मुहम्मद सालार तथा मलिक इजुद्दीन कबीर खाँ रज़िया के जवान तम्बू में रात बिताने आए। उन लोगों को यह तय हुआ कि मलिक जानी, मलिक कोची और वज़ीरे-आज़म निज़ामुल् मुल्क जुनैदी को बातचीत के बहाने बुलाकर बन्दी बना लिया जायेगा। इन तीनों को षड्यन्त्र की भनक पड़ गई। वे तीनों भाग गये।

कपटी और दग़ाबाज़ नर-मुसलमान की भाँति रज़िया ने विद्रोहियों की क़तार तोड़ दी। अब उसकी सेना ने भागते विद्रोहियों का पीछा किया। अनेक लोगों के साथ तीनों ही पकड़े गये। रज़िया ने सबकी हत्या कर दी।

कट्टर मुस्लिम गुलाम सुलतानों से हिन्दुओं ने कभी भी समझौता नहीं किया था। जब १२३६ ई० में रज़िया दिल्ली की अपहृत-गद्दी पर बैठी तो हिन्दुओं ने स्वतन्त्रता-प्राप्ति के लिए पुनः एक साहसिक कदम उठाया। एक विद्वान् और वीर हिन्दू नार ने वीर हिन्दुओं की एक सेना जमा की। इसमें भाग लेने सिन्ध और गुजरात आदि प्रान्तों से भी देश-भक्त हिन्दू आये थे।

सिराज़ के अनुसार नार ने "इस्लाम के लोगों से खुली लड़ाई छेड़ दी।" (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ २, पृ० ३३६)। मार्च, १२३७ ई० में यानी रज़िया के गद्दी हड़पने के पाँच महीने के भीतर ही ढाल, तलवार, बाण आदि अस्त्र-शस्त्र लेकर एक हज़ार हिन्दू वीर "दो दलों में जामा मस्जिद तक आए। दूसरा दल कपड़ा बाज़ार होकर मुइज्जी के दरवाज़े में इसे मस्जिद समझकर प्रविष्ट हो गया। दोनों ओर से उन लोगों पर चढ़ाई कर दी। तलवारों से अनेक धर्मात्मा (यानी मुसलमान) मारे गये और अनेक भागती भीड़ ने कुचल दिए।" इससे पहले कि यह छोटी मगर वीर हिन्दू सेना नगर पर अधिकार करे "वक्षत्राण, पृष्ठत्राण, शिरस्त्राण आदि जिरहबख़्तर पहने, भाले और ढाल आदि हथियारों से लैस (मुस्लिम सेना) चारों ओर से एकत्रित हो, जामा मस्जिद पर चढ़ने लगी··· (खुदा के न्याय के भय से) मुसलमान जो (दूसरी) मस्जिदों के शिखर तक चढ़ गये थे, ईंट और पत्थर नीचे लुढ़काने लगे।" बख़्तरबन्द मुस्लिम सेना से लड़ते हुए एक हज़ार वीर हिन्दू योद्धाओं ने स्वतन्त्रता की देवी के चरणों पर अपने प्राणों की आहुति चढ़ा दी।

झूठे मध्यकालीन इतिहास की अनेक उलझनें इस विवरण से सुलझती हैं। रज़िया-शासन के सम्पूर्ण वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि जिस दिल्ली का इसमें वर्णन किया गया है वह आज की पुरानी दिल्ली ही है। अतएव यह गप्पबाज़ी एकदम बन्द हो जानी चाहिए कि पुरानी दिल्ली की नींव शाहजहाँ ने १७वीं शताब्दी में डाली थी। दूसरे, इसी वर्णन में एक स्थान पर नूर-किले का वर्णन है। यह नूर-किला स्पष्ट रूप में लालकिला ही है,

क्योंकि इस नूर-किले यानी लालकिले से ही एक प्रमुख सड़क इस तथा-कथित जामा-मस्जिद तक जाती है। तीसरे, इसपर भी ग़ौर कीजिए कि जिस लाल-किले और जामा-मस्जिद के बनाने का इनाम शाहजहाँ को १७वीं शताब्दी में मिलता है, वही जामा-मस्जिद, और वही लाल-किला शाहजहाँ की पैदाइश से भी ४०० वर्ष पहले रज़िया के समय में जीता-जागता मौजूद खड़ा था। चौथे यह भी क़ाबिले ग़ौर है कि हिन्दुओं ने सबसे पहले जामा-मस्जिद को ही अपने कब्ज़े में किया। इसका एक ही अर्थ है कि यह हिन्दुओं का मन्दिर था और मुसलमानों ने इसपर बलात् अपना अधिकार कर इसे मस्जिद बना दिया था।

कुछ आगे बढ़िए। तैमूर लंग की लुटेरी सेना ने १३९८ ई० के क्रिसमस में दिल्ली पर आक्रमण कर दिया। तब हिन्दू इस तथाकथित जामा मस्जिद में ही जमा हुए थे। इसका वर्णन उसने स्वयं अपनी जीवनी में किया है। इससे यह पूर्ण-रूपेण प्रमाणित हो जाता है कि जिस जामा-मस्जिद को हम शाहजहाँ का बनाया हुआ मानते हैं उसे शाहजहाँ ने नहीं बनाया। वह हिन्दुओं का मन्दिर था। पाँचवाँ निष्कर्ष यह भी निकलता है कि हिन्दुओं का दूसरा दल जो वर्त्तमान चावड़ी बाज़ार से निकल, मस्जिद समझकर, जिस दूसरे अपहृत हिन्दू-भवन (मुइज्जी) में घुसा था, वह भी आस-पास में ही मौजूद था।

रज़िया के छोटे चार वर्षीय शासन-विवरण से पाठकों को यह यक़ीन हो जाना चाहिए कि हर एक मुस्लिम राजा, चाहे वह नर हो या नारी, हिन्दुओं से व्यवहार करते समय शैतानों के दादा और लुटेरों के बाप हो जाते थे।

विलास-विषाक्त दरबारी वातावरण में गद्दी पर बैठी जवान रज़िया स्वयं ही एक पुरस्कार थी। उसके लिए विलासी दरबारी आपस में सिर फुड़ौबल किया करते थे। मुस्लिम दरबारी जीवन के पापी भँवर में फँसी रज़िया को लोगों का सहारा लेने के लिए अपनी जवानी का सौदा करना पड़ता था। अनेक लोग इस लड़की को धमकाने में सफल भी हुए। इनमें अमीर जमालुद्दीन याकूत नामक एक गुलाम था। वह घुड़साल का मुखिया (और पहला सेवक) था। घुड़सवारी का आनन्द लेने के समय रज़िया के साथ वही बाहर जाता था। कामुक सम्बन्ध घनिष्ठ हो जाने पर वह

रज़िया का निजी सहायक बन गया। इस तरक्की प्राप्त याक़ूत का घनिष्ठ सम्बन्ध रज़िया की आँखों को भाता था मगर अन्य दरबारियों की आँखों में वह बुरी तरह चुभता था।

उसके साथ घुड़सवारी में बाहर जाते समय भयानक भूत जैसा काला लबादा, जो मुस्लिम औरतों का परिधान है, रज़िया ने त्याग दिया था। वह मर्दाना कोट और टोपी पहनने लगी थी।

ग्वालियर की नगर-टुकड़ी रज़िया की उपेक्षा करती आ रही थी। कभी-कभी संदेहात्मक दो-तरफ़ा रुख़ भी अपना लेती थी। क्षेत्रीय उपद्रवों तथा विद्रोह-दमन के व्यय के साथ-साथ विरोधी दरबारियों को घूस दे देकर रज़िया को उन्हें मिला रखना पड़ता था। इससे शाही ख़ज़ाना जब एकदम सूख गया तो ग्वालियर पर सेना भेज दी गई। वह बड़ी चिन्तित थी क्योंकि ग्वालियर के मुसलमानों ने लूट-भाग भेजना बन्द कर दिया था। अब ग्वालियर को मैदान का दर्शक नहीं, खेल का खिलाड़ी बनना पड़ा। दृढ़ नेतृत्व के अभाव के कारण, बिना प्रबल प्रतिरोध के ग्वालियर का पतन और दमन हो गया।

ग्वालियर पतन के तुरन्त बाद ही लाहौर के मुस्लिम-शासक मलिक इजुद्दीन कबीर खाँ ने १२३९ ई० में विद्रोह कर रज़िया के शासन को चुनौती दे दी।

रज़िया ने कूच कर दिया। लम्बी लड़ाई के उपरान्त भी रज़िया बाग़ी कबीर खाँ का दमन न कर सकी। उलटे मुलतान और उसके आस-पास का भू-भाग उसे लूट-लगान के लिए सौंप देना पड़ा।

इस कष्टकारी लाहौर अभियान से रज़िया अप्रैल, १२४० ई० में लौटी ही थी कि तबरहिन्द का शासक मलिक अलतूनिया विद्रोह कर बैठा। रज़िया के असंतुष्ट दरबारी भी उससे जा मिले। इससे उसके न्यायी, बुद्धिमान और दातार होने के झूठे साम्प्रदायिक मुस्लिम प्रचार का पर्दाफ़ाश हो जाता है।

रज़िया तबरहिन्द की ललकार को शान्त करने निकली। अभी तक अपने फटे शासन पर चिप्पी लगा-लगाकर किसी प्रकार उसने उसे बचा रक्खा था। उसे कोई निर्णायक विजय नहीं मिली थी। तबरहिन्द में उसे हार ही जाना पड़ा। अपने अस्तबलची प्रेमी के साथ रज़िया बन्दी बना ली

गई। परम्परागत मुस्लिम पीड़ा भोगकर याकूत को जान देनी पड़ी। रज़िया तबरहिन्द के तहख़ाने में फिकवा दी गई।

रज़िया मुट्ठी में थी। बाग़ी शासक अलतूनिया ने रज़िया के साथ बलात्कार किया। मुस्लिम इतिहासकारों ने इसे शादी का फ़तवा दिया। अपने ही कामुक जाल में कसी-फँसी रज़िया और अलतूनिया अपनी सेना लेकर दिल्ली के लिए चल पड़े।

रज़िया के तबरहिन्द-गमन के बाद ही मुइज्जुद्दीन अपने आपको दिल्ली का सुलतान घोषित कर, शाही ख़ज़ाना भरने के लिए लूट-कर वसूल करने में जुट गया था। रज़िया और अलतूनिया की मिलीजुली सेना को रोकने के लिए उसने भी सेना बटोरी।

लड़ाई में अलतूनिया और रज़िया की संयुक्त सेना हार गई। रज़िया का सितारा डूबा देखकर सारे मायावी मुस्लिम दरबारियों ने रज़िया से कन्नी काट ली। गंजेड़ी यार किसका, दम लगाया खिसका। शीघ्र ही रज़िया और अलतूनिया की हालत ख़स्ता हो गई। इसी हाल में जब वे दोनों भटक रहे थे तब १२४० ई० में लोगों ने उन्हें ख़त्म कर दिया। मिनहज-अस्-सिराज़ इसका श्रेय हिन्दुओं को देता है। हो सकता है कि पुनः गद्दी हथियाने के लिए वे हिन्दुओं को लूट-मारकर धन जमा कर रहे हों। मुहम्मद बिन क़ासिम के समय से ही धर्मान्ध मुस्लिम गिरोहबाज़ों ने हिन्दू सम्पत्ति को लूटकर उन्हें बलात् मुसलमान बनाना जारी रक्खा था। कमज़ोर दिलवाले मुसलमान बन भी जाते थे। इस प्रकार मुस्लिम संगीन भारत में घुसती गई, फूलती चली गई और देश तबाह होता चला गया।

रज़िया और अलतूनिया का काँटा उखाड़ने वाले हिन्दुओं को बधाई मिलनी ही चाहिए। उन्होंने तबाही के ज़हरीले पौधों को दुबारा पनपने नहीं दिया। उनकी जड़ जमने से पहले ही उन्हें उखाड़ फेंका।

यह भी हो सकता है कि मिनहिज-अस्-सिराज़ ने जान-बूझकर झूठ लिख मारा हो क्योंकि कोई भी मुसलमान अपने भूतपूर्व सुलतान की बेटी की हत्या का आरोप अपने सिर पर लगने देना नहीं चाहता था। दरबारियों के नाराज़ होने का भी भय था। सम्भव है कि फन्नेशाह मुस्लिम सेना ने रज़िया का शील-भंग करने के बाद उसकी हत्या कर यह अफ़वाह उड़ा दी हो कि रज़िया की हत्या हिन्दुओं ने की है। मध्ययुगीन मायावी मुस्लिम

इतिहासकारों की आदत थी कि वे अपना दोष हिन्दुओं के सिर मँढकर पाक-साफ़ हो जाते थे।

तीन वर्ष और छः दिन का रज़िया का शासन संकट और मारकाट से भरा हुआ है। उसका अन्त अचानक और रक्त-रंजित हुआ। किसी प्रकार लोग इसे रज़िया का शासन-युग मान सकते हैं। कामुक दरबारियों से भयभीत, दीवार से सटी, अपना शरीर और राज बचाने के लिए उसने कई लड़ाइयाँ लड़ीं मगर सभी में वह हार गई। प्रजा की भलाई सोचने का उसे समय ही कब मिला ? अगर मान भी लिया जाए कि उसे समय मिला था तो भी उसने परम्परागत मुसलमानी चश्मे से ही हिन्दुओं को देखा था। हिन्दुओं का कबाब बनाकर उसने खाया और खिलाया था। शराब, साक़ी और सोने से मुसलमानों का मनोरंजन किया था। भारत का सारा मुस्लिम युग उलटने-पलटने पर एक भी उल्लेख योग्य मुस्लिम शासक नहीं मिलता जिसने हिन्दुओं की भलाई सोची हो। फिर दिल्ली-टहनी पर नाम के लिए बैठी रज़िया का शासन किस प्रकार उल्लेख योग्य हो सकता है ? महिमा-शाली शासन तो दूर रहा।

मुस्लिम-काल एक थरथराने और कँपकँपाने वाला काला काल है। संकीर्ण साम्प्रदायिक लोग कुतर्क और कल्पित वीरता का 'पोलसन-बटर' इसपर कितना ही क्यों न पोतें, इसे रगड़-रगड़कर कितना ही क्यों न चमकाएँ, इसमें सफेदी का नया गुण पैदा नहीं हो सकता। रज़िया का शासन-काल काला था, काला ही रहा और काला ही रहेगा।

: ८ :

अन्य 'गुलाम' सुलतान

यदि एक शब्द में भारत के हज़ार वर्षों के मुस्लिम शासन की व्याख्या हो सकती है तो वह उपयुक्त शब्द "काला-काल" है।

मुस्लिम शाहज़ादा और सुलतान, दरबारी और गुलाम हमेशा आपस में लड़ते-झगड़ते एक-दूसरे के गर्म लाल खून में हाथ रँगते रहते थे। मगर जब-जब हिन्दुओं पर अत्याचार करने की बारी आती थी तो ये अपनी सारी शत्रुता भूलकर एक हो जाते थे।

अल्तमश की धैर्यहीन मर्दानी बेटी रज़िया को भी पागल हैवानियत का स्वाद चखना पड़ा। आरम्भ में अबीसिनियायी अस्तबलची गुलाम अमलुद्दीन ने उसका शील भंग किया। अन्त में तबरहिन्द के तहख़ाने में बन्द कर अलतूनिया ने उसके साथ बलात्कार किया। अप्रैल, १२४० ई० में रज़िया इसका विद्रोह दबाने दिल्ली से चली थी। मगर उसके दल-बल और छल के सामने उसे उसकी रखैल बनकर अपनी सारी सेना भी सौंप देनी पड़ी, ताकि वह उसके बाद उसकी राजधानी पर भी जुल्म ढा सके।

इधर रज़िया ने दिल्ली छोड़ी, उधर उसके हज़ारों हरम-भाइयों में से एक मुइजुद्दीन बहराम शाह ने अपने सुलतान होने की डुगडुगी पीट दी। सहायता करनी तो दूर रही, उसे इस बात की ज़रा-सी भी परवाह नहीं थी कि तबरहिन्द के तहख़ाने में उसकी हरम-बहिन के साथ बलात्कार हो रहा है। अब एक ही समय में दो सुलातान थे—रज़िया और बहराम शाह। इस्लामी शासन का यह रोग जन्मजात है।

रज़िया और उसके अपहर्त्ता अलतूनिया की मिली-जुली सेना से बहराम शाह को गुलाम ख़ानदान की सुलतानी पर ठोके अपने दावे की रक्षा करनी थी। अक्तूबर, १२४० ई० के परवर्ती संग्राम में रज़िया और उसके

अपहर्त्ता अलतूनिया को मारकर सड़क के किनारे फेंक दिया गया। अपने शोकपूर्ण अन्त के सबूत में रज़िया का शील-हीन शरीर पुरानी दिल्ली के तुर्कमान-गेट के भीतर सड़क के किनारे एक जीर्ण-शीर्ण कब्र में दबा-गड़ा पड़ा है।

रज़िया की अनुपस्थिति में मुइजुद्दीन बहराम शाह को गद्दी पर बैठाने वाले षड्यन्त्रकारी दरबारियों में इख्तियारुद्दीन इतिजिन काफ़ी प्रभावशाली था। हकीक़त में बहराम शाह एक कठपुतला-सा था। उसकी नकेल इसीके हाथ में थी। वह इतना प्रभावशाली था कि जिस औरत की उसे ख्वाहिश होती, उसे पकड़वाकर मँगवा लेता था। यहाँ तक कि उसकी नापाक कामुक नज़रों से सुलतान की अपनी बेटी भी नहीं बच सकी। उसका निकाह काज़ी नासिरुद्दीन से हुआ था। उसने काज़ी को मजबूर किया कि वह अपनी बेगम को तलाक़ दे दे। इसके बाद काज़ी की भूतपूर्व बेग़म और सुलतान की पुत्री इख्तियारुद्दीन के पलंग पर घसीट लाई गई।

राजपूतों की नक़ल में इख्तियारुद्दीन के द्वार पर प्रतिदिन दिन में तीन बार वाद्ययन्त्र बजाए जाते थे। एक सजा-सजाया हाथी भी चौबीसों घण्टे द्वार पर तैयार तैनात खड़ा रहता था मानो आजकल की मोटर-कार हो। एक मध्य-युग का चिह्न था तो दूसरा आजकल का फैशन।

अपने दरबारी के दबदबे से भयभीत बहराम शाह ने श्वेत महल (जो दिल्ली के प्राचीन हिन्दू लाल किले के दीवाने-खास के अतिरिक्त और कुछ नहीं था) में, कुरान-पाठ का आयोजन किया। इख्तियारुद्दीन इसमें मान्य अतिथि था। पिछले कमरे में सुलतान के दो किराए के हत्यारे बोतलें साफ़ कर रहे थे। पाठ के बीच में ही इन हत्यारों की नकेल खोल दी गई। कपटी और मायावी इख्तियारुद्दीन आँख बन्द किए मुहम्मद और अल्लाह की महानता का पाठ श्रवण कर रहा था। साथ ही उसके मन में यह लड्डू भी फूट रहे थे कि किस प्रकार सुलतान मेरी अंगुलियों पर नाचते हैं; कि एका-एक हत्यारे तेज़ी से बाहर आए, झटके से छुरा निकाला और बिजली की भाँति उसपर टूट पड़े। शराब की झोंक में उन्होंने उसका कीमा और कबाब बना डाला।

भारत में मुस्लिम-शासनकाल में कुरान-पाठ का प्रयोग अपने खूनी कारनामों पर धर्म का पर्दा डालने के लिए हुआ है। हर तरफ़ से लाचार

और निराश होने पर इन हत्यारों ने आध्यात्मिक शान्ति-प्राप्ति का बुर्का ओढ़ा और मक्का भागकर अपनी जान बचाई है। अकबर ने भी तथाकथित मोइनुद्दीन चिश्ती की कब्र का उपयोग लोगों की आँखों में धूल झोंकने के लिए किया था। वह वहाँ से राजपूतों पर चढ़ाई किया करता था। धोखे की इस आड़ को हमारे सीधे-सादे इतिहासकार उसकी गहरी धार्मिकता मान बैठे हैं।

इस झगड़े-फ़साद में घायल होकर निजामुल् मुल्क महजबुद्दीन किसी प्रकार बचकर भाग निकला था। उधर मलिक बदरुद्दीन शंकर ने इख्तियारुद्दीन की जगह ले ली। उसके दबदबे और कारनामों से सुलतान और वज़ीर दोनों ही आतंकित हो उठे। सुलतान ने उसे भी अल्लाह के पास पार्सल करने का निश्चय कर लिया। बदरुद्दीन शंकर ने सुलतान से ख़तरे की बू सूंघी। अगस्त, १२४७ ई० के सोमवार को उसने प्रमुख दरबारियों की एक बैठक अपने निवास-स्थान पर बुलाई। वे सभी सुलतान को गद्दी से उतार फेंकने और उसके भाई को गद्दी पर बैठाने की साज़िश करने लगे।

इस बैठक का समाचार सुलतान को मिला। बदरुद्दीन का घर घेर लिया गया। बैठक बीच में ही भंग हो गई। भोला-भाला-सा मासूम चेहरा बनाकर बदरुद्दीन सुलतान के पक्ष में हो गया। सुलतान वापिस महल लौटा, दरबार बुलाया और बदरुद्दीन को बदायूँ की लूट का काम सम्भालने की आज्ञा मिल गई। बदरुद्दीन दूर बदायूँ में कसमसा रहा था। वह दिल्ली लौट आया। षड्यन्त्रकारी बदरुद्दीन के आगमन से सुलतान आतंकित हो उठा। उसे उसके एक दरबारी साथी के साथ बन्दी बनाकर तहख़ाने में फेंक दिया गया। कुछ दिनों के बाद दोनों की गर्दन रेत दी गई।

इस घटना से सारे कुलीन मुसलमान आतंकित हो उठे। यहाँ कुलीन का अर्थ हिन्दू धन-सम्पत्ति की लूट-पाट से धनवान बने मुसलमान हैं, जिन्हें यह पता भी नहीं था कि कुलीनता किस चिड़िया का नाम है। हक़ीकत में ये जोंक और नर-भक्षी ही थे। भारत के हरएक मुस्लिम शासक और दरबारियों की भाँति मुइजुद्दीन बहराम शाह के पास किराये के हत्यारों का एक ख़ास गिरोह था। वे कुछ सिक्कों के लिए किसी भी आदमी की पीठ में छुरा घोंप सकते थे। वज़ीर निज़ामुल् मुल्क महजबुद्दीन भी इख्तियारुद्दीन

के हत्याकाण्ड के समय घायल हुआ था और इसका बदला लेने के लिए वह कसमसा रहा था।

प्राय: इसी समय खुरासान और गज़नी से आकर अफ़ग़ानी मंगोल लाहौर पर टूट पड़े। दिल्ली का सुलतान लाहौरी गुर्गा मलिक काराकाश अकबकाकर सीधा दिल्ली भाग गया। दिसम्बर, १२४१ ई० में मंगोलों ने लाहौर पर अधिकार कर लिया। एक-एक मुसलमान की गर्दन रेत दी गई। उनकी स्त्रियाँ एवं बच्चे बन्दी बना लिये गये। फिर उनको आपस में बाँट लिया गया। लाहौर के मुसलमान एक जमाने से जुल्म ढा रहे थे। अल्लाह के रहमो-करम से उसका स्वाद अब उन्हें भी चखना पड़ा। आजकल मंगोली चीन से मुस्लिम-लाहौर का याराना चल रहा है। शायद इतिहास अपनी कहानी फिर दुहराएगा। शायद लाहौर फिर एक बार लाल तलवार के लाल-लहू से लाल होगा क्योंकि कुचली-मसली, पंगु-अपंग और कटी-पिटी मानवता को मुसलमानों के हज़ार वर्षीय क्रूर-कर्मों का लेखा-जोखा लेना है।

कुछ दिन के सभी सुलतान दरवेशों और रखैलों से सलाह लेते थे। बहराम शाह भी अयूब नामक एक फकीर के प्रभाव में था। यह फ़क़ीर तथाकथित कुतुबमीनार के समीप मिहिरपुर यानी मिहिरावली (महरौली) में रहता था। ऐसे फ़कीर प्राय: व्यभिचारी और षड्यन्त्रकारी होते थे। एक बार काज़ी शम्सुद्दीन मिहिर को उसे बन्दी बनाना पड़ा था। मगर स्वयं सुलतान उसके प्रभाव में था। फलत: हाथी के पैरों के नीचे काज़ी साहब का मलीदा बिखर गया।

उधर मुग़लों को लाहौर मिला इधर सुलतान को विरोधी, फ़ालतू और षड्यन्त्रकारी दरबारियों से छुट्टी पाने का एक बहाना। उसने सभी को अपना-अपना गिरोह तैयार कर लाहौर जाने का आदेश दे दिया। मगर ये दरबारी सिंहासन और संसार से सुलतान को साफ़ करना अधिक पसन्द करते थे।

दिल्ली से सेना चली। लाहौर मार्ग पर व्यास नदी के किनारे डेरा डाला गया। यहाँ से वज़ीर निज़ामुल्-मुल्क ने दिल्ली सुलतान को धूर्तता से भरा एक ख़त लिखा कि साथ के सभी सेना-नायक, और दरबारी धृष्ट, अनुशासनहीन और उच्छृङ्खल हैं। मेरी इच्छानुसार इन्हें ख़त्म करने का अधिकार मुझे सौंपा जाय ताकि एक अनुशासित सेना मुग़लों से लड़ सके।

मुस्लिम सुलतान, वज़ीर और दरबारी सभी एक ही थैली के चट्टे-बट्टे थे—निर्दयी, निर्लज्ज और नराधम। इनके लिए दूसरे मानव का जीवन एक फ़ालतू चीज़ थी। इसलिए सुलतान ने वज़ीर की इच्छानुसार लोगों की हत्या करने का अधिकार-पत्र भेज दिया।

दरबारियों को भड़काकर सुलतान को गद्दी से हटाने और उसकी हत्या करने के लिए वज़ीर कसमसा ही रहा था। उसने सभी दरबारियों और नायकों की बैठक बुलाई और उनके सामने सभी को मार डालने का अधिकार-पत्र रख दिया। वज़ीर के इस मायावी रहस्योद्घाटन से सभी सन्न रह गये। उनके पैरों की ज़मीन खिसक गई। सभी आवेश में आ गये। उन्होंने सुलतान से प्रतिशोध लेने की सौगन्ध खा ली। तदनुसार मुग़लों से लड़ने का विचार खटाई में पड़ गया और सुलतान की सेना सुलतान से बदला लेने दिल्ली के लिए चल पड़ी।

दिल्ली का घिराव हो गया। सुलतान के थोड़े बहुत अंग-रक्षकों और बची-खुची सेना के साथ तीव्र मार-काट मच गई। इस दौरान हिन्दू खेत और खलिहान या तो लूट लिये गये या फिर ज़रूरत न होने पर जला दिए गये ताकि कहीं विरोधी दल उन्हें न हथिया ले।

मुसलमान संयुक्त हों या विभक्त, हिन्दुओं के लिए तो ख़तरे की घण्टी ही थे। संयुक्त होने पर हिन्दुओं को कुचलने का मिला-जुला प्रयास होता था। आपसी लड़ाई में जैसाकि जहाँगीर और शाहजहाँ या अकबर और जहाँगीर में हुआ था, दोनों स्वार्थी दल लड़ाई जारी रखते परन्तु विनाश हिन्दुओं का ही होता था। विरोधी दल दाना-पानी और शरण न ले ले, दोनों ही स्वार्थी दल हिन्दुओं की खड़ी फ़सल जला देते थे और इस प्रकार मध्यकालीन मुस्लिम शासकों ने, संयुक्त और विभक्त दोनों ही अवस्थाओं में हिन्दुस्तान का सत्यानाश ही किया है। हज़ार वर्षों तक चलने वाले इन लुटेरे-अभियानों से दिल्ली, आगरा, मथुरा, कन्नौज, विदिशा, प्रयाग, उज्जैन, करांची, लाहौर और पेशावर आदि भारत के अनेक भव्य नगर धूल में मिल गये। अतएव दिल्ली पर चाहे हिन्दू शासक हों या मुसलमान, मुस्लिम आक्रमणकारियों ने बार-बार पीढ़ी-दर-पीढ़ी हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर भारत का विध्वंस कर दिया। हिन्दुओं के घर चकनाचूर हो गए। उनकी बोटियाँ चील, कौवे खा गये।

परिस्थिति गम्भीरतर होती गई। ऐसी परिस्थिति में लौण्डों, चापलूसों, रखैलों, खोजों और नपुंसकों से घिरे सुलतान की नकेल किसी-न-किसी नौकर-चाकर के हाथ में ही होनी चाहिए। सुलतान मुइजुद्दीन बहराम शाह का सलाहकार भी फ़ख़रुद्दीन मुबारक शाह फरखी नामक एक दरी बिछाने वाला ही था। विद्रोही दरबारियों से समझौता न करने की सलाह उसने सुलतान को दी।

उधर सुलतानी शासन के विरोध में दिल्ली के कुछ मुसलमानों ने भी बग़ावत कर दी। उस समय तबक़ात-ए-नासिरी का लेखक मिनहज-अस्-सिराज़ तथाकथित जामा मस्जिद में नमाज़ पढ़ रहा था। गुलामों की सहायता से वह किसी-न-किसी प्रकार बचकर भाग निकला।

दिन बीतते गये। घेरा कसता गया। १२४३ ई० में विद्रोही तूफ़ान की भाँति दिल्ली में घुस आये। दरी बिछाने वाले की नृशंस हत्या कर दी गई। नौ दिन तक सुलतान को कैद रक्खा गया और फिर उसकी भी हत्या कर दी गई। भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासन की भाँति सुलतान मुइजुद्दीन बहराम शाह का शासन भी कपट और कष्ट से भरा था। मगर यह कम समय तक ही रहा—सिर्फ़ २ वर्ष और ४५ दिन।

अलाउद्दीन

मुस्लिम शासक के जीवित रहने पर सारे राज्य में अव्यवस्था और अशान्ति तो बनी ही रहती थी, उसके मरने पर इसकी लौ और तीव्र हो जाती थी क्योंकि तब गद्दी के लिए सभी लोग खुल्लम-खुल्ला तलवारें नंगी कर नाचने लगते थे। बहराम शाह की हत्या के बाद यह कहानी इतनी बार दुहराई गई है कि पढ़ते-पढ़ते जी ऊब जाता है।

अब एक तरक्की याफ्ता उद्दण्ड गुलाम बलबन ने किराये के ढिंढोरचियों से सारे शहर में अपनी सुलतानी का ऐलान करा दिया। मगर उसे कोई सहयोग नहीं मिला।

अल्तमश के पोते अलाउद्दीन को जेल से निकालकर गद्दी पर बैठाया गया। गद्दी का सम्भावित मुस्लिम दावेदार यदि किसी प्रकार जेल में जिन्दा रह गया, तो मानना पड़ेगा कि वह तक़दीर का सिकन्दर था क्योंकि एक बार गद्दी पर बैठने के बाद सभी मुस्लिम शासक गद्दी के सभी सम्भा-

वित दावेदारों की हत्या कर देते थे या उनकी आँखें फोड़ देते थे। कहीं उछल-कूद मचाकर बेकार हंगामा न खड़ा कर दे, इसलिए सुलतान ने बलबन को नागोर, मण्डावर और अजमेर की जागीर दे दी। अपहृत ज़र और ज़मीन देकर बाक़ी दरबारियों का भी मुँह बन्द कर दिया गया।

वज़ीर बनकर निज़ामुल्-मुल्क महज़बुद्दीन ने सारी सत्ता अपने हाथ में समेट ली। कोल, जिसे हम आज भ्रम से अलीगढ़ कहते हैं, वज़ीरे आज़म की अपनी जागीर हो गई। नैतिकता के अभाव तथा लोभ और लालच की लपलपाती ज्वाला के चारों ओर असन्तोष का अलाव जल रहा था। दरबार में अपनी गाड़ी को चालू न देख असन्तुष्ट तुर्की दरबारियों ने आपस में साज़िश की। ३० अक्टूबर, १२४२ ई० को उन्होंने निज़ामुल्-मुल्क की हत्या कर दी।

नये सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह बिन फ़िरोज़शाह ने हिन्दुओं का संहार-कार्य जारी रक्खा। हिन्दू राज्यों पर कई बार धावे हुए। अपवित्र होकर मन्दिर मस्जिद बनने लगे। हिन्दू नारियों एवं बच्चों का अपहरण चालू रहा। हिन्दू सम्पत्ति की लूट-पाट में तेज़ी आ गई।

जिस समय विद्रोही दरबारियों ने बन्दीगृह खोजकर, अलाउद्दीन को बरामद कर सुलतान बनाया था उसी समय उसके दो चाचा नासिरुद्दीन और जलालुद्दीन भी मुक्त हो बाहर आये थे। स्वतन्त्रता की दो-चार साँस ही इन दोनों ने ली थीं कि अलाउद्दीन ने सुलतान बनने के साथ ही इन्हें वापिस उसी तहख़ाने में घुट-घुटकर मरने के लिए भेज दिया।

दो वर्ष व्यतीत हो गये। मुस्लिम प्रजा अलाउद्दीन को सुलतान के रूप में देखने की अभ्यस्त हो गई। तब उसने अपने चाचाओं को मुक्त करके बहराइच और कन्नौज का अपहृत हिन्दू क्षेत्र दे दिया।

प्रायः इसी समय भयंकर चंगेज़ खाँ अपने हत्या-अभियान पर निकला हुआ था। मुस्लिम-कुशासन के कारण उत्तरी भारत में अव्यवस्था देखकर उसने एक शक्तिशाली लुटेरी-वाहिनी बंगाल की हिन्दू राजधानी लखनौटी को लूटने भेज दी।

सुलतान अलाउद्दीन ने स्थानीय दुर्ग-अधिकारी तुघन खाँ की सहायता के लिए तमार खाँ के अधीन एक सेना भेजी। मगर चोर चोर मौसेरे भाई होते हैं। इस विदेशी सुलतान ने आक्रमणकारियों के साथ सन्धि कर ली

और उस दिन को एक महान् गौरवशाली दिन माना। कुछ भी हो, हर हालत में हिन्दू जन-धन को लुटना-पिटना था। बर्बर मुग़लों और विदेशी मुस्लिम पाटों के बीच इनकी चटनी बन गई। इस चटनी को दोनों ने बड़ा स्वाद ले लेकर चाटा।

अब पश्चिम से एक दूसरी मुग़ल सेना उछ से आ टकराई। परिस्थिति गम्भीर हो गई। अनेक दरबारी अपने रिश्तेदारों के साथ जेल में सड़ रहे थे। बाक़ी लोग मुग़लों से दोस्ती निभाने पूरब गये हुए थे। अतः सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह को अपने हरम से बाहर निकलना पड़ा। उसे सेना तैयार करनी पड़ी। इसी बीच लूट-बटोरकर मुग़ल जा चुके थे।

हत्या और लूट, साज़िश और कपट, नशेबाज़ी और वेश्या-गमन तथा अशिक्षा और अन्धविश्वास में पैदा होकर फलने-फूलने वाले सुलतानों की दोस्ती स्वाभाविक है, नीच लोगों से होगी। मिनहज-अस्-सिराज़ अपनी तबक़ात-ए-नासिरी में इसका नंगा चित्र पेश करता है। यह चित्र, आश्चर्य कि भारत के सारे मुस्लिम शासकों पर एकदम फ़िट बैठता है। वह बतलाते हैं—(पृष्ठ ३४५, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन) कि "सुलतान की सेना में बेकार लोगों का एक दल था। वे सुलतान के साथ उठते-बैठते थे। ये लोग सुलतान को बुरी राह पर ले गये। उसमें बुरी आदतें डाल दीं। उसमें अपने कुलीन लोगों को पकड़कर मार डालने की बुरी आदत पड़ गई। उसके सारे गुण (?) ख़त्म हो गये। वह लम्पटता, मौज-मस्ती और शिकार में डूब गया। सारे राज्य में असन्तोष छा गया। सरकारी काम अव्यवस्थित हो गये (यानी मुस्लिम दरबारियों को लूट में से हिस्सा मिलना बन्द हो गया)।" शाहज़ादों और दरबारियों ने मिलकर नासिरुद्दीन को निमन्त्रण भेजा। जून, १२४६ ई० में सुलतान अलाउद्दीन मसूद शाह गद्दी से नीचे घसीटे गये, बन्दी ख़ाने में पटके गये और हलाल कर दिए गये। इस प्रकार इनका शासन ४ वर्ष १ महीना और १ दिन का था। इसके बाद इनको अल्लाह के पास उसी तरह खून से पोतकर पार्सल किया गया जिस प्रकार उनके पूर्ववर्ती सुलतान हलाल हो अल्लाह के पास पहुँचे थे।

नासिरुद्दीन

अब बहराइच का भक्षक जागीरदार मृत गुलाम सुलतान अल्तमश का छोटा पुत्र नासिरुद्दीन मरे-कटे खूनी मुस्लिम सुलतानों के खून से लथपथ दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन पर आ बैठा।

"सुलतान-ए-मुअज्ज़म नासिरुदुन्या-वा-उद्-दीन महमूद" कण्टकापूर्ण रक्त-रंजित मुस्लिम गद्दी पर रविवार, १० जून, १२४६ ई० को आसीन हुआ। मगर सबसे मज़ेदार बात तो यह थी कि उसे बहराइच से दिल्ली तक बुर्क़ा ओढ़कर एक औरत की भाँति छिपकर आना पड़ा।

जैसा कि प्रत्येक मुस्लिम इतिहासकार की आदत थी, मिनहज-अस्-सिराज़ नासिरुद्दीन के शासन-वर्णन की बिसमिल्लाह बड़ाई करते हुए करता है। फिर उसके दुराचारों और अन्यायों का बखान करने बैठ जाता है। वह कहता है कि "सभी लोगों ने एक स्वर से इस उदार, गुणी और कुलीन शाहज़ादे की ताजपोशी की प्रशंसा की'''उसके भेद-भावहीन शासनकाल में हिन्दुस्तान का सारा हिस्सा खुश था" यानी मुस्लिम सुखी तो सब सुखी, चाहे दूसरे जहन्नुम की आग में जल ही क्यों न रहे हों।

आगे यही इतिहासकार लोगों को बतलाता है कि जब नासिरुद्दीन बहराइच में जागीरदार था तब उन्होंने "काफ़िरों (यानी हिन्दुस्तान के पुत्र हिन्दुओं) के साथ अनेक लड़ाइयाँ लड़ीं।"

इन चापलूसों के झूठे-सच्चे वर्णन हमारे इतिहासों में ठूंस-ठूंसकर भरे गये हैं तथा उन लोगों के खूनी और दुराचारी कारनामों की तरफ़ से आँखें एकदम बन्द कर ली गई हैं।

नासिरुद्दीन ने २० वर्षों तक हिन्दुओं को चबाया था। वह भाग्यशाली था कि १२६६ ई० में अपनी सामान्य मौत मरा। नासिरुद्दीन के बाद बलबन तख्त पर बैठा। यह हकीक़त में एक क्रूर-पिशाच था और गुलाम-वंश का अन्तिम शासक भी। नासिरुद्दीन का समधी होने के साथ ही यह उसका सेनापति भी था। इसी बात से यह साबित हो जाता है कि नासिरुद्दीन को एक सीधा, भला, अच्छा, मासूम, और मितव्ययी शासक मानना सरासर बकवास है।

गद्दीनशीन होने के साथ ही नासिरुद्दीन को सेना ले सिन्ध भागना पड़ा। यहाँ मुगल गिरोह सारे क्षेत्रों को लूटकर मुसलमानों का हिस्सा मार

रहे थे। मगर या तो उन्होंने इसकी परवाह नहीं की या फिर मुग़लों से भिड़ने की उनकी हिम्मत नहीं हुई। सुलतान की सेना लड़ने के बदले जेहलम तथा सिन्धु के समीपवर्ती क्षेत्रों को लूटने और लगान (?) वसूल करने में लग गई। सुलतान ने "अपने साज़ो-सामान और हाथियों के साथ (सोद्रा) चनाब नदी पर अपना पड़ाव डाल रक्खा था। (उनके सेनापति) उलुघ खाँ अल्लाह के रहमोकरम से (?) जेहलम तथा जुद की पहाड़ियों को तबाह व बरबाद कर अनेक कोखरों (यानी हिन्दू जाति गक्खरों) तथा विद्रोही काफ़िरों को जहन्नुम रसीद कर रहे थे। इसके बाद उन्होंने सिन्धु के किनारे आगे बढ़कर आस-पास के सारे क्षेत्रों में तबाही फैला दी।"

बाद में मुस्लिम इतिहासकार मिनहज-अस्-सिराज हमें बतलाता है कि "अन्न आदि वस्तुओं के अभाव के कारण उन्हें वापिस लौटना पड़ा।" क्या इस बयान से यह स्पष्ट नहीं होता कि वीर हिन्दू गक्खरों के सामने से उलुघ खाँ को जान बचाकर भागना पड़ा था ? वह सोद्रा के किनारे दौड़ता-भागता सुलतान नासिरुद्दीन के पड़ाव पर वापिस आ गया। यहाँ से वे दोनों दिल्ली भाग गये। "मार्ग में जालन्धर की पहाड़ियों के एक मन्दिर को मस्जिद बनाकर उन लोगों ने उसमें ईद-ए-अज़ां पढ़ी।"

दूसरे साल नासिरुद्दीन की सेना पानीपत क्षेत्र से लगान (?) लूटने आई। मगर मार खाकर और सब कुछ गँवाकर वापिस भाग आई। अब इस हार की लाज को ढकना था। नासिरुद्दीन की नज़र गंगा-यमुना क्षेत्र पर पड़ी। कन्नौज के समीप एक हिन्दू राज्य था। इसकी राजधानी नन्दन प्राचीरों से घिरी थी। नाक बचाने के लिए किसी बहाने की आवश्यकता थी ही नहीं। नर-भक्षी मुसलमानों का हर हिन्दू चीज़ पर टूट पड़ना एक स्वाभाविक बात थी। हिन्दू शक्ति को चकनाचूर करना उन लोगों का पहला और पवित्र कार्य था। इसके लिए माया, कपट, अत्याचार, यन्त्रणा, घूस और पाशविकता आदि सभी रास्ते अपनाए गये। घमासान युद्ध हुआ। खूब खून-खराबा हुआ। अन्त में तबक़ात-ए-नासिरी के अनुसार फरवरी, १२४८ ई० में नन्दन के राजा ने कुछ शर्तों के साथ समर्पण कर दिया यानी मुस्लिम सेना हारकर शान से भाग गई।

मगर मुस्लिम शासन में हिन्दू जर-जमीन को लूटना बन्द नहीं हो सकता था। अतएव नासिरुद्दीन की सेना कर्रा की ओर बढ़ी। सेना का रुख़

कुछ विद्रोहात्मक हो चुका था। कहीं सुलतान लपेट में न आ जाए अतएव सुलतान ने अपना तम्बू समर-भूमि से दूर ही रखा। सेना की बागडोर क्रूर-भोगी मुस्लिम उलुघ खाँ के हाथ में थी।

इस पिशाच ने असुरक्षित गाँवों और कस्बों में तबाही मचा दी। इस स्थान का हिन्दू शासक दलाकी या मलाकी नामक एक राजपूत था। अपनी अशिक्षा के कारण असभ्य मुस्लिम इतिहासकार ने इसके नाम को बिगाड़ दिया। यहाँ पर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने अनेक हिन्दुओं को काटा, उनके घरों को लूटा। हिन्दू नारियों और बालकों का हरण हुआ। ये पहले मुसलमान बने, फिर गुलाम।

सुलतान ने सोचा कि हिन्दुओं की यह लूट कुछ दिनों तक तो चलेगी ही। वह २० मई, १२४८ ई० को दिल्ली वापिस लौट आया। उसका एक भाई जलालुद्दीन इस लूट के माल में हिस्सा लेने के लिए उससे झगड़ पड़ा। इस झगड़ालू को दूर रखना ज़रूरी हो गया। मुस्लिम शासक ऐसी परिस्थिति को बड़ी खूबी से सम्भालते थे। उनकी यह आदत बड़ी घातक थी। इस आदत के अनुसार सुलतान नासिरुद्दीन ने जलालुद्दीन को सम्बल और बदायूँ की जागीर दे दी। यह दूसरी बात थी कि वहाँ हिन्दू राजा का शासन और अधिकार था। मुस्लिम शासकों की इस घातक चाल ने आजकल के इतिहासकारों को भ्रमित कर दिया है। जो हिन्दू-क्षेत्र अपनी अधिकार सीमा से बाहर रहते थे, लुटेरे सुलतान उस हिन्दू-क्षेत्र को बड़ी दरियादिली से उपहार में लुटेरे दरबारियों को दे देते थे। इससे दुहरा लाभ होता था। एक तो झगड़ालू मुस्लिम दिल्ली से दूर हो जाता था और भाड़े के गुण्डों को लेकर हिन्दू लूट-मार में लीन हो जाता था। इस लूट का वह अकेला ही मालिक होता था। दूसरे, इस लूट-पाट में यदि वह मारा गया तो सुलतान को छुटकारा मिलता और उसका काँटा सदा के लिए साफ़ हो जाता और यदि वह अपने लूट-प्रयास में सफल होता तो मुस्लिम शासन क्षेत्र का विस्तार हो जाता। इस प्रकार सारा भारत धीरे-धीरे मुस्लिम शासन-क्षेत्र में समा गया। अकबर आदि मक्कार मुस्लिम शासकों के समय में भी ऐसा ही बड़ी तेज़ी से हुआ।

इस प्रकार बदायूँ और सम्बल हिन्दू क्षेत्र होते हुए भी जलालुद्दीन के हो गये। उसे हर किसी को लूटने का परवाना मिल गया। बड़ी शान से

जलालुद्दीन ने इधर हिन्दू-क्षेत्र पर पैर रक्खा उधर हिन्दुओं ने उसकी पीठ पर डंडा बरसाना प्रारम्भ कर दिया। इस मार और प्रहार से वह इतना भयभीत हो गया कि "वह एकदम हताश और आतंकित, होकर राजधानी भाग आया।" (पृष्ठ ३४७, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन)।

मुसलमानों की नज़र में हिन्दुस्तान एक विशाल मुर्गीख़ाना था। हिन्दू लोग इस मुर्गीख़ाने की मुर्गियाँ और मुर्गे थे जो मुस्लिम दस्तरख़ान के लिए सिर्फ़ अण्डा ही नहीं देते थे वरन् उनका मुर्ग़-मुसल्लम भी बनाया जाता था। अतएव उस शासन में प्रजा-पालन और प्रजा-पोषण योजनाओं की कोई ज़रूरत थी ही नहीं। लूटी हुई हिन्दू-सम्पत्ति मुसलमानों के पेट में पच जाती थी। अपहृत हिन्दू इस्लाम धर्म या मौत के पेट में विलीन हो जाते थे क्योंकि बुद्ध के अहिंसा के रोग से दुर्बल भारत की पाचन-शक्ति तो नष्ट हो चुकी थी।

नौ महीने के बाद नासिरुद्दीन को पता लगा कि उसका ख़ज़ाना ख़ाली हो चुका है। मुस्लिम जेवनार की आग में हिन्दू जन-धन झोंकने के लिए उसे पुनः हिन्दू लूट की योजना बनानी पड़ी। कहीं मुस्लिम असन्तोष भड़क उठा तो? इस बार उसने रणथम्भोर पर आक्रमण करने का विचार किया। मगर यह अभियान असफल हुआ। इस संग्राम में मुस्लिम नायक मलिक बहाउद्दीन ऐबक वीर राजपूतों द्वारा मारा गया।

तथाकथित क़ाज़ी और मुल्लाओं की हालत भी दूसरों से अच्छी नहीं थी। इन क़ाज़ियों और मुल्लाओं ने लबादा तो ओढ़ा था धार्मिकता का परन्तु बुराइयों और साज़िशों के ख़ून में ये अपनी अनोखी दाढ़ी भिगोते और फिर बड़े प्रेम और प्यार से उसे सहलाते थे। अनेक बार इनकी साज़िशें इन्हीं पर बरस पड़ती थीं। इमामुद्दीन शकूरकनी भी इन चालबाज़ियों में उलझा हुआ एक पाजी क़ाज़ी था। इसे राज्य से निर्वासित कर दिया गया था। वह हिन्दू क्षेत्र में चला गया। बाद में नासिरुद्दीन का हुक्म हुआ और एक किराये के हत्यारे इमामुद्दीन रिहान ने उसकी हत्या कर दी।

उलुघ ख़ाँ अब दरबार में इतना प्रभावशाली हो गया कि सुलतान को अपनी बेटी का निकाह उसके बेटे से करना पड़ा।

दहेज में इतना धन देना पड़ा कि ख़ज़ाना फिर खाली हो गया। खाली ख़ज़ाना भरने के लिए पुनः लूट-हत्या अभियान शुरू हुए। यमुना पार हिन्दू

घर रौंद डाले गये। दरबारी जी-हुजूरिये मिनहज-अस्-सिराज को भी इस हराम के माल का एक हिस्सा मिला। पाप की कमाई पाने-खाने लायक वह था भी। वरना वह भावी लोगों के लिए एक झूठा इतिहास कैसे लिख सकता था कि सभी मुस्लिम राजा, चाहे उनके कारनामे काले ही क्यों न हों, श्रेष्ठ गुणयुक्त दैवी इंसान थे। इतिहास के भावी छात्रों को बर्गलाने का इनाम उसे मिला। उसे "१०० खर-भार (गधे का बोझ) का उपहार मिला। लूट मचाने के लिए उसे कुछ हिन्दू गाँवों की जागीर भी मिली।

१२५० ई० में नासिरुद्दीन मुलतान पर अधिकार करने गया। मगर मुग़ल नायक शेर खाँ के हाथों पिटकर शान से वापिस भाग आया।

१२५० ई० में मलिक इजुद्दीन ने विद्रोह कर दिया। यह मुलतान में नियुक्त था। सुलतान नासिरुद्दीन को बड़ी अनिच्छा से अपना वार्षिक हिन्दू-हत्या-अभियान छोड़ना पड़ा। नासिरुद्दीन नागोर रवाना हो गया। वहाँ एक मोटी घूस देकर इजुद्दीन को मिलाया गया। इसके बाद ही मुग़लों ने सिन्ध का उछ घेर लिया। सुलतान को विद्रोही इजुद्दीन से छुट्टी पाने का एक बहाना मिल गया। उछ के लुटेरे मुस्लिम रक्षक को सहायता भेजनी थी। सुलतान ने यह भार इजुद्दीन के सिर पर थोप दिया। भारी मूल्य चुकाकर उसकी सुलतान भक्ति ख़रीदी गई थी। उसका मुंह रुपयों से बन्द था। इजुद्दीन इंकार न कर सका। इजुद्दीन बन्दी बना और उछ में मुग़ल शेरखाँ को समर्पित हो गया।

हिन्दुओं को लूटने में सुलतान ने अब अधिक स्वतन्त्रता महसूस की। वह उलुघ खाँ के साथ हिन्दू ग्वालियर की ओर बढ़ा। जिधर वह गया उधर के हिन्दू क्षेत्र हाहाकार करने लगे। हिन्दू घर और खेत लूट लिये गये। उनमें आग लगा दी गई। जहीरदेव नामक एक हिन्दू-नायक से उसका सामना भी हुआ। मिनहज-अस्-सिराज़ ने इस अभियान का बड़ा चलता बयान दिया है। इससे मालूम होता है कि नासिरुद्दीन को मायूस हो थोड़े-बहुत लूट के माल से ही सन्तोष कर वापिस लौटना पड़ा।

उछ और मुलतान के मुग़ल खूंटे शूल की भांति नासिरुद्दीन को चुभ रहे थे। वह इन दोनों नगरों पर अधिकार करने निकला। मगर इस बार सेनापति उलुघ खाँ ने विद्रोह कर दिया। सुलतान को दिल्ली भागना पड़ा। उन्होंने उलुघ खाँ को दरबार से शिवालिक की पहाड़ियों में निर्वासित कर

दिया। वहाँ के हिन्दुओं को अब दो पाटों के बीच में पिसना पड़ता था। कभी सुलतान उन्हें लूटते थे तो कभी विद्रोही उलुघ खाँ। मुस्लिम दरबार में ईर्ष्या और विरोध की आग भड़कती थी और हिन्दुस्तान के हिन्दुओं को जलाने वाली आग की लपट तेज हो जाती थी।

मुग़ल शेर खाँ और सुलतान नासिरुद्दीन के आपसी झगड़ों का लाभ हिन्दुओं ने उठाया। मुलतान और उछ के हिन्दुओं ने एक सेना संगठित की और शेर खाँ को सिन्धु के उस पार फेंक दिया।

१२४४ ई० में सुलतान नासिरुद्दीन ने बरदार और पिंजोर के हिन्दू क्षेत्रों का सत्यानाश किया। उसके बाद वे गंगा-सिन्धु के मैदान में प्रविष्ट हो गये। यहाँ हिन्दुओं ने उनकी लुटेरी-सेना का डटकर सामना किया। सुलतान के सेनापति इस भिड़न्त में काम आये। पासा पलट गया। सुलतान क्रोध से जलने लगा। उसने आज्ञा दी कि कैथल नगर के एक-एक हिन्दू को इस प्रकार निर्दयता से काट-काटकर फेंक दिया जाय कि "अगर कोई नागरिक किसी प्रकार ज़िन्दा बचकर भाग निकले तो वह इस कारनामे को ताज़िन्दगी न भूल सके।" इस खूनी काण्ड का उत्सव मनाने के लिए सुलतान ने बदायूँ के लिए कूच कर दिया। (वह) बड़े शान और शौकत के साथ वहाँ पहुँचा··· (वहाँ) नौ दिन तक ठहरने के बाद (सुलतान) दिल्ली वापिस लौटा।

अब सुलतानी राज्य के पश्चिमोत्तर स्थान से विद्रोह का समाचार आया। अर्सलन खाँ, सनजन ऐबक, उलुघ खाँ और जलालुद्दीन ताल ठोंक रहे थे। सुलतान ने विद्रोह का दमन करने के लिए प्रस्थान किया। मगर हालात गम्भीर थे। उसने विद्रोही लोगों की सारी माँगें ज्यों-की-त्यों स्वीकार कर लीं और गर्दन झुकाए वापिस दिल्ली चला आया।

इधर सुलतान नासिरुद्दीन की विधवा माँ ने कटलघ खाँ से निकाह कर लिया। मांस खाने एवं विलास और व्यभिचार के बीच रहने के कारण मुस्लिम नारियों के लिए विधवा जीवन व्यतीत करना वास्तव में एक कठिन काम था। मगर सुलतान क्रोधित हो गया। उसने इस जोड़ी को दिल्ली से अवध भेज दिया।

पिछले खूनी मुस्लिम शासकों से नासिरुद्दीन किसी भी बात में कम नहीं था। सुलतान अपने एक सहायक कुतुबुद्दीन से किसी बात पर नाराज़ हो

गया। उसने उसे पदच्युत कर दिया और बन्दीगृह में डाल दिया और कुछ दिन के बाद उसकी गर्दन क़लम कर दी।

नासिरुद्दीन के अदम्य 'कुलीनों' में भी ज़मीन और तख्त का झगड़ा चलता रहता था। वे एक-दूसरे की चाल पर नज़र रखते थे। किसी को पदच्युत कर देते थे। कोई हलाल हो जाता था। यह रोज का किस्सा था। अब सौतेले बाप कटलघ खाँ ने सुलतानी सत्ता को ठोकर मार दी। कटलघ खाँ का दमन करने के लिए मलिक बक्रम रुक्नी आगे आया और ढेर हो गया। उलुघ खाँ को भी कटलघ खाँ से हारकर वापिस आना पड़ा। मगर वह नम्बरी धूर्त था। वापिस आते समय वह हिन्दुओं को लूटता आया था ताकि दरबार में हार की बेइज्ज़ती भी छिपा सके और लूट का माल देखकर भेड़िया भी गर्दन पर न झपटे। उस समय बिना लूट के सुलतान के पास आने का अर्थ दरबार में अपनी नाक कटवाना था।

सुलतान और सौतेले बाप की यह लड़ाई वर्षों चली। उनमें अवध, बहराइच, बदायूँ, कालिंजर, कर्रा, मानिकपुर और सतनौर आदि स्थानों पर लड़ाई हुई। सुलतान नासिरुद्दीन और बाग़ी कटलघ खाँ की उत्पाती मुस्लिम सेनाएँ हिन्दू ज़र और ज़मीन से खाना-दाना प्राप्त करती थीं, सन्तुष्ट होती थीं और उछल-उछलकर आपस में लड़ती थीं। ये जोंकों से भी गए गुज़रे थे। सिर्फ़ हिन्दू लूट को चूसकर ही सन्तुष्ट नहीं होते थे। दोनों सेनाएँ घरों और खेतों को भी जला देती थीं। उन्हें डर था कि कहीं विरोधी दल को रहने के लिए घर और खाने के लिए अनाज न मिल जाय। मिनहज-अस्-सिराज़ बतलाता है कि "उलुघ खाँ की तलवार ने सारी पहाड़ियों का सत्यानाश कर दिया। वह पहाड़ियों की घाटियों को पारकर एकदम भीतर सालमुर तक पहुँच गया। न तो किसी सुलतान ने कभी सालमुर पर अधिकार किया था, न कोई मुसलमान सेना अभी तक वहाँ पहुँची ही थी। मुसलमानों ने इसे पहली बार लूटा। चारों ओर तबाही फैला दी। इतनी अधिक संख्या में विरोधी हिन्दुओं को काटा गया कि उनकी संख्या गिनी नहीं जा सकती थी। और न उसका वर्णन ही किया जा सकता है।" (पृष्ठ ३५६, ग्रन्थ २, इलियट एवं डाउसन)।

सुलतान की सेना से कटलघ खाँ बचता हुआ इधर-उधर भागता रहा। दोनों के बीच में हिन्दू लुटते-पिटते रहे। अब वह समाना जा पहुँचा। यहाँ

का मुस्लिम अधिकारी सुलतान का विरोधी था। ध्येय एक होने से दोनों में गाढ़ी छनने लगी।

इस विरोध को दबाने के लिए उलुघ खाँ नियुक्त था ही। वह सेना लेकर दिल्ली से चला। इसके कुछ ही दिन बाद दिल्ली के कुछ ऊँचे मुसलमानों ने दोनों विरोधियों को एक गुप्त पत्र भेजकर दिल्ली आने का न्यौता भेज दिया। इन लोगों ने लिखा कि "आप लोगों के स्वागत में दिल्ली के दरवाज़े खुले रहेंगे।"

सहयोग के इस आश्वासन से उत्साहित होकर दोनों बाग़ियों ने दिल्ली के लिए कूच कर दिया। उन्होंने "यमुना तथा किलुघड़ी और शहर के बीच" अपना पड़ाव डाल दिया। (पृष्ठ ३५७) सुलतान एक कोने में दुबक-सा गया। उसकी सेना दूर थी। बाग़ी उसे घेरे हुए थे। कुछ ले देकर कुछ बाग़ियों को अपनी तरफ़ मिलाया गया। कोई और चारा था भी तो नहीं उसके पास।

१२५७-५८ ई० में एक मुग़ल सेना ने पुन: उछ और मुलतान पर चढ़ाई कर दी। सुलतान के कुछ बाग़ी दरबारी भी मुग़लों से जा मिले। मुग़लों को खदेड़ने के लिए सुलतान ने प्रस्थान किया। मगर ऐसा प्रतीत होता है कि मुग़लों से लड़ने की हिम्मत उसमें नहीं हुई।

उसका ख़ज़ाना फिर ख़ाली हो गया और हिन्दुओं को लूटना भी अनिवार्य हो गया। हराम का माल बटोरने बयाना, कोल और ग्वालियर को छाना गया। रणथम्भोर पर दूसरा प्रयास करने के लिए मलिकुन नवाब ऐबक के अधीन एक दूसरी लुटेरी मुस्लिम सेना भेजी गई। मुस्लिम लुटेरों की उपेक्षाकर रणथम्भोर अबतक अपना सिर स्वतन्त्रता से ऊँचा किए हुए था। ख़ाली ख़ज़ाने की हालत देख-देखकर सुलतान एकदम बौखलाए जा रहा था। इसी बौखलाहट में उसने अपने अधीनस्थ सभी मुस्लिम शासकों को नजराना जल्दी भेजने का फरमान भेज दिया। फलत: बंगाल की लूट से लदे दो हाथी लखनौटी से चल पड़े।

१२६० ई० में दिल्ली की समीपवर्ती पहाड़ियों के राजपूत सरदारों ने दिल्ली स्वतन्त्र कराने की एक योजना बनाई। "मेवात के इन बाग़ी (हिन्दू) निवासियों और उनके देव (हिन्दू-सरदार) को सज़ा देने के लिए" सुलतान ने उलुघ खाँ को नियुक्त किया। थोड़ी-सी गाय-भेड़ों और कुछ असुरक्षित

घरों की लूट बटोरकर सुलतान की पराजित सेना दुम हिलाती वापिस लौट आई। खुशामदियों में से मिनहज-अस्-सिराज ने इस पराजय का एकदम अस्पष्ट और धुंधला-सा वर्णन किया है। उसने इन शब्दों में इस ख़तरनाक अभियान का अन्त किया है कि "घाटियाँ और दर्रे साफ़ कर दिए गए, मजबूत किले ले लिये गए और इस्लाम के सिपाहियों की निर्दयी तलवारों की क्रूर धारों में असंख्य हिन्दू डूब गए।" सिर्फ भगवान् ही गिन सकता है कि कितने हिन्दुओं की हत्या इन मुस्लिम वर्ण-संकरों ने की।

किस प्रकार हिन्दू इतिहासकार धमकी में आए; किस प्रकार उन्होंने डर और भय से क्रूर भोगी मुस्लिम शासकों को अच्छे गुण वाले, उदार, भेदभाव से हीन, ईश्वर-भीरु धार्मिक-शासक के रूप में चित्रित किया, इसका एक उदाहरण देखना है तो आप आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव की "दिल्ली के सुलतान" शीर्षक हिन्दी पुस्तक के पृष्ठ १२८ को पढ़ें।

श्रीवास्तव जी कपटी और झूठे मुस्लिम इतिहासकारों की लाइन में खड़े होकर बतलाते हैं कि नासिरुद्दीन एक सीधा-सादा, बुराइयों से दूर, सादगी से जीवन व्यतीत करने वाला तथा किसी को भी न सताने वाला सुलतान था। इस मूढ़ हिन्दू विचार-धारा का भण्डा-फोड़ करने के लिए हम आपके सामने मिनहज-अस्-सिराज की तबक़ात-ए-नासिरी के कुछ नमूने पेश करते हैं। नासिरुद्दीन के कारनामों का वर्णन करते हुए मिनहज-अस्-सिराज़ बतलाता है—

"(नासिरुद्दीन की सेना के सेनापति) उलुघ खाँ तथा कुछ अन्य दरबारी कुलीनों ने शाही सेना और अपने अनुयायियों के साथ एकाएक (हिमालय की) पहाड़ियों में एक अभियान चलाने का निर्णय किया···वे लोग अप्रत्याशित रूप से विरोधियों (यानी हिन्दुओं) पर टूट पड़े···सभी लोगों को तलवार से काटकर फेंक दिया गया···२० दिन तक सेना की टुकड़ियाँ पहाड़ियों में चारों ओर मँडराती रहीं···पहाड़ी लोगों के गाँवों और आबादियों को चारों ओर से घेरकर बरबाद कर दिया गया···सभी निवासी चोर, डाकू और राहज़नी करने वाले थे (प्राय: सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने ये उपाधियाँ हिन्दू ग्रामीणों को दी हैं)। उन सभी को (हिन्दुओं को) मार डाला गया। सिर काटकर लाने वाले सिपाहियों को एक सिर के लिए चाँदी का एक टंका इनाम मिलता था (मुसलमान कटे हिन्दू सिर के साथ-

साथ उसके घर की लूट भी लाते थे, इस लूट में से एक टंका मुसलमान सिपाही को दे दिया जाता था, तथा बाक़ी भाग कुलीनों, दरबारियों और सुलतान में बँट जाता था)। जिन्दा हिन्दू को पकड़कर लाने वाले सिपाही को दो टंका मिलता था (क्योंकि जिन्दा हिन्दू पहले मुसलमान बनता था, फिर गुलाम बनता था, उसके बाद खूनी मुस्लिम खंजर हिन्दुस्तान में गहरा घोंपने में सहायक भी होता था)। इनाम पाने के लालच में (मुस्लिम) सिपाही ऊँची-ऊँची पहाड़ियों पर चढ़ गए। घाटियों और दरों को उन्होंने छान मारा और कटे सिरों तथा बँधे लोगों को लाने लगे। ख़ास तौर पर एक दल के अफ़ग़ान जिसमें तीन हज़ार घुड़सवार और पैदल थे'''बहुत साहसी और हिम्मत वाले थे। वास्तव में, यदि देखा जाय, तो सेना के सारे कुलीनों, नायकों, तुर्कियों और ताजिकों ने बड़ी वीरता और बहादुरी दिखाई थी। उनके बेहतरीन कारनामे (यानी हिमालय की शान्त पहाड़ियों पर झोंपड़ियों में शान्ति से जीवन व्यतीत करने वाले हिन्दुओं पर अचानक झपटकर गर्दन तराश देने वाले बेहतरीन कारनामे) इतिहास में हमेशा जिन्दा रहेंगे''' (अ) ऊँट पर भागने वाले हिन्दू दुश्मनों को उनके बच्चों और परिवारों के साथ पकड़ा गया। दुश्मनों के २५० नायक और सरदार बन्दी बनाए गये। पहाड़ी राणाओं तथा सिन्ध के राय के पास ५० हज़ार टंके मिले। इसे शाही ख़ज़ाने में भेज दिया (हिन्दुओं की इस तबाही और बरबादी से सुलतान बड़ा प्रसन्न हुआ होगा)। अपने बहुत से नायकों एवं कुलीनों को लेकर वह (पिशाच उलुघ ख़ाँ के) स्वागत में आया (क्योंकि वह एक ऐसा हिन्दू ख़ज़ाना लूटकर लाया था जो इस बात का लाइसेन्स था कि लुटेरे मुस्लिम शासक और लुटेरे मुस्लिम दरबारी पाप और अपराध के कामुक और कुत्सित जीवन में खुलकर कई दिन आराम से बिता सकते हैं)। राजधानी में दो दिन रहने के बाद दरबार फिर वहाँ गया'''प्रतिशोध का सन्देश लेकर। हाथियों को तैयार किया गया। तुर्कों ने अपनी तीखी तलवारों पर सान चढ़ाई। शाही हुक्म पर बहुत लोग'''हाथियों के पैरों के नीचे फेंक दिए गये। तेज तुर्कों ने हिन्दुओं के शरीरों के दो-दो टुकड़े कर डाले। तक़रीबन १०० लोगों की मौत चमड़ी उधेड़ने वालों के हाथों हुई। सिर से पैर तक इनका चमड़ा छील दिया गया। फिर उनमें भूसा भरा गया। भूसों से भरी कुछ चमड़ियों को नगर के प्रत्येक दरवाज़े पर टाँग दिया गया। हौज-

रानी के मैदान तथा दिल्ली के दरवाज़ों ने ऐसे दण्ड की कभी कल्पना भी नहीं की होगी ; न किसी ने ऐसी आतंककारी कहानी ही सुनी होगी (प्रायः सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने अपने-अपने इतिहासों में ऐसे खूँखार और जंगली कारनामों का बयान किया है; साथ ही उन लोगों ने यह दावा भी किया है कि ऐसी यातनाएँ, ऐसी पीड़ाएँ, उनसे पहले किसी और सुलतान ने नहीं दीं) ।"

शान्त पहाड़ियों के इस निरुद्देश्य रक्तपात और पाशविक हत्याकाण्ड तथा लूट और विध्वंस से उत्तेजित होकर हिन्दुओं ने भी वैसा ही बदला लिया। इस समाचार को सुनकर (सुलतान के सेनापति) उलुघ खाँ "पहाड़ियों की ओर तेज़ी से चल पड़ा और…पुनः सिर उठाने वाले (हिन्दुओं) पर अकस्मात् झपटकर सभी को कैद कर लिया। इनकी संख्या बारह हजार थी। इनमें नर, नारी और बालक सभी थे। इन सारी घाटियों, पहाड़ियों और घिरावबन्दियों को कुचल-मसलकर साफ़ कर दिया गया। इसमें लूट का माल भी बहुत मिला। इस्लाम की इस महान् विजय के लिए अल्लाह का लाख-लाख शुक्र है…।"

इतिहास के छात्रों को यह नहीं बताया जाता कि मुस्लिम सुलतान शान्तिप्रिय हिन्दू-क्षेत्रों को अपने वार्षिक और मनमौजी आक्रमणों में इसलिए लूटते थे, जिससे मुस्लिम लुटेरों और गुण्डों की सेना का भरण-पोषण हो सके ; जिससे दरबार का कामुक और कुत्सित जीवन बेरोक-टोक चल सके। भारत के प्रत्येक मुस्लिम सुलतान और उनके पिछलग्गू गुर्गे अपनी रोटी-बोटी चलाने के लिए एक ही काम-धन्धा करते थे और वह काम-धन्धा था—हिन्दुओं की गर्दन काटकर सारी सम्पत्ति लूट लेना।

प्रसंगवश यह ध्यान देने की बात है कि सारे गुलाम खानदान का वर्णन करते हुए मिनहज़-अस्-सिराज़ बार-बार दिल्ली के उन दरवाज़ों का वर्णन करता है, जिसे हम आज पुरानी दिल्ली कहते हैं। इसलिए मुगल सम्राट् शाहजहाँ कभी भी पुरानी दिल्ली का निर्माता नहीं हो सकता क्योंकि उसका जन्म मिनहज-अस्-सिराज़ के चार सौ वर्ष बाद हुआ था। दूसरे पृष्ठ (३८२, वही) पर मिनहज-अस्-सिराज़ हमें "शहर के किलुघड़ी और शाही-निवास स्थान" के बारे में भी बतलाता है। इसमें से पहला आज 'किलोकरी' और दूसरा हुमायूँ का मकबरा कहलाता है। हुमायूँ का मकबरा

एक प्राचीन हिन्दू राजमहल है। इसमें अनेक मुस्लिम सुलतानों ने निवास किया था। साथ ही हुमायूँ ने भी इसी में अपना डेरा डाला था। बाद में जब हुमायूँ की मृत्यु हुई तो शायद उसको इसी महल में गाड़ भी दिया गया। अतएव यह मानना एकदम ग़लत है कि जिसे हम आज हुमायूँ का मकबरा कहते हैं उसे हुमायूँ की मृत्यु के बाद बनवाया गया था।

(मदर इण्डिया, जून, १९६७)

: ९ :

बलबन

मध्यकालीन इतिहास का गुलाम-वंश मुहम्मद गौरी के कन्धों पर चढ़-कर आया था, जिसने हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता में इस्लाम की कील ठोकी थी।

अन्तिम दोनों ही शासक, जो उस ख़ानदान के हमेशा भूखे रहने वाले रक्त-पिशाच थे, २० वर्ष तक भारत में खून की नदियाँ बहाते रहे। अन्तिम मानव-शैतान की उपाधि भी शैतानी ही थी—"अल् खकानुल् मुअज्ज़म बहा उल् हक्क वाउद्दीन उलुघ खान बलबानुस् सुलतानी।"

इस्लामी हठधर्मी के तीव्र बुख़ार की उन्मादी अवस्था में, मरते-मरते भी, मुस्लिम गुलाम ख़ानदान ने हिन्दुओं का क़त्लेआम लगातार और निर्बाध रूप से किया। इस ख़ानदान का अन्तिम कुख्यात बूचड़ गियासुद्दीन बलबन था। बलबन के इस पक्ष पर प्रकाश डालते हुए महाराष्ट्रीय ज्ञानकोष के पृष्ठ जी-१९१, भाग-१२, १९२२ के संस्करण में कहा गया है कि "बलबन का जीवन लड़ाई-झगड़े और दंगे-फ़साद से भरा हुआ है। वह क्रूर मानव-हत्यारा था। दिल्ली के आसपास बार-बार उठने वाली विरोध की आवाज़ को दबाने के लिए उसने एक लाख मानवों की हत्या की। प्रत्येक शहर में मरी-कटी लाशों का ढेर लग गया, जिसकी सड़ान्ध से सारे वातावरण में असहनीय दुर्गन्ध व्याप्त हो गई थी।"

बलबन तुर्किस्तान की अलबारी का ख़ाकन था। बचपन में ही कुछ मुग़ल लुटेरों ने उसे पकड़ लिया। इन्हीं मुग़लों से उसने बलात्कार का पाठ पढ़ा, जिसका उपयोग उसने बाद में हिन्दुस्तान में लूट, बलात्कार और हत्या का चक्र चलाकर किया। बटमारी पर पलने वाले को गज़नी के गुलामों के बाज़ार में ख्वाजा जमालुद्दीन नामक एक थोक गुलाम-व्यापारी के हाथ में

दिया गया। संसार के इतिहास में, गुलामों को बटोरकर, खिला-पिलाकर खूब मोटा-ताजा करके मुस्लिम शासकों के हाथों बेच देना मुस्लिम-युग में सबसे लाभदायक धन्धा था। इन गुलामों से, छोटे-मोटे घरेलू कामों के अलावा, गुदाभोग तथा अन्तर्राष्ट्रिय गुण्डागर्दी का कार्य भी लिया जाता था ताकि लूट, नरसंहार, विध्वंस और धर्म-परिवर्तन के खम्भों पर टिका मुस्लिम शासन फलता-फूलता रहे।

१२३२ ई० में अन्य गुलाम व्यवसायियों के साथ, ख्वाजा जमालुद्दीन बलबन आदि गुलामों को लेकर दिल्ली आया और उन सभी को मुस्लिम शासक अल्तमश के सामने क़तार में खड़ा कर दिया। भारत में अत्याचारी मुस्लिम शासन का शिकंजा मजबूत करने के लिए अल्तमश को गुण्डागर्दी में प्रवीण लोगों की ज़रूरत प्रचुर परिमाण में रहती थी। उसने सभी को ख़रीद लिया।

मध्ययुग में जमालुद्दीन जैसे गुलामों के व्यापारी और दलाल सारे पश्चिम एशिया में छाए हुए थे जो दुष्टों और गुण्डों का व्यवसाय बड़े धड़ल्ले से चला रहे थे। अन्तर्राष्ट्रिय लूटमार करने वाले गिरोहपति के हाथों इन लोगों को भारी मुनाफ़े से बेचा जाता था।

बलबन अल्तमश का निजी-सहायक बनाया गया। सुलतान रुकनुद्दीन के शासनकाल में उस गुलाम बलबन को इस्लाम के नाम पर हिन्दू क्षेत्र लूटने के लिए एक अभियान पर भेजा गया था। इसे बन्दी बनाकर इसके दुराचारों का दण्ड दिया गया। मगर स्वभाव से उदार होने के कारण हिन्दू लोगों ने इसकी कपटी क़समों पर विश्वास कर कि अब वह बुराई से तौबा करेगा और अच्छे मार्ग पर चलेगा, इसे मुक्त कर दिया। अगर इसको बन्दी करने वाले न्यायाधीश होते तो इस हत्यारे को इसके दुराचारों के अपराध में फाँसी पर लटका देते, उसकी मुक्ति की अपीलें भी बेकार होतीं और हज़ारों निर्दोष स्त्रियाँ और बच्चे इसके अत्याचारों का शिकार बन सिसक-सिसक कर मरने से बच जाते। मगर वे सिर्फ़ रहम दिल ही थे, न्यायाधीश नहीं।

जब अल्तमश की बेटी रजिया ने गद्दी को हथियाया तब भी यह उसके शाही अंगरक्षक का काम करता रहा। अनेक बार औरतों के ऐसे निजी-सहायक उनके शीलहर्ता भी बन जाते थे। अपने काले कारनामों के कारण

विख्यात बलबन यानी उलुघ खाँ अपने पद और स्थान के कारण जवान सुलताना रज़िया का शीलहर्ता भी हो सकता है। रज़िया के शासन में ही उसकी पदोन्नति हुई और वह शाही अस्तबल का मुखिया बना दिया गया क्योंकि अपने पाशविक व्यवहार के कारण उसे पशुओं की देखभाल के योग्य समझा गया। उसकी पाशविकता के प्रमाण मिलने में देर भी नहीं थी। रज़िया को गद्दी से उतारने वाले बाग़ी कुलीनों के समूह में वह मिल गया।

अपने विध्वंसात्मक षड्यन्त्रकारी स्वभाव के कारण उलुघ खाँ(बलबन) दरबार की षड्यन्त्र शृंखला का अनिवार्य अंग बन गया। रज़िया के परवर्ती शासक बहराम शाह को इसे संतुष्ट करने हेतु रेवाड़ी का क्षेत्र लूटमार करने को देना पड़ा। इसको अपना आधार बनाकर उलुघ खाँ ने अपने डाकू जीवन की बिसमिल्लाह की। उसने आक्रमण कर हाँसी को भी दबोच लिया। उद्दण्ड और खूनी उलुघ खाँ (बलबन) ने अब सुलतानी पद पर अपनी नज़र गड़ा दी। विद्रोह के पौधों के पनपने के लिए दरबार की कामुक और कपटी ज़मीन काफ़ी उपजाऊ थी। शासक-सुलतान को गद्दी से हटाने और उसकी हत्या करने के इच्छुक जहरीले दरबारियों के विद्रोही षड्यन्त्रों का मुख्य चक्का उलुघ खाँ (बलबन) ही रहता था।

रज़िया की भाँति उसके भाई बहराम शाह को भी गद्दी से नीचे घसीट-कर हलाल किया गया था। परवर्ती स्वाभाविक दंगे-फ़साद में सभी दरबारी गद्दी पर चढ़ बैठने के लिए धक्कम-धक्का करने लगे। धूर्त उलुघ खाँ ने अपनी सुलतानी का ढिंढोरा भी पिटवा दिया। मगर अफ़सोस, उसे पर्याप्त साही सहायता नहीं मिल सकी। उसे अल्तमश के पोते अलाउद्दीन मसूद शाह के लिए रास्ता छोड़ना पड़ा। कठिनाई से उसने चार वर्ष ही शासन किया था कि उलुघ खाँ के षड्यन्त्रों ने उसकी गद्दी उलट दी और उसका ख़ात्मा कर दिया।

एक बार फिर बलबन ने गद्दी पर बैठने का प्रयास किया मगर असफल रहा। ख़ाली गद्दी के सामूहिक रॉक-एण्ड-रॉल ने उसके दावे को एक पीढ़ी पीछे धकेल दिया। अल्तमश के पोते की हत्या के बाद अल्तमश का बेटा नासिरुद्दीन गद्दी पर बैठा।

नासिरुद्दीन ने २० वर्ष तक आतंक फैलाया। उलुघ खाँ (बलबन) उसका सेनापति था। २० वर्ष तक नासिरुद्दीन की सेना के सेनापति की

हैसियत से तथा उसके बाद २० वर्ष तक अपनी सुलतानी हैसियत से बलबन (उलुघ खाँ) ने हिन्दू भारत को क़यामत की विशाल कड़ाही में उबाल डाला। फलते-फूलते हिन्दू नगर और ग्राम घायल और मृत हिन्दू शरीरों को गोद में लेकर जलते खण्डहरों में बदल गए।

इब्न बतूता और इमामी जैसे इतिहासकार सेनापति उलुघ खाँ (बलबन) पर ज़हर देकर अपने सुलतान नासिरुद्दीन की हत्या करने का आरोप लगाते हैं। यह आरोप, सम्भव है कि सत्य हो क्योंकि हिन्दू खून की नदी में तैरती इस खूंखार गद्दी पर बैठने के लिए बलबन एकदम बिलबिला रहा था। रज़िया, उसके भाई मुइज़ुद्दीन बहराम शाह और अल्तमश के पोते अलाउद्दीन मसूद शाह की हत्याओं में इसने हिस्सा लिया था। इसी बीच उसने एक बार धूर्तता से अपनी सुलतानी का ढिंढोरा भी पिटवा दिया था। सुलतान नासिरुद्दीन से उसने बग़ावत भी की थी। इन सब परिस्थितियों पर विचार करने से यह स्वाभाविक प्रतीत होता है कि बलबन अल्लाह पर इस बात के लिए क्रोधित हो जाय कि वह नासिरुद्दीन को न जहन्नुम भेज रहा है, न जन्नत ही बुला रहा है। नासिरुद्दीन की मृत्यु १२६५ से १२६६ ई० के बीच हुई थी। अतएव यह स्वाभाविक ही है कि विद्रोही और महत्त्वाकांक्षी उलुघ खाँ नासिरुद्दीन को ज़हर दे दे।

नासिरुद्दीन पुत्रहीन था। उसके साथ ही अल्तमश का वंश ख़त्म हो गया। मगर दिल्ली के अपहृत राजसिंहासन पर अभी भी एक गुलाम जमा हुआ था।

इतिहासकार बरनी लिखता है—"नासिरुद्दीन के शासन के अन्त के साथ ही दिल्ली की सुलतानियत ने अपना सम्मान खो दिया। प्रजा सुलतानी शासन का विश्वास खो बैठी और उसका कोई भी भय प्रजा में नहीं रहा। किसी भी राज्य की सफलता और महानता का स्रोत है—कानून का भय और कुशल प्रबन्ध। ये दोनों ही नष्ट हो रहे थे और सारा राज्य कष्ट एवं अशान्ति से कुलमुला रहा था।"

बलबन के शासन ने उस कष्ट और अशान्ति को घनीभूत कर दिया। कुछ चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों एवं अदूरदर्शी हिन्दू सहयोगियों ने बलबन द्वारा स्वीकृत और प्रयुक्त शासन की, कुछ काल्पनिक आधारों पर उसे सुदृढ़ और सफल शासन मानकर, खूब मक्खन-मालिश की है। मगर

बलबन जैसे क्रूर भोगी में विवेक या समुन्नत मानवीय गुणों को खोजना शैक्षणिक बुद्धि का दिवालियापन ही कहा जाएगा। "दिल्ली सुलतानेट" नामक अपनी पुस्तक के पृष्ठ १३६ पर डा० आशीर्वादीलाल श्रीवास्तव बिना जाँचे और बिचारे आँख मून्द, नगाड़ा बजा बलबन की प्रशंसा में गला फाड़-फाड़कर तराना छेड़ते हैं। श्रीवास्तवजी ने व्यभिचारी और शराबी बलबन को नशा-बन्दी करने का श्रेय दिया है, जिसे पढ़कर महात्मा गांधी भी शर्म से जमीन में धँस जाएँगे। ये आशीर्वादीलाल न तो इतिहास के आशीर्वाद हैं न विद्वत्ता के। यहाँ तक कि वे देश के आशीर्वाद भी नहीं हैं।

अनेक विद्रोहों का नेतृत्व करने वाला तथा अनेक सुलतानों की हत्याओं में सक्रिय भाग लेने वाला बलबन अपनी सार्वभौमिकता को अछूता रखने के लिए बहुत उत्सुक था। तुर्की दरबारियों का एक दल 'सर्व शक्तिशाली चालीस' कहलाता था। सुलतानी राज्य में उन्हीं की तूती बोलती थी। असल में वे ही लोग सुलतान बनाने वाले या बिगाड़ने वाले थे। नाममात्र का सुलतान इनके हाथों का खिलौना होता था। ये सर्वशक्तिशाली तुर्की दरबारी पाप की अच्छी फ़सल देने वाली जागीरों को अपने अधिकार में करके हिन्दू क्षेत्रों पर आक्रमण कर हिन्दू सम्पत्ति को लूटते थे, तथा स्त्रियों और बच्चों का अपहरण कर उन्हें तरह-तरह की यातनाएँ देकर मुसलमान और फिर गुलाम बनाते थे। ये चालीसों दरबारी सुलतान अल्तमश के चुनिन्दा गुलाम थे। अल्तमश के बाद वे सर्वशक्तिमान बन गये।

इनके ज़हरीले दाँत तोड़ने के लिए बलबन ने अनेक उपायों का सहारा लिया। शक्ति का ईर्ष्यालु सन्तुलन बनाए रखने के लिए बलबन ने कुछ छोटे दरबारियों को ऊँची जागीरें दे दीं। उस गुट के एक सदस्य मलिक बकबक की पीठ पर, जो बदायूं का जागीरदार था, एक काल्पनिक अपराध के लिए इतने कोड़े बरसाए गये कि वह मर गया। इसी आरोप पर अयोध्या के शासक हैबत खाँ की पीठ पर ५०० कोड़े बरसाए गये और उसे गुलाम के रूप में एक मुस्लिम विधवा को उपहार में दे दिया गया। शराब के नशे में हैबत खाँ ने इसके पति को मार डाला था। बाद में हैबत खाँ ने हिन्दुओं से लूटी धन-राशि में से २०,००० टंके मुस्लिम विधवा को देकर अपनी स्वतन्त्रता तो ख़रीदी मगर मारे शर्म के वह जीवन भर अपने घर में ही मुँह छिपाए पड़ा रहा। यह भी हो सकता है कि उसे घर में नज़रबन्द कर

दिया गया हो। बंगाल के मुस्लिम शासक तुघ्रिन खाँ से हारे और भागे अमीन खाँ को खत्म कर दिया गया तथा उसकी सड़ी हुई लाश पवित्र अयोध्या के दरवाज़े पर लटका दी गई। भटिण्डा, भाटनेर, समाना तथा सुनाम का शासक शेर खाँ शक्तिमान-चालीस का नेता था। इसके अतिरिक्त वह बलबन का रिश्तेदार भी था। बलबन ने उसे ज़हर देकर मार डाला क्योंकि शेर खाँ महत्त्वाकांक्षी ही नहीं, प्रभावशाली भी था। बलबन को डर था कि कहीं वह गद्दी न छीन ले।

इस प्रकार पाशविक और बर्बर कर्मों द्वारा बलबन ने अपहृत सुलतानी को सिर्फ़ अपने लिए सुरक्षित कर लिया।

अपने मायावी और षड्यन्त्रकारी स्वभाव के कारण बलबन ने अपने महल से लेकर दूर तक के झोंपड़ों तक जासूसों का जाल बिछा दिया। हिन्दू लूट का बड़ा भाग वह इस पीठ में छुरे घोंपने वाले दल पर ख़र्च करता था। बदायूं के एक वेतनभोगी गुर्गे ने जब मलिक बकबक के विरोध में अपनी जबान नहीं खोली तो बलबन की आज्ञा से उसे सता-सताकर मार दिया गया तथा उसकी लाश बदायूँ के द्वार पर टाँग दी गई।

दिल्ली के मुस्लिम सुलतान शायद ही कभी अपने कर्मचारियों को वेतन देते थे। मुस्लिम सुलतान और उनके इस्लामी कर्मचारी हिन्दुओं की लूट से ही अपना पेट पालते थे। दरबारियों को छीना-झपटी हिन्दू-क्षेत्रों की जागीरें मिली हुई थीं। इसे वे अपनी इच्छानुसार दुहते थे, हरजाना वसूल करते थे या सब कुछ नोंच लेते थे। छोटे तबक़े के सिपाही आवश्यकतानुसार समय-समय पर हिन्दू घरों और खेतों पर झपटते और अपना ख़र्चा चलाते थे। इस लूट के माल में एक हिस्सा सुलतान का भी होता था, जिससे उसका ख़र्च चलता था।

बलबन ने इमादुल् मुल्क को अपना सिपहसालार बनाया। यह ध्यान देने की बात है कि हिन्दुओं की स्वतन्त्रता का प्रयास और विरोध इतना तगड़ा होता था कि सारे गुलाम सुलतानों को बार-बार उन हिन्दू-क्षेत्रों पर काबू पाकर आतंक द्वारा अपनी स्थिति मज़बूत करते रहना पड़ता था, जिसको उनके लुटेरे मालिक गौरी ने जीता या रौंदा था। बलबन को भी जीवन भर यही करना पड़ा।

यहाँ तक कि इतिहास के 'आशीर्वाद' (?) डॉक्टर आशीर्वादीलाल

श्रीवास्तव को भी अपनी पुस्तक के पृष्ठ १४० पर स्वीकार करना पड़ा, कि—"देश के अधिकांश भागों में हमारे देशवासी तुर्की शासन के जुए को उतारकर तुर्की अफ़सरों और सिपाहियों को खदेड़ देते थे। वे (यानी हिन्दू) तुर्क-अधिकृत क्षेत्रों को लूटकर बरबाद कर देते थे ताकि कुछ अन्न आदि न बचे और तुर्की लोगों को कुछ भी भू-कर प्राप्त न हो सके। दोआब और अवध के क्षेत्रों में ऐसा विरोध (स्वतन्त्रता के लिए) बराबर होता रहता था। कटिहार (यानी वर्तमान रोहिलखंड) में सुलतान के सिपाही कुछ भी कर वसूल न कर सके। राजपूतों के विरोध से सारा आवागमन असुरक्षित हो गया था। बदायूँ, अमरोहा, पाटियाली, और काम्पिल राजपूती विरोधों के केन्द्र थे। यहाँ वे तुर्कों को प्रतिशोधात्मक सज़ाएँ देते थे, किसानों को खेत जोतने से रोकते थे। और राहगीरों को लूटकर अपने छिपे स्थानों में लौट जाते थे। वे प्रायः रोज़ ही दिल्ली के निवासियों (मुसलमानों) को लूटते रहते थे। इन्हीं आक्रमणों के डर से दोपहर की नमाज़ के बाद दिल्ली के दरवाज़े बन्द कर दिए जाते थे। बंगाल, बिहार और राजस्थान आदि दूर के स्थानों में परिस्थिति और भी बदतर थी। उस युग में हमारे देशभक्त नेताओं ने (जैसे को तैसा के अनुसार) लूट और विनाश की ही युद्ध-कला अपनाई, जिसके चलते तुर्क (हमारे) देश में अपनी शक्ति को ठोस नहीं कर सके।"

राजपूतों के आक्रमण से भयभीत होकर बलबन ने दिल्ली के चारों ओर वृक्षों और झाड़ियों को निर्दयतापूर्वक कटवाकर साफ़ करा दिया। इसी कारण दिल्ली आज रेत से भरी बंजर ज़मीन हो गई है। डॉ० श्रीवास्तव ग़लती पर हैं कि उसने दिल्ली के ग्रामीण क्षेत्रों में चार दुर्ग बनवाए थे। चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों ने भूतपूर्व दुर्गों, यहाँ तक कि अस्तित्वहीन दुर्गों को भी अपने-अपने स्वामियों द्वारा बनवाया बताया है। बनाना तो दूर रहा इन मुस्लिम आक्रमणकारियों ने भव्य प्राचीरों, दुर्गों और महलों की जड़ तक खोद डाली, जिससे कि इनकी आड़ में वीर राजपूत, लालची और लुटेरे मुस्लिम शासन के विरोध में अपना स्वातन्त्र्य-संग्राम संगठित न कर सकें।

एक वर्ष तक दिल्ली को बरबाद करने के बाद, अपने शासन के दूसरे वर्ष बलबन ने दोआब और अवध की ओर अपनी कुल्हाड़ी घुमाई। सारे

क्षेत्र को कई भागों में विभक्त कर उसने प्रत्येक भाग के लिए एक-एक सैन्य-टुकड़ी नियुक्त कर दी। उसने झाड़ियों, हिन्दू सरदारों और नागरिकों को काट फेंकने का आदेश दे दिया। धर्मान्ध मुसलमानों को चुन-चुनकर इन सैन्य-टुकड़ियों में भरा गया था। इन लोगों को बार-बार तोते की तरह रटा-रटाकर विश्वास दिलाया गया था कि हिन्दुओं को हलाल करना सबसे पहला धार्मिक कार्य है और इस्लामी जन्नत को प्राप्त करने के लिए हिन्दूओं की स्त्रियों से बलात्कार कर उनके बच्चों का अपहरण करना एकदम ज़रूरी है।

इस्लामी बहिश्त की प्राप्ति की आकांक्षा ले, सारी लूट सिर पर लाद, हिन्दू खून की नदियों में तैरते हुए बलबन के दुराचारी सिपाही बे-लगाम लूट और बलात्कार के खूनी कारनामों को अंजाम देते हुए पवित्र गंगा, यमुना और अवध के चारों ओर पागलों की तरह विचरण करने लगे। भोजपुरी, पाटियाली, काम्पिल और जलाली की सैन्य-टुकड़ियों का संचालन अर्द्ध-बर्बर अफ़ग़ान कर रहे थे।

बलबन स्वयं कटिहार की ओर बढ़ा। इस्लामी जन्नत पाने के उपाय में वह प्रत्येक नगर और ग्राम के घरों को जला, भवनों को गिरा, खड़ी फ़सलों को रौंद, हर आदमी की हत्या करने लगा, हर स्त्री एवं बच्चे को ग़ुलाम बनाने लगा। सारे क्षेत्रों में इस हत्याकाण्ड से क्षत-विक्षत शरीर पड़े सड़-गल रहे थे। इतिहासकार बरनी कहता है कि इस भयकारी नाटक का ऐसा आतंक विद्रोही हिन्दुओं के दिल पर बैठ गया कि हमेशा-हमेशा के लिए उनका साहस टूट गया। अगर सभी हिन्दू पुरुषों को मारकर उनकी स्त्रियों एवं बच्चों को मुसलमान बनाने के लिए बटोर लिया गया हो तो उस क्षेत्र में हिन्दू-विरोध जीवित ही कैसे रह सकता है।

यह नहीं सोचना चाहिए कि यह तबाही और बरबादी सिर्फ़ बलबन की ही ख़ास खूबी है। प्रत्येक मुस्लिम शासक ने, चाहे वह दिल्ली का शासक रहा हो या अन्य नगरों का, या वह मध्ययुग का मामूली मुस्लिम सरदार रहा हो, ऐसे ही काले कारनामों से अपना मुँह काला किया है। कितने दुःख की बात है कि ऐसे खूनी और ख़तरनाक कारनामों का ब्योरेवार लेखा-जोखा होने के बावजूद भी भारतीय इतिहास ने मुस्लिम शासन को प्रशंसा की चादर से ढक रक्खा है। जागरूक अध्ययन द्वारा इस मायावी चादर को

सिर्फ़ खींच भर देने से कुचली-मसली लाशों का उनका बर्बर काला कारनामा एकदम नंगा होकर जनता के सामने आ जाएगा।

बुन्देलखण्ड एवं राजपूताना में भी बलबन ने ऐसे कुचल-मसल अभियान चलाने का प्रयास किया। मगर वहाँ की जनता बलबन के इस खूनी नाच को देखकर जाग चुकी थी। उन क्षेत्रों को अपनी बर्बर चालों से पूर्ण बरबाद कर सके, इससे पूर्व ही उन लोगों ने उसकी चाल को विफल कर दिया।

बलबन शासन के प्रथम वर्ष में बंगाल के शासक ने उसके अधीन होने का नाटक खेला था। अब इसने बलबन से विद्रोह कर दिया। समय भी उसने अच्छा चुना था। इधर मुग़लों ने बलबन के राज्य के पश्चिमी छोर सिन्ध पर चढ़ाई की उधर पूरब में उसने विद्रोह की तलवार चमका दी। समय था १२७९ ई०। तुघ्रिन खाँ ने अपने को राजा घोषित कर सिक्कों पर अपना नाम खुदवा दिया। बलबन ने अवध शासक अमीन खाँ को इसका विद्रोह दबाने की आज्ञा दी। जब अमीन खाँ हारकर वापिस आया तो उसने उसे मारकर उसकी लाश को अयोध्या के द्वार पर लटकवा दिया।

बलबन ने बंगाल में दूसरी सेना भेजी। वह भी हारकर भाग आई। तीसरी सेना भी मुँह लटकाए वापिस आ गई। तीन बार विजयी होने वाले तुघ्रिन खाँ की शक्ति का अन्दाजा लगाकर बलबन ने स्वयं सैन्य-संचालन का विचार किया। उसने दो लाख सैनिकों को एकत्र किया। साथ में उसका पुत्र बुग्र खाँ भी था। जब बलबन ने लखनौटी के समीप डेरा डाला तो तुघ्रिन खाँ बंगाल के भीतर चला गया। बलबन उसे चारों ओर खदेड़ता रहा। अन्त में तुघ्रिन खाँ को ढाका में पकड़कर हाजी नगर लाकर मार दिया गया।

लखनौटी वापिस पहुँचकर बलबन ने तुघ्रिन खाँ के सहयोगियों से भयंकर बदला लिया। शहर के बीच में दो मील लम्बे बाजार की सड़क के दोनों ओर इन लोगों को शूल की नोक में भोंककर, शूल का दूसरा हिस्सा ज़मीन में गाड़ दिया। शूल में भुंकी, सूली पर चढ़ी और अधर में लटकी लाशों की बन्दनवार-सी बँध गई। सड़क के दोनों ओर खड़े लैम्प-पोस्टों-सा दृश्य हो गया। मगर इस बन्दनवार और लैम्प-पोस्टों से सुगन्ध और प्रकाश नहीं सड़ान्ध निकलती थी। इस खौफ़नाक दृश्य को देखकर ही कुछ लोग बेहोश हो ज़मीन पर गिर गये। जो देखकर सिर्फ़ बदहवास ही हुए, बेहोश

नहीं हुए वे सड़ान्ध से चकराकर मूर्च्छित हो गए। बरनी कहता है— "इससे पहले लोगों ने ऐसा खौफ़नाक दृश्य कभी भी नहीं देखा था।" अपने स्वामियों के शासनकाल का वर्णन करते समय मुस्लिम इतिहासकार ऐसे ही खौफ़नाक कारनामों का वर्णन करते हैं। साथ ही वे यह भी लिखते हैं कि ऐसा खौफ़नाक कारनामा उससे पहले किसी ने भी करके नहीं दिखाया था। उसपर यह तुर्रा भी वे इतिहासकार जोड़ते गये हैं कि उनके स्वामी न्यायी, दयालु और बुद्धिमान थे।

अब बलबन ने अपने पुत्र बुग्र खाँ को बंगाल का शासन भार दे दिया। साथ ही उसने बेटे को यह धमकी भी दी कि अगर वह कभी दिल्ली के सुलतान (यानी बलबन) से विद्रोह करेगा तो उसे अपने सहयोगियों तथा उनकी सारी स्त्रियों और बच्चों के साथ जलाकर राख कर दिया जाएगा। इससे स्पष्ट होता है कि उसके पुत्र को भी बलबन से प्यार और भक्ति नहीं थी। यह बात सिर्फ़ बलबन के परिवार तक ही सीमित नहीं है। यह बात सारे मध्यकालीन मुस्लिम शासकों और दरबारियों पर समान रूप से लागू होती है। यह एक शाश्वत नियम है।

बंगाल में आतंक फैलाकर बलबन दिल्ली लौट आया और लगा मृत तुग्रिल खाँ से सहानुभूति रखने वाले लोगों को अपने दरबारियों के बीच खोजने। जिसने ज़रा-सी भी संवेदना प्रकट की वही पकड़ लिया गया। इन लोगों को उसने कई भागों में बाँटा और हर विभाग के लिए अलग-अलग दण्ड की व्यवस्था की। एक काज़ी के बीच में पड़ने से उसने इन दण्डों की क्रूरता कुछ कम कर दी। फिर भी सैकड़ों समाप्त हो गए और बाक़ी बन्दी-ख़ाने में बन्द कर दिए गये। मुस्लिम अत्याचार के इस हैजे से अन्य अछूते हिन्दू क्षेत्र भी बरबाद हो जाते अगर मंगोल आक्रमणकारियों की नंगी तलवार बलबन-राज्य के पश्चिमी छोर पर लटकती न होती। लाहौर तक भारत का उत्तरी क्षेत्र मुस्लिम हाथों से निकलकर मंगोलों के हाथों में चला गया। दिल्ली सुलतान की सुलतानी मुलतान और सिन्ध तक फैली हुई थी। यह धारणा एकदम निराधार है कि उसने उन क्षेत्रों में मंगोलों का बढ़ना रोकने के लिए दुर्गों का निर्माण किया था। भूतपूर्व राज-पूत दुर्गों में ही उसने अपने सैनिकों को तैनात कर दिया था। पश्चिमी सीमा का शासन प्रबन्ध बलबन के एक सम्बन्धी शेर खाँ के अधीन था। शेर

खाँ का आतंक और अत्याचार बलबन के बराबर ही था। गक्खर हिन्दुओं और मुग़लों के निवास-स्थानों को इसने जला डाला था और जो हाथ में पड़ा उसकी गर्दन मरोड़ डाली थी। शेर खाँ के बढ़ते प्रभाव से डरकर बलबन ने उसे १२७० ई० में ज़हर देकर मार डाला। इससे स्पष्ट है कि बलबन न कमज़ोर सेनानायक को देख सकता था न शक्तिशाली सेनानायक को।

सीमा-क्षेत्र को बलबन ने दो भागों में बाँट दिया। सुनाम और समाना वाला भाग उसने अपने छोटे पुत्र बुग्र खाँ को दे दिया और मुलतान तथा सिंध अपने बड़े बेटे मुहम्मद को।

दो फारसी कवि थे—अमीर खुसरो और अमीर हसन। मुहम्मद के संरक्षण में ये दोनों लूट का हिन्दू माल खा-खाकर मोटे हो रहे थे। मुहम्मद ने एक दूसरे फारसी कवि शेख सादी को भी अपने साथ रहकर हिन्दू माल पर मस्त रहने के लिए आमंत्रित किया। मगर अत्यधिक वृद्ध होने के कारण शेख सादी ने इस न्यौते को स्वीकार नहीं किया।

मुहम्मद के विरोध के बावजूद मंगोल बलबन के राज्य पर आक्रमण करते रहे। एक बार तो उन लोगों ने सतलज नदी पार कर ली थी मगर मुहम्मद और बुग्र खाँ की संयुक्त सेना के दबाव के कारण उन्हें पीछे हटना पड़ा।

१२८६ ई० में मंगोल एक बड़ी सेना लेकर आए। परवर्ती संग्राम में मुहम्मद मारा गया। अब बलबन ८० वर्ष का हो चुका था। पुत्र की मृत्यु से उसका हृदय शोक सन्तप्त हो उठा। समाप्त तेज और झुकी कमर होने के उपरान्त भी किसी तरह उसने एक सेना एकत्रित की और मुग़लों के विरुद्ध भेजा। लाहौर पर पुनः कब्ज़ा तो हुआ मगर उसके उत्तर का सारा क्षेत्र मंगोलों के अधिकार में ही रहा।

बड़े पुत्र की मृत्यु से सन्तप्त बलबन को एक दूसरा रोग लग गया। जिन लाखों को उसने सताया, भोगा और मारा था उनकी भयावनी यादों और उनके प्रेतों ने उसे चारों ओर से घेर लिया। अपने नारकीय जीवन के अन्तिम कुछ महीनों में वह सोते-सोते ही एकाएक बड़े ज़ोरों से प्रलाप करने, गला फाड़कर चीख़ उठने या दहाड़ें मार-मारकर रोने लगता था।

अपने अन्त को समीप जानकर उसने अपने छोटे पुत्र बुग्र खाँ को अपने

पास ही रक्खा। मगर क्या एक शैतान लुटेरे और उसकी सन्तान में कभी पितृ-भक्ति और सन्तति स्नेह पनप सकता है? बड़े होने पर क्या एक पशु का एक बेटा अपने माँ-बाप की चिन्ता करता है? मुस्लिम शासकों एवं दरबारियों का पारिवारिक सम्बन्ध बस इसी प्रकार का था। इस प्रकार के प्रलापों एवं दुःस्वप्नों के बीच अपने पिता को छोड़कर बुग्र खाँ लखनौटी बंगाल चला गया। बुग्र खाँ की रवानगी को सुनकर बलबन ने अपने पोते और मुहम्मद के बेटे कैंखुसरू को अपना उत्तराधिकारी बना दिया।

भारत में जंगली मुस्लिम-शासन की सड़ान्ध को और घनीभूत कर बलबन १२८७ के मध्य में मर गया।

उसका राज्य एक लम्बी बरबादी और सम्पूर्ण उजाड़ का दृश्य प्रस्तुत करता है। यह काल्पनिक और खुशामदी वर्णन कि बलबन शिक्षा का संरक्षक और महान् भवन-निर्माता था, चापलूस इतिहासकारों की वही झूठी बकवास है जो उन लोगों के प्रत्येक खूनी शासन के वर्णन के सम्बन्ध में है। बलबन और उसके सभी पूर्ववर्ती शासक, जो भारत का द्वार तोड़कर भीतर घुसे थे, भेड़िये, व्याघ्र और लोमड़ियों से अधिक श्रेष्ठ नहीं थे और न उनमें सभ्यता का ज़रा-सा भी चिह्न था। जंगली मुस्लिम शासकों एवं उनके दरबारियों के विषय में उनके चापलूस खुशामदियों ने जो यह कल्पित वर्णन किया है कि वे सभी दयालु, उदार, कला-प्रिय तथा साहित्य के संरक्षक हैं, पर विश्वास करना मानव-ज्ञान का अपमान करना है।

यद्यपि बलबन ने मुहम्मद के पुत्र कैंखुसरू को सुलतान मनोनीत किया था, मगर फ़ख़रुद्दीन के नेतृत्व में दिल्ली के दरबारियों ने उसे सुलतान नहीं बनने दिया। इसके बदले बुग्र खाँ के १७ वर्षीय पुत्र कैंकूबाद को उन लोगों ने १२८७ ई० में सुलतान बना दिया। सुलतान बनने के साथ ही वह व्यभिचार के जीवन में डूब गया। उसके दरबारियों ने उसका खुल्लम-खुल्ला अनुकरण करना प्रारम्भ कर दिया। सरकारी-शासन प्रबन्ध सुलतान निर्माता फ़ख़रुद्दीन के व्यभिचारी दामाद निजामुद्दीन के हाथ में आ गया। कैंकूबाद इसके हाथों की कठपुतली था।

दिल्ली सुलतान के शिथिल शासन का लाभ उठाकर मंगोलों ने पंजाब पर चढ़ाई कर, समाना तक अपना अधिकार कर लिया। मलिक बकबक ने किसी प्रकार उन लोगों की गति रोकी और लाहौर क्षेत्र में उन्हें पराजित

करने में सफल हुआ। एक हजार मंगोल बन्दी बनाकर दिल्ली लाए गए। सभी को क्रूरतापूर्वक मार दिया गया।

पापी निजामुद्दीन अब सुलतान बनने के स्वप्न देखने लगा। अपने सम्भावित प्रतिद्वन्दियों के प्रति षड्यन्त्र रचकर वह गुप्त रूप से एक-एक का सफ़ाया करने लगा। इन षड्यन्त्रों का समाचार पाकर बुग्र खाँ एक विशाल फ़ौज लेकर दिल्ली की ओर चल पड़ा। स्पष्टत: उसका इरादा अपने पुत्र को बन्दी बनाकर गद्दी हथियाने का था। अपने पिता की नीति से परिचित कैकूबाद अपने पिता से फैसला करने के लिए सेना लेकर चल पड़ा। अयोध्या के समीप सरयू तट पर दोनों सेनाएँ आमने-सामने आ डटीं। ऐसी परिस्थिति में, जब दो शैतानी सेनाएँ हिन्दू क्षेत्र पर आपस में लड़ती हैं तब हिन्दू-विनाश की कोई सीमा नहीं रहती। भेड़ियों और चीतों की भाँति हिन्दू लोगों को मारकर और उनके घरों को लूटकर मुस्लिम सेना अपना व्यय एकत्रित करती थी। लूट में हिन्दू औरतों के साथ बलात्कार होता था तथा मार्ग स्थित मन्दिर मस्जिद बनाए जाते थे।

पिता एवं पुत्र के बीच की सारी सन्धि-वार्ताओं में व्यवधान डालकर निजामुद्दीन बुग्र खाँ की सेना पर चढ़ाई करने के लिए कैकूबाद को उकसाने लगा। उसका विचार था कि बाप और बेटे लड़ाई में कट मरें तथा गद्दी उसके लिए खाली छोड़ दें। मगर कुछ बड़े-बूढ़े दरबारियों के प्रयास से मतभेदों का निराकरण हो गया कि बाप बुग्र खाँ अपने बेटे का आदर करे तथा बेटा अपने बाप की सलाह से अपने व्यभिचार पर लगाम लगाए।

इसके बाद दोनों सेनाएँ अपनी-अपनी जगहों को लौट गईं। निजामुद्दीन ने भी ज़हर देकर अल्पवयस्क सुलतान को मारकर समाप्त कर देने की मुस्लिम परम्परा को स्थगित कर दिया। कैकूबाद का व्यभिचार-नियन्त्रण थोड़े ही दिन तक टिका। वह पुन: उसी में डूब गया। स्वच्छन्द व्यभिचार, अबाध शराब सेवन तथा मूर्च्छाकारक नशीले द्रव्य-सेवन से सुलतान को लकवा मार गया। शारीरिक रूप से अनुपयुक्त होने के कारण तुर्की दरबारियों ने सुलतान के बाल-पुत्र शम्सुद्दीन कैमार को गद्दी पर ला बैठाया।

बुलन्दशहर के कुशासक दरबारी जलालुद्दीन खि़ल्जी और दिल्ली दरबार के एक कुलीन दरबारी में इस समय तक तीव्र प्रतिद्वन्द्विता और

साम्प्रदायिक ईर्ष्या पनपने लगी थी। जलालुद्दीन के प्रभाव एवं महत्त्वाकांक्षा को ताड़कर तुर्की लोग उसकी हत्या का षड्यन्त्र रचने लगे। मगर जलालुद्दीन तुर्की लोगों से ज्यादा धूर्त और फुर्तीला था। सेना लेकर वह सीधा दिल्ली आया, लकवा-ग्रस्त कैकूबाद को बन्दी बनाया और मार दिया। अब जलालुद्दीन ने अपने आप को छोटे सुलतान शम्सुद्दीन का संरक्षक घोषित कर दिया। मगर वह सिर्फ़ संरक्षक बनकर ही संन्तुष्ट नहीं था। साथ ही उसने तुर्की दरबारियों का ख़तरा भी सूंघा। अपने को अधिक सुरक्षित और अपनी महत्त्वाकांक्षा को पूरा करने के लिए जलालुद्दीन ने शिशु सुलतान को समाप्त कर मार्च, १२६० ई० में स्वयं को सुलतान घोषित कर दिया।

गुलाम वंश ने १२०६ ई० में डंका पीटकर कुतुबुद्दीन ऐबक के अधीन दिल्ली का राजसिंहासन छीना था। ८४ खूनी वर्षों के शैतानी अधिकार के बाद यह सुलतान शम्सुद्दीन कैमार के साथ बुदबुदा कर समाप्त हो गया।

इन ८४ वर्षों में गुलाम वंश के सात पापी सुलतानों ने राज्य किया था। इसमें शिशु शम्सुद्दीन भी एक था जो यह नहीं जानता था कि बड़े मुस्लिम शैतान नृशंसता और क्रूरतापूर्वक उसे कुचलकर सुलतान बनना चाहते हैं और अन्त में एक अपहर्ता ख़िल्जी उसका खून करके सुलतान बन गया।

दिल्ली के हिन्दू राजसिंहासन का प्रथम मुस्लिम अपहर्ता गुलामों के बाजारों में बार-बार ख़रीदा-बेचा हुआ गुलाम कुतुबुद्दीन ऐबक था, जिसने १२०६ ई० से १२१० ई० तक शासन किया था। लाहौर में पोलो खेलते हुए गिरकर मरने पर उसका पुत्र आरामशाह उसी शहर में सुलतान घोषित हुआ। ८ महीने तक उसने किसी प्रकार शासन चलाया ही था कि उसके पिता के गुलाम और दामाद अल्तमश ने गद्दी छीनकर उसकी हत्या कर दी। खूबसूरत चेहरे और काले दिल वाले अल्तमश ने गुलाम वंश में सबसे अधिक समय तक यानी २५ वर्ष तक कुशासन किया। कुतुबुद्दीन के पुत्र आरामशाह की भाँति अल्तमश का वारिस पुत्र रुकनुद्दीन फ़िरोज़शाह कुछ ही महीने सत्ता का सुखभोग कर पाया था कि दिल्ली-गद्दी पर बैठने को आतुर खूनी मुसलमानों ने उसकी हत्या कर दी। पाँचवाँ शासक अल्तमश की मर्दानी बेटी रज़िया थी जो परम्परागत मुस्लिम बुर्क़ा फेंक, खेल

के मैदान में कूद पड़ी मगर मुस्लिम दरबारी-जीवन के विषाक्त और पापी वातावरण में फँसकर पहले उसका शील धूल में मिला, फिर उसका शरीर। यह सारा काण्ड सिर्फ़ चार वर्ष में ही हो गया (१२३६ से १२४०)। अपनी ही बहिन को पदच्युत कर, मारने वाला उसका अपना ही बेशर्म-व्यभिचारी भाई मुइज्जुद्दीन बहराम शाह था, जिसे दो वर्ष १२४०-४२ ई० तक शासन करने के बाद छुरा घोंपकर दूसरे देश पार्सल कर दिया गया।

अब अल्तमश का पोता अलाउद्दीन मसूद शाह गद्दी पर आया। १२४२ ई० से १२४६ ई० तक गद्दी पर रहने के बाद उसे भी एक हत्यारे के चाकू का शिकार बनना पड़ा, मानो मुस्लिम शाही परम्परा का यह रिवाज़ ही हो। दरबारी जीवन के रॉक-एण्ड-रॉल ने अब बड़ी पीढ़ी के सिर पर ताज रख दिया। अल्तमश का बेटा नासिरुद्दीन मुहम्मद सुलतान बना। १२४६ ई० से १२६५ ई० तक अपने राज्य के सारे हिन्दू नगरों और ग्रामों में उसने अपने सेनापति उलुघ खाँ (बलबन) के सहयोग से सामूहिक नर-संहार कर हिन्दू खून की नदी बहा दी। सन्देह है कि गद्दी पर बैठने को आतुर बलबन ने शाही मुस्लिम रिवाज़ के अनुसार नासिरुद्दीन को यह विचार कर जहर दे दिया था कि वह बेमतलब जिन्दा रहकर और अपने शासनकाल को खींच-तानकर दूसरे का हक़ मार रहा है। १२३५ से १२८७ ई० तक का बलबन का शासन सचमुच एक शैतान का नंगा खूनी नाच था, जिसके एक हाथ में मशाल थी और दूसरे में नंगी तलवार।

२१ वर्ष तक लगातार वह हिन्दू खून की नदी बहाता रहा, स्त्रियों पर बलात्कार तथा बच्चों का हरण कर उनके घरों में आग लगाता रहा और उसके बाद सारे शहर की ईंट-से-ईंट बजाता रहा। अपने व्यभिचारी जीवन के कारण बेशर्म पापी कैकूबाद को जिसे बीसवाँ साल भी नहीं लगा था, गद्दी पर बैठने के तीन वर्ष के भीतर ही लकवा मार गया था, अतएव उसे गद्दी छोड़नी पड़ी और बाद में उसकी भी हत्या कर दी गई। यह बलबन का पोता था। इसका व्यभिचारी और दुराचारी शासन १२८७ से १२९० ई० तक रहा। डगमग चलते इसके शिशु पुत्र को नाम-मात्र के लिए गद्दी पर बैठाया गया। मगर इस शिशु सुलतान शम्सुद्दीन कैमार तथा लकवा-ग्रस्त उसके पिता की एक दूसरे अपहर्ता मुस्लिम शैतान ने हत्या कर दी—मगर इस बार वह एक खिलजी था।

हिन्दुत्व पर अग्नि-गोलों की वर्षा करनेवाला ११ शासकीय गुलाम वंश एक ख़िल्जी की ठोकर से उड़ गया। गुलाम वंश के हाथ से नीचे गिरी मशाल और तलवार को उठाकर ख़िल्जियों ने हिन्दुस्तान में घुसने वाले मुसलमानों के झुण्डों के अखण्ड खूनी-नृत्य को जारी रखा।

हिन्दू जीवन और सम्पत्ति के दाव पर हिन्दू ताज की गेंद खेलने के लिए गुलाम वंश के ११ मुस्लिम खिलाड़ी मैदान में उतरे और आँख मूंदकर गलत खेल खेलते गए। इनमें से सिर्फ़ तीन को रेफ़री अल्लाह ने सीटी मारकर आउट किया। नासिरुद्दीन के बारे में सन्देह है कि उसे बलबन ने ज़हर दे दिया था। शेष सातों को खूनी मुस्लिम दरबारी-खेल के शाही मैदान से उठाकर बाहर गिद्धों की जेवनार के लिए सड़क के किनारे फेंक दिया गया। इन सातों का गला कटा हुआ था; ज़िबह किए गये मेमने की भाँति।

मुस्लिम शासन के ऐसे छद्म और छिन्न, चकमे और चाकूबाजी युक्त शासन के काल्पनिक गुणों एवं सुधारों (प्रजा की उन्नति के सुधारों) का प्रश्न-पत्र देकर भारतीय छात्रों को परीक्षा एवं कक्षा-भवन में इस पीढ़ी की प्रशंसा में विस्तार से लिखने के लिए कहा जाता है। भारत की इतिहास-शिक्षा का यह छिछलापन अत्यधिक शोक का विषय है।

(मदर इण्डिया, अप्रैल, १९६७)

: १० :

जलालुद्दीन खिल्जी

इस्लाम के नाम पर हिन्दुओं के सिरों का शिकार करना ७वीं शताब्दी से ही धर्मान्ध मुस्लिम लुटेरों का एक बीभत्स, क्रूर और खूनी खेल रहा है। बाद में जब एक के बाद दूसरा मुस्लिम शासक इस्लाम की रक्त टपकाती तलवार और आग बरसाती मशाल से खचाखच हिन्दू-सिर गिराने तथा भकाभक हिन्दू घर जलाने लगता है तो पाठक और दर्शक साँस रोककर बैठ जाते हैं।

क्या मजाक है कि इस्लाम की उन्मादी आग से भारत को जलानेवाला पहला मुस्लिम खानदान एक गुलाम खानदान था। इस पाशविक मुस्लिम खानदान की जड़ मजबूत करनेवाला कुतुबुद्दीन अन्तर्राष्ट्रिय दुष्ट दल के सरदार मुहम्मद गौरी का एक दीन-हीन पिछलग्गू गुलाम था।

कुतुबुद्दीन और उसके गुलाम उत्तराधिकारियों के क्रूर कारनामों ने भारत के परवर्ती मुस्लिम शासकों के सामने लूट और अत्याचार की एक ऐसी मिशाल पेश की, जिसके आधार पर उन्होंने भी अपनी तूती बजाई। व्यभिचार और कपट, मुस्लिम दरबारी जीवन की आन थी। हर पुत्र ने अपने पिता का खून बहाकर बड़ी शान से उसके हरम पर अपना कब्जा किया था।

गुलाम खानदान का अन्तिम प्रमुख शासक बलबन था। उसके बाद गद्दी भँवरजाल में पड़ गई। उसका व्यभिचारी पोता गद्दी पर बैठा। जब कामुक जीवन की एक्सप्रेस गति के कारण उसे लकवा मार गया तो उसके शिशु-पुत्र को मायावी दरबारियों ने गद्दी पर बैठा दिया और शासन-सूत्र तुर्की दरबारियों के एक गुट के हाथ में आ गया। उस गुट के दरबारियों में ऊपरी मेलजोल जरूर था मगर भीतर-ही-भीतर वे एक-दूसरे की जड़

काटने में लगे हुए थे। मगर अ-तुर्की दरबारियों के मामले में भी वे सभी एक थे। अ-तुर्की दरबारियों में एक धूर्त और प्रभावशाली दरबारी जलालुद्दीन ख़िल्जी था।

अ-तुर्की दरबारियों का सफ़ाया करने वाले तुर्की लोगों में ऐतामुर काछन तथा ऐतामुर सुर्ख नामक दो दरबारी भी थे। इन दोनों का प्रथम शिकार जलालुद्दीन था मगर वह इन दोनों से अधिक तेज़ और धूर्त निकला। अपने तिकड़मी दिमाग़ तथा भेदक दृष्टि के कारण जलालुद्दीन ने समय के संकेतों को समझा। अपने सारे गुर्गों, ख़िल्जियों और अमीरों को अपने चारों ओर जमाकर उसने बहारपुर में अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।

एक सैनिक टुकड़ी लेकर ऐतामुर काछन बहारपुर की ओर चला। इरादा था जलालुद्दीन ख़िल्जी को शम्सी महल में निमन्त्रण देकर वहीं दफ़ना देना। उसकी योजना को भाँपकर जलालुद्दीन मार्गस्थित एक झाड़ी में छिप गया तथा नेता सहित अधिकांश सैनिकों को उसने दफ़ना दिया।

जलालुद्दीन के अनेक पुत्र थे। उन लोगों ने दिल्ली को घेर लिया और शिशु सुलतान को बन्दी बनाकर बाद में मार डाला। ऐतामुर सुर्ख ने ख़िल्जी सेना का पीछा किया मगर एक ख़िल्जी-तीर खाकर वह घोड़े से नीचे गिर पड़ा। ख़िल्जियों ने अनेक कुलीनों को मारकर उनके पुत्रों को अपनी हिरासत में ले लिया।

ज़ियाउद्दीन बरकी अपनी तारीख़े फ़िरोज़शाही में लिखता है—"शहर में खासी हलचल मच गई। शिशु-सुलतान को छुड़ाने के लिए छोटे-बड़े, अमीर-गरीब सभी लोग शहर के बारह द्वारों से निकल-निकलकर बहादुर-पुर की ओर चल पड़े। ख़िल्जियों की महत्त्वाकांक्षा से सभी उत्तेजित थे, साथ ही जलालुद्दीन की ताज प्राप्ति के विरोधी भी। मगर अपने पुत्र के बन्दी होने के कारण कोतवाल ने सामूहिक उत्तेजना को शान्तकर नागरिकों को वापिस किया। बदायूँ द्वार पर नागरिक बिखर गए।" (पृष्ठ १३४-३५, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

हमेशा विजेताओं की ओर सरकने वाली गिरगिटी मुस्लिम राजभक्ति के अनुसार कुछ तुर्क जलालुद्दीन से आ मिले। लकवाग्रस्त सुलतान के रक्त से अपना हाथ न रँगना चाहने के कारण जलालुद्दीन ने एक नायक को खोज निकाला, जिसके पिताजी की हत्या सुलतान कैकूबाद ने की थी। कैकू-

बाद को अल्लाह के घर भेजने का सन्देश लेकर वह "किलुघड़ी" की ओर चल पड़ा। "किलुघड़ी" में घुसकर उसने अन्तिम हिचकियाँ लेते हुए सुलतान को मारकर उसके शरीर को यमुना में फेंक दिया। (वही, पृष्ठ १३५) हत्याओं के खूनी खेल में मुसलमान इतने ही हृदयहीन और भाव-शून्य होते हैं।

नाम के शिशु सुलतान तथा उसके लकवाग्रस्त पिता कैकूबाद की हत्या-कर जलालुद्दीन ने प्रमुख दरबारियों को अपनी ओर मिलाया और अपनी स्थिति दृढ़ कर ली।

तरक्कीयाफ्ता और अपहर्ता जलालुद्दीन एक ख़िल्जी होने के कारण पुरानी दिल्ली आने का साहस नहीं कर सका क्योंकि वहाँ की मुसलमानी जनता सिर्फ़ तुर्कों को ही गद्दी का वारिस मानने की अभ्यस्त थी।

अगर गुलाम ख़ानदान की ही पीढ़ी चलती तो बलबन का पुत्र मलिक छाजू गद्दी का वारिस होता। जलालुद्दीन ने कर्रा का कुशासन सौंपकर उसे वहाँ भेज दिया।

बरनी बतलाता है—"जलालुद्दीन नगर में नहीं गया···दिल्ली जाने में अक्षम हो (उसने) किलुघड़ी को ही अपनी राजधानी बनाया। अनेक व्यवसायियों को दिल्ली से ला-लाकर (वहाँ) बसाया गया" (वही, पृष्ठ १३५-३६)। तेरहवीं शताब्दी के इस उद्धरण से यह स्पष्ट है कि बात पुरानी दिल्ली की हो रही है। इसपर भी आज के इतिहासकार यह नगारा पीट रहे हैं कि पुरानी दिल्ली का निर्माण १७वीं शताब्दी में शाहजहाँ ने किया था।

दिल्ली के गुलाम ख़ानदान के दो अन्तिम छोटे सुलतानों के रक्त से अपने हाथ रंगकर जलालुद्दीन ख़िल्जी मानो यह सौगन्ध खाकर गद्दी पर बैठा कि गुलाम ख़ानदान के हाथों से गिरी हिन्दू-खून टपकाती तलवार और हिन्दू घर जलाने वाली मशाल को उठाकर पाशविक नृत्य करने का उत्तराधिकार वह अपनी वंश-परम्परा को बड़े जोर-शोर के साथ देगा।

हिन्दुस्तान की रक्त-स्नात खूनी मुस्लिम गद्दी पर बैठने वाले जलालुद्दीन की उपाधि भी उसी की भाँति खूँख़ार थी—"सुलतानुल् हालिम जलाद दुन्या वाउद्दीन फ़िरोज़शाह ख़िल्जी।" उनके अत्याचारी इतिहास को

लिखने वाले दलाल इन वर्णसंकर मुसलमानों को बड़ी भारी-भरकम उपाधि देते थे।

फ़रिश्ता के अनुसार जलालुद्दीन १२८८ ई० में गद्दी पर बैठा। अमीर खुसरो के मिफ्ताहुल् फुतुह के अनुसार इसे १२९० ई० होना चाहिए। बरनी दोनों के बीच का समय १२८९ ई० बतलाता है। यानी ये तथाकथित चाटुकार मुस्लिम इतिहासकार अपने दरबारियों और शाहज़ादों की प्रशंसा लिखने के अलावा और किसी भी चीज़ से मतलब नहीं रखते थे। यहाँ तक कि एक शासक या वंश के अन्त तथा दूसरे के प्रारम्भ जैसी महत्त्वपूर्ण घटनाओं की सही तारीख़ लिखने से भी उन्हें कोई मतलब नहीं था।

जलालुद्दीन के सुलतान बन जाने के बाद ही बरनी के चापलूस मुख से खुशामद का वही स्वर गूंज उठा, मानो ग्रामोफोन का रिकार्ड हो—"उसके चरित्र, उसके न्याय और उसकी श्रद्धा की महानता ने धीरे-धीरे जनता की घृणा को पोंछ डाला। जागीर प्राप्ति की लालसा ने लोगों का प्यार जीतने में सहायता दी" (वही, पृष्ठ १३६)। मुस्लिम इतिहासकारों की ख़ास खूबी का यह एक नमूना है। उनका पहला स्वार्थ था अपनी गर्दन बचाना, जिसके रहते वे बिना झेंपे आँख मूँदकर तोते की तरह झूठी बातें रटते चले जाते थे।

उसके उपजाऊ हरम में जन्मे तीन बच्चे, जिनका वह पिता भी हो सकता था, बड़े 'प्रवीण' थे क्योंकि वे उसके हिन्दू-हत्याभियान में सहयोगी होने के योग्य हो गये थे! "इन तीनों को अलग-अलग तीन राजमहल दिए गये" (वही, पृष्ठ १३६)। यानी विजय-मण्डल, श्री तथाकथित हौजखास एवं निजामुद्दीन आदि अनेक हिन्दू राजमहलों में जलालुद्दीन, उसके तीनों पुत्र और दरबारियों ने अपना कब्ज़ा जमा लिया।

एक वर्ष बाद जब जलालुद्दीन को विश्वास हो गया कि मुस्लिम लोग एक तरक्की याफ़्ता ख़िल्जी के माथे पर ताज देखने के अभ्यस्त हो गये हैं तो वह "नगर में जाकर अपने राजमहल पर उतरा···और अपने पूर्वजों की गद्दी पर बैठ गया।" (वही, पृष्ठ १३६)। यानी जिसे हम आज दीवाने-ख़ास कहते हैं वह दिल्ली के लाल क़िले का एक प्राचीन राजपूती महल है।

जलालुद्दीन के गद्दी नशीन होने के एक साल के भीतर-ही-भीतर अन्तिम गुलाम शासक बलबन के भतीजे मलिक छज्जू ने अपने को सुलतान

घोषित कर कर्रा से दिल्ली की ओर कूच कर दिया। जलालुद्दीन भी उससे टकराने के लिए आगे आया। दोनों सेनाएँ बदायूँ से २५ मील दूर आपस में भिड़ गईं।

शैतानों के हज़ार वर्षीय मुस्लिम-नृत्य का एक दिन भी बिना विद्रोहों के नहीं गुज़रा है। ऐसे समय जब भी दो मुस्लिम सेनाएँ आपस में टकराने आगे बढ़ती थीं उस समय सारे हिन्दुओं से अन्न छीनकर उनके खेतों को जला दिया जाता था, हिन्दू घरों को लूटकर हिन्दू नारियों पर बलात्कार किया जाता था, हिन्दू बच्चों का अपहरण कर उनका खतना कर दिया जाता था, हिन्दू नागरिकों को गुलाम बनाकर खुले-आम बेच दिया जाता था और ताज़ा कटी गाय के खून से मन्दिर को "शुद्ध" कर उसे मस्जिद बना दिया जाता था। यही कारण है कि अनेक मध्यकालीन मन्दिर आज मस्जिद के रूप में हमारे सामने खड़े हैं।

छाजू खाँ के मुख्य सलाहकार पकड़े गये। क्रूर पिता के दुष्ट पुत्र अरकली खाँ ने "उसकी गर्दन पर जुआ रखकर और उसे बाँधकर सुलतान के पास भेज दिया। ऊँटों पर चढ़े, जूओं से दबे गर्दन के पीछे बँधे हाथों और धूल से सने लोगों को सुलतान के सामने पेश किया गया।" (वही, पृष्ठ १३२)।

मुसलमानों की कपटी और गिरगिटी राज-भक्ति से परिचित जलालुद्दीन ने उन्हें मुक्त करके सभी की बड़ी आवभगत की और उन्हें शानदार भोज दिया। मलिक छाजू मुलतान में नज़रबन्द कर दिया गया मगर भरपूर शराब और साक़ी के साथ।

बरनी कहता है कि ऐसी परिस्थिति में बलबन "विद्रोहियों के साथ बुरी तरह पेश आता और न जाने कितना खून बहाता! अगर सुलतान और उसके अनुयायी उसके हाथ में पड़ जाते तो हिन्दुस्तान से खिल्जियों का नामो-निशान तक मिट जाता।" (वही, पृष्ठ १३६)। मगर यही बरनी बलबन के शासनकाल का वर्णन करने के समय गाल फुला-फुलाकर जानवर-तुल्य बलबन की बड़ाई का तराना छेड़ते नहीं थकता था।

जलालुद्दीन खिल्जी का भतीजा और दामाद वही कुख्यात अलाउद्दीन खिल्जी था जो अपने क्रूर-कारनामों के कारण मुस्लिम अत्याचारियों के बीच अपना विशिष्ट स्थान रखता है। मलिक छाजू से छीने गये कर्रा का

शासन इसके हाथ में सौंप दिया गया। कर्रा की जागीर पर जमने के एक वर्ष के भीतर-ही-भीतर अलाउद्दीन ने मलिक छाजू के सहयोगियों को अपनी ओर मिलाकर दिल्ली पर आक्रमण करने का षड्यन्त्र रच दिया। अलाउद्दीन अपनी पत्नी और उसकी माता (शासक सुलतान की पत्नी) यानी अपनी सास से बहुत घृणा करता था।

अपने चाचा और ससुर से दिल्ली छीननें लायक शक्तिशाली बनने के लिए अलाउद्दीन शाही मुस्लिम सेना लेकर किसी हिन्दू राज्य पर चढ़ बैठने के अवसर की ताक में रहने लगा ताकि अपनी दुरभिसन्धि को पूरा करने योग्य वह काफ़ी लूट ही नहीं बटोर सके वरन् शाही सेना भी उसे अपने नेता के रूप में देखने की अभ्यस्त हो जाए।

जलालुद्दीन अपनी मूर्खता के लिए विख्यात था। उसने एक बार एक हज़ार ठगों को पकड़ा, नाव पर लादा और बंगाल की राजधानी लखनौटी रवाना कर दिया ताकि वे दिल्ली के मुस्लिम पड़ोस को त्रस्त न कर लखनौटी के हिन्दू पड़ोस को ही लूटें। उसकी मूर्खता से तंग आकर नमकहराम बदमाशों का एक गुट शराब की चुस्कियों के बीच उसे हटाने की बातें करने लगा।

मुसलमानों ने हमेशा शराब को बुरा बताया है मगर उनके भारतीय शासन का प्रत्येक पन्ना तीखी और तेज़ शराब से भीगा हुआ ही नहीं है वरन् अफ़ीम आदि नशीली वस्तुओं से लिप्त भी है। नारी-जाति की मुक्ति की वे हमेशा डींग हाँकते हैं मगर सारे संसार में इन्हीं लोगों ने नारी-जाति को ऐसे खौफ़नाक बुरक़े में ढक रक्खा है, जिसे देखकर ही दिल दहल उठता है। सिर से पैर तक ढकी उनकी माताएँ, बहनें, पत्नियाँ ऐसी लगती हैं मानो चलता-फिरता जिन्दा कैदख़ाना हो।

जलालुद्दीन के प्रति चलने वाले अनन्त षड्यन्त्रों में से एक षड्यन्त्र का प्रणेता सिद्दीमौला नामक दरवेश भी था। "वह लोगों से कुछ नहीं लेता था, फिर भी उसके व्यय को देखकर लोग विस्मित रह जाते थे—"ऐसा विश्वास बरनी हमें दिलाना चाहता है। यानी दरवेश के पास गुण्डों का एक गिरोह था जो हिन्दुओं को लूट-लूटकर उसकी आपूर्ति करता रहता था। अन्त में, यह ज्ञात हुआ कि दरवेश से सम्बन्धित एक काज़ी जलाल काशनी अनेक असन्तुष्ट और ज़रूरतमन्द कुलीनों के बीच सुलतान-द्रोह की बातें

किया करता है। उन लोगों में यह तय हुआ कि "शब्बथ के दिन मस्जिद आने पर सुलतान को समाप्त कर दिया जाय।" सचमुच उनके चुनाव की तारीफ़ करनी होगी। इस कुकर्म को करने के लिए मस्जिद से श्रेष्ठ स्थान और कौन-सा हो सकता है, यह अवश्य ही उन लोगों ने सोचा होगा।

इस षड्यन्त्र की भनक सुलतान को मिल गई। उसकी आज्ञा पर एक व्यक्ति ने सिद्दी को जगह-जगह से चाकू द्वारा चीर दिया और महल के झरोखे पर खड़े सुलतान-पुत्र अरकली खाँ के संकेत पर एक महावत ने उसे हाथी के पैरों तले कुचल डाला।

षड्यन्त्र, हत्या और लूट से लिपटा मुस्लिम शासन हमेशा दुर्भिक्ष और अकाल का मारा रहा है क्योंकि खेती करने योग्य आवश्यक शान्ति (और समय) हिन्दुओं को मिल नहीं पा रही थी और मुसलमान लूटपाट से ही पेट पालना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे। परिणामतः दुर्भिक्ष अनिवार्य था। जलालुद्दीन का शासन भी दुर्भिक्षग्रस्त रहा। बरनी हमें बतलाता है—"दिल्ली में भयंकर महँगाई थी। एक सेर अनाज का दाम एक जितल हो गया था। शिवालिक में भी दुर्भिक्ष का व्यापक प्रभाव था। उस देश के हिन्दू सपरिवार दिल्ली आते थे और भूख से बेहाल होकर यमुना में डूब जाते थे।" (वही, पृष्ठ १४७)।

१२६० ई० में जलालुद्दीन ने उज्जैन और मालवा को लूटा। "वहाँ के महाकालेश्वर तथा अन्य प्रसिद्ध मन्दिरों को उसने भ्रष्टकर प्रतिमाओं को तोड़ा और काफ़ी लूट बटोरी।"

इसके बाद उसने रणथम्मोर के प्रसिद्ध हिन्दू दुर्ग पर अपनी नज़रें गड़ाईं। मगर वीर राजपूतों द्वारा सुरक्षित इस दुर्ग को जीतना उतना आसान नहीं था जितना खुले मैदान में असुरक्षित मन्दिर को, जहाँ निःशस्त्र और धार्मिक पुजारी पूजा-पाठ किया करते थे। दुर्ग को अभेद्य और सुदृढ़ देखकर जलालुद्दीन यह कहते हुए भाग निकला कि "बिना अनेक मुसलमानों को शहीद किए वह इस दुर्ग पर अधिकार नहीं कर सकता, इसी कारण वह इसका मूल्य एक मुसलमान के बाल के बराबर भी नहीं समझता। अगर अनेक मुसलमानों को कटवाकर वह इसे जीते और लूटेगा तो शहीदों की विधवाएँ और अनाथ बच्चे उसके सामने खड़े होकर उसकी लूट की खुशी को विषाद में बदल देंगे।"

इस कथन से ऐसा लगता है कि अस्सी वर्षीय बूढ़ा सुलतान जलालुद्दीन सचमुच सठिया गया था। बिना एक भी मुस्लिम-बाल खोये उसने रणथम्भोर को जीतने की तमन्ना की थी ? उसने यह नहीं बताया कि वह बाल सिर का होगा या दाढ़ी का। कुछ भी हो, अनेक मुस्लिम दाढ़ियाँ मूंड दी गईं। राजपूतों की लपकती-चमकती तलवारों ने हिन्दुत्व के एक प्रसिद्ध और मज़बूत गढ़ रणथम्भोर से सिर पर पैर रखकर भागती बेहाल मुस्लिम सेना के सैकड़ों सिर काटकर ज़मीन पर लुढ़का दिए।

रणथम्भोर से भागे वृद्ध जलालुद्दीन के सामने अब एक नई आफ़त आई। १२९२ ई० में कुख्यात हलाकू के पोते अब्दुल्ला का मुग़ल गिरोह मध्य एशिया से आकर पंजाब पर झपट पड़ा। हतप्रभ जलालुद्दीन रणथम्भोर की कमर-तोड़ मार से पिटी-पिटाई सेना लेकर लड़खड़ाता दिल्ली से निकला। मुग़ल आक्रमणकारियों एवं जलालुद्दीन की सेना में कई झड़पें हुईं। प्रत्येक झड़प में बरनी जलालुद्दीन की विजय का नगाड़ा बार-बार पीटता रहा, फिर भी यह स्पष्ट है कि जलालुद्दीन को समझौते की चिप्पी लगानी ही पड़ी। बरनी हमें बतलाता है कि "(सिन्ध की) बातचीत चली, सुलतान ने अब्दुल्ला को अपना पुत्र कहा। उपहारों का आदान-प्रदान हुआ। अब्दुल्ला वापिस चला गया मगर अपने अनेक कुलीनों, नायकों और सेनापतियों के साथ चंगेज़खाँ के पोते उलुघ ने यहीं रहने का निश्चय कर लिया। सुलतान की एक बेटी—जिन बेटियों की संख्या असंख्य थी—की शादी उलुघ के साथ कर दी गई। वे मुसलमान हो गये और किलुघड़ी, गियासपुर, इन्द्रप्रस्थ और तालुक में उनको महल दे दिया गया।" (वही, पृष्ठ १४७)। यानी हिन्दुओं से छीने गये महल इन सभी लोगों को दे दिए गये।

इस वर्ष के अन्त में जलालुद्दीन ने माण्डवगढ़ पर धावा बोल दिया। इस प्रसिद्ध और खूबसूरत राजपूत-राजधानी को नोंच-खोंचकर इसके भव्य मन्दिरों एवं महलों को मुस्लिम मस्जिद और मकबरा बना दिया गया। मुस्लिम इतिहासों में यह एकदम झूठ लिखा गया है कि माण्डवगढ़ में मुसलमानों ने अनेक भव्य-भवनों का निर्माण किया है। वास्तव में बहुत से भवनों का नाम बदला गया और कुछ का विनाश और विध्वंस किया गया।

रणथम्भोर की अपेक्षा उज्जैन को एक खुला, असुरक्षित और आसान शिकार पाकर जलालुद्दीन ने इसपर पुनः चढ़ाई कर दी। यहाँ के अनेक

मन्दिरों और पाठशालाओं को हिन्दू तीर्थ-यात्रियों ने मुक्तहस्त धन और सम्पत्ति का दान दिया था। तीर्थ-यात्रियों के भयंकर नर-संहार के साथ-साथ हज़ारों नारियों का अपहरण, शीलभंग एवं धर्म परिवर्तन हुआ और यथेष्ट मात्रा में लूट भी बटोरी गई।

अस्सी वर्षीय इस बूढ़े चाचा की कहानियों जैसी अनोखी और आसान लूट-बटोर के कारनामे को देखकर दंग अलाउद्दीन ने इस कुकर्म में उससे बाज़ी मार ले जाने की ठानी और कमर कसकर तैयार हो गया। प्राचीन और विख्यात भारतीय नगर भिलसा पर उसने धावा बोल दिया। "उसने कुछ हिन्दू पूजा की ताम्र-प्रतिमाओं को, अनेक लूट के माल के साथ उपहार-स्वरूप सुलतान के पास भेज दिया। इन प्रतिमाओं को (पुरानी दिल्ली के) बदायूं द्वार पर बिखेर दिया गया। मुसलमानों ने यह विचार करते हुए उन प्रतिमाओं को पैरों से खूब रौंदा कि इस प्रकार के कारनामों से हिन्दुओं का अपमान कर वे लोग इस्लाम का गौरव बढ़ा रहे हैं।" (वही, पृष्ठ १४८)।

हिन्दू-भिलसा के इस आक्रमण से जलालुद्दीन को यह पूर्ण विश्वास हो गया कि उसी के अनुसार उसका भतीजा-दामाद भी एक पक्का लुटेरा बन गया है। बस, इसी बात पर उसने अलाउद्दीन को अवध की जागीर भी दे दी।

एक बार जब जलालुद्दीन विदिशा में था तब उसने दूर दक्षिण के देवगिरी दुर्ग के वैभव और हाथियों की ख्याति सुनी थी। सुलतान की आज्ञा के बिना उसने चुपचाप इसे लूटने का निश्चय कर लिया ताकि हिन्दू-धन से पुष्ट होकर वह स्वयं सुलतान को अपनी मुस्लिम ललकार से पछाड़ सके। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए दिवालिया होने का बहाना बनाकर उसने अवध और कर्रा क्षेत्र का 'लूट-कर' सुलतान के पास नहीं भेजा। एक 'अच्छे' (?) मुस्लिम लुटेरे की भाँति उसने सुलतान से चन्देरी-क्षेत्र लूटने की आज्ञा माँगी ताकि लूट-कर के उस हिन्दू-धन से वह सुलतान का कु-कर चुकता कर सके। हिन्दुओं के नर-संहार द्वारा निर्धारित कु-कर से कुछ अधिक प्राप्ति की आशा में सुलतान ने अलाउद्दीन की प्रार्थना स्वीकार कर ली। इस बहाने से एकत्रित धन द्वारा अलाउद्दीन ने मुस्लिम गुण्डों की एक बृहद् वाहिनी तैयार की और देवगिरी की ओर निकल पड़ा।

एलिचपुर तथा घाटिलजौरा होकर उसकी सेना आगे बढ़ी। मार्गस्थित

सारे हिन्दू-गृहों और क्षेत्रों की जीवनोपयोगी सामग्रियों को लूटता-खसोटता, हज़ारों असहाय नारियों और बालकों का अपहरण और शीलभंग कर उनका धर्म-परिवर्तित करता हुआ वह आगे बढ़ता गया। अपने हज़ार वर्षीय शासनकाल में जहाँ कहीं भी मुस्लिम सेनाएँ गईं, टिड्डीदल की भाँति उन लोगों ने तबाही और बरबादी ही फैलाई, स्त्रियों और बच्चों को लादकर ले गए और नुची-खुची लाशें पीछे छोड़ गए। लोगों ने हिटलर तक के नर-संहार को गिन डाला, मगर कोई भी यह नहीं गिन सकता कि कितनी नारियों की इज्जत इन लोगों ने लूटी है और कितने आदमियों की गर्दन इन लोगों ने काटी है।

घाटिलजौरा से आगे बढ़ने के बाद वह सुलतान को सूचनाएँ नहीं भेज सका। इसके बदले में हमारे इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी के चापलूस चाचा अलाउल्-मुल्क उन हिन्दुओं के विरुद्ध, जिन्हें वह 'काफ़िर' कहता है, अलाउद्दीन के काल्पनिक अभियान की उल्टी-सीधी कल्पित सूचनाएँ सुलतान जलालुद्दीन के पास भेजता रहा।

देवगिरी का शासक रामदेव राय इस बात से अनजान था कि मुस्लिम अत्याचारी आ रहे हैं। उसके पुत्र के नेतृत्व में उसकी सैन्य-वाहिनी का एक बड़ा भाग कहीं दूर किसी ख़तरनाक मुहिम पर था। तबाही के देवता मुस्लिम सेना के अचानक आगमन से आशंकित और आतंकित होकर रामदेव राय ने जहाँ तक हो सका एक सेना बटोरी। उसने अपने एक कुलीन पुरुष के नेतृत्व में उस सेना को अलाउद्दीन की प्रगति रोकने भेजा। घाटिलजौरा के समीप संग्राम हुआ। अन्त में हिन्दू-सेना को पीछे हटना पड़ा। अलाउद्दीन उसे दबाता हुआ देवगिरी की ओर बढ़ा जहाँ अब सेना के नाम पर इने-गिने दो-चार पहरेदार ही थे। नर-संहार बचाने के लिए रामदेव राय को आत्म-समर्पण करना पड़ा। पर क्या नर-संहार बच सका? अलाउद्दीन ने उस असुरक्षित दुर्ग की ईंट से ईंट बजा दी। पाशविक अत्याचारों को देखकर धरती काँप उठी। सारे मन्दिर मस्जिद बनाए गए। बेशुमार घोड़े, हाथी, मोती, स्वर्णशिलाएं, जवाहरात, सिक्के और कीमती वस्त्रों का भण्डार लेकर अलाउद्दीन वापिस लौटा।

१२९६ ई० में सुलतान सुदृढ़ ग्वालियर पर अपनी लोलुप नज़र गड़ाए

उसी के समीप पड़ाव डाले पड़ा था तभी उसके पास अलाउद्दीन के देवगिरी-विजय का समाचार पहुँचा।

सठियाये बूढ़े सुलतान ने उसकी जीत को अपनी ही जीत माना। क्यों न मानता? क्या वह उसके भाई का पुत्र और उसकी पुत्री का पति नहीं था? मगर वह बेचारा अलाउद्दीन में चरित्रगत मुस्लिम दग़ाबाज़ी का ताल-मेल नहीं बैठा सका।

अनेक दरबारी ही नहीं, स्वयं सुलतान भी अलाउद्दीन के व्यवहार से सशंकित और दुविधा में था। वह निर्णय नहीं कर पा रहा था कि विजयी अलाउद्दीन की अगवानी में वह जाये या दिल्ली लौटकर उसकी प्रतीक्षा करे।

दुविधा में डूबा जलालुद्दीन अन्त में दिल्ली ही लौटा और लूट की कमाई लेकर अलाउद्दीन अपने स्थान कर्रा। अलाउद्दीन ने ऐसा दिखाव किया मानो बिना शाही आज्ञा के देवगिरी को लूटकर उसने एक महान् अपराध किया हो और अब सुलतान के क्रोध से भयभीत हो। अपने अपराधों की क्षमा-याचना करते हुए उसने सुलतान को एक पत्र लिखा। उसने हिन्दू-लूट के उपहार के साथ उनसे मिलने की भी इच्छा प्रकट की। पूरे एक वर्ष तक वह अनुपस्थित रहा। इस बीच सुलतान जलालुद्दीन के साथ उसका कोई भी सम्पर्क नहीं था।

इस मायापूर्ण पत्र को भेजकर अलाउद्दीन ने बंगाल की राजधानी लखनौटी पर धावा करने की तैयारी की। अपनी दुष्टता के अनुरूप अलाउद्दीन सुलतान के क्रोध से भयभीत होने के बहाने अपनी दिल्ली यात्रा स्थगित कर, बकाया और चालू कु-कर चुकाने से बचता रहा। उसने यहाँ तक समाचार भेज दिया कि मैं हमेशा अपने रूमाल में जहर लेकर घूमता रहता हूँ। यदि स्वयं सुलतान कर्रा आकर और क्षमादान देकर मुझे बिलासा नहीं देंगे तो मेरे लिए ज़हर खाकर मर जाने के अलावा और कोई चारा नहीं रहेगा।

सन्देह-मुक्त सुलतान जलालुद्दीन पुलकित होकर अलाउद्दीन की अस्थिरता से खिल उठे और अपने भतीजे-दामाद से मिलने कर्रा चल पड़े।

वर्षा ऋतु का प्रारम्भ हो चुका था। कर्रा के समीप गंगा तट तक सुलतान आ पहुँचे। अश्व-पति के रूप में अलाउद्दीन का भाई अल्तमश बेग

या अल्तमश खाँ जलालुद्दीन की नौकरी करता हुआ, भीतर-ही-भीतर अलाउद्दीन से मिला हुआ था। अलाउद्दीन को ज़हर खाकर मरने से रोकने तथा सुलतान के क्षमादान का भरोसा देने के बहाने वह सुलतान से पहले अलाउद्दीन से मिलने चला आया था। जब उसने देखा कि सुलतान एक बड़ी सैन्य टुकड़ी लेकर आए हैं तो शीघ्रता से आगे आकर उसने सुलतान से प्रार्थना की कि बड़ी मुश्किल से मैंने अलाउद्दीन को ज़हर खाकर मरने से रोका है। अगर सुलतान जल्दी-से चलकर खुद उसे भरोसा नहीं देंगे तो न जाने वह कब ज़हर खा लेगा। साथ ही सुलतान को विकराल सेना के साथ आते देखकर वह कुछ और बात सोच कहीं जल्दी से ज़हर न खा ले।

इस चलती-फिरती माया से धोखा खाकर सुलतान अपनी सेना को इसी पार ठहरने का आदेश दे; कुछ अंगरक्षकों के साथ गंगा के उस पार चले गये।

सुलतान जलालुद्दीन का दिमाग़ एकदम उलझा हुआ था। अलाउद्दीन की दुष्टता के बारे में कुछ कुलीन उसे सदा सचेत करते आए थे। दूसरी ओर असुरक्षित हिन्दू-मन्दिर के पुजारी-भक्षी अलाउद्दीन को उसने शर्म से मुँह छिपाये भय से काँपते पाया। उसने देखा कि सार्वभौमिक सुलतान की अगवानी के लिए अलाउद्दीन बीच धारा में भी नहीं आया। इसलिए वह बड़ी लगन से कुरान का पाठ करने लगा ताकि अगर अलाउद्दीन के दिमाग़ में कोई बुरा विचार हो तो वह निकल जाए। अल्तमश बेग ने सुलतान को यह विश्वास दिलाया कि लूटे हुए हिन्दू ख़ज़ाने का बेश क़ीमती उपहार लेकर पश्चात्ताप के आँसू बहाता हुआ अलाउद्दीन उनसे घाट पर ही मिलेगा।

बरनी लिखता है—"सन्ध्या की नमाज़ से पहले सुलतान नदी तट पर पहुँचकर अपने कुछ अनुचरों के साथ (नाव से) नीचे उतरे। अपने अफ़सरों के साथ पूर्ण सम्मान प्रदर्शित करता हुआ अलाउद्दीन स्वागत में आगे बढ़ा। सुलतान के निकट पहुँचकर अलाउद्दीन उसके चरणों पर गिर पड़ा। पुत्र की भाँति उसे प्यार करते हुए, उसकी आँखों और गालों को चूम, दाढ़ी को पुचकार, गाल पर प्यार की दो हल्की-हल्की चपत लगाकर सुलतान ने कहा—'मैंने छुटपन से ही तुम्हारा लालन-पालन किया है, फिर तुम मुझसे इतना क्यों डरते हो ?' सुलतान ने अलाउद्दीन का हाथ अपने हाथ में ले

लिया और इसी समय अलाउद्दीन ने मारक संकेत दे दिया। समाना के मुहम्मद सलीम ने अपनी तलवार से सुलतान पर वार किया। मगर ओछा पड़ने के कारण इस वार से उसी का हाथ कट गया। तब उसने दूसरा प्रहार कर सुलतान को घायल कर दिया जो यह चिल्लाते हुए नदी की ओर दौड़ रहे थे—'आह! तू दुष्ट अलाउद्दीन! यह तूने क्या किया?' जाल में फँसे सुलतान के पीछे दौड़कर इख्तियारुद्दीन हुद ने उन्हें ज़मीन पर पटक, उनका सिर क़लम कर दिया। उसके बाद ख़ून टपकाते सिर को लेकर वह अलाउद्दीन के पास चला आया।" विरोध करने वाले सुलतान के अंगरक्षकों को काटकर फेंक दिया गया। इस प्रकार कपटपूर्ण पितृ-हत्या का घोर अपराध गंगा के पवित्र तट पर सम्पन्न हुआ।

एक भाले पर सुलतान का सिर टाँगकर एक शानदार जलूस निकाला गया। कटे मुण्ड से रक्त का टपकना अभी बन्द भी नहीं हुआ था कि खूँखार षड्यन्त्रकारियों ने शाही चँदोवा अलाउद्दीन के सिर पर तान दिया और हाथियों पर चढ़कर लोगों ने अलाउद्दीन को सुलतान घोषित कर दिया।

सुलतान की हत्या के दो वर्ष के भीतर सुलतान पर प्रथम प्रहार करने वाला सलीम कुष्ठ का शिकार हो गया। दूसरे, सुलतान का सिर उतारने वाला इख्तियारुद्दीन भी शीघ्र ही पागल हो गया। उसे सुलतान का भूत दिखाई देता रहता था जो बदला लेने के लिए हाथ में रक्त टपकाती तलवार लेकर उसका सिर उतारने उसके समीप ही खड़ा रहता था।

जलालुद्दीन की हत्या का समाचार सुनकर गंगा के दूसरे तट पर स्थित उसकी सेना अहमद चाप के अनुशासन में दिल्ली लौट गई। वर्षा और कीचड़ के बीच कूच करती हारी थकी निरुत्साहित सेना दिल्ली पहुँचकर बिखर गई और सभी अपने-अपने घर आराम करने चले गए। अत्यन्त भयभीत होकर सुलतान की एक पत्नी मलिका-ए-जहान ने सुलतान के सबसे छोटे पुत्र रुकनुद्दीन इब्राहिम को गद्दी पर बैठा दिया।

इस बात से नाराज़ होकर जलालुद्दीन का बड़ा बेटा अरकली खाँ मुलतान ही में बैठा रहा। अलाउद्दीन के लिए यह एक शुभ शकुन था। मार्ग में सिक्के बिखेरता वह सीधा दिल्ली की ओर चला। नैतिकता से हीन मध्यकालीन मुसलमानों की सुलतान-भक्ति चन्द चाँदी के सिक्कों की चमक पर गिरगिट की तरह रँग बदलती रहती थी। कर्रा छोड़ने के पाँच महीने के

भीतर अलाउद्दीन अनेक मलिकों और अमीरों द्वारा संचालित एक विशाल वाहिनी लेकर दिल्ली से पाँच मील दूर आ डटा। तब मलिका-ए-जहान अपने पुत्र रुकनुद्दीन के साथ मुलतान चली गई और अपने चाचा के खून की मेहंदी हाथों में रचाकर १२९६ ई० में अलाउद्दीन ने अपने को दिल्ली का सुलतान घोषित कर दिया।

जलालुद्दीन और अलाउद्दीन ख़िल्जी के शासन काल में एक व्यक्ति रहता था, जिसका नाम अमीर खुसरो था। लड़ाकू मुस्लिम साहित्य में उसे एक कवि के रूप में चित्रित किया गया है। मगर वह किसी भी मुस्लिम दरबारी से कम चापलूस नहीं था। तथाकथित हुमायूँ के मकबरे के समीप स्थित एक हिन्दू महल के खण्डहरों में यह दबा पड़ा है। यहाँ हम पाठकों को पुनः सचेत कर देना चाहते हैं कि वे इस बात पर गम्भीरता से विचार करें कि मुस्लिम दरबारियों और शाहज़ादों की लाश के निवास के लिए भव्य मकबरा है, जबकि उनका अपना कोई भी भवन या महल नहीं था। लगता है इतिहासकारों ने कभी भी मुस्लिम लाश की कब्र पर खड़े शानदार इमारतों के इस विरोधाभास पर ज़रा भी ध्यान नहीं दिया है कि उनके विलास और व्यभिचार-प्रिय जीवित और झगड़ालू 'जीव' के रहने और कहने का अपना कोई भी महल नहीं था।

इस स्पष्ट विरोधाभास की व्याख्या आसानी से की जा सकती है, यदि यह समझ लिया जाय कि प्रत्येक मुसलमान चाहे वह राजा हो या रंक, कवि हो या दलाल, विजित हिन्दू-महलों में ही रहते थे। यही कारण है कि उनके जीवनकाल का पता-ठिकाना नहीं दिया गया है। मगर उनकी मृत्यु के बाद लीजिए और देखिए! आसमान से एक आलीशान इमारत उतरती है और उन लोगों की सड़ी-गली लाश पर आकर खड़ी हो जाती है। चिरागे अलादीन का करिश्मा हो जाता है। इतिहास ने इस रहस्य को खोलने का प्रयास भी नहीं किया। इसका बस एक ही उत्तर है कि मुस्लिम आक्रमणकारी अपहृत हिन्दू-भवनों में रहते थे और उसी महल में उन लोगों को गाड़ दिया जाता था जो उनके पाशविक अत्याचारों का प्रत्यक्ष गवाह भी है। यही कारण है कि उनके तथाकथित मकबरों में हिन्दू वास्तु-कला प्रत्यक्ष परिलक्षित होती है। अतएव स्पष्टतः जलालुद्दीन उसी महल में रहता था, जिसे हम आज हुमायूँ का मकबरा कहते हैं और खुसरो उसी के समीप स्थित

उसी महल में रहता था, जिसमें वह आज गड़ा पड़ा है। इस सच्चाई को समझ सकने के कारण लोगों ने भारतीय इतिहास तथा वास्तु-कला पुस्तकों में तथाकथित हिन्दू-अरबी वास्तु-कला की गप्प गढ़ने का प्रयास किया है। खुसरो की पृष्ठभूमि या उसके दुर्गुणों को बिना जाँचे और परखे अज्ञानी लोग प्रति वर्ष उसके मकबरे पर एकत्रित होते हैं। उन्हें यह जान लेना चाहिए कि अमीर खुसरो भारत को इसलिए प्यार करता था कि आक्रमण-कारी मुसलमानों ने लगातार भारत का खून बहाया है। बड़ी उमंग के साथ वह भारत के 'प्यार' के गीत गाता है क्योंकि इसकी "भूमि को तलवार के पानी से पवित्र कर यहाँ से काफ़िरपन की गन्दगी दूर की गई है।"

इसी जहरीले दरबारी और चापलूस शायर अमीर खुसरो को अनेक भारतीय रागों और सितार जैसे वाद्ययन्त्र के आविष्कार का श्रेय भी दिया जाता है। यह एक अनोखा उदाहरण है कि किस प्रकार मुसलमानों ने जो भारत में सिर्फ़ मृत्यु और विनाश ही लेकर आए, उन्हीं भवनों और दुर्गों के निर्माण का सेहरा अपने सिर पर बाँध लिया, जिसका उन लोगों ने अपहरण किया और उन्हीं रागों तथा वाद्ययन्त्रों का आविष्कार कर दिखाया जो पहले से ही मौजूद थे। 'सितार' संस्कृत शब्द 'सप्ततार' का अपभ्रंश है, जिसका अर्थ होता है सात तारों वाला वाद्य-यन्त्र। इस धारणा के बारे में कि अमीर खुसरो ने कुछ रागों का आविष्कार किया है, यह जोर देकर कहा जा सकता है कि भारतीय संगीत और नृत्य कला अति प्राचीन काल से ही विकसित और परिपक्व होकर हमें प्राप्त हुई। पवित्र, निष्ठावान और सात्विक जीवन व्यतीत करने वाले मन्त्र-द्रष्टा हिन्दू कवियों और सन्तों ने इन गम्भीर कलाओं का विकास किया है। ठीक इसके विपरीत-मुस्लिम दरबारी जीवन अफ़ीम, शराब, व्यभिचार और भ्रष्टाचार की कीचड़ में धँसा हुआ था। यहाँ तक कि अति प्रभावशाली छात्र भी ऐसे वातावरण में राग-साधना नहीं कर सकते। अतएव इस बात की ज़रा भी सम्भावना नहीं हो सकती कि कोई अमीर खुसरो इस प्रकार के गम्भीर शास्त्रीय रागों और जटिल वाद्य-यन्त्रों के आविष्कर्ता होने का दावा भी कर सकता है।

अतएव आँख मूँदकर धड़ल्ले से पीढ़ी-दर-पीढ़ी इन झूठी बातों को पूरी तरह परखकर उनकी असत्यता का भण्डाफोड़ कर देना चाहिए और फिर उन्हें इतिहास की पुस्तकों से बाहर निकाल फेंकना चाहिए। ऐसी असंगत बातों को मानना मानव-विवेक का घोर अपमान है।

(मदर इण्डिया, अगस्त, १९६७)

: ११ :

अलाउद्दीन खिल्जी

मुस्लिम अत्याचार के हज़ारवर्षीय काले युग में जन्मा और पला प्रत्येक भारतीय मुस्लिम शासक, चाहे उसका कुछ भी नाम रहा हो, अकबर या औरंगज़ेब, अहमदशाह या अलाउद्दीन, वह बलात्कार, अत्याचार, कपट और दुष्टता का साक्षात् अवतार था। सभी एक-दूसरे से बढ़कर शैतान थे। इस सच्चाई को पहचानने के लिए सभी को साम्प्रदायिकता का चश्मा उतारकर उन्हें देखना, जाँचना और परखना होगा। फिर भी इस समान रूप से गन्दे और बीभत्स इतिहास के कुछ नाम साधारण जनता की चेतना पर अपने खूँखार कारनामों के कारण बड़ी बुरी तरह छाए हुए हैं। ऐसा ही एक नाम अलाउद्दीन ख़िल्जी का है जो अपनी भयंकर दुष्टता में साक्षात् जंगली हिंस्र पशु ही था।

जुलाई, १२९६ ई० में अलाउद्दीन ने दिल्ली से अपने चाचा और ससुर को लोभ-लालच देकर दूर कर्रा में बुलाकर उसकी हत्या कर दी। सुलतान जलालुद्दीन की हत्या का समाचार सुनकर उसकी पत्नी ने उसके सबसे छोटे पुत्र रुकनुद्दीन इब्राहिम को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया। उस समय हिन्दू नारियों को सताकर बलात्कार करने तथा हिन्दू बालकों एवं निःशस्त्र पुजारियों की हत्या करने में अपनी धाक जमाने वाले जलालुद्दीन का बड़ा बेटा अरकली खाँ मुलतान की हवा खा रहा था।

अलाउद्दीन कर्रा से दिल्ली के लिए चला। गंगा और यमुना में बाढ़ आई हुई थी। उस साल वर्षा का तीव्र वेग होने के कारण उसकी सेना को कीचड़ और दलदल में से होकर चलना पड़ा था। सावधानी से दिल्ली की ओर बढ़ता हुआ अलाउद्दीन शाही सेना एवं अरकली खाँ के विरोध के प्रति भी सचेत था। अरकली खाँ मुलतान में मुँह छिपाकर नहीं बैठता तो वह

वह अपने पिता जलालुद्दीन की गद्दी पर अपना दावा ही नहीं ठोकता वरन् अपने पिता की हत्या का बदला भी ले लेता। परन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि अलाउद्दीन जैसे शैतान से तलवार टकराने का साहस उसमें नहीं था।

जलालुद्दीन की विधवा पत्नी मलिका-ए-जहान ने अपनी सेना एकत्रित की और अलाउद्दीन की प्रगति रोकने उसे भेज दिया। मगर इस सेना को अविश्वसनीय पाकर वह छोटे सुलतान के साथ कायर अरकली खाँ की शरण में मुलतान भाग गई।

अलाउद्दीन को तक़दीर का बली जानकर सुलताह की भाड़े की सेना लड़ने को तत्पर न हुई। उधर अलाउद्दीन भी लड़ाई छेड़ना नहीं चाहता था। मृत सुलतान के अमीरों और मलिकों को अपनी ओर मिलाने के लिए, अपने कूच-काल में हिन्दू-घरों को उजाड़कर बटोरे गये धन और बिलखती हिन्दू-स्त्रियों का शीलभंग कर उनके नाक-कानों से नोचे हुए जवाहरातों को उसने उपहार स्वरूप बाँटना प्रारम्भ कर दिया।

सुलतान की हत्या और हत्यारे अलाउद्दीन के दिल्ली-सीमा प्रवेश के बीच पाँच महीने का समय व्यतीत हो चुका था। भयंकर भूल करने वाली इतिहास सम्बन्धी पाठ्य-पुस्तकें विशेष रूप से अलाउद्दीन को सीरी (श्री) और मुगल सम्राट् शाहजहाँ को पुरानी दिल्ली के निर्माण का श्रेय देती हैं। ये दोनों ही धारणाएँ—आँखों में गड़ने वाली भयंकर ऐतिहासिक भूलें हैं। अक्षम और अपूर्ण फारसी लिपि में जिसे सीरी लिखा है वह वैभव की देवी "श्री" ही है जोकि एक संस्कृत शब्द है। धन की देवी के नामों पर स्थानों और नगरों का नाम रखने की परम्परा हिन्दुओं में थी। दिल्ली का यह 'श्री' भाग प्राचीन हिन्दू नगर-शृंखला का ही एक भाग था। पुरानी दिल्ली में एकाएक प्रविष्ट होने का साहस न बटोर सकने के कारण अलाउद्दीन और उसके पूर्वज जलालुद्दीन ने इसी स्थान पर अपना तम्बू खड़ा किया था। बीस वर्ष के सारे शासनकाल में जिसके हाथ खून से चिप-चिप ही करते रहे, जिसने हिन्दुओं की पीठ में छुरा घोंपकर उनकी लाशों को कुत्तों को खिला देना अपना धर्म समझा, जिसने रक्त रंजित खाली हिन्दू महलों को अपने बाप-दादा की जागीर समझा, उस पापी अलाउद्दीन ने 'श्री' या तथाकथित कुतुब-मीनार का एक भाग भी बनाना तो दूर रहा भारत भर में कहीं एक दीवार भी खड़ी नहीं की। वह इतिहास, जो उसे अनेक

महलों और नगरों के निर्माता होने का श्रेय देता है, सरासर बक़वास करता है।

तारीख़े फ़िरोज़शाही में लिखा है—(वही, पृष्ठ १६०, ग्रंथ ३)—"१२९६ ई० के अन्त में अलाउद्दीन ने एक बड़ी सेना लेकर बड़ी शानो-शौकत व तड़क-भड़क के साथ दिल्ली में प्रवेश किया। वह कुश्क-ए-लाल (लाल-प्रासाद) की ओर बढ़ा जहाँ उसने निवास किया।" भारतीय इतिहास के विद्वानों और छात्रों को इतिहासकार बरनी के इस पर्यवेक्षण को पढ़कर एकदम जाग जाना चाहिए, तन्द्रा त्याग देनी चाहिए, आँखें खोल लेनी चाहिए और डंके की चोट पर कह देना चाहिए कि वे अब अधिक मूर्ख नहीं बनेंगे। यह लाल-प्रासाद वही है जिसे हम आज दिल्ली का लाल-किला कहते हैं। ऐसी स्पष्ट स्वीकारोक्ति रहने के बावजूद भी हमारे इतिहासकार इस गप्प पर विश्वास करके मूर्ख बन रहे हैं कि लाल-किले का निर्माण १६वीं शताब्दी में मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ ने किया था।

यह लाल-किला मुस्लिम-पूर्व का हिन्दू किला है। दिल्ली के प्रत्येक मुस्लिम विजेता ने इसमें निवास किया था। अतएव यह स्वीकार करना एक भयंकर भूल होगी कि पाँचवीं पीढ़ी वाले मुग़ल सम्राट् शाहजहाँ से पहले लाल-किले का अस्तित्व ही नहीं था। दिल्ली में लाल-किले के पर्यटकों को सरकार "ध्वनि और प्रकाश" में लाल-किले के वृत्त सुनाती है। ग़लत पाठ्य-पुस्तकों की परम्परा के अनुसार सरकार-संचालित लाल-किले का लेखा भी शाहजहाँ से ही प्रारम्भ होता है जबकि इसे कम से कम शाहजहाँ से १२०० वर्ष पूर्व से प्रारम्भ होना चाहिए क्योंकि अकबरनामा तथा अग्निपुराण दोनों ही यह स्वीकार करते हैं कि राजपूतों की तोमर जाति के हिन्दू राजा अनंगपाल ने ३७६ ई० में एक भव्य और आलीशान दिल्ली का निर्माण किया था।

मृत सुलतान के दरबारियों के विरोध-स्वर को शांत करने के लिए, छीनी हिन्दू सम्पत्ति और लूटे-झपटे हिन्दू महलों को उपहारस्वरूप बाँटने के अलावा अलाउद्दीन ने उन्हें भारी-भरकन उपाधियों से भी विभूषित किया और ख्वाजा ख़ातिर को वज़ीरे आज़म बना दिया।

अलाउद्दीन के ख़ास गुर्गे चार थे—उसका भाई उलुघ ख़ाँ, नुसरत ख़ाँ, ज़फ़र ख़ाँ और साला अलप ख़ाँ। इन चारों ख़ाँनों ने जो कारनामा

कर दिखाया है वह किसी इन्सान का इतिहास नहीं वरन् एक हिंस्र पशु का जीवन-चरित्र है।

मुलतान में रहने वाले मृत सुलतान के पुत्रगण अलाउद्दीन की आँखों में काँटों की तरह खटक रहे थे। इसलिए उसने पहले इन लोगों से निपट लेने की ठानी। मृत सुलतान के बच्चों, पत्नियों, नौकरों, गुलामों और सहायकों को घेरने के लिए उसने उलुघ खाँ और जफ़र खाँ के अधीन एक विशाल वाहिनी तैयार की। जीवन की आशंका से कम्पित होकर उस असहाय दल ने आत्म-समर्पण की सूचना भेज दी। अलाउद्दीन ने भी उनको यथोचित आदर-सम्मान देने का वचन दे दिया।

अलाउद्दीन ने इस प्रकार के पूर्ण समर्पण की कल्पना भी नहीं की थी। दिल्ली में समाचार पहुँचने के साथ ही अलाउद्दीन ने एक विशेष समारोह करने की आज्ञा दी। मुलतान में इन लोगों को बन्दी बनाकर सैनिकों ने दिल्ली प्रयाण किया। मगर इस दल को बीच में ही रोक, उनके 'यथोचित आदर सत्कार' कर्म को विधिवत् पूरा करने का भार अलाउद्दीन ने नुसरत खाँ को सौंपा ताकि कोई भी सही-सलामत, बिना अंग-भंग के, दिल्ली पहुँचकर गिड़गिड़ाते हुए अलाउद्दीन से दया की भीख न माँग सके।

अलाउद्दीन की आज्ञा को लेकर नुसरत खाँ ने इस दल को दिल्ली के मार्ग पर स्थित एक सुनसान जंगल में रोका। इसके बाद क्रूर और गन्दे कामों की बिसमिल्लाह हुई। शाही बन्दियों के सारे स्वर्णाभूषण और सम्पत्ति को नोच लिया गया। सुन्दर और जवान नारियों पर बलात्कार करने के लिए उन्हें अलग छाँट लिया गया। शिशुओं और बूढ़ों को, जिन का कोई भी कामुक उपयोग नहीं था, हलालकर ठंडा कर दिया गया। अगर कुछ इने-गिने लोगों को जिन्दा छोड़ा भी गया तो तपती लोहे की शलाकाओं से उनकी आँखों को फोड़कर। मृत सुलतान जलालुद्दीन के एक दामाद उलुघ खाँ (उसके दामादों की संख्या अनगिनत थी), उसके अनेक पुत्रों, एवं सिपहसालारे आज़म अहमद चाप की आँखें फोड़ दी गईं। बाद में हलाल करने के लिए जलालुद्दीन के अन्धे पुत्रों को हाँसी के दुर्ग में भेज दिया गया। अहमद चाप को दिल्ली लाकर हथकड़ी तथा बेड़ी से जकड़कर उसी के परवर्ती महल के एक गन्दे तहखाने में फेंक दिया गया। अन्धे अरकली खाँ के सभी पुत्रों को हलालकर उनकी खूबसूरत पत्नियों और दासियों को

अलाउद्दीन और उसके दरबारियों के हरमों में हाँक लिया गया। एक मुसलमान अपने ही रक्त और मांस के निमित्त मुसलमान के ही साथ कितना नीच व्यवहार कर सकता था, उसका यह एक जीता-जागता उदाहरण है। काफ़िर तो रहे दर किनारे।

अपनी श्रेष्ठ और अतुलनीय दुष्टता के पुरस्कार-स्वरूप नुसरत खाँ को मुख्य मन्त्री का पद मिला। दिल्ली गद्दी के उत्तराधिकारियों के बीच अपना स्थान सुरक्षित देखकर अलाउद्दीन की चुनिन्दा दुष्टता का दूसरा चरण प्रारम्भ हुआ। उसने नुसरत खाँ को मृत सुलतान के उन सारे दरबारियों की सम्पत्ति छीन लेने की आज्ञा दी जिन्हें अपनी ओर मिलाने के लिए अलाउद्दीन ने रुपया लुटाया था। पाठकों को यह नहीं समझ लेना चाहिए कि ऐसी कुख्याति, कपट और क्रूरता सिर्फ़ अलाउद्दीन की ही बपौती थी। क़ासिम से लेकर उसके वंशजों ने दुष्टता की जो एक परम्परा क़ायम की थी, अलाउद्दीन उसी परम्परा का पालन कर रहा था। फ़र्क़ सिर्फ़ इतना ही था कि बरनी ने संयोग से अलाउद्दीन की शैतानियत के खूनी वर्णन की प्रशंसा में कुछ अधिक पन्ने रँग डाले, जबकि अपने स्वामी की लूट में हिस्सा बँटाने वाले इन मुस्लिम इतिहासकारों ने दूसरे मुस्लिम शासकों के क्रूर कर्मों के विवरण को जहाँ-तहाँ छोड़कर और अपनी समझ से लीपा-पोती कर स्वामी-चाटुकारी में ही समय गँवाया है।

अलाउद्दीन की ताजपोशी के एक वर्ष के भीतर ही एक विशाल मुग़ल सेना सिन्धु पारकर पंजाब को रौंदने लगी। बढ़ते मुग़लों को रोकने के लिए अलाउद्दीन ने एक सेना भेज दी। जालन्धर के समीप संग्राम हुआ। विजयी मुस्लिम सेना ने हाथ में आए सारे मुग़लों का सिर काट फेंका। गधों और ऊँटों पर लादकर इन कटे मुण्डों को अलाउद्दीन के पास पार्सल कर दिया गया, जिसके लिए ये सड़े-गले सिर उसकी विजयी बाहुओं की डालियों में खिले मधुर सुगन्ध देने वाले लाल गुलाब के फूलों जैसे थे। अफ्रीका की जंगली जाति भी अपने शत्रुओं की खोपड़ियों की माला पहनकर इठलाती फिरती है। उन लोगों की सभ्यता की यही निशानी है।

जालन्धर जाते और वापिस आते समय मार्ग में मिलनेवाले हिन्दू घरों और नगरों को लूटकर अलाउद्दीन की सेना काफ़ी माल भी बटोर लाई थी। सारे हिन्दू मन्दिरों को मस्जिद बना, गौओं को काट, हिन्दू नारियों

का शील-भंग कर हिन्दुओं की सारी सम्पत्ति लूट ली गई थी। हिन्दू-मुस्लिम एकता का बाजा बजाने वाले कुछ झक्की और सनकी लोग बड़े नाज़ और नखरों के साथ यह तराना छेड़ते हैं कि मुस्लिम सन्तों (?) ने भारत (और पाकिस्तान) के मुसलमानों का धर्म-परिवर्तन उनकी अपनी इच्छा से किया था। ऐतिहासिक दृष्टिकोण से यह बात एकदम ग़लत है। भारतवर्ष में हज़ार वर्ष के मुस्लिम अत्याचारों के बीच दो-चार सौ हिन्दू ही 'स्वेच्छया' मुसलमान बने हों तो बने हों। १५ करोड़ मुसलमानों को मुहम्मद बिन क़ासिम, गज़नवी, गौरी और अलाउद्दीन जैसे शैतान लुटेरे सन्तों की सेना ने सता-सताकर अपना धर्म त्यागने को मजबूर किया था। उनके इन्हीं अत्याचारों के कारण हिन्दुओं द्वारा वे म्लेच्छ कहलाए। यह ग़लत है कि यूनान के लोग ही यहाँ यवन कहलाए थे। अतएव ये म्लेच्छ लुटेरे ही इस्लाम के सफल और सच्चे सन्त थे। इन्होंने बड़े पैमाने पर लोगों को तलवार की नोक से अपने धर्म में दीक्षित किया था। यही कारण है कि सभी मुस्लिम-राष्ट्र मनोवैज्ञानिक और आर्थिक दृष्टि से पिछड़े हुए हैं। मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण से ये लोग अभी तक जंगली और बर्बर धर्मान्धता, धर्म-परिवर्तन और धर्म-युद्ध (जिहाद) की पिछड़ी बिचारधाराओं को कलेजे से चिपकाए घूमते फिरते हैं।

१२९७ ई० में अलाउद्दीन की सेनाएँ नए हिन्दू-क्षेत्र की वार्षिक लूट और नर संहार पर निकलीं। इस बार गुजरात की बारी थी। अभियान का भार उलुघ खाँ और नुसरत खाँ पर था। तबाही फैलाने वाली मुस्लिम सेना के सामने अपनी राजधानी अनहिलवाड़ को छोड़कर गुजरात के करणराय ने अपनी पुत्री देवल देवी के साथ देवगिरी के रामदेव राय की शरण ली। अनहिलवाड़ और गुजरात को निर्विरोध निर्दयतापूर्वक लूटा गया। रानी कमलदेवी अन्तःपुर की अन्य नारियों के साथ मुसलमानों के हाथ में पड़ गई। उन सभी पर बलात्कार हुआ। बरनी हमें बतलाता है—"सारा गुजरात आक्रमणकारियों का शिकार हो गया; महमूद गज़नवी की विजय के बाद पुनर्स्थापित सोमनाथ की प्रतिमा को उठाकर दिल्ली लाया गया और लोगों के चलने के लिए उसे नीचे फैला दिया गया।" (पृष्ठ १९३, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन) प्रत्येक मुस्लिम शासक ने बार-बार इन कुकर्मों को दोहराया है। वे सभी मन्दिर आज भी मस्जिद बने हुए हैं।

कुख्यात नुसरत खाँ खम्भायत की ओर बढ़ा और उस सम्पन्न नगर के सारे हिन्दू व्यापारियों को लूट लिया। एक खूबसूरत हिन्दू बालक कुछ समय पूर्व ही अलाउद्दीन के हाथ पड़ चुका था जो उसकी अप्राकृतिक काम-तृप्ति का साधन था। नुसरत खाँ ने उसे एक बार उधार माँग लिया और सारे गुजरात अभियान में उसे अपने साथ रखा। पवित्र हिन्दुत्व के नियन्त्रण से छूटकर नये धर्म परिवर्तन की अतिरिक्त भयंकरता और जोश के साथ, इतिहास में कुख्यात मलिक काफूर नामक यह बालक बड़ी जल्दी जंगली मुस्लिम लुटेरों के उस रूप में विकसित हो गया जो हमें पाषाण युग के आदिमानव का स्मरण दिलाता है।

उलुघ खाँ और नुसरत खाँ ज्यों ही दिल्ली की ओर मुड़े, लूट के माल से लदी उसकी सेना में विद्रोह हो गया। उस सेना के साथ इस्लामी मत स्वीकार किए हुए सैंकड़ों अपंग और अपमानित हिन्दू भी थे, जिनकी सारी सम्पत्ति लूटकर तथा जिनके बच्चों को निर्दयतापूर्वक काटकर जिनकी पत्नियों के साथ क्रूरतम व्यभिचार किया गया था।

बर्बर मुस्लिम जेलरों के असहनीय पाशविक अत्याचारों के कारण बन्दियों के साथ-साथ कुछ बर्बर मुस्लिम सैनिकों ने भी विद्रोह कर दिया। माल के बँटवारे को लेकर आपस में दंगा-फ़साद भी हो गया। उधर नुसरत खाँ ने भी ज़िद पकड़ ली, वह सारी लूट का लेखा-जोखा लेकर यह देखेगा कि उन लोगों ने लूट का पाँचवाँ भाग हक़ीक़त में सुलतान को भुगतान किया है या नहीं। हिन्दुस्तान में मुस्लिम डाकुओं और गिरोहबाजों में मुहम्मद-बिन-क़ासिम के समय से ही यह परम्परा चली आ रही थी कि हिन्दू लूट और बन्दिनी हिन्दू नारियों का ४/५ भाग मैदानी बहादुर अपनी काम-लिप्सा और धन-तृष्णा को शान्त करने के लिए रखेंगे और शेष पाँचवाँ भाग दलपति की लिप्सा और तृष्णा को शान्त करने के लिए दे देंगे।

क्रुद्ध बाग़ियों ने नुसरत खाँ के भाई मलिक अजुद्दीन की हत्या कर दी। उलुघ खाँ को भी खदेड़ा गया मगर वह भागकर नुसरत खाँ की शरण और सुरक्षा में चला गया। उलुघ खाँ के बदले अलाउद्दीन का एक भानजा मारा गया, जो उसके तम्बू में सोया हुआ था। सारी सेना में दंगा फैल गया। किसी प्रकार नुसरत खाँ हिन्दू लूट का एक बहुत बड़ा भाग लूट

जाने से बचा सका। यह विद्रोह तभी काबू में आया जब नुसरत खाँ ने यह आश्वासन दे दिया कि वह हिन्दू लूट की और अधिक छानबीन नहीं करेगा। मगर इस उथल-पुथल का लाभ उठाकर अनेक हिन्दू बन्दी दूर-स्थित हिन्दू सरदारों की शरण लेने भाग निकले।

हिन्दू-लूट, हिन्दू-गुलाम तथा कुचली-मसली हिन्दू नारियों का पार्सल लेकर सेना पहुँची ही थी कि इस विद्रोह की सूचना से क्रोधित होकर अलाउद्दीन ने विद्रोह में भाग लेने वाले सारे लोगों की स्त्रियों और बच्चों को जेल में सड़ा डालने की आज्ञा प्रसारित कर दी। इस आज्ञा का साफ़-साफ़ मतलब यही था कि मुस्लिम भेड़िये बड़े प्रेम से उन नारियों की इज्ज़त लूट सकते हैं।

अलाउद्दीन का इशारा भाँपकर नुसरत खाँ ने, जो अपने भाई की हत्या का बदला लेने के लिए छटपटा रहा था, आज्ञा दी कि "हत्यारों की पत्नियों की बेइज्जती करके उनके साथ भयंकर दुर्व्यवहार किया जाय, तदुपरान्त उन लोगों को दर-दर भटकने वाली वेश्या बनाने के लिए दुष्ट पुरुषों को सौंप दिया जाय। उसने बच्चों को उनकी माताओं के सिर पर रखकर कटवा डाला। इस प्रकार का अपमान किसी भी धर्म या मत में कभी नहीं हुआ है।" (वही, पृष्ठ १६४-६५, ग्रंथ ३)।

मुसलमान होते हुए भी बरनी ने यह सत्य ही लिखा है कि इस्लाम को छोड़कर संसार के और किसी भी धर्म में मातृत्व का ऐसा अपमान नहीं हुआ है। सामूहिक रूप से नारियों के साथ बार-बार बलात्कार करना, लाखों नागरिकों की नज़रों के सामने, खुले मैदान में उनके सिर पर उनके बच्चों को रखकर काट डालना और ऐसी बीभत्स बर्बरता से अपना मनोरंजन करना अलाउद्दीन तथा नुसरत खाँ के दिमाग़ की ही विशेषता नहीं थी; हिन्दुस्तान के मुस्लिम शासनकाल के हज़ार वर्षों में से एक भी दिन ऐसा नहीं गुज़रा जब दिन में सूर्य ने तथा रात्रि में तारों ने इन पाशविक अत्याचारों को न देखा हो। इन्हीं कारणों से इनका नाम 'म्लेच्छ' सार्थक होता है।

गुजरात के बलात्कार के बाद ही मुग़लों के हाथ से सीवीस्तान (शिवस्थान) को छीनने की आज्ञा जफ़र खाँ को मिल गई। जफ़र खाँ ने घेरा डालकर दुर्ग को तबाह कर डाला। उसने हज़ारों सैनिकों, उनकी पत्नियों

और उनके बच्चों के साथ मुग़ल सरदार साल्दी और उसके भाइयों को जंजीरों में जकड़कर दिल्ली भेज दिया। इन लोगों के साथ दो ही प्रकार का व्यवहार होता था—या तो उनको मारकर झंझट साफ़ कर दिया जाता था या फिर हाथ, पैर, आँख तोड़-फोड़कर उन्हें अपंग और पंगु बना दिया जाता था। बच्चों को गुलाम और अगर मुसलमान नहीं हुए तो उन्हें मुसलमान बनाकर उनसे भी दो ही काम लिये जाते थे—गुदा-भंजन और गृह-रंजन। स्त्रियों के साथ सामूहिक रूप से बलात्कार किया जाता था, जिसके शेयर होल्डर होते थे मुस्लिम दरबारी, उनके गिरोहपति शाह-ज़ादे, सुलतान और काज़ी। उसके बाद उन लोगों को वेश्यालय के कचरे में फेंक दिया जाता था। कौन उन लोगों के खाने-पीने का खर्च बरदाश्त करे?

इस अभियान में ज़फ़र खाँ ने काफ़ी दाम कमाया। उससे आतंकित होकर मुग़ल मुसलमानों को हराने का विचार छोड़ बैठे। स्पष्टतः कपट और दुष्टता में ज़फ़र खाँ मुग़लों से सवाया था। अलाउद्दीन का भाई उलुघ खाँ ज़फर खाँ के इस बढ़ते प्रभाव से चिढ़कर उसकी शक्ति की काट-छाँट करने के लिए अलाउद्दीन के कान भरने लगा।

मुसलमानों में कृतज्ञता नाम की चीज न होने के कारण, अलाउद्दीन भी ज़फ़र खाँ को दूर लखनौटी अभियान पर भेजकर, "ज़हर देकर या आँखें फोड़कर रास्ते से निकाल फेंकने का" विचार करने लगा। (वही, पष्ठ १६५, ग्रंथ ३)।

सिन्ध की पराजय के प्रतिकार के लिए क्रोधित मुग़ल एक विशाल-वाहिनी लेकर मावारून नहर से निकले। इनका सरदार कटलघ खाँ था। कुछ लोग इसे अमीर दाऊद खाँ का पुत्र मानते हैं, तो कुछ जुद का। यानी वह संभवतः वर्ण-संकर था क्योंकि मुस्लिम आक्रमणकारियों के फलते-फूलते हरम में बच्चों का प्रतिशत प्रायः संदेहास्पद ही होता था। आश्चर्य-जनक तीव्रता से कूच करती मुग़ल फ़ौज दिल्ली के बाहर तक आ पहुँची। "दिल्ली में गम्भीर चिन्ता फैल गई; पास-पड़ोस के गाँवों के नागरिकों ने दिल्ली की दीवार के भीतर शरण ली।" एक बार फिर यहाँ पुरानी दिल्ली का वर्णन किया गया है। फिर भी लोगों को यही रटाया जाता है कि इसके ३०० वर्ष के बाद मुग़ल सम्राट शाहजहाँ ने इसकी नींव डाली थी।

अलाउद्दीन "(पुरानी) दिल्ली से बाहर निकला और उसने सीरी (श्री) में अपना ख़ेमा लगाया।" अनेक कुलीनों ने अलाउद्दीन को यह सलाह दी कि उसे शक्तिशाली मुग़लों से सन्धि कर लेनी चाहिए। मगर हरम की औरतों के बीच अपनी प्रतिष्ठा से चिन्तित अलाउद्दीन ने उत्तर दिया—"अगर मैं तुम्हारी सलाह मान लूँ तो मैं अपना मुँह किसे दिखाऊँगा? मैं अपने हरम में कैसे जा सकूँगा? कुछ भी हो, कल मैं कीली के मैदान के लिए कूच करूँगा।" यह कीली वही है जिसे आज लोग भ्रम और भूल से तुग़लकाबाद का किला कहते हैं। यह प्राचीर युक्त नगर-दुर्ग मुसलमानों के आगमन के पूर्व से ही विद्यमान था। कुछ दिन तक यहाँ निवास करने के कारण मुस्लिम अपहर्ता तुग़लक़ ने इसे अपने नाम में रूपान्तरित कर दिया था। अलाउद्दीन ने श्री से किले की ओर कूच किया, जिसे अक्षम और अपूर्ण फारसी लिपि में सीरी और कीली लिखा गया है। परवर्ती घनघोर संग्राम में ज़फ़र खाँ ने चूर होती मुस्लिम सेना का उत्साह बढ़ाने के लिए एड़ी-चोटी का ज़ोर लगाया। मुग़ल-विजेता होने की अपनी पूर्ववर्ती ख्याति को क़ायम रखने के विचार से ज़फ़र खाँ के अहं ने उसकी बुद्धि को नष्ट कर दिया। वह मुग़लों के बीच घुस गया और, वहीं मारा गया। हालाँकि नाम के लिए मुग़लों की जीत जरूर हुई मगर उन लोगों को इतनी अधिक क्षति उठानी पड़ी कि और अधिक समय तक वे शत्रु-क्षेत्र में ठहरने की हिम्मत नहीं कर सके। अतएव वे लोग वापिस लौट गए।

यह मुग़ल आक्रमण अलाउद्दीन के लिए वरदान प्रमाणित हुआ। उनके प्रतिगमन से राक्षस-हन्ता के रूप में अलाउद्दीन की ख्याति ही नहीं बढ़ी वरन् बिना किसी विरोध और निन्दा का भागी बने उसे उस ज़फ़र खाँ से मुक्ति भी मिल गई जो उसकी गद्दी के लिए एक भयंकर खतरा बन रहा था।

अलाउद्दीन की सेना अब नये-नये हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर नये गुलामों, नये मुसलमानों, नई हिन्दू नारियों और असीम सम्पत्ति को लूटने के लिए हिन्दुस्थान के विभिन्न भागों में फैल गई। पाप और दुराचार से अपने बढ़ते साम्राज्य को तथा काम-तुष्टि के लिए हिन्दू नारियों से लदी गाड़ियों को अपने द्वार पर प्रतिदिन जमा होते देख, अत्यन्त सन्तुष्ट होकर अला-

उद्दीन व्यभिचार में आकण्ठ डूब गया। बरनी के अनुसार "प्रतिवर्ष उसके यहाँ दो-तीन पुत्र उत्पन्न होते रहते थे।" निश्चय ही पुत्रियों की संख्या की तो कोई गिनती ही नहीं थी।

बरनी हमें बताता है कि अपनी अज्ञानता और निरक्षरता के कारण अलाउद्दीन का दिमाग़ घूम गया और वह पैग़म्बर मुहम्मद बनने का स्वप्न देखने लगा। अलाउद्दीन यह डींग हाँका करता था कि—"सर्वशक्तिमान अल्लाह ने पैग़म्बर को चार दोस्त दिए, अल्लाह ने मुझे भी चार दोस्त बख़्शे···अपने चारों दोस्तों की सहायता से मैं एक नया धर्म और मत चला सकता हूँ। मेरी और मेरे दोस्तों की तलवारें इसे स्वीकार करने के लिए सभी लोगों को खींचकर ला सकती हैं।" (पृष्ठ १६६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। मगर अलाउद्दीन इसमें सफल नहीं हो सका अन्यथा संसार भर के लोगों को धर्म के नाम पर उस ख़ूंखार बर्बरता की चक्की में पीस-कर रख दिया जाता, जिस ख़ूँखार बर्बरता पर अलाउद्दीन से पहले और उसके बाद सिर्फ़ उन्हीं लोगों का पाशविक एकाधिकार रहा जो इस्लाम के नाम की क़समें खाने में होशियार थे।

अपने धनवान बने दरबारियों के जोड़-तोड़ बैठाने वाले शराबखोर गुटों से अब अलाउद्दीन को दुरभिसन्धि की गन्ध आने लगी। उसने शराब पर प्रतिबन्ध लगाकर यह आदेश जारी कर दिया कि कोई भी दरबारी बिना सुलतान की आज्ञा और जानकारी के एक-दूसरे से मिलने, एक-दूसरे के घर नहीं जा सकता। प्रत्येक दरबारी को उसने नज़रबन्द-सा कर दिया। शराब पीने की पूरी मनाही हो गई। इस प्रतिबन्ध को असफल होना था ही। स्वयं नम्बरी शराबी होने के कारण उसे इसकी खुली अवज्ञा सहन करनी पड़ती थी। बाद में उसे मिलने-जुलने वाला प्रतिबन्ध भी उठाना पड़ा।

अलाउद्दीन ने अब पर्वतीय गढ़ रणथम्भोर को चकना-चूर करने की ठानी। वीर पृथ्वीराज चौहान के वंशज हम्मीरदेव इसके शासक थे। दो मुस्लिम राक्षस उलुघ खाँ और नुसरत खाँ ने इस गढ़ को घेर लिया (१२६६-१३०१ ई०)। मिट्टी का ऊँचा ढेर बनाने के लिए जब एक दिन नुसरत खाँ दुर्ग की दीवार के समीप आया तब हिन्दू सैनिकों ने दुर्ग से एक विशाल चट्टान लुढ़काकर उसे ज़मीन पर सुला दिया। दो दिन की बेहोशी के बाद वह सदा के लिए सो गया।

अपने चार सहायकों में से एक की मृत्यु से अत्यन्त आतंकित होकर अलाउद्दीन दिल्ली से रणथम्भोर आया। उसके वहाँ पहुँचने के साथ ही उसके मार्ग पर चलते हुए, उसके भतीजे अकत खाँ ने विद्रोह का आयोजन किया और एक शिकार अभियान में अलाउद्दीन पर प्रहार कर उसे ज़ख्मी कर दिया। उसे मृत जानकर अकत खाँ अपने तम्बू में वापिस लौट आया और अपने आपको सुलतान घोषित कर दरबारियों का समर्थन प्राप्त करने के लिए उपहारों की वर्षा करने लगा।

अपने दरबारियों पर भरोसा न होने के कारण अलाउद्दीन कुछ दूर पर स्थित अपने भाई उलुघ खाँ के तम्बू में चला गया। उसकी वापिसी से बाग़ियों के पड़ाव में खलबली मच गई। वह भयंकर प्रतिशोध लेने वाले खूँख़ार शैतान के रूप में कुख्यात था। आतंक से अकत खाँ नौ-दो ग्यारह हो गया। बड़ी दौड़-धूप के बाद अलाउद्दीन ने अकत खाँ और उसके भाई कटलघ खाँ को मौत के घाट उतारा। इसके बाद अकत खाँ के सिर को एक भाले पर खोंसकर सेना में चारों ओर घुमाया गया। इसके बाद घृणित मुस्लिम परम्परा के अनुसार उसने उस सिर का विशेष प्रदर्शन करने के लिए दिल्ली भेज दिया।

दिल्ली से अलाउद्दीन की अनुपस्थिति का लाभ उठाते हुए उसके भानजे उमर और मंगू खाँ ने एक विद्रोह की सृष्टि कर दी। इस विद्रोह की कमर तोड़ दी गई। रणथम्भोर के समीप अलाउद्दीन के तम्बू में दोनों को गिरफ्तार करके लाया गया। बरनी बताता है—"सुलतान के क्रूर और अदम्य क्रोध ने अपने भानजों को भी क्षमा नहीं किया। उसने अपनी नज़रों के सामने उन दोनों को सजाएँ दीं। तरबूज की फाँक की भाँति एक चाकू से उनकी आँखों को निकालकर उन्हें अन्धा कर दिया गया।" (वही, पृष्ठ १७५, ग्रंथ ३)। इसके बाद उसने उनके परिवार के लोगों और उनके हरम की नारियों को व्यभिचारी कुलीनों में बाँट दिया।

इस विद्रोह के बाद ही दिल्ली के कोतवाल के एक गुलाम हाज़ी मौला का विद्रोह हुआ। स्पष्ट रूप से यह गुलाम पहले एक हिन्दू था। अलाउद्दीन से अधिकार-पत्र पाने का बहाना कर वह पदासीन कोतवाल के पास गया। ज्योंही कोतवाल उससे मिलने अपने घर से बाहर निकला उसने उसे नीचे पटक, उसका सिर उतार लिया। एक दूसरे विदेशी दरबारी

अच्चज को भी बाग़ी मौला हाजी ने बुलवाया। भयभीत अच्चज अपने घर से बाहर नहीं निकला। साथ ही उसने अपना पहरा भी दुगुना कर दिया।

परवर्ती वर्णन में इतिहासकार बरनी (वही, पृष्ठ १७६-७७, ग्रंथ ३) एक बार फिर लाल-किले और उसके भीतर के तथाकथित दीवाने ख़ास के छज्जों तथा झरोखों का वर्णन करता है। इस प्रकार के पुष्ट प्रमाणों के होते हुए भी भारतीय इतिहास की पाठ्य-पुस्तकें लोगों के कानों में बार-बार यही घंटी बजाती हैं कि इसके तीन सौ वर्ष बाद शाहजहाँ ने लाल-किले और पुरानी दिल्ली का निर्माण किया है। बरनी कहता है—"हाजी मौला तब लाल प्रासाद की ओर बढ़ा और वहाँ एक छज्जे पर बैठकर सभी कैदियों को मुक्त कर दिया। ख़ज़ाने से स्वर्ण टंकाओं की थैलियाँ-ला-लाकर लोगों में छितरा दी गईं। शस्त्रागार से शस्त्र एवं शाही अस्तबल से घोड़े लाकर बाग़ियों में बाँटे गए। (सुलतान शम्सुद्दीन का पोता और अली का वंशज अलावी दिल्ली में रहता था) लाल प्रासाद से घुड़सवारों का एक दल लेकर मौला हाजी अलावी के घर से उसे घसीट लाया और लाल प्रासाद की गद्दी पर बैठा दिया।" (वही, पृष्ठ १७६)।

चार दिन के बाद ही अलाउद्दीन का एक गुर्गा सेना के साथ गज़नी द्वार से होकर पुरानी दिल्ली में घुस आया। पुरानी दिल्ली की सड़कों और गलियों में भयंकर मार-काट मच गई। हाजी मौला मारा गया। बाकी बाग़ी लाल प्रासाद में घुस गये। अलावी का सिर काटकर और एक भाले पर टाँगकर सारे शहर में घुमाया गया। खूनी मुस्लिम शासन के हज़ार वर्षों तक दिल्ली के अभागे नागरिकों का प्रायः हर रोज़ ऐसा वीभत्स मनोरंजन किया जाता था।

रणथम्भोर को घेरने वाली अलाउद्दीन की सेना बड़े संकट में थी। अपने बार-बार के आक्रमणों से वीर राजपूतों ने शत्रुओं को काफ़ी क्षति पहुँचाई थी। उधर कपटी और दुराचारी मुस्लिम सेना ने ग्रामीण क्षेत्रों में लूट-पाट मचाकर ऐसी नोच-खोंच की कि सारा ग्रामीण अन्न-धन उनके पेट में समा गया था। परिणामस्वरूप दुर्ग-रक्षकों का आपूर्ति-स्रोत संकट-ग्रस्त हो गया था।

फिर भी मुस्लिम सेना में हाय-तोबा मची ही रही। तब दिल्ली के

बिद्रोहों और शाही ख़ज़ाने की लूट का बहाना लेकर राजधानी के तमाम नागरिकों को अलाउद्दीन के ख़ज़ाने में निचोड़ दिया गया। इस निचोड़े कोष का एक भाग दुर्ग-विजय से निराश और उत्साहहीन होने वाले दरबारियों के बीच, प्राण संचार करने के लिए, बाँटा गया। सोने की दमक से दुष्टों की आँखों में भी चमक आ गई। वे एकदम तरो-ताज़ा हो गये। हम्मीरदेव के मुख्य मंत्री रणमल्ल को मोटी घूस देकर अपनी ओर मिलाया गया। देशद्रोही मंत्री ने मुस्लिम शत्रुओं की सेना को द्वार के भीतर कर दिया। द्वार पर भयंकर मार-काट मच गई। वीर राजपूतों की चमकती तलवारों ने एक बार उन्हें अन्धा-सा कर दिया। शनैः-शनैः तलवारों की चमक कम होती गई। एक-एक कर सभी राजपूतों ने वीर-गति प्राप्त की। कपटजाल की माया से, अपनी संख्या के बल पर मुसलमानों की जीत हो गई और रणथम्भोर उनके अधीन हो गया। हम्मीरदेव के द्रोही मंत्री को उसका इनाम मिला। भयंकर यातनाएँ दे देकर अलाउद्दीन ने उसे भी खत्म कर दिया।

तैलंग और मालाबार के हिन्दू क्षेत्रों को लूटने के लिए मुस्लिम सेना का संचालन करने अब उलुघ खाँ आगे आया, मगर मार्ग में ही वह मर गया। (वही, पृष्ठ १७९, ग्रंथ ३) इतिहासकार बरनी कहता है—"उसकी लाश को दिल्ली लाकर उसके घर में गाड़ दिया गया।" यह वाक्य हमारी विचारधारा को पुष्ट करता है कि रूढ़िवादी होने के कारण प्रत्येक मुस्लिम कुलीन (?) और शासक को उसके निवास-स्थान में ही गाड़ा गया है। ये निवास-स्थान विजित हिन्दू महल हैं। किसी भी मुस्लिम लुटेरे या फ़क़ीर की लाश पर कोई भी मकबरा नहीं बनाया गया। पूर्ववर्ती हिन्दू महलों में ही उन लोगों को गाड़ देने के कारण भारत के तथाकथित मक़बरों की बनावट, आकार-प्रकार और निर्माण-विधि हिन्दूशास्त्रों के अनुसार पूर्णरूपेण भारतीय है।

पुरानी दिल्ली के द्वारों में, जिसका वर्णन बरनी करता है, एक द्वार 'भण्डारकल' है। यह पूर्णरूपेण संस्कृत शब्द है।

(पृष्ठ १८२-८३, ग्रंथ ३) बरनी बतलाता है कि "अलाउद्दीन का हिन्दू विरोधी पाशविक कानून सभी शहरों एवं ग्रामों में इतनी कठोरता से लागू किया जाता था कि चौधरी और मुकादम घोड़े पर नहीं चढ़ सकते

थे, शस्त्र नहीं रख सकते थे, महीन कपड़े नहीं पहन सकते थे और पान नहीं खा सकते थे।"

"नज़राना जमा करने के समय यह कानून सभी पर लागू होता था... लोगों को हुक्म का ऐसा गुलाम बना लिया गया था कि एक कर-अधिकारी एक साथ बीस मुकादम या चौधरियों की गर्दन बाँधकर लात-मुक्कों से भुगतान वसूल कर सकता था। कोई भी हिन्दू अपना सिर ऊँचा नहीं कर सकता था और उनके घरों में सोना या चाँदी, टंका या जीतल तो दूर रहा किसी भी चीज़ का आधिक्य दृष्टिगोचर नहीं होता था। अभाव से असहाय होकर चौधरियों और मुकादमों की पत्नियाँ भाड़े पर मुसलमानों के घर जाती थीं.... भुगतान वसूल करने के लिए घूँसों, गोदाम-बन्दी, ज़ंजीर-बन्दी और जेल आदि उपायों का प्रयोग किया जाता था।....लोग नज़राना वसूल करने वाले अधिकारी को बुख़ार से भी बुरा समझते थे। मुंशीगीरी (क्लर्की) एक बहुत बड़ा अपराध समझा जाता था। कोई भी मुंशी (क्लर्क) को अपनी बेटी नहीं देता था। कर-संग्रह अधिकारी प्रायः जेल में पड़ा सड़ता रहता था और उसे लात, मुक्के और कोड़ों की मार सहनी पड़ती थी। कर-संग्रह विभाग की नौकरी से लोग मृत्यु को श्रेयस्कर समझते थे।"

तारीखे फ़िरोज़शाही के लेखक ज़ियाउद्दीन बरनी ने सुलतान अला-उद्दीन और उसके एक धार्मिक सलाहकार काज़ी की सच्चाई को प्रकट करने वाली एक बड़ी मनोरंजक वार्ता लिखी है। यह वार्तालाप विशेष रूप से हिन्दू और सामान्य रूप से सभी अ-मुसलमानों के प्रति मुसलमानों के इस्लामी विचार और व्यवहार की ख़ासियत प्रकट करता है। इसलिए हम उसे प्रस्तुत कर रहे हैं—

"सुलतान ने काज़ी से पूछा—हिन्दुओं के लिए कानून में क्या विधान है—नज़राना भुगतान करने वाला या नज़राना देने वाला? काज़ी ने उत्तर दिया—'उन्हें नज़राना भुगतान करने वाला कहा गया है। अगर कर-वसूली का अफ़सर उनसे चाँदी माँगे तो उन्हें बिना कोई प्रश्न पूछे, अत्यन्त विनीत होकर बड़े आदर और सम्मान के साथ स्वर्ण देना चाहिए। अगर अधिकारी उसके मुँह में धूल फेंके, तो धूल खाने के लिए उसे बिना किसी हिचकिचाहट के अपना पूरा मुँह खोल देना चाहिए। उन लोगों के

मुँह में यह गन्दगी फेंकना (और उसे खाना) मुकादमों (नजराना भुगतान करने वालों) से अपेक्षित हीनता की स्वीकृति है। इस्लाम का गौरव बढ़ाना (हमारा) कर्तव्य है……अल्लाह उन लोगों से (यानी काफ़िरों से, हिन्दुओं से) घृणा करता है क्योंकि वे कहते हैं—उन लोगों को कुचलकर रक्खो। हिन्दू लोगों को दबाकर रखना हम लोगों का ख़ास धार्मिक कर्तव्य है क्योंकि ये लोग पैग़म्बर के कट्टर शत्रु हैं। पैग़म्बर ने हमें उन लोगों को हलाल कर देने, लूट लेने और बन्दी बना लेने की आज्ञा दी है क्योंकि पैग़म्बर ने कहा है—'उन लोगों को इस्लाम में बदल दो या हलाल कर दो अथवा गुलाम बनाकर उनकी धन-सम्पत्ति को नष्ट कर दो'…उस महान् उपदेशक (हानिफ़) ने जिनकी विचारधारा हम लोग मानते हैं, हिन्दुओं पर जजिया लगाने की स्वीकृति दी है। दूसरी विचारधाराओं के उपदेशकों ने सिर्फ़ एक ही विकल्प को माना है—'मृत्यु या इस्लाम'।"

अच्छी तरह से समझने के लिए इस उद्धरण को दो बार पढ़ना चाहिए। यह उद्धरण पूरी तरह से इस्लाम के उस जुल्म को प्रकट करता है, जो उसने अपने जन्म से ही इन सारी शताब्दियों के बीच भारत और सारे संसार पर ढाया है। वार्ता आगे बढ़ती है—

"सुलतान ने अपनी ओर से कहा—'ओह! काजी, तू बहुत बड़ा विद्वान् है……यह एकदम कानून के अनुसार है कि हिन्दुओं को कुचलकर और दबाकर रखना चाहिए………हिन्दू लोग तबतक हुक्म नहीं मानेंगे, समर्पण नहीं करेंगे जबतक कि उन लोगों को एकदम गरीब न बना दिया जाये। इसलिए मैंने यह आज्ञा प्रसारित कर दी है कि हर वर्ष उन लोगों के पास सिर्फ़ गुज़ारे भर के लिए ही अनाज, दूध और दही छोड़ा जाये—जिससे वे लोग न कभी सम्पत्ति जमा कर सकें और न संगठित हो सकें।" (पृष्ठ १८५, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

"रणथम्भोर से लौटने के बाद सुलतान (दिल्ली की) प्रजा के साथ बड़ी बुरी तरह पेश आया और उन्हें अच्छी तरह निचोड़ा।" (वही, पृष्ठ १८८)। उलुग खाँ मार्ग में ही मर गया था।

१३०३ ई० में अलाउद्दीन ने चित्तौड़ पर चढ़ाई कर दी थी। रति के समान सुन्दर सौन्दर्य देवी चित्तोड़ की रानी पद्मिनी को पाने की लालसा उसके मन में थी। मुस्लिम सेना पर भयंकर प्रहार करते हुए वीर राज-

पूतों ने दुराचारी मुस्लिम शत्रुओं को अतुलनीय क्षति पहुँचाई। इसी बीच अलाउद्दीन को चित्तौड़ में व्यस्त पाकर मुग़लों ने दिल्ली पर धावा बोल दिया। घेरा डालने के एक महीने के भीतर अलाउद्दीन को चित्तौड़ से घेरा उठाकर मुग़ल आक्रमणकारी तुरघ खाँ का सामना करने दिल्ली भागना पड़ा। मुग़लों से युद्ध करने के लिए अलाउद्दीन तैयार नहीं था। उसकी उत्तम सैन्यवाहिनी को राजपूतों ने चित्तौड़ में ही काट फेंका था। अतएव यह संयोग की ही बात थी कि उसे आते देख मुग़ल आक्रमणकारी दिल्ली हथियाने से निराश हो वापिस भाग गये।

ठीक इसी समय अलाउद्दीन के कपट और दुराचार से ऊबकर दिल्ली के उपनगर मुग़लपुरा में रहने वाले नये मुसलमानों ने विद्रोह कर दिया। चालीस हज़ार आदमियों की हत्या कर अलाउद्दीन ने इसका भयंकर प्रतिशोध लिया। इसके कुछ महीने के बाद ही हत्यारे अलाउद्दीन ने अगस्त, १३०३ ई० में इसे जीता। दुर्ग में मुस्लिम सैनिक रखकर उसने नाम के लिए इसकी गद्दी पर झालोर राज्य-परिवार के सबसे छोटे सदस्य मालदेव को बैठा दिया।

यह कहा जाता है कि चित्तौड़ पर अपने प्रथम आक्रमण के दौरान जब अलाउद्दीन की चित्तौड़-विजय की सारी आशाएँ धूल में मिल चुकी थीं, शासक राणा भीमसिंह के पास उसने यह समाचार भेजा कि वह दर्पण में पद्मिनी की एक झलक देखकर सन्तुष्ट हो, घेरा उठा, दिल्ली लौट जाएगा।

दर्पण में पद्मिनी की एक झलक देखने के बाद उसकी लालसा और भड़क उठी। उसने धोखा देने की गाँठ बाँध ली। अपने अतिथियों का पूरा मान-सम्मान करने वाले उदार राजपूतों ने दुर्ग के बाहर तक अलाउद्दीन का साथ दिया। राजपूत शासक राणा भीमसिंह स्वयं अलाउद्दीन के साथ उस के तम्बू तक आया। कपटी और मायावी अलाउद्दीन ने राणा भीमसिंह को उसके अंगरक्षकों के साथ गिरफ्तार कर लिया। इसके बाद उसने दुर्ग में यह समाचार भेज दिया कि यदि पद्मिनी उसे नहीं सौंपी गई तो सारे साथियों के साथ राणा भीमसिंह को तड़पा-तड़पाकर मार डाला जायेगा।

इसके उत्तर में वीर राजपूतों ने एक साहसी योजना बनाई। उन्होंने

अलाउद्दीन के पास यह समाचार भेज दिया कि अपनी अन्य राजपूत दासियों के साथ पद्मिनी अलाउद्दीन के तम्बू में पहुँचा दी जायेगी।

इसके बाद दासियों के बदले वीर, प्रवीण और सशस्त्र राजपूत छिपकर पालकियों में बैठ गये। सात सौ पालकियों का यह कारवाँ जब अलाउद्दीन के पड़ाव के पास पहुँचा तब अलाउद्दीन से यह निवेदन किया गया कि अन्तिम विदाई लेने के लिए पद्मिनी को राणा भीमसिंह से मिलने का कुछ समय दिया जाये।

अपने द्वार पर उपस्थित ७०० राजपूत 'रमणियों' के साथ भावी कामकेलि की कल्पना से अत्यन्त आनन्दित होकर अलाउद्दीन ने राणा भीमसिंह को मुक्त कर दिया। राणा भीमसिंह ज्यों ही राजपूत-कारवाँ के पास पहुँचे, चुनिन्दा वीर राजपूतों की सुरक्षा में उन्हें चित्तौड़ भेज दिया गया। साथ ही अन्य राजपूत वीरों ने अपना-अपना छद्मवेश उतार फेंका और 'जय एकलिंग' की गर्जना के साथ हिन्दू रोष से अलाउद्दीन के पड़ाव पर टूट पड़े, अनेक शताब्दियों से हिन्दुस्तान को लूटने, बरबाद करने और अपमानित करने वाले तुर्की, अरबी, अफगानी, अबीसीनियायी आदि गुण्डों के सिर और धड़ गाजर-मूली की तरह काट-काटकर फेंकने लगे।

मुस्लिम दुष्टता के घोर अन्धकार में सूर्य की भाँति चमकती वीर राजपूतों की देशभक्ति की इस मध्यकालीन वीर-गाथा में दो वीर राजपूत नक्षत्रों की भाँति चमक उठे। उसी समय से वे दोनों वीर पौराणिक हो गये। इनकी देशनिष्ठा और इनका महान् बलिदान राजस्थान के लोकगीतों में अमर हो गया। ये दोनों गोरा और बादल थे। चित्तौड़ के राज्य-परिवार से गठ-बन्धन होने के बाद ये दोनों पद्मिनी के साथ लंका से आए थे। ये दोनों राणा भीमसिंह के सुरक्षा दल में थे। ज्यों ही अलाउद्दीन के खेमे में यह आवाज गूँजी कि राणा भीमसिंह भाग रहे हैं, त्यों ही उनके साथ जाने वाले सुरक्षा दल का पीछा किया गया। उस लड़ाई में जिस भी मुसलमान ने इन दोनों के पास आने का साहस किया, गोरा और बादल ने उन्हें काटकर फेंक दिया। इधर राणा भीमसिंह सुरक्षित और सकुशल दुर्ग में प्रविष्ट हुए, उधर रक्त बहते घावों और आघातों के बीच पहाड़ की तरह अडिग ये दोनों वीर संज्ञाहीन होकर दुर्ग द्वार पर ही गिर पड़े। दैवी कार्य को निष्ठापूर्वक सम्पन्न करने वाली तृप्त स्वर्गीय मुस्कान उन दोनों के अधरों पर क्रीड़ा कर रही थी।

राजपूतों ने अलाउद्दीन को दर्पण में पद्मिनी का सौंदर्य देखने की अनुमति दे दी थी, यह विचारधारा एकदम बे-सिर-पैर की अफ़वाह है। इस अफ़वाह की कल्पना एक मुस्लिम कवि जायसी ने की थी। राणा भीमसिंह ने अपनी पत्नी पर किसी भी नीच मुसलमान की नजर कभी पड़ने नहीं दी। अलाउद्दीन ने चित्तौड़-विजय से निराश होकर नाक बचाने के लिए आत्म-समर्पण और सन्धि की सलाह दी थी। पश्चात्ताप के बहाने वह भीमसिंह को सन्धि की बातचीत करने अपने तम्बू तक ले आया था। उसने कुरान की कसमें खाई थीं कि उसका इरादा धोखा देने का नहीं है। स्वभावगत हिन्दू सादगी और वीरता की परम्परा के अनुसार राणा भीमसिंह, जो मुसलमानों की कपटी माया के पूर्ण जानकार नहीं थे, कपट-जाल में फँस गये। थोड़े-बहुत अंग-रक्षकों के साथ अलाउद्दीन के तम्बू तक चले आए। तुरन्त ही मुसलमान उनपर झपट पड़े और उन्हें बन्दी बनाकर यह समाचार चित्तौड़ भेज दिया कि अन्य रमणियों के साथ अगर पद्मिनी चित्तौड़ का सारा धन और स्वर्ण लेकर उसके पास नहीं आएगी तो भीमसिंह को मुक्त नहीं किया जायेगा। इसी का प्रतिकार लेने के लिए वीर राजपूतों ने, उसके द्वार पर उसकी माँग के अनुसार, ७०० नारियों की डोलियाँ भेजने के बहाने, ईंट का जवाब पत्थर से दिया।

इस संग्राम में नाक कटवाकर ही अलाउद्दीन को मुग़ल आक्रमणकारियों का सामना करने दिल्ली जाना पड़ा था। मगर अपने व्यभिचार की धधकती प्यास बुझाने वह पुनः पद्मिनी की खोज में दिल्ली से चित्तौड़ आया। अपने पूर्ववर्ती अभियान में उसने क्षेत्रीय राजपूतों को मुसलमान बना डाला था। इन्हीं नये मुस्लिम राजपूतों को उसकी सेना में आगे होकर एक विदेशी दुष्ट के लिए अपने ही भाई-बन्धुओं से लड़ना पड़ा। सोमवार २६-८-१३०३ ई० को चित्तौड़ का पतन हुआ। मगर मुस्लिम सेना के दुर्ग के भीतर पहुँचने से पूर्व ही, इस्लामी पीड़ा और शिकार के नरक में जाने के बदले, राजपूत रमणियाँ सती हो गईं। राख में हाथ मलते हुए हताश, आवेश में अलाउद्दीन ने दुर्ग के हजारों बच्चों और वृद्धों का रक्त बहाया।

१३०५ ई० में ऐबक खाँ के अधीन एक दूसरी मुग़ल सेना ने भारत पर आक्रमण कर दिया। सुलतान को लड़ने के बाद ये लोग दक्षिण की

ओर बढ़े मगर अलाउद्दीन का क्षेत्रीय प्रतिनिधि गाज़ीबेग तुग़लक अचानक इन मुग़लों पर झपट पड़ा। नर-संहार में कटी लाशें छोड़कर मुग़लों को भागना पड़ा। जिन मुग़लों को बन्दी बना लिया गया था उन लोगों को पुरानी दिल्ली और श्री की सड़कों पर हाथियों से कुचलवा दिया गया। इस घटना से मुग़ल इतने भयभीय हो गये कि काफ़ी दिन तक इधर नज़र फेरने की उनकी हिम्मत नहीं हुई।

१३०६ ई० में दक्षिण को लूटने के लिए मलिक काफ़ूर के अधीन अलाउद्दीन ने एक सैनिक अभियान की आयोजना की। गुजरात में स्थित एक दूसरे सेनापति अलप खाँ को भी ससैन्य मलिक काफ़ूर से जा मिलने का आदेश भेज दिया गया। इस बहाने से कि देवगिरी के राजा रामदेव राय ने वार्षिक नज़राना नहीं भेजा है, देवगिरी को घेरकर ध्वस्त कर दिया गया। दूसरी महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि अपने गुजरात अभियान में अलाउद्दीन राजा करण की पत्नी पर ही बलात्कार कर सका था। उसकी पुत्री ने अपने पिता के साथ देवगिरी जाकर शरण ली थी। इस बार उसे पकड़कर मलिक काफ़ूर ने अलाउद्दीन के पापी और दुराचारी पुत्र खिज्र खाँ के हरम में भेज दिया। सारा महाराष्ट्र रौंदा गया। अनेक मन्दिर मस्जिदों में बदल दिए गये तथा कुओं, सड़कों, धर्मशालाओं आदि अनेक विजित भवनों के बारे में बड़े जोर-शोर के साथ झूठ-मूठ यह लिख दिया गया कि इनका निर्माण अलाउद्दीन ने पल भर में 'मानो जादू से' कर दिया। यह मुस्लिम झूठ एक आम बात थी।

१३०९ ई० में अलाउद्दीन ने आन्ध्र की राजधानी वारंगल को लूटने की आज्ञा मलिक काफ़ूर को दी। इसके शासक नरपति का दमन कर सारे प्रांत को लूटा-खसोटा गया।

१३१० ई० में मलिक काफ़ूर बल्लाल राजाओं की राजधानी द्वारसमुद्र पर चढ़ बैठा। मुस्लिम शूकरों के एक ही धक्के से इस राज्य का अन्त हो गया। उसके बाद मलिक काफ़ूर बिना किसी विरोध के दक्षिण भारत के भीतर तक प्रविष्ट हो गया। कहानियों जैसी कल्पनातीत सम्पत्ति से लदा मलिक काफूर एवं अन्य मुस्लिम सेनापति ६१८ हाथी, २०,००० घोड़े, ९५००० मन स्वर्ण तथा अन्य कीमती हीरे-जवाहरातों के साथ दिल्ली वापिस लौटा। सारी लूट का यह पाँचवाँ ही भाग था जो

शाही हिस्सा था। शेष चार भाग मुस्लिम सैनिकों का हिस्सा था। सारी लूट की कल्पना पाठक स्वयं करें।

अलाउद्दीन की सेना ने भारत के एक विशाल भाग पर झाड़-सी फेर दी थी। इसके पूर्व १३०५ ई० में मध्य-भारत के माण्डवगढ़, उज्जैन, धार और चन्देरी को वह लूट चुका था।

देवगिरी के राजा रामदेव राय को दिल्ली में अलाउद्दीन के सामने नतमस्तक होने के बाद देवगिरी वापिस लौटने की अनुमति दे दी गई। लज्जा और पीड़ा से वे कुछ वर्षों के बाद ही मर गये। उसके पुत्र ने दुष्ट अलाउद्दीन की अधीनता अस्वीकार कर दी। तब मलिक क़ाफ़ूर ने एक बार फिर देवगिरी में खून की नदी बहा दी। रामदेव राय के पुत्र को पकड़कर मार डाला गया। इस अभियान से दक्षिण भारत का एक विशाल भाग मुस्लिम चंगुल में फँस गया। मलिक काफ़ूर एक बार फिर कुबेर का-सा ख़ज़ाना लूटकर दिल्ली ले आया।

अपने उच्चतम शिखर पर पहुँचकर अलाउद्दीन की शक्ति का ह्रास प्रारम्भ हुआ। अलाउद्दीन की अप्राकृतिक भोग-तृष्णा की तुष्टि के लिए बालपन में ही उड़ाकर लाया गया हिन्दू बालक मलिक काफ़ूर धीरे-धीरे अलाउद्दीन का सर्वाधिक विश्वस्त सेनापति बन गया। वह इतना शक्तिशाली हो गया था कि अलाउद्दीन, उसकी पत्नी तथा उसके पुत्र के झगड़े से लाभ उठाकर उसने उसकी पत्नी और पुत्र को बन्दी तक बना लिया। ईर्ष्या से जलते हुए अनेक दरबारियों ने उसकी हत्या का षड्यन्त्र रच दिया। उधर गुजरात के मुस्लिम सेनानायक ने खुली बग़ावत कर दी। राणा हम्मीरदेव ने भी चित्तौड़ वापिस ले लिया। दक्षिण में राजा रामदेव के दामाद हरपाल देव ने देवगिरी पर साहसिक आक्रमण कर दिया। मुस्लिम दुर्गपति दुम दबाकर भाग खड़ा हुआ और देवगिरी हिन्दुत्व में वापिस लौट आया। सारे धर्म-स्थानों को पवित्र कर उनमें पावन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गई। अलाउद्दीन का स्वास्थ्य गिर रहा था। राज्य के चारों ओर से आने वाली उल्टी खबरों ने उस शैतान की मृत्यु-घड़ी को और करीब ला दिया। सच्चे इतिहास की ओर ध्यान न देकर खुशामद की आमद को चाटने वाले मुस्लिम इतिहासकारों में, सदा की भाँति, अलाउद्दीन की मृत्यु-तिथि के बारे में भी मतभेद है। ३१-१२-१३१५,

२-१-१३१६ या १६-१२-१३१६ को उसकी मृत्यु हुई। इस प्रकार भारत की हज़ार वर्षीय मुस्लिम श्रृंखला की सर्वाधिक क्रूर कड़ी का अन्त हो गया।

एक अपहर्ता, जल्लाद और हत्यारा, विध्वंसक और लुटेरा होने के कारण अलाउद्दीन के पास निर्माण करने योग्य समय, शांति, सम्पत्ति और सुरक्षा का पूर्ण अभाव था। इसपर भी उसे तथाकथित कुतुब-मीनार के एक भाग, सम्पूर्ण या आंशिक रूप से नगर 'श्री' तथा अनेक महलों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है। इस विषय पर लोगों के उलझे विचारों का एक नमूना महाराष्ट्रीय ज्ञान-कोष के ग्रन्थ ३, पृष्ठ ५०६ पर प्राप्त होता है कि "अलाउद्दीन के फलते-फूलते (?) शासनकाल में, मानो जादू से, अनेक महलों, मस्जिदों, स्नान-गृहों, दुर्गों, मकबरों और विद्यालयों का निर्माण हो गया।" पाठकों को इससे यही समझना चाहिए कि अलाउद्दीन के शासनकाल में मुसलमानों के उपयोग के लिए इन विजित हिन्दू महलों का मस्जिद और मकबरों में रूपान्तर कर दिया गया था। यह लेख, कि अलाउद्दीन ने अनेक मकबरों का निर्माण किया था, बहुत ही दुष्टतापूर्ण और षड्यन्त्रमय है। क्या लाशों पर कब्र और मकबरा बनाना ही उसका धन्धा था ? सामूहिक रूप से नर-हत्या और नर-संहार का रक्त अपने मुँह पर पोतने वाला कभी भी अपने शिकार की लाश पर भव्य भवन नहीं बनाएगा। पल भर में, 'मानो जादू से' ही इन आलीशान इमारतों को बना डालने का दावा अकबर के लिए भी किया गया है। साथ ही भारत के प्रत्येक अत्याचारी मुसलमान के लिए यही दावा किया गया है। अतएव वास्तविक जादू चाटुकार इतिहासकारों की कलमों और भोले-भाले हिन्दुओं की मूर्खता और अंधविश्वास में छिपा हुआ है।

(मदर इण्डिया, सितम्बर, १९६७)

: १२ :

कुतुबुद्दीन खिल्जी

हिन्दुस्तान का मुस्लिम-कुशासन एक हज़ार वर्ष का लम्बा खूनी नाटक है। मगर इसके कुछ दृश्य दुखान्त होने के साथ-साथ मज़ेदार और मनोरंजक भी हैं। ख़िल्जी-वंश का अन्तिम किशोर शासक कुतुबुद्दीन ख़िल्जी था। इस रक्त-रंजित खूनी मुस्लिम रंगमंच पर उसने ऐसा ही एक दृश्य पेश किया है। इस सुलतान को औरत बनने का बड़ा शौक था। बड़े चाव से वह औरतों का परिधान पहनता, लम्बी नितम्ब-चुम्बी चोटी रखता, महीन-से-महीन मलमल का घूँघट मुँह पर डालता, काजल-बिन्दी करता, नक़ली वक्षस्थल बनाता, बलखाती-इठलाती नई दुल्हन के समान लजाता-शर्माता, बड़े नाज़ो-अदा के साथ बीच दरबार में खुले-आम ज़नाना-पोशाक में गद्दी पर बैठता था।

इस प्रहसन का रंगमंच दिल्ली अंचल के हज़ार-खम्भों वाला श्री का भव्य हिन्दू महल होता था; या फिर सफ़र में होने के कारण सुलतान का तम्बू।

दरबार की प्रारम्भिक भूमिकाओं और राज्य के काम की लीपा-पोती होती थी। शाही घुड़कियों के साथ उन्हें जैसे-तैसे पूरा करके शाही दरबार वासना की तुरही और व्यभिचार का बैंड बजाता हुआ गुदा-भंजन और काम-रंजन की धारा में हा-हा ही-ही करता एक नंगा-क्लब बन जाता था।

कुतुबुद्दीन के शाही दरबारी क्लब ने पाश्चात्य ढंग, रॉक-एण्ड-रॉल, नग्न-पेट-नृत्य, वस्त्र-त्याग-नृत्य और रात्रि-क्लब के अश्लील उछल-कूद की शुरुआत की थी। पियक्कड़, अफीमची और नशेबाज़ मुस्लिम लुच्चे और गुण्डे, अपनी-अपनी पसन्द के गुदा-भोग या मैथुन का नापाक इरादा लेकर, हरम की सौन्दर्य कहलाने वाली अपहृत हिन्दू नारियों पर भूखे भेड़ियों और

गिद्धों की भाँति टूट पड़ते थे और उन्हें शाही-माहौल में घसीट लाते थे। यही झपटना और घसीटना इस शाही क्लब का प्रमुख आकर्षण था।

शाही ऑर्केस्ट्रे की कामोत्तेजक धुन पर अत्यन्त वीभत्स और घृणित काम-चेष्टा का प्रदर्शन होता था। तरह-तरह के मोड़-तोड़, उछल-कूद और लोट-पोट से मानव शरीर पसीने-पसीने हो जाता था।

और तब संसार के अनोखे और अद्वितीय नाटक के दूसरे चरण का प्रारम्भ होता था। वह था—नाज़ और नख़रों के साथ, स्वयं सुलतान के कामुक और घृणित हाव-भाव का अलबेला और रंगीन प्रदर्शन।

सुलतान एक साधारण वेश्या की भाँति भड़कीली पोशाक पहनकर कामुक संगीत की सुर-ताल पर थिरकता और मटकता था। एक बैले-डांसर और होटल नर्त्तकी की भाँति बड़े नाज़ और नखरों के साथ वह धीरे-धीरे गद्दी से उतरता था और मस्ती में उछलते-कूदते लोगों के साथ मिलकर ताक-धिना-धिन नाचने लगता था।

भाँति-भाँति के भद्दे इशारे कर, अपने कूल्हे हिलाता, नक़ली छातियाँ थुलथुलाता और आँखें नचा-नचाकर कनखी मारता हुआ सुलतान, शराब और अफ़ीम के नशे में अपने हाथ मटका-मटकाकर न जाने कितनी तरह की भाव-भगिमाएँ दिखाने लगता था।

संयोग से ज़ियाउद्दीन बरनी ने अपनी तारीखे फ़िरोज़शाही में इस किशोर सुलतान की काम-केलियों और उछल-कूदों का एक वीभत्स वर्णन लिखा है। इससे यह नहीं समझ लेना चाहिए कि सिर्फ़ सुलतान कुतुबुद्दीन ही इन कामचेष्टाओं का अकेला स्पेशलिस्ट था। वह हिन्दुस्तान को कुचलने-मसलने और निगलने-चबाने वाले अपने भुक्खड़ मुस्लिम बाप-दादाओं के शाही मुस्लिम-दुराचार के जाने-बूझे और घिसे-पिटे मार्ग पर ही चल रहा था।

इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों ने हज़ार वर्ष तक बड़े ज़ोर-शोर से चलने वाले व्यभिचार के इन अबाध काले-कारनामों को झिझकते हुए नज़र-अन्दाज़ किया है। धूर्तता से इसपर लीपा-पोती की है। इसे "महान् और अद्भुत" मुस्लिम संस्कृति बताया है, जिसे भगवान् ने भारत के किसी पूर्वजन्म के दुर्भाग्य से ही हिन्दुस्तान में भेजा था।

यह व्यभिचारी-क्रीड़ाएँ शाही मुस्लिम दरबारियों और कुलीनों के परिवारों में शताब्दियों तक विकसित हुई और पनपी हैं।

ख़िल्जी ख़ानदान के दो ही सुलतानों ने काफ़ी दिन तक शासन किया था। इस ख़ानदान की नींव डालने वाला जलालुद्दीन अन्तिम गुलाम सुलतान की हत्या करके गद्दी पर बैठा था। इसे आठ वर्ष के शासनोपरान्त ही उसके भतीजे और दामाद अलाउद्दीन ने अपनी तलवार से काट फेंका था। २० वर्ष के शैतानी-शासन के बाद अलाउद्दीन की मृत्यु हो गई थी जिसे सम्भवत: उसके सेनापति मलिक काफूर ने ज़हर दे दिया था। परवर्ती चार वर्ष में दो सुलतान हुए। पाँच-वर्षीय बाल-सुलतान को गद्दी पर बैठने के कुछ महीनों के भीतर ही, उसके बड़े भाई कुतुबुद्दीन ने काट डाला। कुतुबुद्दीन ख़िल्जी-ख़ानदान का अन्तिम सुलतान था क्योंकि उसकी हत्या कर गद्दी पर बैठने वाला नासिरुद्दीन एक धर्म-परिवर्तित हिन्दू था। दो महीने के शासन के बाद ही तुग़लकों ने इसे भी उखाड़ फेंका।

अलाउद्दीन का २० वर्षीय शासनकाल इतना क्रूर था कि उसे अपनी मृत्यु के पूर्व ही असहाय हो अपने सिर पर अपने साम्राज्य की छतों का टूट-टूटकर गिरना देखना पड़ा था।

जब अलाउद्दीन बीमारी में अशक्त पड़ा था, उसके सेनापति मलिक काफूर ने उसकी पत्नी और उसके पुत्र को महल से निकालकर कैद कर लिया। अलाउद्दीन की सलाह पर मलिक काफूर ने एक प्रभावी कुलीन अलप खाँ की भी हत्या कर दी थी।

अपने पापी और गुणहीन-पुत्र खिज्र खाँ को अपने बाद सुलतान बनाने की विशेष हिदायत और तमन्ना करने के बाद भी, अलाउद्दीन के राज्य का अत्यधिक विस्तार करने वाले उसके सेनापति मलिक काफूर ने मृत सुलतान अलाउद्दीन की इच्छा की उपेक्षा कर दी। वह मुस्लिम रिवाज के अनुसार उसके परिवार के एक-एक सदस्य की हत्या करने में जुट गया।

अलाउद्दीन की मृत्यु के दो दिन बाद ही ४ जनवरी, १३१६ ई० को मलिक काफूर ने कुलीनों की सभा को खिज्र खाँ की मृत्यु की सूचना देकर पाँच वर्षीय बाल-शाहज़ादे शहाबुद्दीन को सुलतान घोषित कर दिया और संरक्षक होने के बहाने सारी शक्ति अपने हाथ में ले ली।

ग्वालियर दुर्ग के तहख़ाने में खिज्र खाँ को फिकवा दिया गया। तपते

लाल लोहे से उसकी आँखें फोड़ देने का विशेष आज्ञा-पत्र लेकर उसके पीछे-ही-पीछे मलिक शम्बूल भी आ धमका। बड़ी बेरहमी के साथ इस हुक्म को तामील किया गया। यह इस बात का ज्वलन्त प्रमाण है कि मुस्लिम धर्म-परिवर्तन-प्रक्रिया बड़ी जल्दी एक व्यक्ति को पक्का मुस्लिम शैतान बना देती है, जिसके कारण बड़ी लगन और स्फूर्ति के साथ मलिक काफूर ने मध्यकालीन खूनी मुस्लिम रंगमंच पर अपना कदम रक्खा था।

मृत सुलतान का दूसरा पुत्र शादी खाँ श्री के अपहृत हिन्दू महल में बन्दी था। जिस जगह बड़ी शान से वह शाहज़ादा बनकर लात मारता था वहीं अब दीन-हीन बन्दी बनकर लात खाता था। उस महल के तहख़ाने में मलिक काफूर के हज्जाम ने "उस्तरे से तरबूज़ की फाँक की भाँति (सादी खाँ की) आँखें बाहर निकाल दीं।"

मृत सुलतान की सारी अपहृत हिन्दू जायदाद ज़ब्त करके डकारने के बाद मलिक काफूर अलाउद्दीन के रिश्तेदारों और दरबारियों को मारने तथा अपंग करने पर जुट गया। जब वह अपनी स्व-स्वीकृत खूनी भूमिका निभाने में तल्लीन था, अपनी सुलतानी का सपना देखने वाले मलिक काफूर का सिर सुप्तावस्था में ही काट दिया गया। उसका सिर काटने के बाद ही उसके सारे समर्थकों का सिर भी क़लम कर दिया गया।

इस नये गुट ने शाहज़ादे मुबारक खाँ को बन्दीगृह से मुक्तकर उसे बाल-सुलतान शहाबुद्दीन का संरक्षक बना दिया जो अभी तक सुलतान घोषित था। मुबारक खाँ तक़दीर का सिकन्दर था क्योंकि अन्धे होने वालों की सूची में इसका नाम भी था। संयोग से मलिक काफूर सिर्फ ३५ दिन तक ही जीवित रहा और इसकी आँखें बच गईं।

मुबारक खाँ गद्दी पर नाम-मात्र के बाल-सुलतान शहाबुद्दीन की किलकारियाँ न देख सका। उसने उसे गद्दी से उतार, बन्दी बना, ग्वालियर दुर्ग के तहख़ाने में फिंकवा दिया। वहाँ उसे शीघ्र ही निकटतम शाही रिश्तेदार होने का घिसा-पिटा मुस्लिम इनाम लेने के लिए अन्धा होना पड़ा। इसके बाद १७ वर्षीय किशोर मुबारक खाँ की सुलतानी का नगाड़ा बज उठा

'सुलतानुस् शाहिद कुतुबुद्दुन्या वाउद्दीन।'

नये सुलतान कुतुबुद्दीन ने अपनी स्वाभाविक खूनी प्रवृत्ति और प्रकृति से यह सिद्ध कर दिया कि उसकी रगों के रक्त में वे ही कीटाणु मचल रहे

हैं, जो भारत के मुस्लिम शासकों के लिए आवश्यक भी हैं और अनिवार्य भी।

मलिक काफूर और उसके गिरोह को ख़त्म करने वाले व्यावसायिक मुस्लिम हत्यारों के दल से कुतुबुद्दीन को ख़तरे की बू आई। अपने आतंककारी प्रभाव के कारण अपनी खूनी-योग्यता की डींग हांकने वाला यह खूनी गिरोह खुले-आम दरबार के हर मामले में अपनी टाँग अड़ाता था। "इसलिए मजबूर होकर सुलतान कुतुबुद्दीन ने अपने हुक्म से इस हत्यारे-दल के लोगों को अलग-अलग जगहों में भेज दिया और वहाँ उन सभी को मरवा डाला।" (पृष्ठ २१०, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

१३१७ ई० में अपने पिता अलाउद्दीन की गद्दी पर बैठने वाले इस १७ वर्षीय किशोर में अन्य अनिवार्य मुस्लिम-दुर्गुण भी थे। मुस्लिम गिरोह क्रूर कर्म के लिए हिन्दू घरों और क्षेत्रों पर आक्रमण कर सुन्दर हिन्दू किशोरों को उड़ा लाते थे। कुतुबुद्दीन का नर 'माशूक' भी एक अपहृत हिन्दू बालक ही था। खतना करने के बाद इसका नाम हसन रख दिया गया था। "कुतुबुद्दीन इतना अविवेकी और अदूरदर्शी था कि परिणामों से लापरवाह होकर उसने मृत मलिक काफूर की सारी सेना इस लौंडे को सौंप दी। साथ ही उसे मलिक की सारी जायदाद और जागीर भी दे दी।" अपनी चाह, वाह और आह की अन्धी भोग-धारा में वह इतना डूब चुका था कि उसने इस किशोर को वज़ीर भी बना दिया। वह उसपर इतना आशिक हो गया था कि उसकी पलभर की जुदाई भी नहीं सह सकता था।

"गद्दी पर बैठने के बाद कुतुबुद्दीन फ़िज़ूल-खर्ची और मौज-मस्ती में डूब गया।" लोगों को अपनी ओर मिलाने के लिए "गद्दी पर बैठने के दिन उसने अपनी आज्ञा से पूर्ववर्ती शासन के कैदियों और निर्वासितों को, जिनकी संख्या १७,००० से १८,००० तक थी, मुक्त कर दिया।" (वही, पृष्ठ २११)।

मुस्लिम इतिहासकारों की घिसी-पिटी परम्परा एवं रीति-रिवाज के अनुसार अपनी तारीखे फ़िरोज़शाही में बरनी पहले उसके भोग-विलास एवं हत्यारी गतिविधि का ब्यौरा देता है। फिर कुतुबुद्दीन के मनगढ़न्त गुणों को खोज निकालने आकाश-पाताल छान मारता है। गुणों की पुष्प-अर्चना करने के बाद वह पुनः यह बयान लिखकर लोगों को हक्का-बक्का कर देता

है कि—"सुलतान व्यभिचार में खुले आम, सारे दिन और सारी रात डूबे रहने लगे और जनता (मुसलमान) उनकी नक़ल करने लगी। सुन्दरता आसानी से उपलब्ध नहीं होती थी। एक लौण्डे, खूबसूरत हिजड़े या हसीन औरत का दाम ५०० से १००० और २००० टंका तक हो गया था।" (वही, पृष्ठ २१२)।

भारत के मुस्लिम बादशाहों की सभ्यता और शासन-कुशलता की खूबियों पर बड़े ज़ोर-शोर से पॉलसन-पालिश करने का तरीक़ा बताने और शिक्षा देने वाले लोगों को यह विवरण तथा पर्यवेक्षण पढ़कर अपनी बन्द आँखें खोल लेनी चाहिए। उन लोगों को जान लेना चाहिए कि मुस्लिम राजाओं ने भारत को शीलहरण और हत्या के खूनी खेल का अखाड़ा बना दिया था। यही उनकी संस्कृति थी और यही सभ्यता। एक भी मुसलमान शासक, यहाँ तक कि बड़ी आन, बान और शान से बड़ाई पाने वाला अकबर भी इसका अपवाद नहीं था। शासक के दुराचार का खुशामदी या वास्तविक वर्णन करना, इतिहासकार के मूड पर निर्भर करता था। अगर सुलतान अपनी सनक में अपने गुर्गे-लेखकों पर लूट का माल बड़ी दरियादिली से न्योछावर कर देता था तो घर आकर लेखक उसकी बड़ी तारीफ़ हाँक देता था। अगर दूसरे ही दिन सुलतान लेखक का अपमान या असम्मान कर देता, उसकी उपेक्षा कर देता अथवा चढ़ाई करके उसके हरम के लौण्डों और बेग़मों को छीन लेता तो वही लेखक घर आकर उसी इतिहास में उसी सुलतान का कच्चा चिट्ठा खोलकर रख देता था। इसलिए साधारण नियमों के अनुसार हम यह कह सकते हैं कि मुस्लिम इतिहास अपने स्वामी की स्तुति या निन्दा का उद्देश्य-प्रेरित झूठ का बंडल है। इसका दूषित वर्णन अल्प भी है और अक्षम्य भी क्योंकि हज़ार वर्ष के लम्बे-चौड़े अत्याचारी उन्माद में मुस्लिम दुराचार, पशुता और बर्बरता से घायल हिन्दुस्तान की पीड़ा और वेदना का सही वर्णन करने का सामर्थ्य मानव-जाति की भाषा में नहीं है।

"आज्ञाओं की इतनी अवहेलना और प्रतिबन्धों की इतनी उपेक्षा होती थी कि सरेआम शराब का दुकानें खुली रहती थीं। सैकड़ों शराब के पीपे गाँवों से शहर में आते रहते थे। जीवन की आवश्यक वस्तुओं एवं अन्न के दाम बहुत बढ़-चढ़ गए थे...प्रत्येक घर में ढोल और नगाड़े बजाये गये

क्योंकि बाज़ार के लोगों ने अलाउद्दीन की मृत्यु पर खूब खुशियाँ मनाई थीं।" मुस्लिम शासक के कल्पित गुणों की चिकनी-चुपड़ी बातें करने वाले लोग इतिहासकार ज़ियाउद्दीन बरनी के इन शब्दों को ध्यान से पढ़ लें। इसका एक-एक अक्षर समझ लें। प्रत्येक मुस्लिम शासक की मृत्यु से दलित और पीड़ित जनता इसी प्रकार खुशियाँ मनाकर चैन की साँस लेती थी।

"मज़दूरी २५ प्रतिशत बढ़ गई थी···(व्यापारी) जनता की चमड़ी तक उधेड़ लेते थे···झूठ, छीन-झपट और ग़बन के दरवाज़े एकदम खुले हुए थे, कर-वसूली के अफ़सरों के लिए सुनहरी अवसर आया हुआ था···मुसलमानों में व्यभिचार फैल गया था और हिन्दुओं ने विद्रोह कर दिया था। कुतुबुद्दीन मौज-मस्ती और व्यभिचार में गहरा डूब चुका था···अपने चार महीने और चार दिन के शासनकाल में कुतुबुद्दीन ने शराब पीने, मुजरा सुनने, मजलिसों में मज़ा लेने तथा अपनी वासना-तृप्ति के अलावा और कुछ नहीं किया।" मुस्लिम शासन के हज़ार-वर्षीय शैतानी-नाच में यह बात हर एक मुस्लिम शासक पर लागू होती है।

अलप खाँ के विद्रोह को दबाने के लिए एक सेना गुजरात भेजी गई। स्वाभाविक मुस्लिम क्रूरता और बर्बरता से इस विद्रोही स्वर को दबा दिया गया। गुजरात की राजधानी अनहिलवाड़ को एक बार फिर लूटा गया।

कुतुबुद्दीन ने मृत सुलतान के पुराने नौकर मलिक दीनार की पुत्री से भी शादी की थी। इसे गुजरात का गवर्नर बनाकर भेज दिया गया।

१३१८ ई० में सुलतान कुतुबुद्दीन एक सेना लेकर देवगिरी की ओर चला। शाही ख़ज़ाना खाली हो गया था। देवगिरी को हरपाल देव ने अपने अधिकार में कर लिया था। अपनी अनुपस्थिति में राज की देखभाल के लिए कुतुबुद्दीन पूर्ण सत्ता के साथ दिल्ली में एक अपहृत हिन्दू छोकरे को नियुक्त कर आया था जिसका प्रारम्भिक नाम था 'बरलिदा' (शायद वृन्दा) और मुस्लिम नाम शाहिन।

प्रारम्भिक आक्रमणों एवं तत्कालीन बलात् धर्म-परिवर्तन का फ़ायदा उठाकर कुतुबुद्दीन कपट से दुर्ग जीतने में सफल हुआ। दुराचारी किशोर सुलतान ने अब एक ऐसा भयंकर और बर्बर अपराध किया, जो मुस्लिम बर्बरता का सर्व-साधारण ही नहीं सर्वप्रिय रोमांचकारी नृशंस कारनामा भी था। अपने ही आदमियों के देश-द्रोह से धोखा खाकर हरपाल देव को

भागना पड़ा। अब उसका पीछा कर उसे बन्दी बनाकर लाया गया। कुतुबुद्दीन की आज्ञा से हिन्दू शासक हरपाल देव के सारे शरीर की चमड़ी चाकू की तीक्ष्ण धार से उधेड़ ली गई। उसके बाद उसके शरीर को देवगिरी दुर्ग के द्वार पर उसी तरह लटका दिया गया, जिस प्रकार बूचड़ और कसाई लोग कटे बकरों को अपनी दुकान पर माँस बेचने के लिए लटका देते हैं। एक बार फिर सारे मराठा-क्षेत्र को इस्लाम के नाम पर लूटकर तबाह और बरबाद कर दिया गया।

एक खूबसूरत हिन्दू लड़के परवारी को उसने ज़बरदस्ती मुसलमान बनाकर हसन नाम से अपना माशूक बनाकर रक्खा था। इसे खुसरू खाँ की उपाधि दी गई। जिस प्रकार अलाउद्दीन ने अपने भूतपूर्व माशूक मलिक काफूर को, जो पहले हिन्दू था, मालाबार पर चढ़ाई करने भेजा था उसी प्रकार कुतुबुद्दीन ने अपने माशूक खुसरू खाँ को एक अभियान पर भेज दिया।

चारों ओर मुस्लिम दुराचार का वातावरण होते हुए भी इस हिन्दू युवक के हृदय में देशभक्ति की चिनगारी सुलग रही थी। सुलतान ने उसे सेनापति बना दिया था। मगर उसने अपने हिन्दू साथियों एवं असन्तुष्ट मुसलमानों से बराबर सम्पर्क बनाए रक्खा था ताकि हिन्दुस्तान से मुस्लिम दुराचार और बलात्कार को उखाड़ फेंकने का कोई मार्ग वह निकाल सके।

अलाउद्दीन के चचेरे भाई एवं कुतुबुद्दीन के दूर के चाचा मलिक अशासुद्दीन ने देवगिरी के असन्तुष्ट लोगों से मिलकर एक षड्यन्त्र का सूत्रपात किया। इसमें पहरेदारों से अरक्षित घटिसाकुन के अपने हरम में शराब गटकते हुए सुलतान की हत्या करनी थी। इसके अनुसार तलवार ताने कुछ घुड़सवार अन्दर प्रवेश कर उसकी हत्या करते और तब शाही चादर अशासुद्दीन पर तानी जाती। किसी प्रकार सुलतान को इसकी हवा लग गई। सभी षड्यन्त्रकारियों को शाही तम्बू के सामने एक लाइन में खड़ाकर सूअरों की तरह हलाल कर दिया गया।

दिल्ली लौटकर सुलतान ने यघर्श खाँ के २९ पुत्रों को गिरफ्तार कर लिया। इसमें मासूम बच्चे भी थे। "उन लोगों को षड्यन्त्र का कोई ज्ञान नहीं था, फिर भी उन सभी को पकड़कर भेड़ों की तरह हलाल कर दिया गया। सारी सम्पत्ति को जिसे मृत सुलतान के चाचा यानी उनके पिता ने

अपने (पाप, दुराचार, अपराध और लूट के) लम्बे जीवनकाल में बटोरा था, अपने नाम से शाही ख़ज़ाने में जमा कर दिया तथा (उसके) परिवार की स्त्रियों और लड़कियों को घर से बाहर निकालकर सड़क पर छोड़ दिया।"

दिल्ली वापिस लौटते समय सुलतान ने अपने प्रमुख पहरेदार को ग्वालियर-दुर्ग में बन्दी मृत सुलतान के पुत्र "खिज्र ख़ाँ, सादी ख़ाँ और मलिक शहाबुद्दीन को एक ही झटके में ख़त्म करने के लिए" भेज दिया, जो सिर्फ़ आँखों से अन्धे ही नहीं थे वरन् भोजन और वस्त्र के लिए उसी पर निर्भर भी थे। इन बेबस और लाचार अन्धों को मारकर वह उनकी माताओं और पत्नियों को दिल्ली घसीट लाया। ऐसे क्रूर-कारनामे रोज की वारदातें थीं। सुलतान क्रोध, दुराचार, क्रूरता, प्रतिशोध और निर्दयता में पागल हो गया था। निर्दोष लोगों के रक्त में उसने अपना हाथ डुबो दिया और अपने अनुचरों तथा साथियों को भद्दी-भद्दी घृणित गालियाँ देने लगा। देवगिरी से वापिस लौटने के बाद कोई भी आदमी, चाहे वह उसका दोस्त हो या अजनबी, शासन के मामले में साहस से उसे सलाह नहीं दे सकता था। अदम्य और क्रूर क्रोध ने उसे इतना जकड़ लिया था कि उसने गुजरात के शासक जैफ़र खाँ की हत्या कर दी। कुछ ही समय के बाद उसने एक धर्मान्तरित हिन्दू मलिक शाहदीन का सिर उतार दिया जो उसका माशूक ही नहीं था वरन् जिसे सुलतान ने एक बार अपना प्रमुख-प्रतिनिधि भी बना दिया था।

कुतुबुद्दीन "अपने दरबार में औरतों के कपड़े पहनकर और मामूली गहनों से सज-धजकर आया करता था। सुलतान ने अपने दो दरबारियों को सरे आम बेइज्ज़त और अपमानित भी किया था। एक का नाम मलिक ऐनुल् मुल्क मुलतानी था तथा दूसरे का मलिक कश बेग, जो कम-से-कम १४ विभागों की देख-रेख करता था। सुलतान ने हज़ार खम्भे वाले महल की छत से कमीनी औरतों द्वारा इन दोनों कुलीनों को बुरी-बुरी गन्दी गालियाँ दिलवाई।"

श्री के हज़ार खम्भों वाले इस महल के वर्णन से ही पाठकों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि यह महल और 'श्री' नगर मुस्लिमपूर्व का हिन्दू निर्माण है। ऐसे महल खम्भों वाले निर्माण, जैसाकि हम पहले भी

रामेश्वरम तथा मदुराई आदि स्थानों में देखते हैं, पूर्णत: हिन्दू कला के आधार पर बने हुए हैं। यह भी ध्यान देने की बात है कि ऐसे भवन जिन्हें उन लोगों ने बरबाद किया, ज़ब्त किया और नापाक किया, जो अपने स्तम्भों की संख्या से ही विख्यात हैं—जैसे चौंसठ खम्भा, हमें पुराने हिन्दू अधिकार की याद दिलाते हैं। शर्त है, हमारी जनता के पास देखने की आँखें और विचारने का दिमाग़ होना चाहिए।

इस्लाम में धर्मान्तरित गुजरात के एक हिन्दू को सुलतान ने अपने गृह-प्रबन्ध का भार सौंप दिया। उसका नाम था तौबा। अपने गृह-प्रबन्ध अधिकार का वह पूरा-पूरा उपयोग करता था। वह कुलीनों को माँ-बहन लगा कर गन्दी-गन्दी गालियाँ सुनाता था। वह उनके वस्त्रों को गन्दा कर देता था और कभी-कभी महफ़िल में जाकर सुलतान और दरबारियों के बीच गन्दगी का फव्वारा भी छोड़ आता था।

गुजरात को अब एक-दूसरे धर्मान्तरित हिन्दू, खुसरू खाँ के मामा के हाथ में सौंप दिया गया। इसका मुसलमानी नाम हिसामुद्दीन था। मुस्लिम दुराचार और पाशविकता के शिकार ये धर्मान्तरित हिन्दू बहुत जल्दी मुस्लिम स्टाइल के क्रूर-भोगी शैतान के रूप में पूरी तरह खिल उठते थे। मुस्लिम ट्रेनिंग बड़ी पक्की होती थी। मुस्लिम आक्रमणों के दौरान उड़ाकर लाए गये अन्य अभागे हिन्दू बालकों की तरह हिसामुद्दीन को भी प्राय: बेंतों से पीटा जाता था।

गुजरात को पूरी तरह अपने अधिकार में पाकर, हिसामुद्दीन ने अपने पूर्ववर्ती हिन्दू समर्थकों की सहायता से मुस्लिम नाम और व्यभिचार का जुआ उतार फेंकने का एक प्रयास किया। मगर मुस्लिम गुर्गों ने उसे बन्दी बनाकर दिल्ली भेज दिया। दरबार में बन्धकी के बतौर रखे हिसामुद्दीन के भाई के इश्क में सुलतान इतना आसक्त था कि उसने हिसामुद्दीन को बेंतों से पीटने की आज्ञा देकर भी बाद में उसे मुक्ति ही नहीं दी, वरन् अपनी महफ़िलों का प्रबन्ध करने के लिए शाही महल में नौकरी भी दे दी।

अपहृत देवगिरी की निगरानी करने वाले मलिक यक लक्खी ने सुलतान से विद्रोह कर दिया। उसे दबाने के लिए एक सेना भेजी गई। लक्खी तथा उसके सहयोगियों को बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया। यक लक्खी को नाक काटकर फेंक दिया गया और सरे-आम बेइज्जत किया गया।

धर्मान्तरित खुसरू ख़ाँ के मालाबार प्रदेश से स्थानीय सरदार भाग खड़े हुए। अपने इस्लामी स्वामियों के लिए उसने दो शहरों को लूटा। वर्षा ऋतु प्रारम्भ हो जाने के कारण वह दिल्ली न लौट सका। स्थानीय मुस्लिम व्यापारी तक़ी ख़ाँ को कई पीढ़ियों से मुसलमान होने का घमण्ड था। वह यह सोच अपना घर छोड़कर नहीं भागा कि यदि वह खुसरू ख़ाँ का, हिन्दू पूर्वज होने के कारण, उद्दण्डतापूर्वक अपमान भी कर देगा तो भी कई पीढ़ियों से मुसलमान होने के कारण खुसरू ख़ाँ उसे कुछ नहीं कहेगा। इधर खुसरू ख़ाँ ने लूट के माल को बहुत ही कम समझा। उसने तक़ी ख़ाँ को लूट ही नहीं लिया, उसका सिर भी उतार दिया।

खुसरू ख़ाँ हमेशा हिन्दुस्तान के मुस्लिम अपहरण एवं विध्वंस का प्रतिशोध लेने का मौक़ा खोजता रहता था। इसलिए उसने दिल्ली से दूर होने का फ़ायदा उठाना चाहा। उसने कुछ अन्य धर्मान्तरित सरदारों से, जिन्हें दमन, पीड़ा और यन्त्रणा ने मुसलमान बनाया था तथा कुछ मुसलमानों से, जो अपनी कुछ माँगों के कारण सुलतान से नाराज़ थे, बातचीत करनी आरम्भ कर दी। इन लोगों में से चन्देरी के मलिक तमार, मलिक तलबाघा याघद एवं मलिक अफ़ग़ान के पास यथेष्ठ फ़ौज थी। इन तीनों ने खुसरू ख़ाँ से जलकर, सुलतान का कृपापात्र बनने सुलतान के कान विषाक्त करने प्रारम्भ कर दिए।

मगर खुसरू ख़ाँ के विरोध में सुलतान ने कुछ नहीं सुना। उल्टे उसने मलिक तमार की पदावनति कर उसके महल-प्रवेश पर रोक लगा दी। याघद की आँखें फोड़कर बन्दीख़ाने में फिंकवा दिया।

दरबार में व्यभिचार इतना रम चुका था कि सुलतान और उसका पी० ए० बहाउद्दीन एक ही औरत के लिए आपस में झगड़ पड़े। जिस औरत की उसे ख़्वाहिश थी सुलतान ने उसे नहीं दिया। क्रोध में पागल होकर उसने षड्यन्त्र में खुसरू ख़ाँ की सहायता करनी स्वीकार कर ली।

भारत से पापी और अन्यायी मुस्लिम शासन का तख़्ता पलटने की तैयारी में खुसरू ख़ाँ ने अनेक गुजरातियों को बुलाकर उन्हें सुलतान के महल एवं अन्य महत्त्वपूर्ण पदों पर नियुक्त कर दिया था। अपने पापों के बोझ से लदे सन्देहशील मुसलमानों की यह आदत थी कि वे महल के मुख्य-द्वार को अपनी आँखों के सामने बन्द करवाते थे तथा चाबी सारी रात

अपने पास रखते थे। खुसरू खाँ ने सुलतान को बहला-फुसला और समझा-बुझाकर चाबी अपने पास ले ली ताकि उसके गुजराती साथी दिन का काम समाप्त करके रात्रि में उससे मिल सकें। ढाल, तलवार, धनुष और भालों से सुसज्जित होकर प्रायः ३०० गुजराती महल के निम्नतम भाग में खुसरू से मिलने आते थे।

खुसरू खाँ से ईर्ष्या करने वाले एक काज़ी ज़ियाउद्दीन ने इसकी शिकायत सुलतान से करनी चाही। खुसरू ने उसे ऐन वक्त पर पकड़ा था। खुसरू के हिन्दू मामा 'रणधौल' के नेतृत्व में हमेशा की भाँति रात में गुजराती पार्टी महल में आई। हज़ार खम्भे वाले अपहृत हिन्दू महल में, जहाँ अब विदेशी मुस्लिम दरबार और कुशासन होता था, उन लोगों ने अपने हथियार छिपा रक्खे थे। ठीक आधी रात के बाद जब सारा महल सो चुका था, हिन्दू देशभक्त पार्टी के सदस्य जहरिया ने चुग़लखोर काज़ी ज़ियाउद्दीन को उसके व्यभिचारी बिछौने से नीचे घसीटकर मार डाला। एक चीख़ महल में गूँज गई। अपने अन्य वीर साथियों के साथ जल्दी से जहरिया महल के ऊपरी कक्ष की ओर बढ़ा। महल के महत्त्वपूर्ण स्थानों पर गुजराती पहरेदारों का ही पहरा था। खुसरू सुलतान के पास था। जब सुलतान ने उससे इस हल्ले-गुल्ले के बारे में पूछा तो उसने बताया कि कुछ शाही घोड़े रस्सा तुड़ाकर उछल-कूद कर रहे थे, उनको लोग वापिस खूँटों में बाँध रहे हैं। ठीक उसी समय जहरिया की टुकड़ी सुलतान के कक्ष तक पहुँच गई और उसने पहरेदारों को मार गिराया। भय से सुलतान सुन्न हो गए। बग़ल के हरम की हज़ार औरतों की भीड़ में गुम हो जाने के लिए सुलतान ने चटपट चप्पल पहनीं। खुसरू ने यह भाँपा कि अगर सुलतान को एक बार भागने का मौका मिल गया तो फिर स्त्रियों की भीड़ में उसे खोजना एकदम कठिन हो जाएगा। वह सुलतान के पीछे लपका। द्वार में गुम होते उसके लम्बे लहराते बालों का झोंटा उसने पकड़ा और उसे खींचकर ज़मीन पर दे मारा। जहरिया के भाले ने फुर्ती से उसका सिर उतार दिया।

"इसके बाद वीर हिन्दू महल और झरोखों के सभी काँटों को, जिन्होंने चुभने का दुस्साहस किया, उखाड़ फेंका और सफ़ायी-अभियान में लग गए। मशालें जला लीं और सुलतान के सिर-हीन शरीर को गैलरी के बाहर नीचे प्रांगण में फेंक दिया। सुलतान के अंगरक्षक भयभीत होकर

अपने-अपने घर अपनी-अपनी पत्नियों के बुर्कों में छिपने भाग गए। अनेक हिन्दू नारियों को सुलतान और अन्य मुसलमानों ने शीलहीन कर अपने-अपने शयनागारों में सजा रक्खा था। एक बार फिर स्वतन्त्रता की मुक्त साँस लेने के लिए सभी नारियाँ मुक्त कर दी गईं। अपहृत और असहाय हिन्दू नारियों पर ज़ुल्म ढाने में अलाउद्दीन की एक कुख्यात विधवा पत्नी नौ-दो-ग्यारह हो रही थी। उसे पकड़कर उसका सिर क़लम कर दिया गया।"

साफ़ कर देने योग्य सारी वस्तुओं को साफ़ कर दिया गया। एक शताब्दी के बाद सारा महल पुनः हिन्दू-अधिकार में वापिस आ गया। बहुत बड़ी संख्या में मशालों और बत्तियों को जलाकर प्रकाश का प्रबन्ध किया गया। एक दरबार बुलाने की आयोजना की गई और प्रमुख दरबारियों को दरबार में फ़ौरन हाज़िर होने की सूचना भेज दी गई।

महल पर हिन्दुओं के पूर्ण नियन्त्रण के साथ-साथ दिन का भी आगमन हुआ। मुस्लिम दरबारी, कुलीन और कप्तान अपने नए मालिक के सामने अपनी राज-भक्ति की सौगन्ध खाने महल में दौड़ आए। हिन्दू तलवार के एक ही वार ने अलाउद्दीन ख़िल्जी के खानदान का अन्त कर दिया। १३२० ई० के मध्य, एक प्रातःकाल खुसरू खाँ सुलतान नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर गद्दी पर बैठा। मुसलमानों द्वारा अपहृत गुजरात की राजकुमारी देवल देवी उसकी राज-रानी बनी।

नए शासन और शासक के प्रति जिन लोगों के मन में ज़रा भी रंज या ग़म था उन सभी लोगों को घिसी-पिटी मुस्लिम परम्परा के अनुसार मार दिया गया। व्यभिचार के लिए जिन नारियों को घसीटकर लाया गया था, उन सभी को उनके घर पहुँचा दिया गया। अन्त में, इस व्यभिचारी और खूनी मुस्लिम शासन को जैसे-का-तैसा न्याय मिला और एक बार सभी नारियों और बालकों को व्यभिचार और विलास के कामुक वातावरण से मुक्ति मिली।

काज़ी ज़ियाउद्दीन का परिवार भाग गया। उनका महल नए सुलतान नासिरुद्दीन के मामा रणधौल को दे दिया गया। रणधौल रायरायन बने और बहाउद्दीन को अजामुल मुल्क की उपाधि मिली।

ऊपरी तौर से खुसरू नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर गद्दी पर आसीन

हुआ था। मगर उसका वास्तविक ध्येय अपनी मातृभूमि को मुस्लिम जुए से स्वतन्त्र कर अपने आपको मुस्लिम नाम से मुक्त करना और एक गौरवशाली हिन्दू के रूप में जीवन-यापन करना था। गद्दी पर बैठने के चार-पाँच दिन के भीतर-ही-भीतर इस भूतपूर्व हिन्दू महल में, जहाँ से एक शताब्दी के मुस्लिम विनाश ने हिन्दू मूर्तियों को बाहर फेंक दिया था, पुनः राजपूत परिवार के देव एवं देवी भगवान् शिव और माँ भवानी की प्रतिष्ठा की गई।

मुसलमानों ने अपने क्रूर भारतीय-आक्रमण के प्रारम्भ से ही, छः सौ वर्ष तक, वेद और गीता जैसे पवित्र हिन्दू-ग्रन्थों का अपमान किया था। उन्हीं मुसलमानों को 'शठे शाठ्यं समाचरेत्' समझाया गया। कुरान का आसन बनाया गया। मस्जिद में परिवर्तित हिन्दू मन्दिरों एवं महलों का पुनरुद्धार किया गया और उनमें पावन-प्रतिमाओं की प्रतिष्ठा की गई।

हिन्दुओं को अपनी ही मातृभूमि में अपमानित और दलित होकर एक अछूत और नीच जाति बनना पड़ा था। वे घोड़ों पर नहीं चढ़ सकते थे। आभूषण नहीं पहन सकते थे। हथियार नहीं रख सकते थे। उन्हें मुस्लिम लुच्चों की कामाग्नि में झोंकने के लिए अपनी पत्नियों, पुत्रियों और बच्चों को सादर समर्पित करना पड़ता था। अब वे हिन्दू सिर ऊँचा कर चल सकते थे।

हिन्दुओं के सम्मान ने ज़रा चैन की साँस ली और भविष्य का पागल बादशाह जल-भुनकर कबाब हो गया। इसका वर्तमान नाम मुहम्मद फ़ख़रुद्दीन था। नासिरुद्दीन की सुलतानी के दो महीने बाद ही १३२० ई० के अगस्त में फ़ख़रुद्दीन एकाएक दिल्ली से सरक गया। वह देबलपुर की ओर रवाना हुआ। वहाँ उसका पिता गाज़ी मलिक भावी दिल्ली सुलतान गियासुद्दीन तुग़लक का चमचा बनकर रहता था। फ़ख़रुद्दीन के इस अचानक ग़ायब होने से नासिरुद्दीन शंकित हो गया। घुड़सवारों का एक दल उसके पीछे-पीछे भी गया। मगर उसकी टोह न लग सकी।

तुग़लक पिता एवं पुत्र ने हिन्दुओं को, जिन्होंने नासिरुद्दीन के शासनकाल में सुख की दो-चार साँस ली थीं, नष्ट करने के उद्देश्य से दिल्ली शासनाधीन पड़ोसी नगर सरस्वती पर चढ़ाई के लिए सशक्त सैन्य वाहिनी भेज दी। इसे मुस्लिम इतिहासकारों ने 'सरसुती' लिखा है। मुसलमानों की

गिरगिटी राजभक्ति के बीच नासिरुद्दीन अपनी स्थिति दृढ़ नहीं कर पाया था। फिर भी उसने विद्रोही तुग़लकों के दमन के लिए दिल्ली से एक सेना भेज दी। दिल्ली सेना के एक ही तीव्र प्रहार ने 'सरसुती' ले लिया। अब सेना देवालयपुर की ओर बढ़ी।

तुग़लक़ जोड़ा घबराया। दोनों ने ही हिन्दू-भूमि को चाट खाने वाले पड़ोसी मुस्लिम सरदारों की सहायता पाने के लिए बड़े जोर-शोर से हाथ-पैर पटके। हिन्दुओं को गुलाम बनाकर, दिल्ली गद्दी पर अपने दावे की कील ठोंकने वाले मुस्लिम कुलीनों ने तुग़लक़ी-विद्रोहियों का ही साथ दिया, क्योंकि लक्ष्य दोनों का एक ही था—हिन्दू-दमन। उछ का मलिक बहराम एक बड़ी फौज लेकर तुग़लक़ों से आ मिला। दोनों की मिली-जुली सेना देवालयपुर से बाहर निकली। "काफ़िर हिन्दुओं का नाश करो", यह सनसनी पैदा करने वाला नारा ही काफ़ी था और हरएक घृणित मुस्लिम अपने-अपने बिलों से निकलकर, विद्रोही मुसलमानी झण्डे के नीचे आकर खड़ा हो गया।

दलिया नगर के दक्षिण में दोनों सेनाएँ टकराईं। इसमें दिल्ली सेना को काफ़ी क्षति उठाकर पीछे हटना पड़ा।

दिल्ली में उपलब्ध सैनिक-शक्ति को जमा कर स्वयं नासिरुद्दीन श्री के राजमहल से निकला। उपवन को सम्मुख और दुर्ग को पीछे रख उसने लहरावत के सामने अपनी सेना खड़ी की। "भाग्य की मथानी में मथे हुए, या जुए में दाँव पर सभी कुछ लगा देने वाले खिलाड़ी के समान, दिल्ली और किलुघड़ी का शाही ख़ज़ाना एकदम झाड़-बटोरकर वह अपने साथ ले आया था। जनता का सारा ख़ज़ाना उसने सेना में तनख्वाह व इनाम के बतौर बाँट डाला। इस्लाम के सामान के तुग़लक़ी-सरपरस्त के हाथ में पड़ जाने की आशंका से क्रोधित होकर उसने एक दिहराम भी अपने पीछे नहीं छोड़ा।" (वही, पृष्ठ २२७)। नासिरुद्दीन की उदारता से बाँटी गई सारी धनराशि को लेकर कायर व कपटी मुसलमानों ने उसका साथ छोड़ दिया और चुपचाप खिसक गये।

दिल्ली के समीप पहुँचकर तुग़लक़ी सेना ने इन्द्रप्रस्थ में अपना तम्बू लगा दिया। अपने जीवन और भविष्य को दाव पर लगाने का ख़तरा मोल न लेकर, ऐनल-मुल्क मुलतानी अपने अनुचरों के साथ, संग्राम-पूर्व की पहली

रात्रि को, नासिरुद्दीन का साथ छोड़, मध्यभारत के उज्जैन एवं धार को लूट, अपने राज्य की नींव डालने सरक गया। परवर्ती संग्राम में खुसरू ने वीरगति पाई। अब गाज़ी मलिक श्री के प्राचीन हिन्दू हज़ार खम्भे वाले महल की ओर बढ़ा और वहाँ "गाज़ी गियासुद्दीन दुन्या वाउद्दीन तुग़लक़ शाहुस् सुलतान" की भारी भरकम उपाधि लेकर सुलतान बन बैठा।

हिन्दुस्तान के विदेशी मुस्लिम शासक परिवार में खि़ल्जी वंश ने चार सुलतानों की रक्त-रंजित कड़ी जोड़ी। इसमें जलालुद्दीन का शासन आठ वर्ष का था। उसकी हत्या कर उसके भतीजे-दामाद ने प्राय: २० वर्ष तक राज्य किया। शायद उसे भी मलिक काफ़ूर ने ज़हर दे दिया था। उसकी मृत्यु के बाद काफूर ने उसके बाल-पुत्र शहाबुद्दीन को गद्दी पर बिठाया। शहाबुद्दीन का शासन सिर्फ़ कुछ महीने का ही था, क्योंकि उसके बड़े भाई मुबारक खाँ ने उसकी हत्या कर दी, जिसे बाल-सुलतान का संरक्षक बनाया गया था। अपने मुँह पर बाल-सुलतान तथा छोटे भाई की हत्या का रक्त पोतकर मुबारक खाँ कुतुबुद्दीन के नाम से चार वर्ष चार महीने गद्दी पर जमा रहा।

युद्ध या शासन के अधिक व्यभिचार में मगन यह किशोर सुलतान लम्बे-लम्बे बाल और लम्बी चोटी रखकर, ज़नाना पोशाक पहनना ही पसन्द करता था। ज़नाना श्रृंगार कर वह दरबार भी जाता था। उसके एक हिन्दू माशूक़ गुजराती वीर ने एक रात उसके पापी और व्यभिचारी जीवन का अन्त कर डाला। उसने सुलतान नासिरुद्दीन की उपाधि लेकर प्राचीन हिन्दू राज-सिंहासन को विदेशी चंगुल से मुक्त करने का साहसी और सराहनीय क़दम उठाया। इस प्रयास में उसने अपने प्राणों की आहुति दे दी और दो महीने के बाद ही मलिक गाज़ी तुग़लक़ ने एक बार फिर हिन्दुस्तान में हिन्दुओं को जलाने तथा काटने के लिए शैतान सुलतानों के ख़ानदानों की टूटी खूनी जंजीर को जोड़ दिया। इसके बाद वही खूनी किस्सा फिर चालू हो गया।

(मदर इण्डिया, अक्तूबर, १९६७)

: १३

गियासुद्दीन तुग़लक़

कुछ विचित्र धारणाओं के कारण सारे संसार की शिक्षा-संस्थाओं में भारतीय इतिहास की शिक्षा एवं शोध एक मखौल बनकर रह गया है, एक मज़ाक हो गया है।

वे लोग व्यंग्य और उपहास से खिल्ली उड़ाते हुए, बड़ी धृष्टता से, मुसलमानों की झूठी महानता, नक़ली दयालुता और लुटेरे कर-प्रबन्ध आदि न जाने कितनी नई-नई बातों की खूबियों का मनमाना बयान अनुमान से ही गढ़ते रहते हैं। वे भूल जाते हैं या फिर जानबूझकर अनजान बन जाते हैं कि तूफ़ान की तरह भारत में घुस पड़ने वाला मुस्लिम-गिरोह जानवरों और बर्बर जंगलियों का गिरोह था, जिनमें सभ्यता और संस्कृति की छाया भी नहीं थी। उन लोगों को इस्लामी अन्ध-विश्वास ने पूरी तरह यक़ीन दिला दिया था कि हिन्दुओं की हत्या करना, गायों को काटना और सभी काफ़िर नारियों पर, चाहे वे चीनी हों या जापानी, अंग्रेज़ हों या हिन्दुस्तानी बलात्कार करना बड़ा महान् और गौरवशाली काम है। इस काम से उनके लिए इस्लामी जन्नत में एक ऊँचा ओहदा रिज़र्व हो जाता है। इसलिए वे लोग प्रत्येक आक्रमण के बाद या तो सारे कैदियों को हलाल कर देते थे, या जन्नत का मज़ा यहीं लूटने के लिए उनको गुलाम बना लेते थे, या मुस्लिम बाज़ारों में बेच देते थे।

इन जानवरों के जंगली शासन को "महान् और न्यायी युग" मानना विद्या का अपमान करना है। छात्रों को बहकाने वाली ऐसी धारणाएँ साधारण तर्क का भी गला घोंट देती हैं। ये आग उगलने वाले जंगली बर्बर, भूखे भेड़ियों के झुण्ड की भाँति भारत में आ घुसे थे। ये किस प्रकार हिन्दुओं की उन्नति की चिन्ता करने वाले गुण-सम्पन्न और दयालु शासक

बन बैठे ? इस निगमन से तर्क-शास्त्र के दूसरे नियम की भी हत्या होती है। सभी जानते हैं कि शक्ति और पद लोगों को भ्रष्ट करता है तथा निरंकुश शक्ति और सर्वोच्च पद, खास तौर से भ्रष्ट लोगों को, एकदम पतित बना देता है। कोई भी व्यक्ति आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि इन बर्बर जंगलियों ने, इन क्रूर मुस्लिम आक्रमणकारियों ने, भारत में मशाल और तलवार लेकर, हज़ार वर्ष तक चलने वाले अपने लम्बे इस्लामी नाच के दौरान, अपने चँगुल में फँसी अभागी और असहाय नारियों, बच्चों और मनुष्यों पर क्या-क्या नारकीय जुल्म न ढाया होगा।

शताब्दियाँ बीत गईं। संसार काफ़ी आगे बढ़ चुका है। मगर हाल ही की तीन घटनाएँ स्पष्ट करती हैं कि मुस्लिम-जगत् का विशाल भाग अभी भी मध्यकालीन बर्बर और जंगली अन्ध-विश्वास तथा इस्लाम की खूनी आकांक्षा के अँधेरे तहख़ाने में चिपके पड़े रहने में ही अपना गौरव समझता है—

(१) जुलाई, १९६७ ई० में इसरायली प्रतिनिधि-मण्डल ने संयुक्त-राष्ट्र की साधारण सभा में अरबों के खूँखार कारनामों का भण्डाफोड़ किया है। छः दिन के युद्ध अभियान में दुम दबाकर भागने से पहले अरबों ने मुस्लिम चँगुल में फँसे यहूदियों पर जो बर्बर अत्याचार किया था वह अब जग-विख्यात है। (२) प्रायः उसी समय उनके धर्म-भाई पूर्वी पाकिस्तान के एक शहर में सभी अ-मुसलमानों (यानी काफ़िरों) को लूट रहे थे, उनके घरों में आग लगा रहे थे, उनकी स्त्रियों पर बलात्कार कर रहे थे। क्योंकि एक मुस्लिम लड़की को एक बौद्ध लड़के से प्यार हो गया था। (३) हाल ही में लोगों ने मिस्र को यमन के नागरिकों पर ज़हरीली गैस का प्रयोग करते पकड़ा है।

२०वीं शताब्दी में भी ऐसा क्रूर और नृशंस अत्याचार हो सकता है, तब कोई भी आदमी आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि एक के बाद दूसरे मूढ़ मुस्लिम ख़ानदानों ने लगातार, मध्यकालीन इस्लामी उन्माद में चारों ओर फैलकर, हिन्दुस्तान पर क्या-क्या अत्याचार नहीं किया होगा ? उसपर वे लोग जिहाद का नारा बुलन्द करते हुए, यह क़सम खाकर हिन्दुस्तान में घुसे थे कि वे इसे लूटेंगे और नष्ट करेंगे, भारत भूमि को अत्याचारपूर्वक लूटने वाले इस्लामी ख़ानदानों और मुसलमानी

सुलतानों की लम्बी ज़ंजीर की एक कड़ी तुग़लक़ शैतानों के ख़ानदान की भी है।

मुस्लिम लुटेरा गाज़ी मलिक ख़िल्जी-ख़ानदान का विनाश करने में सफल हुआ था। प्राचीन हिन्दू नगर श्री हज़ार-खम्भा भवन में उसकी ताजपोशी हुई। धन की देवी का निवास-स्थान श्री एक फलते-फूलते नगर की ओर संकेत करता है। अरबी-फारसी की अपूर्ण लिपि में श्री को सीरी बनाकर इसके निर्माण का श्रेय धूर्तता से एक ख़िल्जी को दिया क्योंकि ख़िल्जियों ने संयोग से प्राचीन विशाल हिन्दू राजधानी दिल्ली के श्री नगर को अपना मुख्य केन्द्र बना लिया था।

१३२० ई० में इस अपहर्त्ता ने सुलतान बनकर 'सुलतानुल् गियासुद्दीन वुन्या वाउद्दीन तुग़लक़ शाह' का लम्बा-चौड़ा पट्टा धारण किया। इन पशुओं के रिवाज के अनुसार उसने अपने पूर्वजों के हरम की सारी अपहृत औरतों को अपने चँगुल में दाब लिया। इनका अपहरण करके उसके पूर्वजों ने इनको बड़े परिश्रम से जमा किया था। इस हरम की दादियाँ, चाचियाँ, बहनें, भतीजियाँ, माताएँ, शाहज़ादियाँ, साधारण सुन्दर नारियाँ और नई उड़ाई लड़कियाँ प्रकट रूप में गद्दी के व्यभिचारी सुलतान की वेश्याएँ थीं और गुप्त रूप में दरबारियों तथा साहसी सेवकों के मनोरंजन का खिलौना। देवगिरी दुर्ग से घसीटकर लाई गई गुजरात की राज-कन्या भी इन्हीं में से एक थी। क्रमानुसार पहले उसे अलाउद्दीन के पुत्र खिज्र खाँ की पत्नी बनना पड़ा। बाद में वह कुतुबुद्दीन फिर धर्मान्तरित खुसरू यानी नासिरुद्दीन की भोग्या बनी। अब उसपर बलात्कार करने की बारी गियासुद्दीन की थी क्योंकि हिन्दुस्तान का प्रमुख लुटेरा सरदार और मुस्लिम दुष्ट होने के कारण व्यभिचारी व्यवहार का खुला लायसेन्स इसी के पास था।

उस ठसाठस भरे उपजाऊ हरम में गियासुद्दीन को सन्तानों की कमी नहीं थी। बड़ा पुत्र गद्दी का वारिस था। उसे उलुघ खाँ की उपाधि मिली। परवर्ती चार पुत्र बहराम खाँ, ज़फ़र खाँ, महमूद खाँ और नुसरत खाँ थे।

हम अभी देखेंगे कि गियासुद्दीन सभी भारतीय मुस्लिम शासकों की भाँति एक हिंस्र जंगली जानवर ही था। फिर भी एक मुस्लिम इतिहासकार चापलूसी में इस शैतान के बाप को न्यायी, दयालु और उदार शासक कहते नहीं थकता। उदाहरण के लिए इन चापलूसों में से ज़ियाउद्दीन बरनी को

ही लिया जाए। उसने गियासुद्दीन के बारे में लिखा है—'वे जब गद्दी पर बैठते थे तब अपने चरित्र की महानता, कुलीनता और उदारता से विशिष्ट प्रतीत होते थे। उन्होंने अपने सभी साथियों और परिचितों में इनाम बाँटा···।' (पृष्ठ २२९, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

ऐसे वर्णनों ने सारी दुनिया के इतिहासकारों को अन्धा बनाकर भटका दिया है। इन लोगों ने ज़रा-सी समझदारी से भी काम नहीं लिया कि आख़िर इन वर्णनों का मूल्य कितना है, इनमें सच्चाई कितनी है, और ऐसी प्रशंसा लिखने वाले का उद्देश्य क्या है? इन लोगों ने ऐसी प्रशंसा की तुलना मुस्लिम लुटेरों के वास्तविक कारनामों से भी नहीं की। अगर ये लोग ऐसा करते तो इन लोगों को इस खेल का राज़ तुरन्त मालूम हो जाता।

अमीर खुसरो गियासुद्दीन तुग़लक का समकालीन था। उसे एक महान् मुस्लिम कवि के रूप में माना जाता है। मगर उसकी दो कविताओं से यह भण्डाफोड़ हो जाता है कि वह किस प्रकार चापलूसी करता, हिन्दू-हत्या और विनाश देख-देखकर खुशी से लोटन कबूतर बन जाता था। सुलतान गियासुद्दीन की चापलूसी के बारे में अमीर खुसरो का वर्णन करते हुए ज़ियाउद्दीन बरनी ने लिखा है—"कहा जाता है कि उनके (गियासुद्दीन) शासन की खूबियों से प्रेरित होकर अमीर खुसरो ने एक शे'र पढ़ा था—जिसका भावार्थ है—

"उसने ऐसा कोई काम नहीं किया, जो विवेक और समझदारी से भरा हुआ न हो, उसके बारे में कह सकते हैं कि सैकड़ों विद्वानों की विद्वत्ता उनके ताज के नीचे छिपी हुई थी।"

बरनी ने आगे लिखा है—"अपने स्वभाव की उदारता से गियासुद्दीन ने देश का भूमि-कर सद्-नियमों पर आधारित करने का फरमान जारी किया।"

सुलतान गियासुद्दीन पर इतनी उदारता से वारी गई बरनी की यह साक्षी थोड़ी ही छानबीन से कोरी बकवास प्रमाणित हो जाती है। उसके अनुसार गद्दी पर बैठते ही गियासुद्दीन ने अपने साथियों और परिचितों को बड़ी दरियादिली से इनाम दिया। यह पुरस्कार देशद्रोह और विश्वासघात को मिलने वाले भाई-भतीजावाद का एक गन्दा उदाहरण है। अपने पाप और अपराध के सहयोगियों में लूट के माल को बड़ी दरियादिली से बाँटने

वाला एक डाकू-सरदार अपने आपको समाज-सुधारक नहीं कह सकता। दूसरे उसने एक विशेष भूमि-कर पद्धति अपनाई थी। मुस्लिम चापलूसों का यह बड़ा प्यारा नारा है। इसका सिर्फ़ यही मतलब है कि उसके पूर्वजों ने जो भूमि-कर लोगों पर लादा था वह काफी कड़ा नहीं था। उसे और कठोर बनाकर गरीब हिन्दू जनता की चमड़ी उधेड़ने के लिए नये-नये अत्याचारी नियमों को ईजाद किया गया। (मुग़ल सम्राट् अकबर आदि सभी लोगों के) ये बहु-प्रशंसित भूमि-कर नियम जनता से धन चूसने के योजना-बद्ध क्रूर कारनामे थे। इन्हें निचोड़ने के लिए पाशविक यातनाओं की मशीन में लोगों को कूटा-पीसा जाता था। कोड़ों से उनकी मजाई होती थी। इन क्रूर मुस्लिम-करों को चुकाने के लिए अभागे लोग अपनी पत्नियों और बच्चों तक को बेच देते थे।

खुसरो के दूसरे शे'र ने उसकी इस्लामी दुष्टता को नंगा किया है। वह कहता है कि उसे हिन्दुस्तान पसन्द है क्योंकि "इसकी जमीन तलवार के पानी से पाक और साफ़ की गई है और (यहाँ से) काफ़िरपन के बादल छँट गए हैं।" मुस्लिम शासनकाल में मुस्लिम दरगाहों पर भेंट चढ़ाने और सिजदा करने के लिए हिन्दुओं को मजबूर किया जाता था। बड़े शोक और शर्म की बात है कि हिन्दू लोग आज भी आँख मूँदकर यही काम करते चले आ रहे हैं। प्रत्येक वर्ष ये लोग खुसरो की दरगाह पर जमा होते हैं। ये बड़ी उमंग से उसकी कविताओं का पाठ करते हैं। मगर खुसरो हिन्दुओं की हत्या, हिन्दू बच्चों के खतने, हिन्दू स्त्रियों के बलात्कार और हिन्दू महलों के इस्लामीकरण से बड़ा प्रसन्न होता था।

गियासुद्दीन की कर-प्रणाली भी जनता के खून की अन्तिम बूँद तक को चूस लेने वाली एक क्रूर प्रणाली थी। बरनी ने अपनी नासमझी से इसका भण्डाफोड़ भी कर दिया है। उसके अनुसार गियासुद्दीन ने यह हुक्म जारी किया कि "एक बार में इतना न छीना जाए जिससे खेती के कामों में ख़लल पड़े। हिन्दुओं से इतना ही कर वसूल किया जाय, जिससे वे लोग धन के उन्माद में विद्रोह न कर सकें और समूह में जमा न हो सकें।" (वही, पृष्ठ २३१)।

प्रत्येक मुस्लिम शासक की भाँति गद्दी पर बैठते ही गियासुद्दीन ने भी चारों ओर अपनी नज़र दौड़ाई कि किस हिन्दू-क्षेत्र को कुचला जाए

और किस हिन्दू-नगर को लूटा जाए। हरम के वर्णसंकर बड़े पुत्र उलुघ खाँ को वारंगल एवं आन्ध्र (तेलगांना) क्षत्र के हिन्दू राज्यों पर चढ़ाई करने के लिए भेजा गया। पूर्ववर्ती मुस्लिम लुटेरे दक्षिण में इस्लामी धावा करने के लिए प्राचीन हिन्दू दुर्ग देवगिरी को मुस्लिम अड्डा बना ही चुके थे।

वहाँ पहुँचकर उलुघ-खाँ ने दुर्ग-स्थित सैनिकों को मजबूर किया कि वे लोग अपने भूतपूर्व सह-धर्मियों को लूटने-खसोटने में उसका साथ दें। वहाँ मुस्लिम सेना ने ऐसा आतंक फैलाया और अत्याचार किया कि "उलुघ खाँ के डर और भय से लद्दर देव, उसके राय और दरबारियों ने गढ़ी में जाकर शरण ली। वारंगल पहुँचकर इन लोगों ने माटी-दुर्ग को घेर लिया। उसने तब आन्ध्र की ज़मीन को बरबाद करने; लूट बटोरने और खाना-दाना लाने के लिए अपने कुछ अफ़सरों को भेज दिया। वे लोग बहुत-सा माल-मत्ता और खाना-दाना लादकर ले आए। अब सेना पूरे यक़ीन के साथ अपना घेरा कसने लगी।" (वही, पृष्ठ २३१)।

पिछले शासन में मुस्लिम कारनामों का स्वाद महाराष्ट्र ने चखा था। इस बार तेलंगाना ने।

भारतीय इतिहास के छात्र प्रायः विस्मित होते हैं कि भारत इतना कमज़ोर कैसे हो गया। किस प्रकार सिर्फ़ छः शताब्दियों में विदेशी मुस्लिम आक्रमणकारी अफ़ग़ानिस्तान से तेलंगाना तक सिर्फ़ फैले ही नहीं वरन् साँप और चूहों के भाँति हिन्दुस्तान के भीतर तक पैठकर हिन्दू-जन और धन को जल्दी ही हथियाने भी लगे। इसके चार कारण हैं—

(१) हिन्दुस्तान अहिंसा परमोधर्म: के रोग से ग्रसित होकर जर्जर हो चुका था। इसकी वीर-परम्परा नष्ट हो रही थी। देशद्रोही बढ़ रहे थे। शक्ति क्षीण हो रही थी। इस रोग का निवारण करने श्री शंकराचार्य और कुमारिल भट्ट प्रभृति विद्वान् इसका उपचार भी कर रहे थे। रोग का निवारण तो हुआ, बौद्ध धर्म यहाँ से निःशेष तो हुआ, मगर रोग के बाद की दुर्बलता अभी तक शेष थी। इसी संक्रमण काल में मुस्लिम आक्रमणकारियों का तूफ़ानी हमला हिन्दुस्तान पर हुआ, जिनके प्रहारों को रोकने में हिन्दुस्तान ने अपनी दुर्बलावस्था में भी असीम शौर्य का परिचय दिया। उस

समय तक अरब देशों में एक लोकोक्ति प्रचलित हो गई थी "हिन्दू तलवार के समान तीखी और तेज़।"

(२) यद्यपि इस्लाम ने हिन्दुस्तान में हिन्दुत्व को काफ़ी नोंचा और खखोरा, बड़ी बुरी तरह उसे घायल और लहू-लुहान किया, फिर भी अपनी अपूर्व जीवनी-शक्ति और अप्रतिम विरोध का परिचय देकर उसने एक प्रकार की विजय प्राप्त की है। अरब, सीरिया, ईरान, इराक़, तुर्की, मलाया, जावा, सुमात्रा और अन्य अफ्रीका देशों की दशा देखिए। मुस्लिम दुष्टता के सामने इन सभी देशों ने अपने घुटने टेक दिए। इधर हजार वर्षों के मुस्लिम आक्रमणों के बावजूद हिन्दुस्तान के हिन्दू बहुत बड़ी संख्या में गौरव से सिर उठाए अपने धर्म का पालन कर रहे हैं। हिन्दुओं की यह जीत कोई छोटी-मोटी मामूली जीत नहीं है।

(३) हिन्दुओं को इन्सान की नैतिकताओं में अत्यधिक विश्वास था। समर-भूमि में सेनाओं से ही लड़ने की उनकी आदत थी। वे सपने में भी नहीं सोच सकते थे कि इन्सान के वेश में जानवर आएँगे। वे खेतों को तबाह और घरों को बरबाद करेंगे। उधर मुसलमानों की रणनीति एकदम भिन्न थी। हिन्दू राजाओं तथा उनकी सेनाओं को ललकारने के बदले मुस्लिम गुण्डों ने खेत-खलियानों को जलाना, लूटना तथा स्त्रियों तथा बच्चों का हरण करना शुरू कर दिया। ऐसे नारकीय कृत्यों के कारण सेनाओं के सुसंगठित और चौकियों के सुरक्षित रहने पर भी हिन्दू शासकों को शान्ति-सन्धि स्वीकार करनी पड़ीं। वे अपने क्षेत्र और प्रजा की तबाही न देख सके। इस महँगी शान्ति (?) को खरीदकर हिन्दू शासकों को हिन्दुत्व में इस्लामी घुसपैठ सहनी पड़ी। मगर मुस्लिम आक्रमणकारी सन्धि-नियमों पर हमेशा लात मारते रहे। उनकी लूट कभी बन्द नहीं हुई।

(४) जोंक की भाँति हिन्दुत्व पर चिपके इस्लाम के फलने-फूलने का चौथा रहस्य इसके धर्मान्तरण की काली-करतूतें हैं। हजारों की संख्या में इस्लाम की तोंद भरने वाले इसके सर्वोत्तम अफसर और सन्त क़ासिम, गज़नवी और गौरी जैसे अनेक उत्पाती लुटेरे थे। मध्यकालीन भारत में हर धर्म परिवर्तन करने वाला हिन्दू रातों-रात पक्का देशद्रोही होकर इस धर्मान्तरण के जादू से अपने आपको पक्का तुर्की या अरबी समझने लगता था और इस्लाम के नाम पर हिन्दुस्तान को नष्ट-भ्रष्ट करना अपना

पवित्र धार्मिक कर्तव्य मानने लगता था। इन नीच उपायों को निष्फल करने के दो ही उपाय थे—शठे शाठ्यं समाचरेत—यानी (१) प्रतिक्रिया के साथ भीषण प्रतिकार और प्रत्याक्रमण, तथा (२) प्रतिशोध के साथ पुनर्धर्मान्तरण और प्रति-धर्मान्तरण। जो राष्ट्र अपनी पिछली भूलों से सबक नहीं सीखता, उसका भविष्य अन्धकारमय ही रहता है। छोटा-सा इसरायल खूँख़ार मुस्लिम राष्ट्रों की घुड़कियों के बीच भी सीना ताने अकेला खड़ा है क्योंकि उसका युद्धानुशासन प्रतिकार के लिए तैयार है। उसकी राष्ट्र-निष्ठा में किसी प्रकार का (अहिंसा जैसा) रोग नहीं।

बरनी के इतिहास 'तारीख़े फ़िरोज़शाही' के आधार पर गियासुद्दीन के शासन काल की समीक्षा करते हुए हम पाठकों, शिक्षकों और शोधकों को इन इतिहासों में भरी हुई कोरी बकवासों से सचेत कर देना चाहते हैं। सर इलियट पृष्ठ २३१ की पाद-टिप्पणी में लिखते हैं कि "गियासुद्दीन के चरित्र और शासन की बड़ाई में बहुत से पन्ने रंगे हुए हैं, मगर इनको ऐसे चालू ढंग से लिखा गया है मानो इनका कोई मूल्य और महत्त्व नहीं है।" वारंगल के घेरे के बारे में बरनी के बयान का एक अंश देकर हम पाठकों के सामने यह प्रमाणित करेंगे कि यह मुस्लिम इतिहास किस प्रकार भद्दी बकवासों से भरा हुआ है। ध्यान देने की बात यह है कि मुस्लिम इतिहासकार अपनी घातक प्रकृति के कारण सबसे पहले हिन्दुओं से हुई प्रत्येक मुठभेड़ और झड़प पर "इस्लाम की महान् विजय" का झूठा रंग पोतते हैं। बाद में झिझकते और शर्माते हुए ये लोग कुछ ऐसी बातें लिख देते हैं, जिनसे मुस्लिम हार का भण्डा-फोड़ हो जाता है।

पाठक मुस्लिम इतिहास की इस स्वाभाविक दुष्टता और भ्रष्ट शिक्षा का उदाहरण बरनी की इन पंक्तियों में देख सकते हैं। वे लिखते हैं कि "आरंगल (वारंगल) के माटी-दुर्ग एवं पाषाण-दुर्ग में बहुत-से हिन्दू सैनिक थे। प्रतिदिन तीव्र झड़पें होने लगीं। दुर्ग से भीषण अग्नि वर्षा होती थी और दोनों ओर के बहुत लोग मारे जाते थे। मगर मुसलमानी सेना सुविधाजनक स्थिति में थी। दुर्ग-सैनिक संकट में फँस गए। माटी-दुर्ग अब हाथ में आने ही वाला था कि उन लोगों ने आत्म-समर्पण कर देने का निश्चय कर लिया। राय लद्दरदेव ने सन्धि की बातचीत करने के लिए एक प्रतिनिधि-मण्डल भेजा। उन लोगों ने ख़ज़ाना, हाथी, जवाहरात और क़ीमती चीज़ें

उपहार में दीं और गिड़गिड़ाए कि खाँ इन्हें स्वीकार कर ले···खाँ ने कोई भी शर्त स्वीकार नहीं की। दुर्ग को ध्वस्त करने और राय को बन्दी बनाने का उसने पक्का इरादा कर लिया। इस प्रकार चारों ओर से घिरे हताश हिन्दू समझौते की बातें चला रहे थे। तबतक लगभग एक महीना हो चुका था और दिल्ली से सुलतान का कोई भी समाचार नहीं आया···खाँ और उनके दरबारियों ने अनुमान किया कि मार्ग की कुछ चौकियाँ नष्ट हो गई हैं···सैनिकों में घबराहट और आशंका फैल गई···सभी लोगों ने अपना-अपना रास्ता नापा···शायर उबैद और शेख़ज़ाद-इ-दिमाक्षी···मलिक तमार, मलिक तिगिन, मलिक मल्ल अफ़ग़ान और मलिक काफूर के पास गए और (उनसे) कहा कि उलुघ खाँ उनको ईर्ष्या और शंका की नज़रों से देखते हैं···अतएव उन लोगों ने भागने का मन्सूबा बाँधा···सेना में घबराहट फैल गई···घिरे हुए लोगों ने आक्रमण करके सामान लूट लिया। उलुघ खाँ अपने लोगों के साथ देवगिरी तक पीछे हट गया···।"

क्या यह वर्णन साफ़-साफ़ स्वीकार नहीं करता कि वारंगल के राय लद्दर देव ने गियासुद्दीन की मुस्लिम सेना को बड़ी बुरी तरह हराया? उसने लोगों के भागने का मार्ग बन्द कर दिया। उसने पत्राचार एवं आपूर्ति मार्ग बन्द कर दिया। उसने मुल्लिम सेना की हालत इतनी पतली कर दी कि उनमें परस्पर तीव्र मतभेद हो गया। शत्रुओं की हिन्दू लूट और हिन्दू सामान एक बार फिर हिन्दुओं को वापिस मिल गया। मुस्लिम आक्रमण-कारी दूर देवगिरी खदेड़ दिए गए। शत्रुओं के ही इतिहासकार द्वारा पराजय की इस स्पष्ट स्वीकृति के बावजूद शिक्षक एवं अनुसन्धाता धुँधले मुस्लिम दावों में भटक जाते हैं। अतएव आन्ध्र के हिन्दू बड़े गौरव से यह प्रमाणित कर सकते हैं कि उन लोगों ने तुग़लक़ की मुस्लिम सेना को छठी का दूध याद दिला दिया था। यह मार इतनी कमरतोड़ और करारी थी कि "सैनिक पस्त हो गए, जिधर मौका मिला भाग निकले···भागने वाले कुलीनों ने भी अपना-अपना रास्ता पकड़ा, उनके सिपाही और गुलाम नष्ट हो गए, उनके घोड़े और हथियार हिन्दुओं के हाथ लगे। मलिक तमार (गलती से) अपने कुछ सवारों के साथ हिन्दू-क्षेत्र में घुस गए और वहीं ख़त्म हो गए। हिन्दुओं ने अवध के मलिक तमार को मारकर उसकी चमड़ी उलघ खाँ के पास देवगिरी भेज दी। (उन लोगों ने) मलिक मल्ल अफ़ग़ान,

शायर उबैद आदि बहुत लोगों को बन्दी बनाकर देवगिरी भेज दिया।" (वही, पृष्ठ २३१-३३)।

अन्धे आधुनिक इतिहासकार जियाउद्दीन बरनी को एक अच्छा इतिहासकार मानते हैं। जब एक सम्मानित इतिहासकार इतनी झूठी उड़ान भर सकता है कि मुस्लिम जीत रहे थे तो कोई भी आसानी से यह अनुमान लगा सकता है कि इन इतिहासकारों ने हज़ार वर्ष के मुस्लिम दुष्कर्मों को कितना तोड़ा-मरोड़ा होगा।

आधुनिक इतिहासकारों को चाहिए कि वे मुस्लिम इतिहासों का अच्छी तरह मन्थन करें। एक-एक बात की तह तक पहुँचें। बरनी ने मलिक तमार की चमड़ी और मलिक मल्ल अफ़ग़ान तथा उबैद आदि अनेक लोगों को बन्दी बनाकर उलुघ खाँ के पास जीवित देवगिरी भेजने का वर्णन किया है। हिन्दू लोग स्वभाव से इतने क्रूर नहीं होते कि वे खिसियाकर एक लाश की चमड़ी उधेड़ेंगे। अगर हज़ार बार में एक बार हिन्दुओं ने आदर्शवाद को ताक़ पर रखकर ऐसे क्रोध और यथार्थवाद का परिचय दिया है तो यह एकदम न्यायसंगत है। इन लड़ाइयों में हिन्दुओं ने इस यथार्थवाद का परिचय हर जगह दिया होता तो आज हिन्दुत्व की यह दुर्दशा न होती क्योंकि शठ-शठ की ही भाषा समझता है। दूसरे अफ़ग़ान और उबैद को बन्दी बनाकर हिन्दू राजा उलुघ खाँ के पास क्यों भेजेंगे? फिर उन्हें ही जिन्दा क्यों भेजा? उनकी भी चमड़ी छीलकर ही भेजते। इससे प्रकट होता है कि मुस्लिम बयानों में शैतानी कल्पना का कितना रंग चढ़ा हुआ है। इन्हें सावधानी से छाँटना-फटकना होगा। इस झूठी ढेरी में से इतिहास के वास्तविक दानों को बड़े परिश्रम से चुनना होगा।

जब तेलंगाना के वीर हिन्दुओं के हाथों मुस्लिम संकट एवं पराजय का समाचार गियासुद्दीन के पास पहुँचा, तब उसने "बाग़ियों की पत्नियों और पुत्रों को कैद कर लिया।" विचारणीय है कि हिन्दुओं ने मुस्लिम बन्दियों को जीवित उनके ठौर ठिकाने पहुँचा दिया था। मगर उनके अपने जाति-भाई मुस्लिम-सुलतान गियासुद्दीन ने क्रोध में आकर उनकी पत्नियों पर बलात्कार किया। उनके बच्चों को बाज़ारों में बेच दिया। बरनी ने आगे लिखा है कि "सीरी के मैदान में सुलतान ने एक आम दरबार बुलाया। वहाँ शायर उबैद और मलिक काफर को उन्होंने अन्य बन्दियों के साथ

ज़िन्दा शूली पर चढ़ा दिया। उन्होंने उन लोगों को ऐसी कठोर सज़ाएँ दीं कि देखने वाले काफ़ी दिनों तक भय से काँपते और सिहरते रहे। सुलतान के भीषण प्रतिशोध से सारी नगरी थर्रा उठी। (वही, पृष्ठ २३३)। यह सुलतान इंसान था या हैवान ? मगर मुस्लिम इतिहासकार सदा की भाँति उसे "न्यायी, बुद्धिमान्, उदार और दयालु" कहते शर्म से गड़ते नहीं और इसी बात को तोते की तरह रटने वाले हमारे इतिहासकार शर्म से मरते नहीं।

पराजय की पीड़ा से छटपटाते हुए सुलतान ने "एक शक्तिशाली वाहिनी" देवगिरी में धूल चाटने के लिए उलुघ खाँ के पास भेज दी और एक बार फिर वारंगल पर आक्रमण करने का आदेश दिया। "तदनुसार वह तैलंग क्षेत्र में प्रविष्ट हो गया और उसने बिदार दुर्ग को जीतकर उसके मुखिया को कैद कर लिया।" (वही, पृष्ठ २३३)।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान "बिदार" शब्द की ओर आकर्षित करना चाहते हैं। बड़े भ्रम से आधुनिक इतिहास पाठ्य-पुस्तकें बिदार की भव्य और आलीशान अट्टालिकाओं के निर्माण का श्रेय कभी इस मुस्लिम सुलतान को देती हैं तो कभी उस मुस्लिम शैतान को, जबकि ज़ियाउद्दीन बरनी ने जो उन्हीं लोगों का एक चापलूस इतिहासकार था, साफ़-साफ़ स्वीकार किया है कि मुसलमानों ने बिदार में तोड़-फोड़ मचाई थी। अतएव मान्य इतिहासकार और इतिहास के छात्र इस बात को नोट कर लें कि बिदार को मुसलमानों ने बनाया नहीं, बरबाद किया है। बिदार के सुनसान और उजाड़ खण्डहर अभी भी देखने वालों का दिल दहला देते हैं। मुस्लिम गुण्डों ने जिस प्रकार मध्यकालीन भारत के अन्य नगरों को लूट और आगज़नी से बरबाद किया था, उसी प्रकार उन लोगों ने बिदार का भी नाश किया। इसलिए बिदार से सम्बन्धित पाठ्य-पुस्तकों और पर्यटक-साहित्य में उचित सुधार होना चाहिए। पर्यटकों को बतलाया जाना चाहिए कि उन भव्य-भवनों का जो कुछ भी शेष है वह हिन्दू-निर्माण है, तथा जो तबाही और बरबादी वे लोग देख रहे हैं वह मुस्लिम दुष्टता का कारनामा है। क्या आज से हमारे इतिहासकार और इतिहास यह हास्यास्पद झंडा लहराना बन्द करेंगे कि बिदार मुस्लिम वास्तु-कला का अद्भुत नमूना है ? क्या इसके हिन्दू-नगर होने का दावा करने में वे अभी भी शर्माएँगे या

डरेंगे ? क्या हमारे वास्तु-कला शिक्षक पाठ्य-पुस्तकों में अभी भी सुधार करने से जी चुराएँगे ?

फलते-फूलते हिन्दू-नगर बिदार को खाकर इस्लामी महामारी वारंगल की ओर बढ़ी। कुछ मास पूर्व वे लोग यहाँ से मार खाकर, हताश-निराश होकर, जान लेकर भागे थे। इस बार धर्मान्तरित हिन्दुओं को आगे रखा गया। उन्हें बलि का बकरा बनाकर आतंक और यातनाओं के जोर से मुसलमानों ने इसपर अपना अधिकार कर लिया। बरनी का बयान है कि "अपने सारे कुलीनों, अधिकारियों, नारियों, बच्चों, हाथियों और घोड़ों के रथ के साथ लद्दर देव (मुस्लिम शैतानों के) अधिकार में आ गये। विजय की सूचना दिल्ली भेज दी गई। तुग़लक़ाबाद और सीरी में (मुसलमानों ने) बड़ा जश्न मनाया गया।" हाथियों, ख़ज़ानों, रिश्तेदारों और आश्रितों के साथ लद्दरदेव को बन्दी बनाकर शैतान तुग़लक सुलतान के पास दिल्ली भेज दिया गया। "वारंगल का नाम बदलकर सुलतानपुर रख दिया गया", और सारे तेलंगाना को मुस्लिम अत्याचार का तीखा स्वाद चखना पड़ा।

यहाँ हम पाठकों का ध्यान तुग़लक़ाबाद और सुलतानपुर की ओर खींचना चाहते हैं। बरनी ने स्पष्ट रूप से स्वीकार किया है कि वारंगल का नाम बदलकर सुलतानपुर रख दिया गया था। फिर भी भूतपूर्व हिन्दू नगरों के मात्र नाम परिवर्तन के काले जादू से मोहित परवर्ती मुस्लिम, ब्रिटिश और उनके पिछलग्गू हिन्दू इतिहासकार बरनी के इस बयान को बिना समझे यह स्वीकार कर लेते हैं कि प्रथम तुग़लक़ लुटेरे गियासुद्दीन ने सुलतानपुर यानी वारंगल शहर को बनवाया और बसाया था। इन गप्पों से आजकल की पाठ्य-पुस्तकें भरी हुई हैं। ये भारतीय नगरों के विध्वंसकों को उनके निर्माता होने का श्रेय प्रदान करती हैं।

तुग़लक़ाबाद शब्द भी काफ़ी महत्त्वपूर्ण है। अपहर्ता गियासुद्दीन ने दिल्ली की सुलतानी छीनी थी। इसके बाद ही तेलंगाना के राजा लद्दरदेव को बन्दी बनाकर तुग़लक़ाबाद भेजा गया। क्या इतने कम समय में और ऐसे कमर-तोड़ संग्रामकाल में एक शहर बनकर तैयार हो सकता है ? उस-पर ९९ प्रतिशत जनता विरोधी और विद्रोही थी। स्पष्ट है कि प्राचीन हिन्दू शहर दिल्ली के जिस भाग को अपना हैड-आफ़िस बनाकर गियासुद्दीन ने अपना आसन जमाया था, उसी स्थान का नाम बदलकर उसने तुग़लक़ा-

बाद रख दिया। उसने इसका 'निर्माण' नहीं किया था। अपने पाँच से भी कम वर्ष के शासनकाल में उसके पास न समय था न धन। एक सम्पूर्ण नगर का नक्शा और निर्माण कोई मज़ाक नहीं है। योजना और पृष्ठभूमि तैयार करने में ही कई वर्ष लग जाते हैं। उसपर उस युग के जंगली, बर्बर, कामुक, पापी, निरक्षर, अज्ञानी, शराबी और अफीमची मुस्लिम हैवान ऐसे भव्य नगरों के निर्माण करने के विचार का सपना भी नहीं देख सकते थे। उधर बरनी ने तुग़लक़-शासन के प्रारम्भ से इस जादुई तुग़लक़ाबाद का वर्णन करना प्रारम्भ कर दिया है। इधर भारत-सरकार का पर्यटक-साहित्य अपने विवेक का गला घोंटकर लोगों को समझाता है कि गियासुद्दीन ने तुग़लक़ाबाद का निर्माण किया है।

अतएव दिल्ली के इस तुग़लक़ाबाद की ऊँची-मोटी प्राचीर और इसके बरबाद महलों का निर्माण गियासुद्दीन ने नहीं किया था। ये प्राचीन हिन्दू नगर विशाल दिल्ली के ही अंग हैं। इस प्राचीन दिल्ली के १५ अंग थे। ये उसके १५ उपनगर कहलाते थे। मुस्लिम आक्रमणकारियों ने इसके एक-एक अंग को चबाना प्रारम्भ कर दिया था। अतएव पर्यटक यह स्मरण रखें कि गियासुद्दीन ने इसका निर्माण नहीं किया था वरन् इसी ने सर्वप्रथम इस हिन्दू नगर की जड़ में मुस्लिम-मशाल लगाई थी। इस तथाकथित तुग़लक़ाबाद की पाषाण-प्राचीर के भीतर खण्डहरों की दीवारों पर उस भयंकर मुस्लिम गुण्डागर्दी के धूम्र-दाग़ अभी तक मौजूद हैं।

तेलंगाना की विजय या बरबादी के बाद लुटेरे तुग़लक़-शैतान की समझ में आ गया कि उस क्षेत्र पर उसका रक्त-चूसक पंजा गड़ा नहीं रह सकेगा। अतएव उसने चाबुक से चमड़ी उधेड़कर और यातनाओं के हाहाकार से आसमान को थर्राकर "एक वर्ष का कर" एक साथ वसूल कर लिया। (पृष्ठ २३४, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

उसके बाद तुग़लक़ शाहज़ादा कटक में महानदी के किनारे-किनारे 'जाज नगर' की ओर बढ़ा। प्रतीत होता है कि उसे यहाँ से दुम दबाकर भागना पड़ा था क्योंकि बरनी के अनुसार वहाँ से शाहज़ादा सिर्फ़ ४० हाथियों को लेकर ही वापिस लौटा। मुस्लिम-नाक बचाने के लिए, हो सकता है कि ४० हाथियों वाली कहानी भी गढ़ ली गई हो। हमें सिर्फ़ यही ज्ञात होता है कि ज़ाज नगर (यज्ञ नगर) के वीर हिन्दुओं के हाथों अपना

साज़ो सामान गवाँकर, ख़ाली हाथ हिलाता शाहज़ादा वापिस लौट आया। पर पतित मुस्लिम इतिहासकार प्रत्येक मुस्लिम आक्रमण में किसी-न-किसी बहाने मुस्लिम-विजय की बाँसुरी, चाहे वह बेसुरी ही क्यों न हो, ज़रूर बजाएँगे। तदनुसार बरनी का बयान है कि तुग़लक़ शाहज़ादे ४० हाथी लेकर आए और उन्हें अपने पिता गियासुद्दीन के पास दिल्ली भेज दिया। हमारे इतिहासकारों को ऐसी ही पंक्तियाँ सावधानी से पढ़नी हैं। इन्हीं पंक्तियों को पढ़कर सर एच० एम० इलियट ने सटीक टिप्पणी जड़ी कि मुस्लिम इतिहास "एक धृष्ट और मज़ेदार धोखा" है।

इधर गियासुद्दीन की सेना तेलंगाना को लूटने में तल्लीन थी उधर मुग़लों ने तुग़लक़-राज्य की उत्तरी सीमा पर प्रहार कर दिया। हमेशा की भाँति बरनी ने हमें विश्वास दिलाया है कि "इस्लाम की सेना ने उन लोगों को हरा दिया और उनके दो सेना-नायकों को बन्दी बनाकर दरबार में भेज दिया।" यहाँ पर बरनी ने हमें बतलाया है कि "सुलतान तुग़लक़ाबाद को अपनी राजधानी बना चुके थे। यहाँ उनके कुलीन और दरबारी अपनी-अपनी पत्नियों और बच्चों के साथ रहने लगे थे।" (वही, पृष्ठ २३४)।

कम-से-कम इसे पढ़कर और समझकर इतिहासकारों और पर्यटकों को यह विश्वास हो जाना चाहिए कि गियासुद्दीन और उसके गुर्गे भूतपूर्व हिन्दू नगर में ही रहते थे। धूर्तता और मक्कारी से बरनी ने यह जोड़ा है कि उन लोगों ने "घर बनाया" था। मगर हम अब जान चुके हैं कि मध्य-कालीन चापलूस मुस्लिम इतिहासकारों के शब्द-कोश में "निर्माण" का अर्थ है—अपना कब्ज़ा, निवास योग्य मरम्मत और झाड़-बुहार। अतएव जहाँ कहीं भी मुस्लिम इतिहासकारों ने यह लिखा है कि मुस्लिम गुण्डों ने मस्जिद, महल या नगर बनाया है तो इसका सिर्फ़ यही मतलब होता है कि उन लोगों ने नष्ट और त्यक्त हिन्दू महलों, मन्दिरों और नगरों पर अपना अधिकार कर लिया, जहाँ-तहाँ उसकी मरम्मत कर दी और मुस्लिम-निवास के लिए मुस्लिम-निर्माण हो गया।

शाहज़ादे उलुघ खाँ यानी मुहम्मद तुग़लक़ को तेलंगाना से दिल्ली वापिस बुला लिया गया। उसे प्रमुख-प्रतिनिधि बनाकर स्वयं गियासुद्दीन दूर बंगाल की झाड़-फूंक करने चला। जब कभी और जहाँ-जहाँ भी मुस्लिम सेना ने कूच किया, आतंक और अत्याचार उनके दाएँ-बाएँ ही रहे। नारियों

को मसला-कुचला, गायों को काटा-खाया, घरों को लूटा-जलाया, लोगों को सताया-मारा, बच्चों का हरण-वरण हुआ, लुटे मन्दिर मस्जिद बने तथा सारे क्षेत्र को तलवार और मशाल से काट-जलाकर मसान-सा सुनसान कर दिया। फिर वे शान से आगे बढ़ गये। बरनी ने इस बात को स्वीकार किया है। उसका बयान है कि "सारे खुरासान और हिन्दुस्तान में सुलतान का आतंक और आदर फैल चुका था। सिन्ध और हिन्द के सारे देश तथा पूर्व से पश्चिम तक के सारे राणा और राजा बहुत वर्षों तक उनके डर से थर-थर काँपते रहे।" (वही, पृष्ठ २३४)।

एक मुस्लिम अत्याचारी नासिरुद्दीन लखनौटी से हिन्दू बंगाल पर शासन कर रहा था। गियासुद्दीन के आगमन से भयभीत होकर उसने आत्म-समर्पण कर दिया। अब गियासुद्दीन की प्रत्येक तृष्णा को तृप्त करने और हर प्रकार का टैक्स वसूल करने के लिए दोनों की मिली-जुली मुस्लिम सेना हिन्दू बंगाल को चूसने लगी। गियासुद्दीन के हज़ार पुत्रों में से एक पुत्र तातार खाँ भी साथ ही था। वह अपनी बर्बरता और क्रूरता के लिए विख्यात था। वह मुस्लिम गुण्डों की एक सेना लेकर बंगाल के एक भाग को निचोड़ने निकला जो व्यभिचारी मुस्लिम शासन की प्रारम्भिक अवस्था में ही खोखला हो चुका था।

एक दूसरा मुस्लिम अपहर्ता बहादुरशाह बंगाल के दूसरे भाग पर शासन करता था। उसकी राजधानी "सोनार गाँव" यानी सोने की नगरी थी। इसका सारा सोना मक्का जाने वाली विदेशी मुस्लिम सड़कों पर बिखर चुका था ताकि हिन्दुस्तान के दुश्मन उसे खा-पीकर मोटे हों और दुगने उत्साह से हिन्दू-खून चूसने को तैयार हो सकें।

बहादुरशाह लूट के सजीव और निर्जीव माल का बँटवारा गियासुद्दीन से करना नहीं चाहता था। उसने विरोध किया मगर हार गया। उसे जानवर की भाँति गले में फन्दा डालकर गियासुद्दीन के पास घसीटकर लाया गया।

उस क्षेत्र से जितने भी हाथी बटोरे जा सकते थे, सभी को बटोर-समेट कर दिल्ली हाँक लाया गया। बंगाल के हिन्दुओं को दर-दर का भिखारी बनाकर मुसलमानों ने "इस अभियान में बहुत लूट" बटोरी। नासिरुद्दीन ने पूर्ण समर्पण कर दिया था। इधर गियासुद्दीन को भी हिन्दू बंगाल पर

मुस्लिम अत्याचारों का सिलसिला जारी रखने के लिए कोई-न-कोई गुर्गा चाहिए था। अत: उसने नासिरुद्दीन को "एक राज-छत्र और एक राज-दण्ड देकर" वापिस बंगाल भेज दिया। एक मुस्लिम जोंक को बंगाल की प्राचीन राजधानी लखनौटी पर चिपकाकर उसे शासक के रूप में मान्यता दे दी गई। उधर बहादुरशाह के गले में रस्सी बाँधकर, जानवरों की भाँति चारों हाथ-पैरों से चलाकर दिल्ली लाया गया।

अब षड्यन्त्र प्रारम्भ हुए। घिसी-पिटी मुस्लिम परम्परा के अनुसार उलुघ खाँ अपने पिता की हत्या करने के लिए खुजला रहा था। हरम का एक वर्ण-संकर पुत्र और कर भी क्या सकता है? उसका पिता विजय की खुशी में मस्त हुआ दिल्ली आ रहा था। पितृ-भक्ति का दिखावाकर मुहम्मद तुग़लक़ प्रमुख सेना से कई पड़ाव आगे आ गया। दिल्ली पहुँचने से पूर्व ही वह अपने पिता की हत्या कर देना चाहता था ताकि स्थानीय दरबारी और अफसरों के विरोध का भय न रहे।

गियासुद्दीन एवं उसकी सेना के पहुँचने का अनुमान लगाकर मुहम्मद ने दिल्ली से आठ मील दूर एक स्थान पर लकड़ी का एक चमत्कारी मकान बनवाया। यह ज़रा-से इशारे से ही एक साथ चरमराकर गियासुद्दीन की गर्म और फूली खोपड़ी पर बरस सकता था। इस मकान के जन्तर-मन्तर को हरी पत्तियों और फूलों से भली-भाँति ढँककर सजा दिया गया। बरनी के अनुसार यह स्थान अफ़ग़ान पुर है। यानी बरनी ने इस प्राचीन हिन्दू नगर का मुसलमानीकरण कर दिया। वे लोग हिन्दू जनता के साथ-साथ हिन्दू नगरों-महलों का भी खतना कर देते थे, उनका नाम बदल देते थे।

गियासुद्दीन अपने हरम-वंशज मुहम्मद तुग़लक़ के गन्दे और खूनी खेल से परिचित नहीं था। इस बहानेबाज़ पितृ-भक्त पुत्र ने इस सजे-धजे ढाँचे में डेरा डालने के लिए गियासुद्दीन को फुसला लिया। बहाना भी ज़ोरदार था—विजय प्राप्त करके लौटने वाले सुलतान का स्वागत करने के लिए दिल्ली निवासियों को तैयारी के लिए कुछ समय तो मिलना चाहिए।

गियासुद्दीन इस स्थान पर दोपहर बाद पहुँचा। हत्या करने की सारी की सारी तैयारी पूरी करके गद्दी का वारिस उलुघ खाँ अपने विजयी पिता का स्वागत करने के लिए आगे आया और रात को आराम करने के लिए उसे उस मायावी काष्ठ-गृह में ले गया।

अँधेरा होने लगा। लूटकर लाए गए हिन्दू माल से तैयार किया गया लज़ीज़ खाना तैयार था। इसे मुस्लिम लुटेरों की विशाल पंगत को परोस दिया गया। अपहृत हिन्दू-नारियाँ सुलतान की शय्या के चारों ओर सजा दी गईं।

दावत ख़त्म हुई। मुस्लिम लुटेरों की सुलतानी सेना के मनोरंजन के लिए शराब का दौर चला। सुलतान शराब से बेहोश हो गए। मुहम्मद तुग़लक़ ने सुलतान को अपहृत और बन्दी हिन्दू-नारियों के झुण्ड में अपने रक्त-स्नात जीवन की अन्तिम सुखद साँस लेने के लिए सुला दिया।

आधी रात हो गई। मुहम्मद और उसके सहयोगी पड़ाव के महत्त्वपूर्ण स्थान पर जा डटे। नशे में बेहोश गियासुद्दीन के सहयोगियों को बेड़ियों से जकड़कर मारक संकेत दे दिया गया। एक पहरेदार इन षड्यन्त्रकारियों से मिला हुआ था। एक सीढ़ी से ऊपर चढ़कर उसने बीम का आधार हटा दिया। एक हाथी का धक्का लगा और एक वर्ण-संकर पुत्र द्वारा एक वर्ण-संकर पिता की हत्या करने का घिसा-पिटा मुस्लिम ड्रामा एक बार फिर खेला गया। सारा ढाँचा चरमराकर सुलतान और उसकी अंक-शायिनी नारियों पर बरस पड़ा। पड़ाव में हलचल मच गई। साज़िश से अनजान लोग इस भयंकर आवाज़ से घबराकर सिर छिपाने और जान बचाने के लिए भयभीत होकर इधर-उधर भागने लगे। बहुत लोग समझ नहीं पाए कि क्या हो गया है। कुछ लोगों ने यह समझा कि मुस्लिम कुकर्मों का प्रतिशोध लेने के लिए हिन्दुओं ने धावा कर क़त्लेआम मचा दिया है। वे लोग "या अल्लाह ! या अल्लाह !" की चीख़-पुकार मचाते जान बचाकर भाग खड़े हुए। इस हड़कम्प में मुहम्मद के एक सहयोगी ने लकड़ी के उस ढाँचे में आग लगा दी ताकि शैतान जल भी जाए।

इस खूनी दृश्य को चमकाते हुए सूर्य उदित हुआ। मुहम्मद ने दूतों द्वारा दिल्ली समाचार भेज दिया। साथ ही अपने प्यारे पिता की इस 'दर्दनाक' मौत पर दिखावटी आँसू बहाते हुए उसने अपने सुलातान होने का ढोल भी पिटवा दिया। यह ड्रामा १५२५ ई० में खेला गया था। गियासुद्दीन के शासन को पाँच वर्ष भी नहीं बीते थे कि उसका अन्त हो गया। भारी शोर-गुल करते हुए षड्यन्त्रकारियों ने आग बुझाने के लिए मलबे पर जल की इतनी वर्षा की कि वहाँ एक गहरा तालाब-सा हो गया। बीम गिरने और

आग लगने से गियासुद्दीन किसी प्रकार बच भी गया हो तो वह डूबने से न बच सका।

गियासुद्दीन की आधी जली लाश को दिल्ली लाकर मुहम्मद ने तथा-कथित तुग़लक़ाबाद की विशाल प्राचीर के बाहर एक अपहृत हिन्दू मन्दिर में दफ़ना दिया।

अच्छा हो कि इतिहासकार, भारत-सरकार और पुरातत्त्व विभाग इस सच्चाई को समझ लें कि गद्दी अपहर्त्ता गियासुद्दीन पाँच वर्ष भी शान्ति से शासन नहीं कर सका। इस बीच वह लगातार आन्ध्र, मुग़लों और बंगाल से लड़ता ही रहा। वह तुग़लक़ाबाद का निर्माण नहीं कर सकता था। उसने प्राचीर-युक्त प्राचीन हिन्दू नगर का नाम बदल दिया था। मुस्लिम नाम होने से ही उसे गियासुद्दीन का निर्माण मान लेना भोलेपन की पराकाष्ठा है। इसी प्रकार यह मान लेने से कि पितृ-हन्ता मुहम्मद तुग़लक ने उस पिता की क़ब्र पर, जिसकी उसने हत्या की थी, एक भव्य मकबरा बनवाया है, यही प्रमाणित होगा कि भारतीय इतिहास सुनी-सुनाई बातों पर, आँख मूँदकर लिखा गया है। सिर्फ़ इसीलिए कि कहीं मुस्लिम अहं को ठेस न पहुँचे। एक सरसरी छानबीन ही हिन्दू-भवनों पर उनके दावों का पर्दा-फ़ाश कर देगी। वह भवन, जिसे हम गियासुद्दीन का मकबरा मानते हैं, प्राचीन हिन्दू दुर्ग का ही एक भाग है। इस दुर्ग को चौथी शताब्दी में राजा अनंगपाल ने बनवाया था। हम इसे भ्रम से तुग़लक़ाबाद कहते हैं। यह हिन्दू शैली के अनुसार सुरक्षा के लिए एक झील से घिरा हुआ है तथा इसकी बालकॉनी भी पंचमुखी है।

गियासुद्दीन के पंचवर्षीय अल्प शासन-काल के प्रारम्भ से ही जियाउद्दीन बरनी ने तुग़लक़ाबाद को उसकी राजधानी बतलाया है। इस बात से भी यह प्रमाणित होता है कि संयोग से प्राचीन हिन्दू राजधानी के अनेक नगरों में से एक नगर को अपने निवास के लिए चुनकर गियासुद्दीन ने उसका नाम तुग़लक़ाबाद रख दिया था। उसने इसका निर्माण नहीं किया था।

आशा है इतिहास-लेखक, शिक्षक, पुरातत्त्व-विभाग और पर्यटक इस विचार को अपने दिमाग़ से निकाल देंगे कि गियासुद्दीन ने तुग़लक़ाबाद बसाया था या पितृ-हन्ता मुहम्मद ने अपने पिता की क़ब्र पर कोई मकबरा

बनवाया था। मक्कार मुस्लिम इतिहासकारों के 'बनाना' का मतलब "मुस्लिम उपयोग के लिए छीनना और मुस्लिम निवास के लिए उसकी मरम्मत करना" है। मुस्लिम आक्रमणकारियों और उनके अधीनस्थ लेखकों ने "निर्माण" का मायावी प्रयोग किया है। मस्जिदों तथा मकबरों के छद्म-वेश में छिपे प्रत्येक भवन के स्रोतों की एक बार फिर सावधानी से छान-बीन होनी चाहिए।

इतिहासकारों, सरकारी अधिकारियों और पर्यटकों को अपनी साधारण समझ त्यागकर इन तथाकथित मुस्लिम-भवनों के स्रोत की परीक्षा नहीं करनी है। उन्हें इन निर्णायक प्रश्नों को अपने आप से जरूर पूछना चाहिए कि क्या एक व्यभिचारी, शराबी, अफ़ीमची और अशिक्षित सुलतान लगातार लूटमार में व्यस्त रहकर सिर्फ़ पाँच वर्ष में एक सम्पूर्ण नगर का निर्माण कर सकता है? उसपर भी वह उस शहर को क्या हिन्दू शैली (यानी काफ़िर-शैली) के अनुसार बनवाएगा? क्या वह शहर बन जाने के बाद उसे तुरन्त ही खाली भी कर देगा?

अनोखी और हास्यास्पद मुस्लिम व्याख्याएँ सीधी-सादी जनता को समझाती हैं कि तुग़लक़ाबाद को 'बनाया' गया और फिर उसे तुरन्त खाली भी कर दिया गया। क्या वे हमें यह समझाना चाहते हैं कि मुस्लिम सुलतान, जिन्हें इन नगरों के निर्माण का श्रेय दिया जाता है, कारीगर और मज़दूर, जिन्होंने इन नगरों के निर्माण में सहायता दी थी; तथा मुस्लिम जनता, जिन्होंने इन नगरों को आबाद किया था; जन्मजात मूर्ख थे? उन्होंने निर्माण किया और निवास किया क्या सिर्फ़ इसलिए कि दो-चार दिन के बाद पल्ला झाड़कर उससे अलग हो जाएँ? लोग पूर्वजों के बनाए मकान को तो छोड़ते नहीं, फिर यहाँ तो एक पूरे नगर का प्रश्न है? इसपर लोग "पानी की कमी" का घिसा-पिटा रोना रोने लगते हैं। सीधे-सादे लोग इसे उसी प्रकार मान भी लेते हैं। कोई भी यह नहीं पूछता कि नगर बनने से पहले पानी का जो स्रोत मौजूद था, वह कहाँ गया? क्या इधर नगर बना और वह सूख गया? क्या नए कुएँ और नए तालाब खोदे नहीं जा सकते थे? क्या यह अरबी ज़मीन है जहाँ पानी का अकाल है?

वास्तविक व्याख्या यही है कि मुस्लिम अपहर्त्ता ने हिन्दू नगरों पर कब्जा किया, अपनी गुण्डागर्दी से हुई टूट-फूट की मरम्मत की और उनमें

रहने लगे। साथ ही अपने इस्लामान्ध विवेक को सन्तुष्ट करने के लिए उन लोगों ने इन अपहृत हिन्दू नगरों और महलों का उसी प्रकार इस्लामीकरण कर दिया, जिस प्रकार वे लोग हिन्दुओं का मुसलमानीकरण कर देते थे। फिर हिन्दू आक्रमणों के कारण ये हिन्दू नगर और महल निवास करने योग्य नहीं रहे तो उन्हें खाली कर दिया या फिर ख़तरा जानकर उसे त्याग दिया। बहुत दिनों तक मुस्लिम चंगुल में रहने के कारण लोग इनके निर्माण का श्रेय भ्रम से कभी इस सुलतान को देते हैं तो कभी उस सुलतान को। ठीक इसी प्रकार मुस्लिम क़ब्रों पर बने भव्य-भवनों के बनाने का पट्टा वे उनके उसी वारिस को दे देते हैं, जिसने अपने पूर्वज को मारकर उस महल में गाड़ा था।

ऐसे धुँधले, सन्देहास्पद, मायावी और कपटी इतिहास-लेखन ने हिन्दुस्तान के इतिहास को ज़हरीला और विषाक्त बना दिया है। अगर हिन्दुस्तान को जिन्दा रहना है तो इस ज़हर और विष से हिन्दुस्तान के इतिहास को स्वच्छ और निर्मल करना ही होगा।

(मदर इण्डिया, नवम्बर, १९६७)

: १४ :

मुहम्मद तुग़लक़

कुछ निष्ठाहीन भारतीय इतिहासकार उमंग और उत्साह से मुहम्मद तुग़लक़ की एक विचारवान सुलतान के रूप में प्रशंसा करते हैं, जिसकी सारी सुधारवादी योजनाएँ गड़बड़ा गई थीं। मगर कुछ निष्ठावान इतिहासकार उसे पागल और सनक़ी क़रार देते हैं।

मुहम्मद तुग़लक़ का २५ वर्षीय शासनकाल छुरेबाजी, अकाल और दमन की लम्बी कहानी है। प्रमुख रूप में हिन्दू उसके शिकार थे और आंशिक रूप में वे मुसलमान, जिन्होंने उसके अत्याचारों का विरोध किया था। उसके पागलपन की भी एक पद्धति थी, एक तरीक़ा था, एक सलीक़ा था। उसका मुस्लिम दिमाग़ इस्लामी यातना के नये-नये ढंग खोज निकालने में बेजोड़ था। इन खोजों का उपयोग वह आँख मूंदकर बड़े धड़ल्ले से सभी पर करता था।

इस्लामी रिवाज के अनुसार तख़्त का लोभी मुहम्मद तुग़लक़ १३२५ ई० में अपने अपहर्ता पिता गियासुद्दीन की हत्या कर गद्दी पर बैठा था। उसकी हत्या-प्रणाली भी अनोखी थी। दिल्ली से एक पड़ाव दूर उसने एक विचित्र काष्ठ-गृह बनवाया। उस दिखावटी-श्रद्धालु और विनम्र पुत्र ने अपने पिता से एक रात इस गृह में आराम फरमाने की प्रार्थना की। सुलतान गियासुद्दीन सन्ध्या की शराबी-दावत में बेहोश होकर बड़े आनन्द से अपने शैतान-पुत्र द्वारा तैयार इस मृत्यु-जाल में फँसे बेख़बर झपकी ले रहे थे कि हाथी की एक टक्कर से सारा ढाँचा उनके सिर पर बरस पड़ा। कहीं सिर चूर-चूर होने से बच गया तो? उस मलबे में आग लगा दी गई। कहीं बेशर्म जान नहीं जली तो? आग बुझाने के बहाने इतना पानी बरसाया गया कि कम-से-कम वह डूब तो मरे।

इन सभी शैतान सुलतानों के चारों ओर नीच मुस्लिम चापलूस लेखकों का एक दल मँडराता रहता था। चाँदी के चन्द सिक्कों की चमक पर ये दिन को रात लिखने में भी संकोच नहीं करते थे। इस कुख्यात जाति के दो खुशामदी टट्टू मुहम्मद तुग़लक़ के पास भी थे। एक था जियाउद्दीन बरनी और दूसरा इब्न बतूता। बड़े शोक के साथ लिखना पड़ता है कि आँख मूँद-कर इन बेशर्म दलालों के झूठे रेकार्डों को भारतीय इतिहास का मूल आधार माना गया है। इन दलालों और चापलूसों ने नारकीय यातनाओं के हाहा-कार के बीच रहकर भी अपने क्रूर भोगी संरक्षकों के क्रूर-कारनामों का सिलसिलेवार वर्णन नहीं किया है। फिर भी उन लोगों ने इन खूनी सुलतानों के खूनी कारनामों की कई झलकियाँ और झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। जहाँ-तहाँ लिखे इन खूनी कारनामों के वर्णन का ढंग भी प्रशंसात्मक है, निन्दात्मक नहीं। साथ ही सभी सुलतानों को इन लोगों ने "न्यायी, बुद्धिमान और रहमदिल" माना है।

इन लोगों के हिंसक और पाशविक अत्याचारों की ओर से आँख मूँद-कर भारतीय इतिहास को चापलूसी की ऐसी ही चाश्नी में डाला गया है। क़ल्पना के ऐसे ही रंगों में रँगा गया है। इस रंगीन इतिहास को केवल भारतीय स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया ही नहीं जाता वरन् बड़े गौरव से संसार के सामने पेश भी किया जाता है। यह हमारे राष्ट्र का अपमान है कि इस खूनी मुस्लिम कुशासन के झूठे और रंगीन वर्णन किशोर छात्रों को रोज रटाए जाएँ, जो नर-संहार, बलात्कार और शराब में गर्क रहते थे; जो समरकन्द, गज़नी और बुख़ारा के बाज़ारों में 'गुलामों' को औने-पौने दामों पर बेच देने के लिए हिन्दू स्त्रियों, बच्चों और मनुष्यों का थोक निर्यात करते थे। (इन सभी काले कारनामों को ताज पहनाने और सम्मान देने के लिए भारत की राजधानी दिल्ली की सड़कों के नाम इन्हीं दुष्ट लोगों के नाम पर रखे गए हैं)।

किस प्रकार सरासर झूठ लिखने के लिए, अपने आपको इतिहासकार मानने वाले इन चापलूसों का पेट और उनकी जेब भरी जाती थी, इसका रूप इब्न बतूता के शब्दों में ही देखिए। यह मुहम्मद तुग़लक़ के काले कार-नामों पर महानता का झूठा रंग पोतने के लिए काले महादेश अफ्रीका के तानजियर स्थान से आया था।

वह लिखता है कि "दिल्ली पहुँचने पर राजा अनुपस्थित थे मगर राजमाता ने मेरा स्वागत किया। मुझे उपहार में बेहतरीन कपड़े, २००० दीनार और रहने के लिए एक महल मिला। सुलतान के लौटने पर मेरी और ज़ोरदार खातिर हुई। मुझे ५००० दीनार वार्षिक की आय वाले गाँव, १० सुन्दर नारियाँ (स्पष्ट है कि ये हिन्दू नारियाँ थीं जिन्हें वेश्यावृत्ति के लिए घसीटकर लाया गया था), एक सजा-सजाया घोड़ा तथा ५००० दीनार नक़द प्राप्त हुए।" (पृष्ठ ५८६, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

स्पष्ट है कि मुस्लिम लेखकों पर लूट का हिन्दू माल समय-समय पर बड़ी दरियादिली से न्योछावर किया जाता था। इससे उनका इस्लामी मूड बना रहता था, और वे अपने मालिकों की झूठी बड़ाई हाँकने में कमी नहीं करते थे।

इब्न बतूता ने एक गप्प गियासुद्दीन के मकबरे के बारे में भी हाँकी है, जो दिल्ली के तथाकथित तुग़लक़ाबाद की भारी भरकम दीवारों के पास खड़ा है। अन्धे पुरातत्त्व-वेत्ता इस कहानी को तोते की तरह रटते चले आ रहे हैं। बतूता ने बतलाया है कि "गियासुद्दीन एक न्यायी और गुणवान शासक थे। इन्होंने चार वर्ष तक शान्ति से निरंकुश शासन किया था। उन्हें एक मकबरे में गाड़ा गया है, जिसे उन्होंने खुद बनवाया था।" (वही, पृष्ठ ६०८)। इस बयान का प्रत्येक शब्द सफेद झूठ है। हमने देखा है कि गियासुद्दीन का जीवन खून-खराबे से भरा हुआ था। वह जबतक जिन्दा रहा, हिन्दुओं की लूट और हत्या का सिलसिला कभी बन्द नहीं हुआ। दूसरे, उसके चार वर्षीय छोटे शासनकाल में उसे उसके धूर्त पुत्र ने जाल में फँसाकर एकाएक मार डाला था। फिर भी गियासुद्दीन ने अपना मकबरा स्वयं ही बनवाया, मानो किसी ने उसके आकस्मिक अन्त की भविष्यवाणी कर दी हो। कल्पित मुस्लिम-कुतर्क का यह विशेष उदाहरण है।

साफ़ है कि इब्न बतूता झूठ बोल रहा है। यह बात स्वीकार करने में उसके मुस्लिम अहं को ठेस लगती है कि सुलतान गियासुद्दीन एक हड़पे गए हिन्दू महल में गाड़ा गया है। ज़रूरी है कि हम संसार के सारे इतिहासकारों, वास्तुकारों, राज्य लेखागारों एवं पुरातत्त्व विभाग के कर्मचारियों को यह बात भली-भाँति समझा दें कि प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम को, चाहे

वह कवि हो या सन्त, दरबारी हो या शासक, "हिन्दू महल या मन्दिर में ही गाड़ा गया है।"

अपने निरपेक्ष क्षणों में इब्न बतूता ने लिख मारा है कि (वही, पृष्ठ ६११) "मुहम्मद को खून बहाना, सभी बातों से अधिक पसन्द है। मृत्यु-दण्ड प्राप्त व्यक्ति सदा उसके द्वार पर रखे जा सकते हैं। उसका उग्र और क्रूर कारनामा कुख्यात हो चुका है (पृष्ठ ६१२) सुलतानी महल के प्रथम द्वार के बाहर कई मंच हैं जिनपर बैठकर जल्लाद लोगों को हलाल करते हैं। ऐसा रिवाज है कि जब कभी सुलतान किसी आदमी की हत्या की आज्ञा देते हैं तो उसे सभा-हॉल के द्वार पर भेज दिया जाता है। वहाँ उसका शरीर तीन दिन तक पड़ा रहता है। जो कुछ भी मैंने उनकी नम्रता, उदारता, न्याय और दयालुता के बारे में कहा है, उसके बावजूद सुलतान को खून-खराबा बहुत पसन्द है। मैंने प्राय: लोगों को हलाल होते और उनके शरीर को वहाँ पड़े देखा है। एक दिन मैं महल में जा रहा था कि मेरा घोड़ा झिझका। मैंने नज़र उठाई तो देखा कि तीन हिस्सों में कटा एक आदमी का धड़ था। सुलतान मामूली भूलों की बड़ी (भयंकर) सज़ाएँ देता था। विद्वान्, धार्मिक या कुलीन किसी को भी नहीं छोड़ता था। रोज़ाना सैकड़ों लोगों को जंज़ीरों में जकड़कर सभा हॉल में लाया जाता था। उनके हाथ और पैर एक-दूसरे से बँधे होते थे (पृष्ठ ६१३); कुछ को मार दिया जाता था और बाक़ी को या तो बड़ी पीड़ाएँ दी जाती थीं या उन्हें कोड़ों से अच्छी तरह पीटा जाता था।" यानी कोड़ों की मार यातना में शामिल नहीं थी। इस प्रकार बतूता ने हमें सावधान किया है कि उसकी सुलतानी प्रशंसा को गम्भीरता से न लिया जाए।

स्पष्ट है कि यह मुस्लिम सुलतान अपने सभी पूर्वजों एवं वंशजों की भाँति अपने दरवाज़े पर खून के तालाब तथा कुचली-मसली लाशों के ढेर को जमा रखना बहुत पसन्द करता था। यह ढेर उन लोगों के लिए एक शुभ-शकुन था—जो अभागे और असहाय हिन्दुओं तथा विद्रोही मुस्लिमों के क़त्लेआम के काम की शुरुआत करते थे।

कभी-कभी स्पेशल ट्रेनिंग प्राप्त पशुओं को भी इस काम पर नियुक्त किया जाता था। इब्न बतूता बतलाता है—"हल के आकार का चाकू से भी तीक्ष्ण लोहा नर-हत्यारे हाथियों के दाँतों में पहनाया जाता था। जब

आदमी उसके सामने फेंके जाते थे तो हाथी उनके चारों ओर अपनी सूंड लपेटकर उसे हवा में ऊपर उछाल देते थे और अपने दाँतों पर उसे रोक, ज़मीन पर दे मारते थे। उसके बाद अपना पैर उसकी छाती पर रख देते थे तब ऊपर लिखे लोहे से हाथी उनकी आज्ञा का पालन करते थे।" (वही, पृष्ठ ६१८)।

इसीके बारे में नीच चापलूस बरनी ने लिखा है कि नर-संहारक, पितृहन्ता, शैतान मुस्लिम मुहम्मद, "की पुस्तकों और अक्षरों के हस्त-लेखों के आगे सर्वाधिक प्रवीण लेखकों (के लेख भी) पानी भरते थे। उनकी रचना की सहजता, शैली की उच्चता एवं कल्पना की उड़ान ने सर्वाधिक प्रवीण शिक्षकों एवं प्राध्यापकों को भी काफ़ी पीछे छोड़ दिया था। अगर रचनाओं का कोई शिक्षक उसका मुकाबला करता तो वह हार जाता। फ़ारसी कविताएँ उनकी ज़बान पर थीं...कोई भी विद्वान् या वैज्ञानिक, लेखक या कवि, बुद्धिमान् या हकीम उनसे तर्क में जीत नहीं सकता था।" (वही, पृष्ठ २३५-३६)। इन मुस्लिम पापियों के काले कारनामों पर इसी प्रकार के भड़कीले भाषणों और चापलूसियों का मायावी पर्दा पड़ा हुआ है। इससे हमारे प्राध्यापकों और शिक्षकों, शोधकर्ता विद्वानों, पुरा-तत्त्व वेत्ताओं और राज्य-लेखागारों तथा वास्तुकारों और इतिहासकारों की आँखें चुँधिया जाती हैं और वे संसार को बतलाते हैं कि शैतान मुस्लिम शासक सद्गुणों के अवतार थे।

इसी नीच, चापलूस दलाल बरनी ने यह बयान किया है कि—"जो कुछ विचार सुलतान करते थे वह भले के लिए करते थे मगर उन योजनाओं को लागू और चालू कर उसने लोगों को असन्तुष्ट किया तथा अपने ख़ज़ाने को खाली कर दिया।" (वही, पृष्ठ २३६)। भलाई की योजनाओं से लोग असन्तुष्ट हो गए? हिंस्र एवं पाशविक मुस्लिम शासनकाल के बयानों में बिखरे इन वर्णनों ने सारी दुनिया के विद्वानों को मौर्फिया का इंजेक्शन लगा दिया है।

बरनी बतलाता है कि मुहम्मद ने रचनाएँ कीं; किताब लिखीं। हम यह स्वीकार कर लेते हैं कि तुग़लक़ जैसे हिंसक पशु ने, अपनी खूनी इस्लामी तलवार की तीक्ष्ण नोंक को, हिन्दू रक्त की अमिट लाल स्याही में डुबोया और मुस्लिम कुकर्मों को लिख-लिखकर इतिहास का प्रत्येक पन्ना रंग

डाला। इतना तो खुद बरनी भी मानता है कि—"सुलतान के दिमाग़ ने अपना सन्तुलन खो दिया था। अत्यन्त आवेश की दुर्बलता एवं क्रूरता में वह बहुत कठोर हो गया था'''छोटे-बड़े लोगों का मन अपने सुलतान से विरक्त हो चुका था। जब सुलतान देखता था कि उसका हुक्म कारगर नहीं हो रहा है तो वह और कठोर हो जाता था तथा जंगली घास-फूस की तरह लोगों को काट फेंकता था।"

अपने पिता का खून अपने मुँह पर पोतकर मुहम्मद तुग़लक़ ने गद्दी पर बैठने के बाद अपनी रियाया से ५ प्रतिशत से १० प्रतिशत अधिक लगान वसूल करने का निर्णय किया (आज की धर्म-निरपेक्ष सरकार की भाँति) जो क्रूर इस्लामी लगान के नीचे पहले से ही कराह रही थी। "इस (काम) को पूरा करने के लिए वह तबतक टैक्स बढ़ाता रहा जबतक कि रैयत की कमर टूट नहीं गई। इन टैक्सों को इतनी क्रूरता से वसूल किया जाता था कि लोग भीख तक माँगने लगे। धनी लोग विद्रोही हो गए। ज़मीन बंजर हो गई। खेती का काम बन्द हो गया। दूर-क्षेत्रों की रियाया अपने ऊपर इन संकटों के आ पड़ने की आशंका से जंगलों में भाग गई। (इससे) भयानक दुर्भिक्ष की स्थिति उपस्थित हुई। हज़ारों लोग मर गए। समाज छिन्न-भिन्न हो गया। परिवार टूट गए।"

एक कायर के समान सुलतान मुहम्मद मुग़ल आक्रमणकारियों एवं अपने बाग़ी गुर्गों से सदा डरता ही रहता था। बग़ावत तो एक संक्रामक बीमारी हो गई थी। जिसे देखिए उसीने बग़ावत कर दी। इस बग़ावत से छुटकारा पाने के लिए उसने दूर देवगिरी जाने का निर्णय कर लिया। मगर वहाँ भी अकेले जाने की उसमें हिम्मत नहीं थी। उसे डर था कि कहीं विरोधी या अनजान लोग उसकी हत्या न कर दें। इसलिए १५ उपनगरों वाली प्राचीन दिल्ली के हज़ारों निवासियों को घर बार छोड़, सामान बाँध, हज़ार मील दूर पार्सल कर देने की राक्षसी योजना उसने बनाई। इस मूर्ख मगर खूनी मुस्लिम द्वारा शासित, दिल्ली के निवासियों के लिए यह संकट एकदम असम्भाव्य था। हज़ार मील दूर एक अनजान जगह में, जहाँ के लोग उनकी समझ से दूर मराठी और कन्नड़ बोलते थे, जाकर रहने का विचार ही उन लोगों को साल रहा था। इधर मुहम्मद कुछ भी सुनने और समझने को तैयार नहीं था। दिल्ली को पूरी तरह से सुनसान कर वह

एक तीर से दो शिकार करना चाहता था—(१) षड्यन्त्रकारी दरबारियों की जड़ खोद देना, और (२) मुग़ल आक्रमणों के संकटों से दूर भागकर सुरक्षित होकर ऐश करना।

इस विपत्ति से बचने के लिए लोग अपना घर छोड़कर जंगलों में भाग गए। चिढ़कर सुलतान ने हाँक का प्रबन्ध किया। जल्लाद टुकड़ियों ने जंगलों में आग लगा दी। वहाँ छिपा रहना अब मुश्किल हो गया। बरनी का बयान है कि (वही, पृष्ठ २३९)—"सभी कुछ नष्ट कर दिया गया। बरबादी इतनी अधिक थी कि राज-भवन के महलों, नगरों या उपनगरों में एक बिल्ली या कुत्ता भी नहीं बचा। अपने परिवारों, आश्रितों, पत्नियों, बच्चों, नौकरों और दासियों के साथ (लोगों को) ज़बर्दस्ती बाहर निकाल दिया गया। अनेक व्यक्ति मार्ग में ही मर गए। जो देवगिरी पहुँचे वे प्रवास की पीड़ा को न सह सके...निराश होकर मौत की कामना करने लगे।" विदेशी मुस्लिम जोंकों का यह धारा-प्रवाह आगमन स्थानीय निवासियों के लिए एक जानलेवा भयंकर फन्दा बन गया था।

सुलतान के वास्तविक उद्देश्य का पर्दाफ़ाश करते हुए इब्न बतूता हमारे इतिहासकारों को झूठा प्रमाणित कर देता है, जो उसके झूठे उद्देश्य की बड़ाई हाँकते नहीं अघाते कि अपनी राजधानी को पूर्णरूपेण केन्द्रीय बनाने के लिए ही उसने देवगिरी अपनी राजधानी बदली थी। पृष्ठ ६१३ पर बतूता का बयान है—"उसका उद्देश्य था कि दिल्ली के निवासी अपमान एवं गालियों से भरा हुआ खत सुलतान को लिखते थे। वे उसे (गोंद से) बन्द कर और 'राजा के अलावा कोई न पढ़े' लिखकर रात में सभा-हॉल में फेंक देते थे। जब सुलतान उसे खोलते थे तो उन्हें ज्ञात होता था कि उन खतों में उनका अपमान कर उन्हें गालियाँ दी गई हैं। बस, उन्होंने दिल्ली को बरबाद करने का निश्चय कर लिया। उन्होंने दिल्ली निवासियों को देवगिरी जाने की आज्ञा दे दी। सुलतान के ढिंढोरची ने ढोल बजा दिया कि तीन दिन के बाद कोई भी दिल्ली में न रहे। खूब अच्छी तरह छान-बीन की गई कि कोई रह तो नहीं गया है। उनके गुलामों ने गली में दो आदमियों को खोज निकाला—एक कोढ़ी था, दूसरा अन्धा। उन दोनों को सुलतान के सामने पेश किया गया। उन्होंने कोढ़ी को मार देने की आज्ञा दी और अन्धे को दिल्ली से दौलताबाद घसीट कर ले जाने की। यह ४०

दिन का सफ़र था। रास्ते में इस बेचारे गरीब के अंग-प्रत्यंग बिखर गए। सिर्फ़ उसका एक पैर ही दौलताबाद पहुँचा। दिल्ली एकदम सुनसान हो गई। अब लोगों द्वारा छोड़ा गया माल-असबाब ही वहाँ पड़ा था। एक सन्ध्या को, महल की छत पर चढ़कर, और दिल्ली के चारों ओर देखकर, जिसमें न प्रकाश था न धुआँ, सुलतान ने कहा—"अब मेरा हृदय सन्तुष्ट हुआ है, मेरी इच्छा पूर्ण हुई है।"

एक इडियट की भाँति मुहम्मद ने—"दूसरे प्रान्तों के निवासियों को दिल्ली आकर इसे आबाद करने का हुक्मनामा लिख भेजा।" मजबूर करने पर "उन लोगों ने अपने-अपने क्षेत्रों को नष्ट कर दिया मगर दिल्ली को आबाद नहीं किया।" अगर उसका विचार दिल्ली को अपनी राजधानी बनाए रखने का नहीं था तो उसको आबाद करने की इतनी फ़िक्र उसे क्यों हुई ? यह प्रश्न किसी भी इतिहासकार ने नहीं पूछा।

सतत प्रवहमान व्यभिचारी मुसलमानों ने देवगिरी की हिन्दू जनता के जीवन में विष घोल दिया था। क्रुद्ध होकर हिन्दू जनता ने उनका जीना मुश्किल कर दिया। धर्मान्ध बरनी कहता है—"देवगिरी के चारों ओर, जो एक काफ़िर ज़मीन थी, मुसलमानों की बहुत-सी कब्र तैयार हो गईं। उन लोगों ने काफ़िर ज़मीन में अपना सिर दफ़ना दिया और प्रवासियों की बहुत बड़ी संख्या में से केवल थोड़े बहुत ही अपने-अपने घर लौटने के लिए जिन्दा बच सके।"

मुहम्मद ने देखा कि उसका पागल प्लान देवगिरी में भी उसे शान्ति और चैन नहीं दे सका क्योंकि उसकी पापी छाया जहाँ भी पड़ी वहीं के लोगों ने बग़ावत कर दी। इसलिए उसने उसी कठोरता से यह फरमान जारी कर दिया कि सभी जिन्दा बचे दिल्ली-प्रवासी और मुर्दा-दिल्ली प्रवासियों का कोटा पूरा करने के लिए कुछ देवगिरी-निवासी अपना-अपना माल-मत्ता पैक कर दिल्ली रवाना हो जाएँ। फलस्वरूप दक्षिण यात्रा में जो जिन्दा बचे वे दिल्ली लौटते हुए मार्ग में मर गए।

अब एक नया जोश मुहम्मद में पैदा हुआ—विश्व-शासक बनने का। "सारी दुनिया के निवासियों का दमन कर उन्हें अपने शासन में लाने के लिए असंख्य सैनिकों की ज़रूरत थी। यह एक असम्भव योजना थी। बिना असीम धन के ऐसा होना सम्भव नहीं था। इसलिए उसने ताँबे के सिक्के

चलाए और आज्ञा दी कि सोने और चाँदी के बदले उसी का प्रयोग किया जाए।" इस पागल प्लान का प्रभाव उल्टा हुआ। बहुत से घरों में टकसालें खुल गईं। लोग सुलतान के सिक्कों की नक़ल करने लगे क्योंकि सुलतान के पागल हुक्मनामे के अनुसार उसका मूल्य सोने के बराबर हो गया था। लोग सोने और चाँदी के सिक्कों को जमा करने लगे। सरकारी लगान का भुगतान ताँबे के सिक्कों से होने लगा। ख़ज़ाने में ताँबा-ही-ताँबा भर गया। सुलतान का हथियार सुलतान पर ही बरस पड़ा। इस इडियट योजना को हमारे इतिहासकार मुद्रा-सुधार मानते हैं। मगर बरनी हमें बतलाता है कि किराये के मुस्लिम सिपाहियों और गुण्डों की भारी-भरकम फ़ौज जमा कर सारे संसार पर शासन करने की लालसा से ही इस सुलतानी-खुजलाहट का जन्म हुआ था। "ख़ज़ाना ताँबे के सिक्कों से भर गया। इसका दाम इतना नीचे गिर गया कि वह बर्तनों के टूटे टुकड़ों के बराबर हो गया। जब ताँबे के सिक्कों के दाम मिट्टी के ढेलों से भी कम हो गए और कोई काम का नहीं रहा तब सुलतान ने अपना हुक्म वापिस ले लिया।" इडियट मुहम्मद क्रोध से एकदम उबल उठा और अपनी "रियाया का ही दुश्मन हो गया।" (वही, पृष्ठ २४१)।

एक लुटेरी मुस्लिम सेना को तैयार करने का मुहम्मदी इरादा विफल हो गया था। लगान के बहाने और मुद्रा-सुधार के जादू ने काम नहीं किया। फिर भी वह सारी दुनिया को जीतने की तमन्ना में तिलमिला रहा था। उसने अपनी पहली लोभी नजर खुरासान और इराक़ पर डाली। अपने मन में उसने यह लड्डू फोड़ लिए थे कि इन देशों के अफ़सरों को घूस देकर मिलाया जा सकता है और ये राज्य पके आम की तरह उसकी गोद में आ टपकेंगे। "वे लोग लुभावने प्रस्तावों और मायापूर्ण प्रतिनिधित्व लेकर उनके पास आए और (सुलतान से) धन ठग लिया। इच्छित दरबारी मिलाए नहीं जा सके और जो मिले वे बेकार थे। मगर (हर हालत में) उनका ख़ज़ाना खाली हो गया।"

हताश होने पर भी उसकी संसार-विजय की खुजलाहट ख़त्म नहीं हुई। सुलतान ने "खुरासान-अभियान के लिए एक बड़ी सेना जमा करनी शुरू कर दी। भरती दफ़्तर में तीन सौ पचहत्तर हज़ार घोड़े नामज़द हुए। पूरे एक वर्ष तक उनको खाना-दाना दिया गया।" मगर बाद में वेतन देने

लिए एक पैसा भी नहीं बचा। "सेना टूट गई। सभी ने अपना-अपना रास्ता नापा।" लूटमार करने के लिए मुस्लिम गिद्धों का यह विशाल गिरोह हिन्दुओं पर टूट पड़ा।

पश्चिम में राज्य-विस्तार का प्लान चंचल-भाग्य ने चौपट कर दिया तो क्या हुआ, मूर्ख मुहम्मद ने पूर्व की ओर नज़र फेरी। उसने तिब्बत पर आक्रमण करने का विचार किया। एक विशाल सेना वहाँ भेजी गई। हिन्दुस्तान के जिस गाँव, खेत या नगर से होकर मुस्लिम सेना गुज़रती थी, उस जगह को लूटना मुस्लिम सेना अपना पवित्र धार्मिक कर्तव्य समझती थी। छोटी हो या बड़ी, मुस्लिम सेना की यात्रा एक बुलडोजर की यात्रा होती थी। चारों ओर तबाही-बरबादी फैल जाती थी। सारे मन्दिर निर्जीव होकर मस्जिद बन जाते थे। गृह पत्नियाँ वेश्याएँ हो जाती थीं। उन पर सामूहिक बलात्कार होता था। बच्चों का खतना कर दिया जाता था। क़ीमती चीजें लूट ली जाती थीं। सामूहिक नर-संहार से धरती लाल हो जाती थी। सारे क्षेत्र में आग लगाकर आकाश को भी लाल कर दिया जाता था।

तिब्बत को जाने वाली मुस्लिम सेना हिमालय की पवित्र घाटियों में जा पहुँची। खूनी मुस्लिम-ड्रामे का अभिनय हुआ। इस शैतानी-मुस्लिम नाच से सभी पहाड़ी हिन्दू जातियाँ रोषान्वित होकर एक साथ शैतान मुस्लिम-गिरोह पर टूट पड़ीं। उन्होंने घाटी का मार्ग बन्द करके भागने का रास्ता रोक दिया। उन लोगों ने एक साथ झपटकर, एक प्रहार में इन हिंसक पशुओं को नष्ट कर डाला। "इस पराजय की सूचना देने के लिए सिर्फ़ १० घुड़सवार दिल्ली लौट सके।" उसपर भी पागल मुहम्मद को मुस्लिम सेना के सम्पूर्ण-विनाश का पता कई दिन तक नहीं लग सका था। इस पराजय से सनकी सुलतान की कमर टूट गई। हिन्दू पहाड़ियों के इस जाल में बेख़बर फँसी उस व्यभिचारिणी मुस्लिम सेना की हड्डियाँ अभी भी साइट पर प्राप्त हो सकती हैं।

सनकी सुलतान के विरुद्ध कुलमुलाता विरोध खुलेआम विद्रोह के रूप में भड़कता गया। यह धीरे-धीरे सुलतानी को तब तक निगलता रहा जबतक कि सनकी सुलतान के जंगली-जीवन का अन्त न हो गया। इस भड़कते लावे का आकार-प्रकार तरह-तरह का था।

(१) पहला विद्रोह मुलतान में बहराम अबिया ने किया था। उस समय सुलतान अपनी 'बहु-प्रशंसित' दक्षिण की राजधानी देवगिरी में था। इस विद्रोह ने सिद्ध कर दिया कि दूर देवगिरी में भी सुलतान शाही-शान्ति से ऐश नहीं कर सकता। भयभीत होकर सुलतान उत्तर की ओर भाग आया। संग्राम में अबिया मारा गया। "उसका सिर कलमकर सुलतान के पास भेज दिया गया और उसकी सेना को काट-काटकर फैला दिया गया।" ठीक इसी समय सुलतान ने देवगिरी को खाली करने और दिल्ली को एक बार फिर आबाद करने की आज्ञा दे दी क्योंकि उसकी मूर्खता उसी पर बरस पड़ी थी।

ख़ज़ाने का धन ख़त्म होने के कारण सुलतान हिन्दुस्तान की घिसी-पिटी मुस्लिम शाही परम्परा के अनुसार गंगा-यमुना क्षेत्र के हिन्दुओं को तरह-तरह की यातना देकर धन-निचोड़ने लगा। बरनी कहता है—"भारी-भारी करों और लगानों से देश बरबाद हो गया। हिन्दुओं ने अपना-अपना अन्न-भण्डार जला दिया और अपने-अपने पशुओं को भटकने के लिए खोल दिया। सुलतान की आज्ञा पर कलक्टरों और मेजिस्ट्रेटों ने देश को नष्ट कर डाला (अछूता एक को भी नहीं छोड़ा)। इन निवासियों में से जिन लोगों ने छिपकर जान बचाई थी, वे लोग गिरोह बनाकर जंगलों में भाग गए और डाकू बन गए। (भारत की डाकू समस्या भी इन्हीं लोगों की देन है)। इस प्रकार सारा देश तबाह और बरबाद हो गया।" (वही, पृष्ठ २४२)।

"इसके बाद सुलतान शिकार-यात्रा पर बारन गए। उनकी आज्ञा पर सारे प्रदेश को लूटा और बरबाद किया गया। हिन्दुओं के मस्तकों को काट-काटकर लाया गया और बारन-दुर्ग की प्राचीर पर सजाया गया।"

मुस्लिम इतिहासकारों के प्रिय शब्द "शिकार" के राक्षसी प्रयोग के सम्बन्ध में हम आधुनिक इतिहासकारों को सावधान कर देना चाहते हैं। अकबर, फ़िरोजशाह, कुतुबुद्दीन आदि सभी मुस्लिम लुटेरों की शिकार-यात्रा के बारे में बार-बार लिखा गया है। यह कोई साधारण खेल नहीं था। मुस्लिम इतिहास में इस "शिकार" का अर्थ है—किसी झूठे बहाने से सुलतानों का राजधानी से निकलना, हिन्दू सिरों का आखेट करना, शिकार

के सिरों को जमा करना तथा शिकार की ज़मीन और मकान को बरबाद करना। ऊपर बरनी के उद्धरण से यह वास्तविकता स्पष्ट हो जाती है।

(२) बंगाल को दीमक की तरह चाट जाने वाले व्यभिचारी मुस्लिम चिल्लरों ने सनकी सुलतान के विरुद्ध विद्रोह कर दिया। फ़ख़रू नामक एक गिरोहपति ने लखनौटी के गवर्नर किदर खाँ को मार डाला। उसके परिवार की पत्नियों और लोगों का कीमा बना डाला। फिर लखनौटी, सतगाँव और सोनारगाँव के ख़ज़ाने को लूट लिया और बंगाल हमेशा के लिए सुलतान के हाथ से निकल गया।

फिर जेब ख़ाली हो गई। सुलतान "अपनी सेना लेकर प्रान्तों को लूटने निकला। कन्नौज से लेकर दलामू तक के सारे प्रदेश को उसने बरबाद कर डाला। हाथ में पड़ने वाले सभी (यानी हिन्दुओं) की उसने हत्या कर दी। अनेक निवासी जंगलों में भाग गए। मगर सुलतान ने जंगलों को घेर लिया और जो हिन्दू पकड़ में आया उसको मार डाला।"

(३) सुलतान को हिन्दू हत्या में तल्लीन देखकर उसके ख़ज़ाना-रक्षक इब्राहिम के पिता सैयाद हसन ने दूर मालाबार में तीसरा विद्रोह कर दिया। उसने सुलतान के नगर-नायक को मारकर प्रान्तीय शासन अपने हाथ में ले लिया। सुलतान ने वहाँ एक सेना भेज दी। मगर वह सेना वहाँ पहुँचकर बाग़ियों से मिल गई। गुस्से में आकर सुलतान ने पिता के विद्रोह के लिए उसके पुत्र को सपरिवार बन्दी बना लिया। उन्हें भयकर यातनाएँ दीं। कन्नौज क्षेत्र से लौटने के बाद सुलतान ने अपनी सेना ठीक की और मालाबार के लिए कूच कर दिया। "दिल्ली से तीन-चार पड़ाव ही वह गया होगा कि अन्न के भाव चढ़ गए। अकाल पड़ने लगा। राहज़नी तो मामूली बात हो गई थी। (जबकि मुसलमानों के आने से पहले तक लोग अपने घरों में ताला तक नहीं लगाते थे)। देवगिरी पहुँचकर सुलतान ने मराठा प्रदेश के मुस्लिम सरदारों और कलक्टरों से धन की भारी माँग पेश कर दी।" खुले-आम लोगों को सताया-मारा गया। लोगों का अन्तिम कौर तक छीन लिया गया। "इस निर्मम कर वसूली के कारण बहुत से लोगों ने आत्महत्या कर ली।"

(४) कहीं भी सुख-शान्ति न मिलने पर सुलतान ने दक्षिण को लूटने का निश्चय कर लिया। वह आन्ध्र की ओर बढ़ा। इसी बीच उसे समाचार

मिला कि दूर पंजाब के नगर लाहौर में विद्रोह पनप रहा है। विद्रोह का दमन करने के लिए उसने एक वाहिनी देकर अहमद अय्याज़ ख़ाँ को लाहौर भेज दिया।

जब सुलतान मुहम्मद की ख़ूनी मुस्लिम सेना का प्लेग तेलंगाना (आन्ध्र) की फलती-फूलती ज़मीन पर उतरा तो संक्रामक हैजे ने इस प्लेग का दिल खोलकर स्वागत किया। सुलतान का मुस्लिम गिरोह मच्छर-मक्खियों की तरह मरने लगा। सुलतान खुद कै-दस्त का शिकार हो गया। आन्ध्र में हिन्दुओं पर परम्परागत मुस्लिम ज़ुल्म ढाने के लिए मलिक काबुल को वहाँ छोड़ सुलतान हड़बड़ाकर वारंगल से भाग निकला। बीमार होकर वह देवगिरी पहुँचा। दक्षिण के जिन क्षेत्रों को मुस्लिम गुण्डे चूस सकते थे वहाँ सुलतान ने अपने गुर्गों को नियुक्त कर दिया ताकि सुसंगठित रूप से लूट-पाटकर लगातार धन निचोड़-निचोड़कर वे लोग सुलतान के चिल्लर गिरोह के लिए धन भेज सकें। उसने साहब सुलतानी को नुसरत ख़ाँ की उपाधि दी और बिदार में नियुक्त कर दिया। बिदार गौरवशाली हिन्दू नाम भद्रकेतु का अपभ्रंश है। मराठा देश की नियमित लूट एवं हिन्दू-हत्या का भार कटलघ ख़ाँ को सौंप दिया गया। फिर अपने स्वास्थ्य की ओर से निराश होकर सुलतान दिल्ली की ओर चल पड़ा। मार्ग में साथ देने के लिए उसने दिल्ली से आई हुई जनता को भी बटोर लिया। इन लोगों को उसने पहले दिल्ली से देवगिरी हाँक दिया था। अब अपने नए घरों को छोड़कर उन्हें वापिस दिल्ली की यात्रा करनी पड़ी।

मार्ग में सुलतान ने प्राचीन राजा भोज की विख्यात राजधानी धार नगरी में पड़ाव डाला। मुहम्मद एक श्रापित व्यक्ति था ही। इधर वह धार पहुँचा, उधर वहाँ "दुर्भिक्ष फैल गया। मार्ग की सारी चौकियाँ नष्ट हो गईं और सारे नगरों एवं क्षेत्रों में संकट तथा अराजकता व्याप्त हो गई।" जब सुलतान दिल्ली पहुँचा तो आबादी का हज़ारवाँ हिस्सा भी जिन्दा नहीं बचा था। इस शैतान-सनकी सुलतान का दिल्ली पहुँचना था कि "उसने देखा, देश उजड़ा पड़ा है। दुर्भिक्ष लहरा रहा है और सारा कृषि-कार्य बन्द है।" अकाल की कठोरता का वर्णन करते हुए इब्न बतूता ने लिखा है कि "एक मन अनाज का दाम ६० दिहराम से भी अधिक हो गया था। संकट चारों ओर फैला हुआ था। परिस्थिति गम्भीर थी। शहर में मैंने एक दिन तीन

औरतों को देखा जो एक ऐसे घोड़े की चमड़ी काट-कटकर खा रही थीं, जिसको मरे हुए कई महीने व्यतीत हो गए थे। चमड़ा पकाकर बाज़ारों में बेचा जाता था। जब बैलों को काटा जाता था तब लोगों की भीड़ चल्लू में खून लेने के लिए दौड़ पड़ती थी और जिन्दा रहने के लिए खून को पी जाती थी।"

(५) अकाल के बीच में पाँचवें विद्रोह का समाचार भी आ पहुँचा। सुलतान के मुलतानी गुर्गे बिहजद को मारकर इस बार शाहू अफ़ग़ान खड़ा हो गया था। आतंकित होकर मलिक नावा दिल्ली भाग आया। क्योंकि सुलतान मुलतान कूच करने के लिए निकला ही था कि उसकी माँ मुख़्दुमा-ए-जहाँ मर गई। सुलतान ने इसकी कतई चिन्ता नहीं की। उसने कूच कर दिया। अपने अफ़ग़ानों के साथ बाग़ी शाहू अफ़ग़ानिस्तान भाग गया। सुलतान दिल्ली वापिस लौट आया; उस दिल्ली में "जहाँ अकाल बहुत ही भयंकर था और आदमी आदमी को खा रहा था।"

इधर सुलतान ने पीठ फेरी, उधर सिन्ध में बग़ावत ने फिर अपनी ख़तरनाक तलवार उठा ली। अपने-अपने सरदारों के अधीन हिन्दू जातियाँ एकत्रित होकर मुसलमानों की विनाश-सत्ता को ललकारने लगीं। सुलतान ने सन्नम और समाना की ओर कूच कर दिया। ये दोनों स्थान उपद्रव के केन्द्र थे। "बाग़ियों ने मण्डल बनाया, लगान रोका, अशान्ति पैदा की और राहगीरों को लूटने लगे। सुलतान ने उनके मण्डल को नष्ट कर दिया, अनुचरों को बिखेर दिया और सरदारों को बन्दी बनाकर दिल्ली ले आया।" बहुतों को मुसलमान बना दिया गया। उनकी पत्नियाँ मुस्लिम हरमों में बाँट दी गईं। बच्चों को मुसलमान और फिर गुलाम बनाकर बेच दिया गया। कितने शोक की बात है कि आज के मुसलमान यह नहीं समझ पा रहे हैं कि उनके बाप-दादा और माँ-बहनों को उनके पावन हिन्दू घरों से निकालकर और न जाने कितनी पीड़ाएँ देकर मुसलमान बनाया गया था।

(६) सुलतान के खून से चिपचिपे हाथ अभी सूखे भी नहीं थे कि छठे विद्रोह का समाचार भी आ पहुँचा। वारंगल के वीर हिन्दुओं ने विदेशी मुस्लिम भेड़ियों को दबोच दिया था। एक वीर हिन्दू देश-भक्त कान्य नायक ने मुस्लिम बघेरों को हिन्दू तलवार का स्वाद चखाने का निश्चय कर

लिया। सुलतान का मुस्लिम गुर्गा मलिक काबुल इतना भयभीत हो गया था कि बिना पीछे देखे वह सीधा दिल्ली भाग आया। कान्य नायक का प्रत्याक्रमण इतना सफल रहा कि एक ही वार में आन्ध्र का मुस्लिम फन्दा कटकर नीचे गिर पड़ा। आन्ध्र मुस्लिम लूट-पाट से पूर्णतः मुक्त हो गया। हमें आशा है कि वारंगल के इस महान् हिन्दू देशभक्त की याद वहाँ के निवासियों के दिल में अब भी ताज़ा होगी।

(७) कान्य नायक के एक रिश्तेदार को कोड़ों से मार-मारकर मुसलमान बनाया गया था। उसके बाद अन्य हिन्दुओं की पीठ पर कोड़े बरसाने के लिए उसे गंगा-क्षेत्र के काम्पिल नगर भेज दिया गया था। कान्य नायक की सफलता से उत्साहित होकर उसने नये धर्म का फन्दा निकाल फेंका और बड़े गौरव से अपने आपको हिन्दू घोषित कर दिया। घृणित सुलतान के विरुद्ध यह सातवाँ विद्रोह था। कान्य नायक के इस वीर हिन्दू रिश्तेदार ने अपनी स्वतन्त्रता की घोषणा कर दी। गंगा का पावन क्षेत्र वापिस हिन्दुत्व की गोद में आकर चैन की साँस लेने लगा।

सनक़ी सुलतान का शैतानी राज्य उसके सामने ही चूर-चूर होने लगा। "सिर्फ़ देवगिरी और गुजरात ही (सुलतान के पास) बचे। दंगे चारों ओर भड़क उठे थे। ज्यों-ज्यों यह तीव्र होता गया त्यों-त्यों सुलतान उत्तेजित होकर अपनी प्रजा से कठोर-से-कठोर व्यवहार करने लगे। मगर उनकी नृशंसता से लोगों में घृणा और असन्तोष बढ़ता ही गया। वे कुछ दिनों तक दिल्ली में टिके···दाम बढ़ते गए, बढ़ते गए। मनुष्य और पशु भूख से मरने लगे। अकाल के बीच सरकार का कोई भी काम नहीं हो सकता था। दिन-ब-दिन दिल्ली के निवासियों की हालत पतली और दयनीय होती गई। इसलिए सुलतान ने उन लोगों को दिल्ली-द्वार से बाहर निकलकर अपने परिवार के साथ पड़ोसी क्षेत्र में बसने की अनुमति दे दी।" (वही, पृष्ठ २४६)।

भूख से मरने से बचने के लिए खुद मुहम्मद ने भी दिल्ली त्याग दी। यह दिल्ली से दूसरा सामूहिक पलायन था। पहला पलायन था सुलतान की आज्ञा पर देवगिरी प्रस्थान।

भूख से बेहाल होकर सुलतान (भूखे भेड़िये की भाँति) हिन्दुस्तान के लोगों का बचा हुआ माल भी नोच-नोचकर निगलने लगा। खुले आम, दिन

दहाड़े सारी जिन्दगी लूट-मार करने वाले सुलतान की ख़स्ता हालत देखने के क़ाबिल थी। वह पैदल चलता था, गंगा-क्षेत्र के घने जंगलों के बीच में साधारण चोर की भाँति छिपकर रहता था और रोज़-रोज़ खाने के लिए तथा मुट्ठीभर दाने के लिए हिन्दू घरों में चुपचाप सेन्ध लगाता था। हिमालय के नीचे, पवित्र गंगा के किनारे, स्वर्गद्वार के पास, पहाड़ियों के भीतर डाकुओं की भाँति सुलतानी गिरोह के लोगों ने घास-फूस की झोपड़ियाँ भी खड़ी कर ली थीं। यहाँ से दिन-रात वे लोग हिन्दू क्षेत्रों पर डाका डालते थे और पाप के खाने-दाने पर अपना पेट पालते थे। दल का नेता ऐनुल्-मुल्क उसका दाहिना हाथ था। हिन्दू खेत-खलिहानों पर डाका डालकर जो भी खाना-दाना उसके हाथ आता था उसे बटोर-समेटकर लाना इसीके ज़िम्मे था।

अपने पंखों को समेटे, भयभीत पक्षी की भाँति सुलतान अपनी झोंपड़ी में ही छिपा रहता था। वह उत्सुकता से ऐनुल्-मुल्क की बाट जोहता रहता था कि कब ऐनुल्-मुल्क हिन्दू-घर का राशन लूटकर लाएगा और कब उसे दाना चुगाएगा। शैतान सुलतान की असहाय हालत ऐनुल्-मुल्क ने भाँप ली। ऐनुल्-मुल्क की ज़बान में घुली धृष्टता और दिल में उठती तमन्ना को सुलतान ने भी ताड़ लिया। ख़तरे से पूर्व ही सुलतान ने उससे छुटकरा पा लेना चाहा। साथ ही सुलतान की आज्ञा वह कहाँ तक मानेगा इसकी परीक्षा करनी भी ज़रूरी थी। कटलघ खाँ की ओर से नज़राना आना बन्द हो गया था। उसपर नज़र रखने के बहाने उसने ऐनुल्-मुल्क को देवगिरी जाने की आज्ञा सुना दी।

सुलतान की सलाह सुनकर उसका जी धक् से रह गया। सुलतान की आज्ञा का पालन करने से तथा दक्षिण जाने से वह जी चुराता रहा।

(८) इस ख़स्ता हालत में गंगा-वास करते समय चार विद्रोह और हुए। आठवीं विद्रोही तलवार कर्रा में निज़ाम मैन ने उठाई थी। उसकी शक्ति को नष्ट करने के बहाने तथा भविष्य में सुलतानी सत्ता को ललकारने का अवसर प्राप्त करते जाने की लालसा में ऐनुल्-मुल्क तथा उसके भाई ने "विद्रोहियों के विरुद्ध कूच कर दिया, विद्रोह को कुचल दिया, निज़ाम मैन को बन्दी बना लिया और उसकी ज़िन्दा चमड़ी छीलकर उसे दिल्ली भेज

दिया।" उन दिनों लोगों का बड़ा प्यारा इस्लामी खेल था—"ज़िन्दा लोगों की चमड़ी छीलना।"

(९) नवाँ विद्रोह बिदार यानी भद्रकेतु में नुसरत खाँ ने किया था। सुलतानी गिरोह की भट्टी में झोंकने के लिए उसने लूट का हिन्दू माल भेजना बन्द कर दिया था। इसे घेर-घोटकर दिल्ली भेज दिया गया।

(१०) दसवाँ बाग़ी अलिश था। हिन्दुओं को लूटकर दिल्ली माल भेजने के लिए इसे गुलबर्ग भेजा गया था। इस दुष्ट-अभियान को पूरा करने लायक मुस्लिम गुण्डे उसके गिरोह में नहीं थे। अतएव उसने एवं उसके भाई ने सुलतान की अवज्ञा कर दी और वे अपने मन के मुताबिक इस्लामी विनाश का मलबा बिखेरने लगे। उन लोगों ने धोखे से गुलवर्ग के नायक को मारकर उसका ख़ज़ाना लूट लिया, फिर इसको राजधानी बनाकर उन लोगों ने और मुस्लिम गुण्डों को बटोरा तथा बिदार को घेरकर उसे भी अपने कब्ज़े में कर लिया। सुलतान ने इस तरक्की-याफ़्ता अलिश का दमन करने की आज्ञा देवगिरी के कटलघ खाँ को भेज दी। गुलवर्ग से बिदार तक इसको इसके भाइयों के साथ रगेदकर दिल्ली पहुँचा दिया गया। इधर सुलतान अपने चारों ओर असन्तोष की गर्मी महसूस कर रहा था। उसने इन दोनों को सुलतान के प्रति निष्ठावान रहने की सौगन्ध खाने को उकसाया। मरता क्या न करता। दोनों ने क्षमा माँग ली। सुलतान ने एक सेना देकर दोनों को गज़नी पर आक्रमण करने के लिए भेज दिया। वहाँ वे दोनों पराजित हुए और गर्दन झुकाए वापिस दिल्ली लौट आए। यहाँ दोनों की गर्दन कटकर ज़मीन पर लोटने लगी। सुलतान बहुत ही क्रोधित था।

(११) बारहवीं बग़ावत स्वर्गद्वार में हुई। ऐनुल्-मुल्क और उसके भाइयों ने सीना तान दिया था। उत्तेजित होकर सुलतान ने दूर अहमदाबाद तक की फौज बुला ली। गंगा के किनारे बंगरमऊ में टक्कर हुई। ऐनुल्-मुल्क पकड़ा गया। उसकी सेना को २४ मील तक खदेड़-खदेड़कर मारा गया। उसके दो भाई भी इस संग्राम में काम आए। बहुत-से विद्रोही जान बचाने के लिए गंगा में कूद पड़े और डूब मरे। जो बचकर उस पार पहुँचे उन लोगों को इस्लामी विनाश के प्रतिकार में हिन्दुओं ने मार गिराया। ऐनुल्-मुल्क को क्षमाकर अपनी ओर मिलाए रखना सुलतान ने श्रेयस्कर

समझा था। उसने उसकी पदोन्नति कर दी तथा क़ीमती उपहारों से उसका पेट भर दिया।

अबतक मुग़लों ने २० बार आक्रमण किया था और लूटमार के साथियों ने ११ बग़ावतें। इससे मुहम्मद का साहस इतना टूट चुका था कि वह आध्यात्मिक शान्ति के लिए अल्लाह की ओर मुड़ा। बहराइच जाकर उसने मसूद की कब्र पर श्रद्धांजलि अर्पित की। यह वही मसूद था जो सुबुक्तगीन का एक गिरोह लेकर हिन्दुस्तान को लूटने आया था और लूट-पाट करते समय मारा गया था। आश्चर्य होता है कि किस प्रकार मुस्लिम मुल्ला एक लुटेरे डाकू की कब्र पर लोगों को सिर टेकने के लिए बाध्य करते हैं और लोग आसानी से मूर्ख बन जाते हैं।

अपनी इस विरक्ति में सनकी सुलतान धार्मिक शान्ति के लिए मिस्र के मुस्लिम ख़लीफ़ा की ओर झुका। अफ्रीका से मलाया और इण्डोनेशिया तक ही क्यों सारे संसार के धर्मान्ध मुस्लिम दादाओं को अपना आशीर्वाद और संरक्षण भेजने के लिए ख़लीफ़ा हमेशा तैयार रहता था क्योंकि उसको अपनी कामाग्नि में झोंकने के लिए संसार भर से उड़ाई हुई चुनिन्दा सुन्दर नारियाँ मिलती रहती थीं। साथ ही जेब गरम करने के लिए काफ़िरों की लूटमार का मोटा भाग भी। वार, हार और मार से नाक कटवाकर मुहम्मद ने ख़लीफ़ा को क़ीमती नज़राना भेजा और धार्मिक शान्ति की याचना की। ख़लीफ़ा ने भी उसे अपना आशीर्वाद और संरक्षण भेज दिया। बरनी लिखता है—"ख़लीफ़ा ने मुहम्मद की इतनी और ऐसी प्रशंसा की कि उसको लिखा नहीं जा सकता।" ख़लीफ़ा के दूत की अगवानी करने के लिए सुलतान नंगे पाँव गया और अपनी सभी भावी घोषणाओं में उसने अपनी पोज़ीशन ख़लीफ़ा के बाद ही रक्खी।

जब सुलतान को यह यकीन हो गया कि दिल्ली में अकाल की भयंकरता कम हो गई है और उसकी हत्या करने पर आमादा उसके कर्मचारी अब उतने क्रुद्ध नहीं हैं तो वह दिल्ली वापिस लौटा। वह ३ वर्ष तक राजधानी में रहा। वहाँ उसको दिल दहलाने वाला दृश्य देखने को मिला। सारे हिन्दुस्तान में दिल्ली की हालत बड़ी दयनीय रही है। हज़ारों वर्षों तक हर रोज़, दिन और रात, मुस्लिम दुष्टों ने इसे बरबाद ही किया था।

मुस्लिम शासन के अन्त तक भारत की हालत एकदम ख़स्ता हो गई

थी। इसके भवनों की ईंट बिखर गई थीं। बार-बार की लूट से घबराकर हिन्दू जंगलों में भाग गए थे या उनको गन्दी गलियों में फेंक दिया गया था। हिन्दुओं के खून की आख़िरी बूंद और सारी जीवन-शक्ति मुसलमानों ने चूस ली थी। हिन्दू कंगाल हो गए थे। उधर मुसलमानों ने मौज-मस्ती और व्यभिचार की हद कर दी थी। ये भी कंगाल हो गए थे। हज़ार वर्षों के लम्बे नारकीय मुस्लिम शासनकाल में हिन्दुस्तान के फलते-फूलते उद्योगों और हरी-भरी खेतियों का सत्यानाश हो चुका था। हिन्दू और मुसलमान दोनों ही जंगली जीवन बिताने लगे थे। एक मजबूरी से, दूसरा स्वभाव से। और इन्हीं गुणहीन मुस्लिम पापियों ने मध्यकालीन भव्य हिन्दू महलों को अपने अधिकार में कर लिया। उल्टा-सीधा नाम देकर उनपर मस्जिद और मकबरे का साइन बोर्ड लगा दिया। फिर इस बात पर अकड़ने लगे कि हमने इसे बनाया है।

लगातार मुग़ल आक्रमणों से परेशान होकर मोहम्मद मुग़ल दादाओं को भी अपनाने लगा। उन्हें अपनी ओर मिलाकर उनके देशवासियों के विरुद्ध ही उनका उपयोग करने का उसने विचार किया था।

उसने "एक नीच, दुष्ट और मूर्ख व्यक्ति अजीज हिमार को मालवा का गवर्नर बनाकर धार भेज दिया।"

(१२) कटलघ खाँ ने हिन्दू-लूट में से दिल्ली का हिस्सा भेजना बन्द कर दिया था। सुलतान ने उसको देवगिरी से वापिस बुला लिया। कटलघ खाँ की अनुपस्थिति में "हिन्दुओं और मुसलमानों ने बग़ावत कर दी।" देवगिरी की विस्फोटक परिस्थिति पर काबू पाने के लिए ब्रोच से कटलघ खाँ के भाई निजामुद्दीन को भेजा गया। यह बारहवाँ विद्रोह था। कटलघ खाँ की लूट-पाट से देवगिरी में एक ख़ज़ाना जमा हो गया था। सुलतान इसको दिल्ली लाना चाहता था। मगर उसकी हिम्मत नहीं हो रही थी। कहीं रास्ते में ख़ज़ाना लुट गया तो?

धार पहुँचने के साथ ही अज़ीज़ ने अपनी ताकत दिखानी चाही। "उसने अस्सी मुखिया लोगों और साधारण धनी व्यक्तियों को एक साथ पकड़ लिया। उनपर उपद्रव का आरोप लगाया तथा (भूतपूर्व हिन्दू) राज-महल के सामने सभी का सिर काट गिराया। जब सुलतान को इस दशा की सूचना मिली तो उसने अज़ीज़ को इज्जत की एक पोशाक तथा साधुवाद

का एक पत्र भेज दिया।" हत्यारे को इनाम देना मध्य-युग में कोई नई बात नहीं थी।

अनजाने ही बरनी यह रहस्य प्रकट कर देता है कि वह क्यों मुहम्मद की चिकनी-चुपड़ी चापलूसी करता था। वह कहता है कि—"मैं १७ वर्ष और ३ महीने मुहम्मद के दरबार में रहा। मुझे बराबर इनाम और बहुत उपहार मिलते थे।" जो जिसका खाएगा उसका गाएगा भी। प्रतिष्ठित इतिहासकारों को यह नहीं भूलना चाहिए। इसलिए बरनी ने अपने स्वामी के बारे में जो कुछ भी अनाप-सनाप भर रखा है उसपर आँख मूँदकर यकीन नहीं कर लेना चाहिए।

गुजरात के हिन्दुओं की लूट को बटोरकर मुक़बिल नामक एक मुस्लिम दुष्ट, गुजरात से ख़ज़ाना ला रहा था। बड़ौदा और दम्भोई के बीच के मार्ग में स्थानीय हिन्दू-सरदारों ने ख़ज़ाना वापिस अपने अधिकार में ले लिया। मुक़बिल अपनी जान लेकर भाग गया।

इसके बाद ये हिन्दू सरदार खम्भायत की ओर बढ़े। वहाँ का मुस्लिम काँटा भी इन्होंने उखाड़ फेंका। यह चौदहवाँ विद्रोह था। इन घटनाओं से घबराकर सनकी सुलतान लूट के लिए रिजर्व अपनी सेना लेकर गुजरात के फड़फड़ाते पर काटने के लिए दौड़ा आया। उधर कटलघ खाँ लूट मचाने के लिए एक निरंकुश राज्य की नींव डालना चाहता था। गुजरात के विद्रोही हिन्दू सिरों को काट-काटकर धरती पर गिराने के लिए उसने अपनी सेवाएँ सुलतान को समर्पित कर दीं। मुहम्मद स्वयं बहुत मक्कार था। वह कटलघ खाँ के इरादों को भाँप गया। सेवाओं की उपेक्षा कर वह खुद सेना लेकर निकला। अभी वह ३० मील ही चला होगा कि उसे यह समाचार मिला कि धार का अज़ीज़ भी बिना सुलतान की आज्ञा के, एक राज्य स्थापित करने के लिए गुजरात में घुस गया है और दुश्मनों से लोहा ले रहा है। मगर हिन्दू युद्ध के लिए तैयार थे। अज़ीज़ मारा गया। सेना भाग गई।

"विद्रोह के बाद विद्रोह होता गया"—बरनी कहता है—"सुलतान ने मुझे बुलाया और कहा—'तू देखता है न, किस प्रकार विद्रोह पैदा होते जा रहे हैं'।"

सुलतान गुजरात की ओर बढ़ा। दो लड़ाइयाँ हुईं। पहली दम्भोई के पास। दूसरी ब्रोच के समीप नर्मदा पर। हमेशा की भाँति बलात्कार, वेश्या-

वृत्ति धर्मान्तरण और गुलामी के लिए मुसलमानों ने हिन्दू नारियों और बच्चों को पकड़ा। सुलतान के एक गुर्गे मलिक मक़बूल ने ब्रोच के सभी मध्यवर्गीय लोगों को हलाल कर दिया। इसके बाद सुलतान ने एक-एक कर ब्रोच, खम्भायत आदि नगरों को घेर लिया। भूखे भेड़िये की भाँति उसने नागरिकों को एकदम नोच लिया। अपना पिछला बक़ाया और भावी दुर्दिन का एडवान्स उसे लेना था। जिसने इस नोच-खोंच का विरोध किया वह पंगु हो गया या मर गया।

"जब सुलतान ब्रोच में था तब उसने देवगिरी के असन्तोष को दबाने के लिए जीन बन्दा और रूक थानेश्वरी के मँझले बेटे को नियुक्त कर दिया। ये दोनों ही दुष्टों के नेता और भ्रष्टों के दादा थे। १५०० सैनिकों की टुकड़ी लेकर ये आये। इन लोगों ने मुश्किल से पहले पड़ाव तक यात्रा की होगी कि यह समाचार फैल गया कि सुलतान ब्रोच में इन सभी लोगों की हत्या कर देना चाहता है। अतएव इन लोगों ने बग़ावत कर दी। देवगिरी वापिस लौटकर इन लोगों ने गवर्नर निजामुद्दीन को पकड़कर तहख़ाने में फेंक दिया। इसके बाद सुलतान के सारे अफसरों का सिर उतार दिया। देवगिरी का ख़ज़ाना गुप्तरूप से धारागढ़ चला गया था। उसको वापिस देवगिरी लाया गया।

इस बग़ावत का समाचार पाकर सुलतान सेना के साथ देवगिरी रवाना हो गया। विद्रोही भाग गये। सुलतान ने देवगिरी को लूट लिया।

इधर सुलतान गुजरात से लौटा उधर ताघी नामक चमार ने बग़ावत का झंडा फहरा दिया। वह मारवाड़ दुर्ग की ओर बढ़ा। इसको लूटकर वह ब्रोच की ओर चल पड़ा। परेशान होकर सुलतान ने बरनी से कहा—"तू देख रहा है नये विदेशी अमीर चारों ओर कितना उपद्रव खड़ा कर रहे हैं?"

बरनी लिखता है कि एक बार तो उसकी इच्छा हुई कि वह सुलतान से यह कह दे कि "ये सभी हुज़ूरे आला की अत्यन्त निर्ममता (क्रूरता) के परिणाम हैं। मगर राजा की नाराजगी का डर मुझे लगा। मैं वह नहीं कह सका जो मैं कहना चाहता था।" क्या यह स्वीकृति साफ़-साफ़ लोगों को नहीं बताती कि बरनी एक खुशामदी था, चापलूस था, जी हज़ूरिया था? सुलतान ब्रोच पहुँचा। इसे फिर अपने अधिकार में किया। ताघी सुलतान से बचता रहा। सुलतान यहाँ वहाँ उसका पीछा करता रहा। इस दौरान

ताघी ने मारवाड़ के गर्वनर आदि कई लोगों की गरदन साफ़ की। ये लोग उसके बन्दी थे।

अन्त में, क्रूर-भोगी सुलतान ने बाग़ियों को मार भगाया। ताघी थट्टा और फिर घमरिला भाग गया। यहाँ उसे पनाह मिल गई।

सोलहवाँ विद्रोह देवगिरी में पनपा। बाग़ी नेता हसन गंगू था। सुलतानी सैनिकों से उसने चारों ओर का क्षेत्र छीनकर अपने आपको राजा घोषित कर दिया।

देवगिरी हाथ से गया। सुलतान का दिल टूट गया। उसने बरनी को बुलाकर कहा—"मेरा राज्य रोगी हो गया है। कोई भी दवा इसे स्वस्थ नहीं कर पा रही है। अगर मैं एक स्थान पर विद्रोह का दमन करता हूँ तो दूसरी जगह दूसरा विद्रोह उठ खड़ा होता है।" उसने देवगिरी की आशा छोड़ दी। वह गुजरात में ही अपनी स्थिति दृढ़ करने में लग गया। ताघी का पीछा उसने अभी तक नहीं छोड़ा था। वह उनके पीछे लगा रहा।

स्वभावत: जंगली मुस्लिम क्रोध और धर्मान्ध इस्लामी वेष में वह राह के सारे क्षेत्रों को कुचलता-मसलता आगे बढ़ता रहा। कांडल में वह बीमार पड़ गया। वह तीन वर्ष तक यहाँ से हिल नहीं सका। पैरों पर खड़े होने लायक वह हुआ तो फिर थट्टा की राह लगा। उसका अन्तिम पड़ाव थट्टा से सिर्फ़ २८ मील दूर था। अल्लाहताला भी इस मुस्लिम सनक़ी राजा की दुष्टता से तंग आ चुके थे। उन्होंने इसके जीवन में पूर्ण विराम लगा दिया।

इस हिंसक मुहम्मद तुग़लक़ की नृशंस कार्यवाही एवं रोमांचकारी क्रूरता के कुछ अनोखे और बेजोड़ उदाहरण इब्न बतूता ने भावी लोगों के लिए लिख छोड़े हैं। बतूता बतलाता है—

(१) "मुहम्मद का एक फुफेरा भाई मसूद था। इसको उसने बन्दी बना लिया। यातना के भय से मसूद ने स्वीकार कर लिया कि मैंने सुलतान के विरुद्ध षड्यन्त्र रचा था। मसूद का सिर उतार दिया गया और रिवाज के अनुसार उसकी लाश उसी स्थान पर (सड़ने के लिए) तीन दिन तक छोड़ दी गई। दो वर्ष पूर्व ठीक उसी स्थान पर, कुटनी और व्यभिचारिणी होने का आरोप लगाकर उसने अलाउद्दीन की पुत्री यानी मसूद की माँ को पत्थरों की वर्षा करवाकर मरवा डाला था।"

(२) "एक बार सुलतान ने दिल्ली के समीप ही पहाड़ियों में हिन्दुओं से लड़ने के लिए अपनी एक सैन्य टुकड़ी मलिक यूसुफ़ बुघ्रा को दी। यूसुफ़ के कुछ आदमी रवानगी के समय खिसक गये। कुछ दिल्ली क्षेत्र में पीछे ठहर गये। सुलतान ने सभी को खोज निकालने का कड़ा आदेश दे दिया। तीन सौ आदमी पकड़े गये। सभी को हलाल कर दिया गया।"

(३) "सुलतान की बहन के पुत्र बहाउद्दीन ने सुलतान से विद्रोह कर दिया। पीछा होने पर बहाउद्दीन ने राजपूत राजाओं से पनाह माँगी। इनमें एक कम्बिला का शासक भी था। मुहम्मद की सेना ने कम्बिला को घेर लिया। हिंसक जानवर की क्रूरता से वे सभी लोग सभी नारियों पर बलात्कार करने और घरों को जलाने में तल्लीन हो गये। मुसलमानों की क्रूरता से अपने को बचाने के लिए कम्बिला-दुर्ग की सारी नारियाँ आग में जल मरीं। बाक़ी लोगों ने वीर राजा के नेतृत्व में शत्रुओं पर तीखा हमला कर दिया। जबतक एक भी व्यक्ति ज़िन्दा रहा वे लोग लड़ते-मरते रहे। किसी प्रकार उनके ग्यारह छोटे-छोटे बच्चे पकड़ में आ गये। इन सभी बच्चों का खतना कर दिया गया। अपनी शर्मनाक शुरुआत से अनजान उनके कुछ वंशज अब अपनी मुस्लिम-जागीर और सम्पत्ति का दिखावा करते हैं। इनमें से तीन के नाम नसर, बख़्तियार और अबु मुस्लिम हैं।

बाद में बहाउद्दीन पकड़ा गया। उसके हाथ-पैरों को गर्दन से बाँधकर (यानी मुर्ग़ा बनाकर) सुलतान के सामने पेश किया गया।

हरम की स्त्रियों और रिश्तेदारों को आज्ञा दी गई कि वे उसका अपमान करें, उसकी खिल्ली उड़ावें और उसपर थूकें। इसके बाद जिन्दे बहाउद्दीन की चमड़ी छील दी गई। फिर उसकी चमड़ी को चावल में पकाकर पुलाव बनाया गया। इस पुलाव को बहाउद्दीन की पत्नियों और बच्चों को खिलाया गया। बाकी पुलाव को एक बड़ी तश्तरी में रखकर हाथियों को दावत दी गयी। मगर हाथियों ने इसे छुआ तक भी नहीं। इसके बाद बहाउद्दीन की लाश में घास-फूस भरा गया। इसी प्रकार घास-फूस से भरी और भी बहुत-सी लाशें थीं। इनमें से एक लाश बहादुर बुरा की भी थी। इन सारी लाशों में बहाउद्दीन की लाश को भी शामिल कर दिया गया और सारे राज्य में इन लाशों को जुलूस में प्रदर्शित करने के लिए भेज दिया गया। यह रोमांचकारी प्रदर्शनी सिन्ध पहुँची। इस खूनी दृश्य को देखकर

वहाँ का गवर्नर किशलू खाँ इतना आतंकित हो गया कि उसने सारी लाशें ज़मीन में दफ़ना दीं।

सुलतान ने भी सुना कि उसकी प्रदर्शनी ज़मीन में दफ़न हो गई है। उसने किशलू खाँ को फौरन दरबार में हाज़िर होने की आज्ञा भेजी। किशलू खाँ की समझ में आया कि उसका शरीर भी प्रदर्शनी में जाने वाला है। वह बाग़ी हो गया। सुलतान अपनी सेना लेकर उसपर टूट पड़ा। एक बार सुलतान बुरी तरह घिर गया। तब सुलतान ने अपने हमशक्ल इमामुद्दीन को अपनी पोशाक पहनाकर राज-छत्र के नीचे बैठा दिया। इमामुद्दीन घिर गया और मारा गया। सुलतान एक दूसरी सेना लेकर दूसरी ओर से बेख़बर लोगों पर टूट पड़ा। किशलू खाँ के एक साथी काज़ी करीमुद्दीन की चमड़ी छील दी गई। किशलू खाँ का सिर काट मुलतान में उसके महल-द्वार पर टाँग दिया गया।"

यह मुहम्मद तुग़लक़ था—एक खूँखार जंगली जानवर। इसकी इस्लामी दुष्टता को बड़ी सफ़ाई से छिपा दिया गया है। इसके बदले इस हिंसक जानवर को भलाई करने वाले सुलतान के रूप में चित्रित करने के कारण आधुनिक पाठ्य-पुस्तकें शर्म से पानी-पानी हो रही हैं, इस बलात्कार से ज़ार-ज़ार हो रही हैं। तुग़लक़ के चरित्र को ग़लत ढंग से पेश करने की कुख्याति में हमारे शिक्षकों, प्रोफेसरों और परीक्षकों को अब और नहीं डूबना चाहिए। असहाय छात्रों से इस क्रूर-भोगी मुस्लिम राक्षस मुहम्मद तुग़लक़ के कल्पित "सुधारों" और बेबुनियाद गुणों का मक्खन निकालने के लिए नहीं कहना चाहिए। इसने चौथाई शताब्दी तक हिन्दुस्तान को भूखे मारा है, उसकी पीठ में छुरा घोंपा है और उसपर पाशविक बलात्कार किया है।

(मदर इण्डिया, दिसम्बर १९६७)

: १५ :

फ़िरोज़शाह तुग़लक़

मुहम्मद तुग़लक़ की मृत्यु के बाद फ़िरोज़ गद्दी हथियाने में सफल हुआ। बदस्तूर यह भी एक अत्याचारी शासक था। इसे भी भारतीय इतिहासकारों ने हिन्दुस्तान की भलाई करने वाले सुलतान के रूप में अंकित और चित्रित किया है।

मुहम्मद तुग़लक़ ने थट्टा शहर हथियाने के लिए शहर से २८ मील दूर अपना तम्बू ताना था। आज उसकी मृत्यु का तीसरा दिन था। असंतुष्ट सेना इधर-उधर भाग रही थी। अपने जिद्दी और विद्रोहात्मक व्यवहार के कारण मुहम्मद तुग़लक़ ने सभी को अपना शत्रु बना लिया था। अब शत्रु उसके गिरोह, गुर्गों और अनुचरों से बदला चुकाने के लिए चारों ओर से उमड़ पड़े। टूटे खेमें और नेता-हीन सेना को भागते देख सामने से मुग़ल झपटे और पीछे से थट्टा दुर्ग के सैनिक। सारा सामान और ख़ज़ाना लूट लिया गया।

अति विलास से जर्जर और पौरुषहीन मुहम्मद तुग़लक़ का कोई पुत्र नहीं था। फ़िरोज़शाह ही उसका निकटतम सम्बन्धी था। भागती सेना का नियन्त्रण सूत्र उसने अपने हाथ में लिया। यह तुग़लक़-वंश की नींव डालने वाले गियासुद्दीन तुग़लक़ के एक हरम-भाई का पुत्र था। इसका जन्म १३०९ ई० में हुआ था।

फ़िरोज़शाह से दो पीढ़ी छोटा चापलूस इतिहासकार शम्स-ए-शिराज अफ़ीफ़ ने भावुक और सीधे-सादे लोगों के लिए उसके दुष्ट शासनकाल का एक खुशामदी और कल्पित किस्सा लिखा है। "प्रशंसा की अविराम धारा" इसमें बह रही है। (पृष्ठ २६९, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। बरनी के इतिहास में फ़िरोज़शाह के शासन-काल के एक भाग का ही वर्णन है। मगर

फिर भी इसके इतिहास का नाम तारीखे-फ़िरोज़शाही है क्योंकि इस इतिहास रूपी अरेबियन नाइट का अन्त फ़िरोज़शाह के शासनकाल में ही हुआ था। अफ़ीफ़ के इतिहास का भी यही नाम है। एक दूसरे इतिहास का नाम है "फतूहाते फ़िरोज़शाही" यानी फ़िरोज़शाह की दिग्विजय। यह दूसरी बात है कि उसे अपने सारे अभियानों में सिर पर पैर रखकर या दुम दबाकर भागना पड़ा था। इसे फ़िरोज़शाह ने स्वयं बोल-बोलकर लिखवाया है, अतः इसमें ऊट-पटाँग वर्णन होना स्वाभाविक ही है। इन्हीं रंगीन इतिहासों की ऊपरी चमक देखकर हमारा इतिहास मूढ़ लोगों द्वारा लिखा गया है।

कुख्यात खिल्जी अलाउद्दीन की लाइन में तीन तुग़लक़ प्यारे आई थे—गियासुद्दीन, रजब और अबुबकर। दीपलपुर के हिन्दू राज्य को नष्ट-भ्रष्ट करने के लिए अलाउद्दीन ने इन तुग़लक़-गुण्डों को खुला छोड़ दिया था। यह सुनकर कि वहाँ के हिन्दू शासक राणा मल्ल भट्टी की पुत्री अति रूपवती है, इन तुग़लक़ों ने उसके अपहरण की योजना बनाई। मुस्लिम कुकर्मियों ने अपनी बेटी सौंप देने का समाचार राणा को भेज दिया। इस अपमानजनक माँग से राणा जल उठा। उन्होंने बड़ा कड़ा प्रतिवाद भेजा। इस उत्तर से उत्तेजित होकर और राणा की रानियों पर बलात्कार करने की लालसा लेकर खिल्जी-तुग़लक़ संयुक्त सेना राणा के राज्य की सारी स्त्रियों पर बलात्कार करने और सारे असुरक्षित नगरों तथा घरों को लूटने के लिए निकल पड़ी। प्रजा हाहाकार कर उठी। इन गुण्डों के अमानुषिक अत्याचारों को सुन-सुनकर राजमाता अत्यन्त ही दुखित हो गईं। उनके विलाप को राजपुत्री नीला नहीं देख सकी। मुस्लिम विलास की बलिवेदी पर उसने अपनी पवित्रता और कौमार्य का बलिदान करने का संकल्प कर लिया ताकि हज़ारों स्त्रियों की पवित्रता और विनाश को रोका जा सके। अन्ततः मुस्लिम कारनामों के आगे राणा को झुकना पड़ा। उन्होंने अपनी पुत्री समर्पित कर दी। वह रजब के हरम में भेज दी गई। नामकरण हुआ क़दबानो। इस प्रकार एक हिन्दू ललना के बलात्कार से फ़िरोज़शाह के समय का आविर्भाव हुआ।

फ़िरोज़शाह का बलात्कारी बाप फ़िरोज़ के जन्म के ७ वर्ष के बाद ही मर गया था। इस प्रकार गियासुद्दीन और मुहम्मद तुग़लक़ दोनों ने फ़िरोज़शाह को मुसलमानी कारनामों की शिक्षा देकर ट्रेण्ड किया था।

फ़िरोज़शाह का उत्तराधिकार विरोधहीन था। गियासुद्दीन की बेटी अपने पुत्र को सुलतान घोषित कर रही थी जबकि फ़िरोज़ मुग़लशाह और थट्टा की संयुक्त सेना का विजेता (?) था। विजय तो दूर रही, फ़िरोज़ को अपनी जान बचाकर भागना पड़ा था। बहाना भी उसके पास अच्छा था। पहला तो यही कि यह अभियान उसके मन लायक नहीं था। दूसरे उसे दिल्ली लौटने की भी जल्दी थी ताकि कोई दूसरा तख़्त पर बैठकर उसका रास्ता ही बन्द न कर दे। कपटी और झूठे अफ़ीफ़ ने डूब मरने लायक सारी पराजयों को महान् विजय का ताज पहनाया है। वह लोगों को बतलाता है—"मुग़ल भाग गये, वह पूर्ण विजयी हुआ।" (पृष्ठ २७८, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)। मगर पृष्ठ २८९ पर एकाएक भण्डाफोड़ हो जाता है। जनाब लिखते हैं—"सेना बुरी तरह फँस गई थी। उसे दिल्ली भागना पड़ा।"

पराजित और हतप्रभ सेना को लेकर फ़िरोज़ मुलतान की ओर चला और उसके बाद उसने दिल्ली पर आक्रमण करने का निश्चय किया। उसका ख़ज़ाना खाली हो चुका था। खाने को दाना भी नहीं था। तब वह मुलतान, दीपलपुर, अयोध्या और सरस्वती (सरसुती) को लूटने में लीन हो गया। इन डकैतियों से उसे जो मिला उसी को बटोर लिया। नागरिकों एवं ग्रामीणों से उसने क्रूरतापूर्वक अस्त्र-शस्त्र और धन छीन लिया। लोगों को बन्दी बनाकर, पीड़ा और यातना की चक्की में पीस, मुसलमान बना उन्हें हिन्दुओं से ही लड़ने के लिए तैयार किया।

प्रायः लोग आश्चर्य करते हैं कि मुसलमानों के आगे भारत ने घुटने क्यों टेक दिए! उत्तर में बड़े विस्तार से बताया जाता है कि इस्लाम के दर्शन एवं नियमों से लाखों हिन्दू अभिभूत हो उठे और अपनी इच्छा से अपना धर्म त्याग, इस्लाम धर्म ग्रहण किया।

मुसलमानी कुतर्क एवं मिथ्यावाद का यह एक ज्वलन्त और अनोखा उदाहरण है। इसके दो उत्तर हैं—

(१) यह सरासर ग़लत है कि हिन्दुस्तान को इस्लाम ने आसानी से कुचला और रौंदा, उल्टे हिन्दू इस्लाम से ११०० वर्षों तक जान हथेली पर रखकर लड़ते रहे और अन्त में वे इस भीषण समर में सफलता प्राप्त करके ही रहे। इस घनघोर समर की लम्बी काल-रात्रि के जाज्वल्यमान नक्षत्र

राणा प्रताप, छत्रपति शिवाजी एवं सिक्ख गुरुओं ने इस विशाल मुस्लिम अजगर पर ऐसे भयंकर वार किये कि पीड़ा से छटपटाकर अन्त में वह निर्जीव हो इसी भूमि पर लेट गया। निःसन्देह क्रूर मुस्लिम प्रहारों से हिन्दुत्व घायल हुआ, अपंग और अपमानित भी हुआ, मगर हारा नहीं। कोई नहीं कह सकता कि हिन्दुत्व हारा है। अफ्रीका से इण्डोनेशिया तक के अन्य देशों पर एक बार नज़र दौड़ाइए। यहाँ इस्लाम सफल हुआ है। पीड़ा और यातना की चक्की में इन देशों की सारी जनता को पीसकर उसने उन्हें मुसलमानी आटा बना दिया है। सारी-की-सारी जनता मुसलमान हो गई है। जबकि पवित्र गंगा और वीर क्षत्रियों की धरती भारत में, अभी भी ४५ करोड़ हिन्दू सीना ताने खड़े हैं। क्या यह पराजय है ?

फिर भी यह स्वीकार करना होगा कि इस्लाम के हाथों जो पीड़ा और अपमान हिन्दुत्व ने भोगा है, वह बेमिसाल है। इस्लाम की काली सफलता का श्रेय इस्लाम के नियम एवं दर्शन को नहीं मिल सकता। भरती के इस्लामी तरीकों ने इस्लाम का डंका बजाया है। मुसलमानी सन्तों के बारे में हम क्या कहेंगे ? मुस्लिम इतिहासकार ही लोगों को बतलाते हैं कि जिन मुस्लिम धर्म-प्रचारकों की आज हम बड़ाई करते हैं, उन्हीं के समकालीन लोग उनके नाम पर थूकते थे, और उनसे घृणा करते थे। इस्लामी धर्म और दर्शन की काल्पनिक बकवास में अगर कुछ दम हो भी तो इस्लामी कारनामों ने भारतीयों के हृदय में ऐसी अनास्था और घृणा कूट-कूटकर भर दी थी कि मुसलमान बनने के बदले वे अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को जलाकर राख कर देना अच्छा समझते थे। भारत के सामने इस्लामी जीवन-यापन का जो मार्ग इतिहास पेश करता है, उसमें सिर्फ़ बलात्कार, लूट, आगज़नी, पीड़ा, व्यभिचार, वासना, नर-भोग, शराबी महफ़िल, वेश्यावृत्ति, बुर्का-बन्दी, अँधेरे तहख़ाने और नशीली दवाई सेवन के अतिरिक्त और कुछ नहीं है।

प्रत्येक धार्मिक और श्रद्धालु हिन्दू के हृदय में इस्लाम के प्रति इतनी घृणा भरी रहने के बावजूद भी यदि आज मुसलमानों की इतनी अधिक संख्या है तो इसका कारण मुसलमानी भरती के इस्लामी तरीक़ों में है, जिसे क़ासिम, ग़ज़नवी, गौरी, ख़िल्जी, और मुग़ल शैतानों के बाप ने अपनाया था। खून में नहलाया भी जाता था। अपने ही बाप और बेटों की कलेजी

पकाकर खिलाई भी जाती थी। इससे पहले किसी भी आक्रमणकारी ने बलात् धर्म-परिवर्तन के काले-जादू का प्रयोग नहीं किया था। बलात् धर्म-परिवर्तन के इस तरीक़े में भेद-नीति के कई तन्तु सूक्ष्म रूप में छिपे हुए थे। उन लोगों को विदेशी पोशाक पहन, विदेशी नाम धारण कर, मुक्ति पाने के लिए विदेशी तीर्थ-स्थानों का मुंह देखना पड़ता था। अभारतीय फ़क़ीरों की कब्र पर ही नहीं वरन् मसूद जैसे लुटेरे की कब्र के आगे सिर झुका अपने आपको अरबी, तुर्की या ईरानी समझना पड़ता था।

इस तरीक़े ने एटम बम का काम किया और प्रलय की ऐसी आँधी बहा दी कि कल का धार्मिक, श्रद्धालु और सभ्य हिन्दू रातों-रात द्रोही, दुराचारी और गुण्डा बन जाता। यही इस्लामी यातना का कमाल था। वह पक्का मुसलमान बन जाता। मगर वे यहीं तक न रुके। वे लाखों लोगों को लगातार मुसलमान ही नहीं बनाते गए वरन् उन्हें तलवार की नोक पर मजबूर भी करते गए कि वे अपने ही भाइयों को (यानी पूर्ववर्ती भाइयों को) लूट लें और अपनी ही बहनों को मसल दें। सामूहिक धर्म परिवर्तन एवं बलात् भरती का यह एक रोमांचकारी उदाहरण है। मुट्ठी भर मुस्लिम गुण्डे भारत में आए और इस ख़ूनी जोड़-गाँठ से दिन दूने और रात चौगुने बढ़े। दूसरे रक्त-रंजित उपायों का भी सहारा लिया गया। हिन्दू शासकों को ललकारने के बदले वे लूट और बलात्कार करने निकल पड़े तथा खेतों, ग्रामों, नगरों और शहरों के स्त्रियों, बच्चों और लोगों को यातना दे-देकर मुसलमान बनाने लगे। इस प्रजा-पीड़न प्रणाली के सामने हिन्दू शासक एवं उनकी सेना अपने आपको असमर्थ और हताश पाती थी तथा इस गुण्डागर्दी को रोकने के लिए उनकी माँगों के आगे झुक जाती थी।

इसी प्रजा-पीड़न प्रणाली ने दीपलपुर के हिन्दू शासक का मनोबल तोड़ दिया था। विवश हो उन्हें अपनी प्यारी बेटी का बलिदान मुस्लिम गुण्डागर्दी और व्यभिचार की बलिबेदी पर करना पड़ा। न चाहते हुए भी उन्हें एक मुसलमान का नाना बनना पड़ा, जो बाद में इस्लामी-यातना का एक क्रूरतम संचालक हुआ।

फ़िरोज़शाह मुग़लों से गद्दी हथियाने दिल्ली की ओर मुड़ा। मार्ग में पड़ाव डाला। यहाँ उसे एक पुत्र हुआ, जिसका नाम उसने फ़तह खाँ रखा। इतिहासकार अफ़ीफ़ लोगों को बतलाता है—"सुलतान ने यहाँ एक नगर

की नींव डाली, जिसका नाम उन्होंने फ़तहबाद रखा।" (वही, पृष्ठ २८३)। कैसे दुःख की बात है कि ऐसी स्पष्ट जालसाजियों पर भी हमारे इतिहासकारों ने विश्वास कर लिया है। फ़िरोज़शाह ने सिर्फ़ इतना ही किया कि इनका नाम बदल दिया। इसपर भी अफ़ीफ़ जैसे नीच चापलूस पर, आँख मूंदकर विश्वास करके आज के इतिहासकार नगरों, शहरों, महलों, बागों, नहरों, पुलों, दुर्गों और भवनों की एक लम्बी सूची पेश कर उन सभी के निर्माण का श्रेय फटेहाल और अभावग्रस्त फ़िरोज़शाह को देते हैं, जिसे अपने सुबह-शाम के भोजन के लिए भी डकैती करनी पड़ती थी।

८० वर्षीय ख्वाजा-ए-जहान ने पहले तो फ़िरोज़शाह का विरोध करने के लिए कि उसका दिल्ली प्रवेश न हो सके, शक्ति का संचय किया था, मगर बाद में उसने अपना विचार बदल दिया क्योंकि फ़िरोज़शाह में अपने कुख्यात पूर्वजों की धूर्तता, मक्कारी, चालबाज़ी और भयंकरता कूट-कूटकर भरी हुई थी। फ़िरोज़शाह से समझौता करने वह उसके पास गया। बुढ़ापे में बेचारा सठिया गया था।

फ़िरोज़शाह ने उसकी खूब आवभगत की। अपने खूनी स्वामी के आगे संकटग्रस्त व्यक्ति जिस इस्लामी तरीक़े से समर्पण करता है उस इस्लामी पद्धति का पूरा-पूरा पालन इसने किया। "गले में जंजीर बाँध, पगड़ी उतार, नंगी गर्दन पर नंगी तलवार लटका, फ़िरोज़शाह के सामने ख्वाजा हाज़िर हुआ और दरबार के नौकरों की कतार में खड़ा हो गया।"

इस सम्पूर्ण आत्म-समर्पण के उपरान्त भी फ़िरोज़शाह ने बड़े प्रेम से उसकी गर्दन उतार दी। वह बूढ़ा आदमी आँखें बन्द किये अल्लाह की याद में झुका नमाज़ पढ़ रहा था। पीछे से दो आदमी उसपर कूद पड़े और उस की गर्दन रेत दी।

अफ़ीफ़ का इतिहास भी झूठों का पुलिन्दा है। शैतान फ़िरोज़ को उसने एक सच्चे साधु के रूप में चित्रित कर सारे दैवीय-गुणों एवं साधु नियमों पर काली पुताई कर दी है।

दिल्ली में घुसकर फ़िरोज़शाह ने उन सभी से भयंकर बदला लिया जिसने उसकी वापिसी के विरोध में षड्यन्त्र किया था। यद्यपि उसने सभी का दमन कर दिया मगर वे सभी असन्तोष से उबल रहे थे।

जुम्मे की नमाज़ के बाद अपने पूर्वजों के हरम का निरीक्षण करना

फ़िरोज़शाह का स्वभाव था। हरम के एक छोर पर गियासुद्दीन की बेटी खुदाबन्दज़ादी अपने पति खुसरू मलिक के साथ रहती थी। अपने कामुक प्रवेश के समय फ़िरोज़शाह इसके साथ कामुक व्यवहार करता था। फ़िरोज़शाह का यह विश्वास था कि जुम्मे की नमाज़ का पुण्य उसके हरम-प्रवेश की कामुक कालिमा को धो-पोंछकर साफ़ कर देगा और उसका दामन पाक और साफ़ ही रहेगा। फ़िरोज़शाह के व्यभिचारी व्यवहारों से तंग खुदावन्दज़ादी के पति ने हत्यारों के एक दल को बाहरी-कक्ष के बाहर की झाड़ी में छिपा दिया, जिसमें फ़िरोज़शाह उसकी पत्नी के साथ बैठता था। सदा की भाँति, जुम्मे की नमाज़ के बाद फ़िरोज़शाह खुदावन्दज़ादी एवं अन्य स्त्रियों के साथ रंगरेलियाँ मनाने आया। हत्यारे उसपर झपट पड़े। मगर उसकी अपहृत माता की जाति के एक हिन्दू राजपूत राय ने इन हत्यारों को उलझा लिया। भयभीत सुलतान भवन से बाहर भागकर अपने अंगरक्षकों के बीच में जा छिपा। इस घटना से वह इतना भयभीत हो गया कि उसने हरम में जाना ही बन्द कर दिया। इसके बदले में उसने एक नया स्थान चुना, जिसके चारों ओर उसके विश्वासी आदमी तैनात रहते थे। यहाँ वह बटोरी हुई वेश्याओं में विहार करता रहता था।

अपने विरोधियों का सफ़ाया एवं दमन करते हुए फ़िरोज़शाह ने दिल्ली में कई वर्ष व्यतीत कर दिए। अब ख़ाली मुस्लिम ख़ज़ाने को भरने की ज़रूरत महसूस कर उसने हिन्दू-लूट अभियान की योजना बनाई।

भारत के सभी मध्यकालीन मुस्लिम शासक चाहे वे दिल्ली के बादशाह हों या सुलतान, या बिदार, गुलबर्ग, बीजापुर, अहमदनगर, गोलकुण्डा, हैदराबाद, मैसूर, अवध या बंगाल के छोटे शासक हों, सभी राजा के रूप में डाकू या डाकू के रूप में राजा थे। ये डाकूराज देश को लूटने के उद्देश्य से अपने लुटेरे गिरोहों को भेजते थे और लूट के माल से ख़ाली ख़ज़ाना भरते थे। नहीं, नहीं, ये डाकुओं से भी गए गुज़रे थे। सचमुच के डाकू सिर्फ़ सम्पत्ति ही लूटते हैं और ये मुस्लिम गिरोह स्त्रियों पर बलात्कार करते थे, बच्चों का अपहरण करते थे, मन्दिर को अपवित्र कर मस्जिद या वेश्यालय बनाते थे, बन्दियों को गुलाम बनाकर पश्चिम एशिया के मुस्लिम बाज़ारों में बेच देते थे और छोटे बच्चों को काम-तुष्टि के लिए रख लेते थे। फ़िरोज़शाह भी एक ऐसा ही व्यक्ति था। एक ऐसा ही डाकू राजा था।

लूट और बलात्कार के लिए चारों ओर नज़र दौड़ाकर, १३५३ ई० में फ़िरोज़शाह ने बंगाल पर अपनी लोलुप दृष्टि गड़ाई। इसकी राजधानी लखनौटी थी। "जब वह कोसी के किनारे पहुँचा तो उसने दूसरी ओर शम्सुद्दीन की सेना को तैनात पाया।" फ़िरोज़शाह के साथ ७०,००० मुस्लिम गुण्डों की सेना थी, जो सारे रास्ते हिन्दू क्षेत्रों को लूटती रही थी। दिल्ली की मुस्लिम सेना ने शम्सुद्दीन को घेर लिया। झड़पों का आरम्भ हुआ। दोनों ही मुस्लिम सेनाएँ समीपवर्ती हिन्दू घरों और खेतों को चूसती गईं और आपस में लड़ती रहीं। अन्त में फ़िरोज़ को फ़रार होना पड़ा। फ़िरोज़शाह की हालत इतनी पतली हो गई थी कि उसे अपने सारे सामानों के साथ तम्बुओं को छोड़, जल्दबाज़ी में जिसे जला सका उसे जलाकर, सिर पर पैर रखकर भागना पड़ा था। बंगाल का मुस्लिम सुलतान शम्सुद्दीन उसकी पीठ पीछे ही था। अतः सुलतान फ़िरोज़शाह दुम दबाए कुत्ते की तरह भागता ही गया, भागता ही रहा। इसपर भी झूठा इतिहास-कार अफ़ीफ़ बड़ी बेशर्मी से इसे अपने स्वामी की हार नहीं, जीत मानता है। कम-से-कम भागने में तो वह जीत ही गया!

अपनी इस शर्मनाक हार का बदला लेने के लिए कायर सुलतान फ़िरोज़ ने एक बहुत ही नीच काम किया। बीवी पर ज़ोर न चल सका तो न सही, गधे की गर्दन तो पकड़ी जा सकती है। मुसलमानी-क़त्लेआम, एक ऐसी घटना है, जिसे लोग सात क्या सात सौ जन्मों में भी नहीं भूल सकते। इसलिए उसने आज्ञा जारी की कि असहाय और ग़रीब बंगाली (यानी हिन्दू) जहाँ कहीं भी मिलें उन्हें ख़त्म कर दिया जाए। "प्रत्येक सिर के लिए एक चाँदी का टंका दिया गया। सारी सेना इस काम पर जुट गई और कटे मुण्डों का ढेर लगाने लगी। कटे सिर १,८०,००० से भी ज्यादा थे।" किसानों, ग्रामीणों एवं नागरिकों को काट, कटे मुण्डों का ढेर लगाना मुसल-मानी मनोविलास था। भारत में यह शैतानी नाच ११०० वर्ष तक होता रहा। "महान् और दयालु" अकबर भी इसी प्रकार अपना समय काटता था।

इससे यह स्पष्ट है कि हिन्दुओं की सामूहिक हत्या का खुला हुक्म दिया गया था। प्रत्येक कटे सिर के साथ सिपाही सिर वालों की सम्पत्ति

भी लाते थे। इस सम्पत्ति में से वे एक चाँदी का सिक्का रख सकते थे और शेष सुलतान को समर्पित होता था।

हिन्दू लखनौटी के विदेशी शासक शम्सुद्दीन ने सोनार गाँव को लूटने के लिए फ़िरोज़शाह का पीछा छोड़ दिया। यहाँ की गद्दी पर भी एक दूसरा मुस्लिम लुटेरा फ़ख़रुद्दीन उर्फ़ फ़ख्र बैठा हुआ था। इसे पकड़कर मार दिया गया। अब शम्सुद्दीन फ़ख़रुद्दीन के हरम में जाने लगा। उसके सभी साथी मारे जा चुके थे। फ़ख्र का दामाद ज़फ़र खाँ हिन्दू घरों को लूटने के लिए अपनी राजधानी से बाहर था। आतंकित हो वह दिल्ली भाग गया। शम्सुद्दीन से हारा फ़िरोज़ ज़फ़र खाँ जैसे गुण्डे को पाकर बड़ा प्रसन्न हुआ। इस हथियार से वह शम्सुद्दीन को ठोंक सकता था और फिर इसे ठिकाने लगाना कौन-सी बड़ी बात थी?

मुस्लिम दुराचारियों और नये मुसलमानों की भारी फ़ौज लेकर वह आगे बढ़ा। ये नये मुसलमान दुराचार का पाठ सीख रहे थे। साथ के दरबारियों में एक तातार खाँ भी था। कूच करती मुस्लिम सेना ने हमेशा गिद्धों की भाँति, मार्ग स्थित हिन्दू नगरों, शहरों और गाँवों को नोच-नोचकर खाया है। हिन्दू स्त्रियाँ घरों से घसीट लाई गईं और सुलतान से लेकर कुली तक ने उनपर बलात्कार किया। इसलिए इन अभियानों के दौरान काम-वासना के विभिन्न आसनों में नंगे बैठे अनेक मुसलमानों को व्यभिचार में लीन पाना एक साधारण दृश्य था। अनजाने ही अफ़ीफ़ मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों के इस जीवन के पक्ष का दृश्य भी प्रस्तुत कर देता है।

अफ़ीफ़ हमें बतलाता है—"समय-समय पर सुलतान शराब में डूब जाया करता था। शराब कई रंगों एवं स्वादों की होती थी। एक दिन सुबह नमाज़ के बाद सुलतान शराब की एक प्याली से अपना खुश्क गला भिगो रहा था कि तातार खाँ उससे मिलने आया। रंग में भंग पड़ते देख सुलतान चिड़चिड़ा उठा। उसने उसे किसी बहाने पार कर देने को कहा।" (वही, पृष्ठ ३०६)। मगर तातार खाँ चकमे में आने वाला नहीं था। एक के बाद दूसरे परदे को चीरता हुआ, भारी कदमों से हरम के वर्जित स्थान के अन्तिम छोर तक चला आया। भारी कदमों की आहट से फ़िरोज़ एवं उसकी विवश हरमज़ादियाँ आड़ ढूँढ़ने लगीं। नंगे शरीरों को चादर आदि से उन्होंने ढक लिया। बिखरी सुराहियों, प्यालों एवं बोतलों पर जल्दी से

एक चादर डाल दी गई, जिसके नीचे से वे सभी झाँक भी रहे थे। बिस्तर के नीचे छिपे सुलतान को तातार खाँ ने घसीटकर निकाला। जो चादर सुलतान ने लपेट रखी थी वह गिर गई और लीजिए, देखिए ! तातार खाँ के सामने नंगा फ़िरोज़ खड़ा था। एक नीच हत्यारा और तबाही का देवता फ़िरोज़ ! जिसे भारतीय इतिहास महान् निर्माता और प्रजा-पालक मानता है।

मुस्लिम गुण्डों को शस्त्रों से सजाने एवं खिला-पिलाकर तैयार करने के लिए फ़िरोज़ नगरों को लूटता एवं हिन्दुओं की चमड़ी उधेड़ता छः महीने तक जौनपुर क्षेत्र में ही भटकता रहा। जब वह लखनौटी के पास पहुँचा उस समय तक शम्सुद्दीन मर चुका था और सिकन्दर गद्दी पर था। इकदाला के द्वीप में सिकन्दर ने सुरक्षा का उपाय किया। बंगाल की सेना ने दूसरी बार फ़िरोज़ की नाक लाल कर दी। उसे इतनी क्षति पहुँची कि भूख से घुट-घुटकर मर जाने के बदले, "सुलतान ने इकदाला दुर्ग में ८,८०,००० टंका का एक ताज और ५०० क़ीमती घोड़े भेजे। सिकन्दर की गद्दी के चारों ओर सात बार परिक्रमा कर दूत मलिक काबुल ने ताज सिकन्दर के सिर पर रख दिया। (यानी ज़फ़र खाँ और उसके सिरपरस्त फ़िरोज़शाह को नाक कटवाकर वापिस भाग आना पड़ा)। सुलतान जौनपुर की ओर बढ़ा। (यानी छः महीने में ही एक नगर की नींव खुदी और वह बनकर तैयार ही नहीं हो गया, वरन् लोगों से भरे-पूरे एक खुशहाल और सम्पन्न नगर की बराबरी भी करने लगा।

बंगाली अभियान में सबकुछ खोकर सुलतान फ़िरोज़ ने हिन्दू क्षेत्र जाज नगर को नोचने का निर्णय किया। "(हिन्दू राज्य होने के कारण) यह एक फलती-फूलती अवस्था में था। अन्न और फल भरपूर थे। इससे (मुस्लिम गुण्डों की) सेना की तथा पशुओं की सारी आवश्यकताएँ पूरी हो गईं और (बंगाली) अभियान की कठिनाइयों से राहत मिल गई।" (पृष्ठ ३१२, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

अफ़ीफ़ बतलाता है—"जाज नगर (जगन्नाथपुरी) के हिन्दू राजा अदय नगर से बाहर गए हुए थे, अतएव फ़िरोज़ ने उनके महल पर अधिकार कर लिया। हिन्दू राजाओं की यह परम्परा रही है कि वे दुर्ग में कुछ-न-कुछ नया भाग बनाते-जोड़ते रहते थे। इसलिए वे दुर्ग काफ़ी विशाल हो गए

थे।" इस विवरण को पढ़कर इतिहासकारों की आँखें खुल जानी चाहिए कि खण्डहरों में बिखरे मध्यकालीन महल मुस्लिम-पूर्व के हिन्दू-निर्माण हैं। मुसलमानों ने इन्हें छीनकर मकबरा या मस्जिद बना दिया है। सुलतान की आज्ञा से इस नगर के असुरक्षित हिन्दू नागरिकों को मुस्लिम यातना-यन्त्र में पीसा गया। "कुछ निवासियों को बन्दी बनाया गया, शेष भाग गए। प्रत्येक प्रकार के पशुओं की संख्या इतनी अधिक थी कि कोई भी उनके लिए छीना-झपटी नहीं करता था। भेड़ों को गिना नहीं जा सकता था और प्रत्येक पड़ाव पर अनगिनत भेड़ें काटी जाती थीं।" मुस्लिम गिरोहों ने ११०० वर्ष तक मनुष्यों, पालतु-पशुओं, जानवरों, महलों, नहरों, बागों और खेतों का विनाश कर भारत को दर-दर का भिखारी बना दिया।

भूखे भेड़िये की भाँति फ़िरोज़ ने जगन्नाथ मन्दिर में प्रवेश किया, जो चार प्रमुख तीर्थों में से एक है और वह महमूद सुबुक्तगीन की नक़ल करते हुए मूर्त्ति को उखाड़कर, दिल्ली ले आया और उसे एक अपवित्र जगह पर रख दिया।

इस्लामी रीति-रिवाज के अनुसार जगन्नाथ पुरी के पवित्र मन्दिर एवं नगर को अपवित्र एवं नष्ट कर फ़िरोज़शाह सागर तट के समीप चिल्का क्षेत्र की ओर बढ़ा। इस शैतान के भय से १ लाख लोगों ने भागकर चिल्का झील में शरण ली थी। काफ़िरों (यानी हिन्दुओं) के खून से सुलतान ने इस द्वीप को रक्त-पूर्ण कर दिया। इस क़त्लेआम से बचे लोगों, खास तौर से स्त्रियों को "सिपाहियों में गुलाम के रूप में बाँट दिया गया" (यानी मुस्लिम नौकरों तक ने हिन्दू स्त्रियों के साथ बलात्कार किया है)। "बच्चों वाली, गर्भवती स्त्रियों को हथकड़ियों और बेड़ियों से जकड़ दिया गया और हिन्दुओं का नामोनिशान तक मिटा दिया गया।"

देर से आने वाली हिन्दू सेना ने, मुस्लिम सुलतान की अक़्ल दुरुस्त कर दी। उसे भागना पड़ा। अफ़ीफ़ के वर्णनों से हम सुलतान की हालत का पतलापन नाप सकते हैं कि लखनौटी और जगन्नाथ पुरी में २ वर्ष और ७ महीने व्यतीत करने के बाद फ़िरोज़ अपने साथ ७३ हाथी ही ला सका था, अगर यह ७३ हाथी भी बढ़ा-चढ़ाकर नहीं लिखे गए हों तो सुलतान ऐसा ताबड़तोड़ भागा कि "मार्गदर्शक मार्ग भूल गए, सेना पहाड़ों पर चढ़ती-

उतरती थककर चूर-चूर हो गई। न रास्ता मिलता था न दाना। छः महीने तक सुलतान का कोई भी समाचार दिल्ली नहीं पहुँचा'''छः महीने के बाद जब वह दिल्ली पहुँचा तो उसने खुदा का शुक्रिया अदा किया।" इसी समय झूठे इतिहासकार नीच बरनी का इन्तक़ाल हो गया। "अपने शासन-काल के ऐतिहासिक विवरणों के न लिखे जाने से निराश होकर फ़िरोजशाह ने अपनी रचना की इन पंक्तियों को खुश्क-ए-शिकार की दीवारों पर स्वर्णाक्षरों में लिखवाया—"मैंने बड़े-बड़े हाथियों का शिकार किया है। मैंने अनेक महान् कार्यों को सम्पन्न किया है," (वही, पृष्ठ ३१६)। इससे मुस्लिम सुलतान एवं उसके चापलूस इतिहासकार की इस जालसाज़ी का भंडाफोड़ हो जाता है कि मुफ्त में नाम कमाने के लिए हिन्दू भवनों पर ही नक़ली नामपट्ट और झूठी कीर्ति-कहानी खोद दी गई हैं।

सब कुछ गँवाकर और नाक कटवाकर, फ़िरोज दूसरी बार बंगाल और जगन्नाथपुरी से फटेहाल वापिस लौटा, मगर अफ़ीफ़ लोगों को विश्वास दिलाना चाहता है कि "सुलतान निर्माण-कार्य में ही लगे रहते थे एवं फ़िरोज़ की शासन-कुशलता के कारण लोग प्रसन्न थे। वे फल-फूल रहे थे।"

नवीन-क्षेत्र-विजय प्रयास में असफल हो फ़िरोज़ ने दूर दौलताबाद में अपनी किस्मत आज़मानी चाही। यह दौलताबाद सैकड़ों बार मुस्लिम तबाही का शिकार बना था। फ़िरोज़शाह मुश्किल से ही बयाना तक पहुँचा था कि राजपूतों के गुरिल्ला युद्ध से पस्त और त्रस्त होकर वह वापिस दिल्ली भाग आया। अफ़ीफ़ की मूर्खता से मुस्लिम झूठ का एक पर्दा और फाश होता है जब वह दौलताबाद की कूच को "शिकार-अभियान" कहता है। 'नकटे इतिहासकार' अबुल फ़ज़ल और उसके साथियों ने अकबर की लूटमार को उसी नाम से सम्बोधित किया है। फिर भी हमारे सीधे-सादे इतिहासकार नहीं समझ पाते कि "शिकार" का मुसलमानी अर्थ है—"हिन्दू सिर-तोड़, हिन्दू शील-हरण अभियान।"

दक्षिण का पथ बन्द पाकर फ़िरोज़ १३६१ ई० में पंजाब के नगरकोट की ओर मुड़ा। छः महीने के घिराव के बाद विख्यात ज्वालामुखी मन्दिर की प्रतिमा के आगे सिर झुकाकर, "नगरकोट के राय को छत्र एवं सम्माननीय वस्त्रादि दे", किसी प्रकार वह जान बचाकर भाग सका।

मुहम्मद तुग़लक़ की तबाही के बाद नगरकोट (कांगड़ा) के हिन्दू

शासकों ने अपनी हिन्दू स्वतन्त्रता पुनः प्राप्त कर ली थी। नगरकोट के सम्पन्न ज्वालामुखी मन्दिर को देख-देखकर मुस्लिम चोरों की आँखें चमकने लगती थीं। हम लोगों को बतलाया जाता है कि इस कूच के दौरान फ़िरोज़-शाह एक स्थान पर एक दुर्ग एवं एक नहर बनाने के लिए ठहरा था। यह आठवाँ आश्चर्य है कि आर० सी० मजूमदार, डा० ईश्वरीप्रसाद, श्री एस० आर० शर्मा, सर वेस्सले हेग एवं मोरले जैसे इतिहासकारों ने इस कल्पित बकवास पर विश्वास कर लिया है कि फ़िरोज़शाह जैसा शैतान एक महान् विद्वान् था, कि वह एक प्रजा-पालक और प्रजावत्सल शासक था, कि समय-समय पर प्रसारित उसकी आज्ञाएँ उसे सीधा, सच्चा, महान् और कुलीन प्रमाणित करती हैं। वह एक निर्माता था। ये सभी दावे सफ़ेद झूठ हैं।

सुलतान या बादशाह का शिकार पर जाना एक ऐसा धागा है, जिसमें सारे मुस्लिम इतिहास गुँथे हुए हैं। यह भी एक प्रकार की बकवास है। इस शिकार के बहाने वे साधारण जनता एवं शक्तिशाली हिन्दू राज्यों की आँखों में धूल झोंकते थे। हमारे आधुनिक इतिहासकारों ने इस बहाने का शाब्दिक अर्थ ले लिया है। साधारण-सी समझ का कोई भी आदमी इस दावे के पीछे छिपे धोखे और जालसाज़ी को आसानी से भाँप सकता है कि अपनी डाका डालने की योजना में फ़िरोज़शाह एक नहर एवं एक दुर्ग बनाने रुक गया ? कोई भी इतिहासकार यह नहीं पूछता कि समय, सम्पत्ति और प्रेरणा कहाँ थी ? इससे समझ लेना चाहिए कि जीवन-भर फ़िरोज़शाह ने ईंट के ऊपर ईंट तक नहीं रखी है। उसके भवन-निर्माता होने के सारे दावे सरासर झूठे हैं। जिन नहरों, नगरों और महलों के बनाने का वह दावा करता है वे सभी नगर, नहर और महल उसके जन्म के पहले से ही मौजूद थे। जिन मस्जिदों के बनाने का वह दावा करता है वे सभी हिन्दू मन्दिर थे, जिन्हें मुसलमानी उपयोग के लिए ज़ब्त कर लिया गया था।

इस हृदयहीन मूर्त्तिभंजक एवं कला-विध्वंसक ने जीवन-भर जो कुछ किया है उसका एक नमूना मुस्लिम इतिहासकार फरिश्ता के शब्दों में प्रस्तुत है—"सुलतान ने ज्वालामुखी मन्दिर की प्रतिमा को चूर-चूर कर (नगर में) कटी गायों के मांस में मिला, इस मिश्रण को (नगर के) सभी ब्राह्मणों की नाक के पास बाँध, प्रधान प्रतिमा को उपहार-स्वरूप मदीना भेज दिया।" क्या ऐसा क्रूर-भोगी शैतान किसी मानवीय भावना से पिघल

सकता है ? क्या ऐसा विध्वंसक कभी निर्माता हो सकता है ? हमारे सऊदी अरेबिया के दूतावास को यह आज्ञा दी जानी चाहिए कि वह अरबी सरकार से ज्वालामुखी की प्रतिमा-प्राप्ति का प्रयास करे।

१३८० ई० में रोहिलखंड के कटेहर शासक के विरुद्ध उसने कूच का नगाड़ा बजाया। कटेहर-शासक ने एक ही झपट्टे में बदायूँ के हर्त्ता मुस्लिम शासक सैयद मुहम्मद को उसके दो भाइयों के साथ काट गिराया था। राज्य की सीमा पर पहुँचकर सुलतान ने हिन्दू-हत्या-यन्त्र का चक्र घुमा दिया। "क़त्लेआम इतना सामूहिक और इतना भेद-भावहीन रहा कि मृत सैयदों की रूहों को खुद इसे रोकने आना पड़ा।" (पृष्ठ ९६, 'दिल्ली सुलतानेट' नामक भारतीय जनता का इतिहास एवं सभ्यता क्रम की भारतीय विद्या भवन प्रकाशन की पुस्तक का छठा ग्रन्थ) एक बार फिर फ़िरोज़ की नाक कटी। फ़िरोज़शाह ने हज़ारों की हत्या कर दी, २३,००० कृषकों, श्रमिकों, बूढ़ों और बच्चों को बन्दी बना लिया। मगर वीर हिन्दू डटे रहे।

इस फ़िरोज़शाह के बारे में सबसे आश्चर्यजनक बात यह है कि उसके हृदय में राज्य-विस्तार की आग धधकती रहती थी। उसने अपनी खूनी मुस्लिम तलवार को चारों ओर चमकाया था मगर हर दिशा से उसे हारकर, सभी सामान छोड़कर और सारी सेना कटवा-पिटवाकर दुम दबाकर ताबड़तोड़ भागना पड़ा था। इस सच्चाई को झूठे वर्णनों के कफ़न से ढकने का प्रयास किया गया है, जैसे अन्तिम समय में रोती औरतों को देखकर सुलतान के दरिया दिल का पिघल जाना, आदि-आदि।

फ़िरोज़ की लोभी आँखें अब थट्टा पर गड़ गईं। "जब कभी वह इस स्थान के बारे में वर्णन करता था तो वह अपनी दाढ़ी सहला-सहलाकर कहता था कि धिक्कार है मुहम्मद तुग़लक़ को कि वह इसे नहीं जीत सका।" फ़िरोज़ ने दिल्ली के कब्रिस्तानों का चक्कर लगाया, मृतकों के प्रेतों को जगाया ताकि वे थट्टा को भी कब्रिस्तान बनाने में सहायक हो सकें। "उस समय थट्टा के स्वामी राय उनर के भाई जाम और उनका भ्रातृ-पुत्र (भतीजा) बबीनिया था। थट्टा की सैन्य-शक्ति के सामने मुस्लिम लुटेरा गिरोह बेकार था। फ़िरोज़ एक बार फिर उजड़ गया।" खाने-दाने के लाले पड़ गये। घोड़ों में संक्रामक रोग फैल गया, मुश्किल से चौथाई ही बच पाये। बिजली-सी टूटती थट्टा-सैन्य-शक्ति के सामने से मुस्लिम लुटेरों का

गिरोह उल्टे पैर भाग खड़ा हुआ। रगेद-रगेदकर भागती सेना के सारे सामान छीन लिए गये।

यहाँ तक कि अफ़ीफ़ जैसे जूठे दलाल को भी स्वीकार करना पड़ा, "विजयी (?) होकर जब सुलतान पीछे हटे तो अनाज के लाले पड़ने लगे। इसके दाम दिन दूने होने लगे। एक सेर का मूल्य एक और दो टंका हो गया और इस दाम पर भी अनाज नहीं मिलता था। चलने में असमर्थ नंगे और भूखे लोग जीवन की आशा त्याग बैठे। वे सड़ा मांस और कच्चा चमड़ा भी निगल गये। भूख से व्याकुल हो लोग पशु की खाल पकाकर खाने लगे। चारों ओर अकाल छा गया। सभी आँखों से मौत झाँक रही थी। सेना में एक भी घोड़ा नहीं बचा। ख़ान और मलिकों को दुर्गम मार्ग पर पैदल ही चलना पड़ा। मार्ग-दर्शकों ने उन्हें जान-बूझकर कच्छ के खारे रन में भटका दिया। सुलतान ने कुछ मार्ग-दर्शकों का सिर कलम करवा दिया। किसी प्रकार खारे क्षेत्र से बचकर निकले तो रेगिस्तान में आ फँसे, जहाँ किसी भी पक्षी ने न तो कभी पर ही फड़फड़ाया था, न घास का तिनका ही दिखाई देता था। चार संकट उन लोगों के सिर पर सवार थे—दुर्भिक्ष, पैदल-यात्रा, रेगिस्तान की भयंकरता और प्रिय-जनों का वियोग।"

ख़ूनी सुलतान और उसके हत्यारे गिरोह का कोई भी समाचार छः महीने तक दिल्ली नहीं पहुँचा। लुटेरी मुस्लिम सेना को मृत्यु एवं विनाश में धकेल, वीर और देशभक्त मार्ग-दर्शकों ने एक बार फिर अपना उत्तर-दायित्व पूर्णरूपेण निभाया।

दिल्ली की देखभाल का अधिकार एक दरबारी खान-ए-जहान के हाथों में था। सुलतान फ़िरोज़ एवं उसके गिरोह को शून्य में विलीन होते देख वह बड़ा प्रसन्न हुआ। सुलतान का सारा ख़ज़ाना वह एक अपहृत हिन्दू महल में, जिसमें वह रहता था, उठा लाया।

थकी और भूखी सेना से परेशान, फटेहाल फ़िरोज़ अचानक गुजरात में आ निकला। भूखे गिद्धों की भाँति वे गुजरात की उपजाऊ ज़मीन पर टूट पड़े। सुलतान गुजरात के लुटेरे मुस्लिम शासक अमीर हुसैन से झगड़ बैठा। सुलतान की भूखी सेना की सहायता के लिए दौड़कर न आने का आरोप उसपर था। क्षेत्र को तबाह कर सुलतान हिन्दुओं को सता और मुसलमान बना अपनी सेना बढ़ाने में लीन हो गया। पिछली कठिनाइयों के कारण

सेना में असन्तोष और विरोध भड़क उठा। अफ़ीफ़ लोगों को बतलाता है—"सुलतान फ़िरोज़ ने (गुजरात की लूट से प्राप्त) सारी सम्पत्ति सेना को सँवारने एवं सैनिकों को वेतन देने में खर्च कर दी ताकि वह थट्टा पर एक बार फिर चढ़ाई कर सके।" इसपर भी गुजरात की लूट काफ़ी नहीं थी। उसने आज्ञा भेजी कि दिल्ली क्षेत्र के सारे हिन्दुओं को लूट-लूटकर सारा धन उसके पास भेज दिया जाए, ताकि वह थट्टा के हिन्दू-क्षेत्र को कुचल और मसल सके।

फ़िरोज़ दुविधा में था। उस सम्पन्न क्षेत्र की चर्बी उतार, उसकी सेना को खिलाने में अधिक उपयुक्त कौन-सा गुण्डा होगा? ज़फ़र खाँ या मलिक नायब बरबक? उसने कुरान को जज बनाया। अफ़ीफ़ बतलाते हैं—"बिना कुरान से पूछे सुलतान कभी भी कोई काम नहीं करते थे।" कुरान ने ज़फ़र खाँ के पक्ष में फ़ैसला दिया।

फ़िरोज़ ने थट्टा की ओर प्रस्थान किया ही था कि उसकी फटी बिवाई में एक काँटा और घुस गया। जिन लोगों ने पहले अभियान में भाग लिया था वे दूसरी बार वीर राजपूतों से भिड़ने का साहस नहीं जुटा सके। "अपना-अपना सामान ले वे अपने घर चले गये।" इसे रोकने के लिए सुलतान ने पहरा कड़ा कर दिया। जो पकड़े गये उन्हें मुस्लिम यन्त्रणा-यन्त्र में पीसकर मार दिया गया। दिल्ली लौटने वाले को बन्दी बना लिया गया और कुछ लोगों का एक-दो दिन तक बाज़ारों में प्रदर्शन होता रहा।

दूसरी बार जब फ़िरोज़ थट्टा को तबाह करने लौटा तो अफ़ीफ़ बतलाता है कि हिन्दू बड़े गौरव से याद करते थे कि किस प्रकार उन्होंने १३५१ ई० में मुहम्मद को धूल चटा दी थी और किस प्रकार फ़िरोज़ दुम दबाए जान लेकर भागा था।

सिन्ध के हिन्दू मुस्लिम भेड़ियों को अपना पसीना पिलाना नहीं चाहते थे। उन्होंने सारी फ़सल जला दी और सिन्धु के उस पार चले गये। अनाज की खोज में सुलतान की सेना हर घर को उलटने-पलटने लगी। प्रायः ४००० लोग सिन्धु पार नहीं कर सके थे। उन सबको बन्दी बनाकर यातना यन्त्र में डाल दिया गया।

विरोधी-क्षेत्र में अधिक दिन तक ठहरना ख़तरनाक था। अतएव सुलतान की सेना ने नदी पार करने की जी तोड़ कोशिश की। मगर थट्टा

की जलसेना ने पानी में ही मुस्लिम लुटेरों की कब्र बना दी। अपना नकटा चेहरा दिल्ली में न दिखाने से बचने के लिए सुलतान ने मुस्लिम लुटेरों की सहायक सेना भेजने का समाचार दिल्ली भेजा। लम्बी डींग हाँकते हुए नकटा अफ़ीफ़ बतलाता है कि सुलतान ने निर्णय किया कि "मेरी सेना यहीं रहेगी और हम लोग यहाँ एक बड़ा नगर बनाएँगे।"

नाक-भौंह चढ़ाने और कोड़े फटकारने के बाद भी दिल्ली से कोई सहायक सेना नहीं आ सकी। इसलिए उसने बदायूँ, कन्नौज, सन्दिला, अवध, जौनपुर, बिहार, चन्देरी, धार, दोआब, समाना, दीपलपुर, मुलतान, लाहौर आदि प्रत्येक मुस्लिम शासित-क्षेत्र को थट्टा अभियान के लिए हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर धन और नये मुसलमान भेजने का आदेश दिया ताकि मुस्लिम सुलतान फ़िरोज़ एक नई नाक लगाकर अपना चेहरा दिल्ली में दिखाने योग्य बना सके।

मगर जबतक ये गरीब, भयभीत, आतंकित, पीड़ित और घेरे-बटोरे नये मुसलमान थट्टा पहुँचे, अल्लाह ने सुलतान के सिर पर संकट का एक नया घड़ा फोड़ दिया—अकाल की काली छाया उसे घेरकर खड़ी हो गई। हताश हो सुलतान ने जाम और बबीनिया को बहला-फुसला, झूठी सन्धि वार्ता के जाल में फाँसकर बन्दी बना लिया। दिल्ली प्रस्थान करने के समय फ़िरोज ने इन दोनों को मजबूर किया कि वे दोनों अपने-अपने हरमों को भी सुलतान के तम्बू में आ मिलने का समाचार भेज दें। इस प्रकार फ़िरोज़ ने किसी प्रकार नाक लगा ली और दो राजकीय बन्दियों की पताका फहराता दिल्ली वापिस लौटा। इस प्रकार थट्टा की अभेद्य दीवारों से सिर टकराकर दूसरी बार हारकर फ़िरोज़ दिल्ली लौट आया। इसके पहले भी दो मुस्लिम शैतान थट्टा की दीवार से सिर फोड़कर लौटे थे, एक अलाउद्दीन ख़िल्जी और दूसरा मुहम्मद तुग़लक़।

फ़िरोज़शाह का शासन लगातार हार की एक लम्बी भाग-दौड़ है। हिन्दू धन-सम्पत्ति की लगातार लूट और बरबादी की दुःखभरी कहानी है।

खुशामदी टट्टू अफ़ीफ़ के अतिरिक्त फ़िरोज़शाह ने अपना कारनामा खुद भी लिखा है। उसके मुस्लिम पूर्वज जो सज़ाएँ लोगों को देते थे, उनका वर्णन फ़िरोज़शाह ने किया है—"हाथ-पैर और नाक-कान काट फेंकना आँखें निकाल लेना, गर्म-गर्म पिघलता शीशा और राँगा गले में उंडेल देना,

मूसल से हाथ-पैरों की हड्डियों को कुचल देना, आग में ज़िन्दा जला देना; हाथ, पैर और छाती में लोहे की कीलें ठोक देना; नसों को कटवा देना, आरी से चीरकर दो टुकड़े कर देना। ये और इनसे मिलती-जुलती पीड़ाएँ दी जाती थीं।" (वही, पृष्ठ ३७५)।

फ़िरोज़ भी इन यातनाओं को काम में लाता था। यह बात उसीके उदाहरणों से सत्य सिद्ध हो जाती है—

(१) शियाओं की एक शाखा अपना धर्म त्याग बैठी। "मैंने सभी को पकड़कर सज़ाएँ दीं। सरे आम उनकी किताबों को जला, इस शाखा को नेस्तोनाबूद कर दिया।"

(२) नास्तिकों की एक शाखा थी। मैंने बहुत लोगों के सिर काट, बन्दी बना, बाकी को निर्वासित कर दिया।

(३) एक शाखा का नेता अहमद बहारी था। मैंने बहारी और उसके एक अनुयायी को तहख़ाने में जंज़ीरों से जकड़ दिया।

(४) रुकनुद्दीन नामक एक आदमी अपने को महदी कहता था। इस अधम के द्रोह एवं दुष्टता को मैंने जनता में विख्यात कर दिया। लोगों ने उसे उसके कुछ अनुचरों एवं अनुयायियों के साथ मार डाला। लोग उसपर झपट पड़े। उसके टुकड़े-टुकड़े कर दिए और हड्डियों को चूर-चूर कर बिखेर दिया।

(५) ऐन महरू का एक शिष्य गुजरात में अपने आपको शेख* कहता था। मैंने उने सज़ा देकर उसकी किताबों को जलवा दिया।

(६) मैंने हिन्दू मन्दिरों को नष्ट कर उनके नेताओं की हत्या कर दी। बाक़ी को कोड़ों से पीट-पीटकर सज़ाएँ दीं। मलूह गाँव में एक कुण्ड था। यहाँ एक मन्दिर था, जहाँ हिन्दू मर्द, औरतें और बच्चे पूजा करने जाते थे। कुछ (नये) मुसलमान भी वहाँ जाते थे। मेले के दिन मैंने नेताओं और संरक्षकों का सिर कटवा दिया। मैंने मन्दिर को नष्ट कर वहाँ मस्जिद बनवा दी (यानी प्रतिमा फेंककर उस मकान को मस्जिद में परिवर्तित कर दिया)।

(७) मुझे समाचार मिला कि सलिहपुर गाँव में हिन्दुओं ने एक नया मन्दिर बना लिया है। इस घातक भूल को रोकने एवं मन्दिर को नष्ट करने के लिए मैंने कुछ आदमी भेजे।

(८) कुछ हिन्दुओं ने कोहाना गाँव में एक नया मन्दिर बना लिया था। मूर्ति-पूजक वहाँ एकत्रित होकर पूजा किया करते थे। उन्हें पकड़कर मेरे सामने पेश किया गया। मैंने आज्ञा दी कि उनकी विरोधी प्रवृत्तियों एवं दुष्टताओं को जनता में घोषित कर दिया जाए और राज-द्वार के सामने उन्हें क़त्ल कर दिया जाए। उनकी पुस्तकों एवं प्रतिमाओं को खुले-आम जला देने की आज्ञा भी मैंने दी। मैंने अपनी काफ़िर प्रजा को इस्लाम ग्रहण करने की प्रेरणाएँ (यानी पीड़ाएँ) भी दीं। मैंने घोषित किया कि धर्म-परिवर्तनकारियों को कर से मुक्त कर दिया जाएगा। अनेक हिन्दू मुसलमान बन गए।

मुसलमान भाइयों को फ़िरोज़शाह के इन शब्दों को ध्यान से पढ़ लेना चाहिए और इस ग़लत धारणा को त्याग देना चाहिए कि हिन्दुस्तान एवं पाकिस्तान के धर्म-परिवर्तित १५ करोड़ मुसलमानों के पूर्वजों ने सिर्फ़ मौज और तरंग में आकर इस्लाम धर्म ग्रहण किया था। हमारी सरकार को भी फ़िरोज़शाह के "कुलीन" कारनामों से शिक्षा ग्रहण कर "कर-मुक्ति" का उल्टा मार्ग अपना लेना चाहिए ताकि इस्लाम ने जो बुराई की रस्सी हिन्दुस्तान के चारों ओर लपेट दी है वह खुल जाए।

जब हमारी वर्तमान सरकार के पूर्वज फ़िरोज़-सरकार के शासन को हमारे इतिहासों में "कुलीन" शासन माना जाता है तो हमारी सरकार इस "कुलीन" शासक का अनुकरण कर जिज़िया का उलटा रूप मुसलमानों पर क्यों नहीं चला देती ताकि उन्हें अपने "सह-धर्मी पूर्वजों" की दवा के स्वाद का पता भी चले और हमारी अर्थ-व्यवस्था भी पुष्ट हो जाय क्योंकि हिन्दुओं को सिर्फ़ भारी करों के बोझ के नीचे कराहना ही नहीं पड़ा था, वरन् ११०० वर्ष तक उनकी धन-सम्पत्ति को लूट-लूट कर १/५ एवं ४/५ के आधार पर मुस्लिम अत्याचारियों और उनके गुर्गों के बीच बाँटा भी गया था। फ़िरोज़शाह एवं अकबर की शैतानियत और हैवानियत में कोई फ़र्क नहीं था। इसलिए हम फ़िरोज़शाह को अकबर का पूर्व रूप भी कह सकते हैं।

उसकी स्वलिखित जीवनी "फतूहात-ए-फ़िरोज़शाही" (यानी फ़िरोज़-शाह की दिग्विजय) ही फ़िरोज़शाह को नम्बरी झूठा साबित करने के लिए

काफ़ी है। हमने ऊपर देखा है कि वह अपने प्रत्येक अभियान एवं आक्रमण में बुरी तरह हारा है और "विजयी होकर पीछे हटा" (?) है।

मुसलमानी मूर्खता की अपनी खास खूबी के अनुसार, फ़िरोजशाह ने उन सभी लोगों से, जिन्हें पूर्ववर्ती शासक मुहम्मद तुग़लक़ से असंतोष और रोष था, मार-मारकर यह मुक्ति-नामा लिखा लिया कि उन्हें पूरा मुआवज़ा मिल गया है और अब उन्हें मुहम्मद तुग़लक़ से कोई शिकायत नहीं है। इन सभी मुक्ति-पत्रों को फ़िरोज़ ने मुहम्मद तुग़लक़ के साथ क़ब्र में गाड़ दिया। मतलब था फ़िरोज़शाह के दुराचारों से असन्तोष भड़कने न पाए।

बूढ़े होने के साथ ही फ़िरोज़शाह के हाथ से शासन सरकने लगा। उसका वज़ीरे-आज़म मक़बूल मर चुका था और उसका पुत्र ख़ान जहान वज़ीर था। फ़िरोज़शाह के आवारा पुत्र मुहम्मद ने ख़ान जहान की हत्या-कर १३८७ ई० में अपनी सुलतानी का डंका पीट दिया। मगर उसकी आज्ञाएँ चली नहीं, फ़िरोज़शाह ही सुलतान बना रहा। इसके बाद ही ३७ वर्ष तक शासन कर ७९ वर्ष की उम्र में फ़िरोज़शाह १३८८ ई० में मर गया। फ़िरोज़शाह हिन्दू माँ का पुत्र था और उसका वज़ीर मक़बूल एक पूर्ण हिन्दू ही था, जिसे मुसलमान बनाया गया था। जो क़यामत इन पशुओं ने बरपा की है वह इस्लामी धर्म-परिवर्तन की पाशविकता का एक नमूना है।

भारतीय इतिहासों में फ़िरोज़शाह की आरती उतारी गई है। मगर उसके शासनकाल एवं उसके स्वलिखित विवरण का गम्भीर अध्ययन साबित करता है कि वह एक भयंकर मुस्लिम रक्त-पिशाच था, एक खतरनाक आदमख़ोर था, जिसने ३७ वर्ष तक हिन्दुस्तान के धन और जन का शिकार किया था।

(मदर इण्डिया, जनवरी, १९६८)

: १९ :

तैमूर लंग

ऐसा मालूम होता है कि मुस्लिम खानदानों के तारतम्य ने हिन्दुस्तान का जो खून बहाया था, वह काफ़ी नहीं था। इसीलिए उनके हज़ारवर्षीय शासनकाल में तैमूर लंग, नादिरशाह और अहमदशाह अब्दाली जैसे स्पेशल आतंककारी हिन्दुस्तान में आए और अपनी तलवार से इसके घाव को और चौड़ा कर दिया ताकि खून का प्रवाह कभी मन्द न हो। वास्तव में ये इस्लामी प्लेग थे। सिन्धु के उस पार से आकर इन लोगों ने हिन्दुस्तान की हरी-भरी खुशहाल ज़मीन को तहस-नहस कर डाला। तूफ़ान का तेज़ झोंका आया और चला गया, मगर अपने पीछे खून का एक दलदल छोड़ गया। साथ ही हिन्दुस्तान को चाटने-खाने वाले अपने सहधर्मियों को इन इस्लामी राक्षसों ने यह बतला दिया कि अन्धड़ का जोश क्या कर सकता है। धर्मान्ध मुस्लिम शासक जिस काम को १५ वर्ष में पूरा करते थे, इन लोगों ने उसे १५ दिन में ही पूरा कर दिखाया।

१४वीं शताब्दी के अन्त में हिन्दुस्तान पर वज्र की तरह टूटने वाले इस्लामी प्रकोपों में एक प्रकोप था—जन्मजात राक्षस तैमूर लंग (तमरलेन या सिर्फ़ तैमूर)। हैजे की तरह हिन्दुस्तान की हत्या करने के लिए गद्दी पर बैठने वाले अन्तिम मुसलमान ख़ानदान (मुग़ल खानदान) की रगों में इसी तैमूर का पाशविक खून भी मिला हुआ था।

उस समय चारों ओर उथल-पुथल मची हुई थी। अराजकता फैली हुई थी। हिन्दुस्तान का रंगमंच मुस्लिम शैतानों के पैशाचिक नाच के लिए एकदम तैयार था, सिर्फ़ परदे के उठने की देर थी। मुस्लिम शैतान फ़िरोजशाह तुग़लक़, जिसको भ्रम से लोगों ने देवता, विद्वान्, आविष्कर्ता, उद्धारक और न जाने क्या-क्या बना दिया, १३८८ ई० में मर चुका था।

उसकी ग्राविष्कारक प्रतिभा का भी जवाब नहीं था। उसने एक अनोखा मिक्सचर तैयार किया था। पहले उसने नगरकोट के हिन्दू मन्दिर ज्वाला मुखी की प्रतिमा को चूर-चूर किया फिर मन्दिर की गायों को काटकर उनका कीमा बनाया। उसके बाद इस प्रतिमा-चूरन एवं गोमांस को मिलाकर उसका एक मिक्सचर तैयार हुआ। इस मिक्सचर को एक थैली में डाल कर उसने इसे ब्राह्मणों की नाक पर बाँध दिया ताकि वे सूँघ सकें और घोड़े की भाँति खा भी सकें।

भारत के अन्य मुस्लिम शासकों की भाँति इस शैतान ने भी भारत को दोज़ख बनाने का पूर्ण प्रयास किया था। फलतः इसकी मृत्यु के साथ ही शैतानी-कुर्सी के लिए एक हंगामा-सा खड़ा हो गया। एक बार तो इस के जवान बेटे ने अपने बूढ़े बाप के काँपते हाथों से गद्दी छीन भी ली थी लेकिन मजबूर होकर वापिस करनी पड़ी थी। इस घटना के बाद फ़िरोज़ शाह अपने मालिक के पास चला गया। उसका बड़ा बेटा फ़तह खाँ अपने बाप से पहले ही मर चुका था। अतएव फ़तह खाँ का बेटा गियासुद्दीन गद्दी पर बैठा। वह केवल ५ महीने राज्य कर सका। बाद में मुस्लिम रिवाज के अनुसार उसके भाइयों ने उसकी हत्या कर दी तथा उसके चाचा और फिरोज़ के बेटे मुहम्मद ने गद्दी झपट ली। इसने पहले भी एक बार बाप को गद्दी से गिराने की कोशिश की थी। १३९० ई० से १३९४ ई० तक वह गद्दी पर जमा रहा और मुहम्मद तुग़लक द्वितीय के नाम से कुख्यात हुआ। सारे शासन काल में वीर राजपूत और बागी मुस्लिम जागीरदार उसको अँगूठा दिखाते रहे।

परेशान और तंग होकर गुस्से में सुलतान ने हजारों हिन्दुओं को घास-फूस की तरह कटवा डाला, जिन्हें उसके पिता ने गुलाम, मज़दूर और नौकर बनाकर रखा था। इस जानवर का यह जंगली काम अपने ख़ानदान के अनुकूल ही था। तर्क-शास्त्र की परिभाषा के अनुसार मनुष्य एक विवेक-शील पशु है। मगर फ़िरोज़शाह आदि मुसलमानों को कुलीन और महान् कहने वाले इतिहासकारों में, मालूम पड़ता है, विवेक नाम की कोई चीज़ है ही नहीं। मध्ययुग का प्रत्येक मुसलमान आतंक, यातना, हत्या और संहार का पुतला था। ऐसे क्रूर-भोगियों और हत्यारों को कुलीन और महान् कहना बुद्धि की विकृति ही नहीं है, सैद्धांतिक मूर्खता की चरमसीमा भी है।

१३९४ ई० में मुहम्मद मर गया। उसका बेटा हुमायूँ उर्फ सिकन्दर गद्दी पर बैठा। शीघ्र ही सिकन्दर कपट और माया के मुस्लिम खेल का शिकार हो गया। १३९४ ई० में सन्देहात्मक परिस्थिति में उसकी मृत्यु हो गई। कदम-कदम पर फूट और विद्रोह का राज्य था। बंगाल, लाहौर, बाक़ी पंजाब, गुजरात, मालवा आदि क्षेत्र दिल्ली की सुलतानी से नाता तोड़कर स्वतंत्र हो गये थे। मुहम्मद पुरानी दिल्ली में दरबार करता था तो उसका भाई नुसरत शाह दिल्ली के ही एक उप-नगर में अपना दूसरा दरबार चलाता था। मगर वे दोनों भी विरोधी मुस्लिम लीडरों और गुण्डों के हाथों की कठपुतली थे।

ठीक इसी समय १३९८ ई० में हिन्दुस्तान पर तैमूर का प्रकोप प्लेग बनकर फैल गया। अपने जहन्नुमी-नाच से उसने सारे उत्तर भारत को बरबाद ही नहीं किया वरन् अपने पीछे वह छोड़ गया—धर्मान्तरितों की भूखी माँद, कटी-सड़ी गायें, मस्जिद और मकबरों में बदले हुए मन्दिर तथा कुचली-मसली लाशें। गर्म-गर्म लाल लोहों, हसुओं, चिमटों तथा तलवारों से लोगों को काटने-खाने वाले ये लोग इस्लाम के स्व-नियुक्त फ्री स्टाइल अत्याचार की भरती के अफसर थे। असंख्य हिन्दुओं को सता-सताकर इन्होंने मुसलमान बनाया था। आज के करोड़ों मुसलमान अपनी इस्लामी परम्परा पर घमंड करते हैं। मगर इसका श्रेय क़ासिम, तैमूर, अलप्तगीन, सुबुक्तगीन, बाबर और अकबर को है। इन लोगों ने हजार वर्षों तक इनके हिन्दू बाप-दादों पर बीभत्स और खूनी क्रूरताओं से यातनाओं की वर्षा की थी।

क्रूर मुस्लिम परिवार में जन्मा तैमूर एक तुर्क था। इसका पिता कुछ क्षेत्र का जागीरदार था। इस नगर का नाम श्रीराम के पुत्र कुश के नाम पर रखा गया था। यह उन दिनों की याद दिलाता है, जब यहाँ भारतीय क्षत्रियों का राज्य था। कुछ लोग दावा करते हैं कि तैमूर का पिता लुटेरे चंगेज़ के वंश का था। दूसरे लोग यह दावा करते हैं कि वह एक गरीब चरवाहा था। यही तैमूर आगे चलकर एक आदमख़ोर मानव-हत्यारे के रूप में विकसित हुआ। मानव-हत्या मध्यकालीन मुस्लिम-संसार में धनी बनने का अनिवार्य नुस्ख़ा था। तैमूर के पिता अमीर तुरघाई थे और माता तकिना खातून। होनहार बिरवान के होत चीकने पात के अनुसार

बचपन में ही तैमूर में धनी बनने के लक्षण पैदा होने लगे थे। बड़ी जल्दी वह एक चैम्पियन नर-हत्यारे के रूप में विकसित हो गया। अपने खानदानी धन्धे कसाईगीरी में उसने अपने बाप को भी मात दे दी। अपनी बेजोड़ गिरोह बन्दी से तैमूर कई क्षेत्रीय अभियानों में निखर उठा और २५ वर्ष की कच्ची उमर में ही वह तुर्किस्तान का सुलतान बन बैठा।

लोग उससे बहुत घृणा करते थे। शीघ्र ही उसे अपने नये प्राप्त राज्य को छोड़कर मध्य-पूर्व के जंगलों में भाग जाना पड़ा—अपने भाई-बन्द अर्थात् जंगली जानवरों के सुखद साहचर्य में रहने के लिए।

राहज़नी के अपने पेशे में वह कट्टर था। अपने निशाचरी कारनामों की सीमा के भीतर आने वाले सारे घरों को उसने आतंकित कर रखा था। गुण्डों का कोई-न-कोई गिरोह हमेशा उसके पास तैयार रहता था। १३६९ ई० में उसने समरकन्द को जीता। एक बार फिर वह शासक हो गया।

इस नये शाही दबदबे की आड़ में उसने खुरासान के शासक अमीर हुसैन पर धोखे से चढ़ाई कर दी और उसे मार डाला। १३७० ई० के अप्रैल में उसके राजा होने की डुगडुगी बल्ख़ में भी पिट गई। बल्ख़ संस्कृत शब्द वाह्लीक का अपभ्रंश है। प्राचीन भारतीय साहित्य में इस देश का नाम बार-बार आया है। दिल्ली की कुतुब मीनार के समीप एक विख्यात लौह-स्तम्भ है। इसपर खुदा हुआ संस्कृत का लेख बतलाता है कि किस प्रकार प्राचीन भारतीय राजा ने वाह्लीक को जीता था। मुसलमानों ने जानबूझकर प्राचीन अफगानिस्तान, सऊदी अरब, मिस्र, लेबनान, सीरिया, ईरान, इराक, बल्ख़, खुरासान और तुर्की के भारतीय चिह्नों को पोंछ डाला है। यहाँ तक कि वहाँ की कीड़े जैसी अरबी लिखावट भी अपेक्षाकृत एक आधुनिक चिप्पी है, क्योंकि अरब और तुर्की की प्राचीन भाषा संस्कृत-ध्वनि और संस्कृत-अक्षरों पर ही आधारित थी।

अमीर हुसैन पर तैमूर के पैशाचिक आक्रमण का अनुमान हम इस बात से लगा सकते हैं कि अमीर हुसैन तैमूर का साला था। हृदय से इस्लामी रीति-नीति को मानते हुए तैमूर ने अपने साले का खून कर डाला। उस समय अगर कोई शेक्सपीयर होता तो वह कहता—"धोखेबाज़ी ! तेरा नाम मुसलमान है।"

नयी प्राप्त सम्पत्ति की शक्ति से भरपूर कपट का सच्चाई से पालन करते हुए तैमूर ने आस-पास के क्षेत्रों की लूट जारी रखी। एक-एक कर वह कन्धार, ईरान और इराक़ का दमन करता गया। अब उसके मन में भी दुनिया को जीतने की इस्लामी तमन्ना पनपने लगी। इस तमन्ना को दाना-पानी देने के लिए उसने सामूहिक नर-संहार की फ़सल काटी। अपने ६६ वर्ष के जीवन-काल में तैमूर ३५ बड़े अभियानों पर निकला था और उसने पूर्व में हरिद्वार से लेकर पश्चिम में कैरो तक के क्षेत्रों को रौंद डाला था।

तैमूर के लिए काला अक्षर भैंस बराबर था। उसके जंगली कारनामों को उसके अनेक चापलूसों ने लिखा है, जो उसकी ख़ूनी तलवार के नीचे काँपते रहते थे। उसका जीवन-चरित्र मुलफुजद-ए-तैमूरी व तुजक-ए-तैमूरी के नाम से विख्यात हैं। कल्पना की उड़ानों से भरपूर सभी मुस्लिम इतिहासों के समान इस इतिहास के भी अनेक संस्करण मिलते हैं। सर इलियट इन सभी को "एक धृष्ट और मज़ेदार धोखा" मानते हैं।

तैमूर के ख़ूनी शासन में घटनाओं का रिकार्ड किस प्रकार रखा जाता था, किस प्रकार तैमूरी दरबार में उन घटनाओं के लेख की प्रामाणिकता तथा प्रभाव की परीक्षा होती थी, उसका वर्णन जफ़रनामा (विजय-गाथा) के लेखक शरफुद्दीन यज़्दी ने तैमूर की मौत के ३० वर्ष के बाद किया है।

यज़्दी बतलाता है कि दरबार में मँडराने वाले लोगों और चापलूसों ने इन वर्णनों को लिखा है। इन लेखों को "शाही मौजूदगी में पेश किया जाता था और बादशाह को पढ़कर सुनाया जाता था ताकि उसकी मंजूरी लेकर उसको सही किया जा सके।" पाठकों को यह बतलाने की जरूरत नहीं है कि ज़िन्दगी भर हज़ारों आदमियों की हत्या करने वाला पापी राक्षस तैमूर बड़ी आसानी से सच्चाई का गला भी घोट सकता था। अतएव उसका यह तथाकथित जीवन-चरित्र कल्पना और कोरी बकवास का रंगीन ख़ज़ाना हो गया है। इस जंगली जानवर के कामों और प्रेरणाओं की परीक्षा तथा तुलना करते हुए इन जीवन-चरित्रों का अध्ययन करना होगा। बाहुक्म लिखी गई इन मीठी स्तुतियों, बोगस दावों और मायावी मंजूरियों की ऊँचाई पर उड़ते इन बकवासी तारीफों के पुलिन्दों को पढ़कर हमारे इतिहासकार भी उसी तरंग पर थिरकने लगते हैं। यह थिरकना एकदम बन्द होना चाहिए। बचपन के भोलेपन से लिखे गये ये सारे इतिहास अवैध-

घोषित होने चाहिए। राष्ट्रनिष्ठ हिन्दुस्तान को चाहिए कि उनके तोता-रटन्त लेखों को राष्ट्रद्रोही घोषित कर दिया जाये।

सर इलियट कहते हैं कि "तैमूर के जीवन-काल में लिखी गई घटनाएँ एवं परवर्ती मुलफुज़द तथा ज़फ़रनामे (की घटनाएँ प्राय:) एक ही हैं। इससे कोई सन्देह नहीं रह जाता है कि अलंकृत शैली में यज़्दी ने या तो उनका अनुवाद किया है या फिर उन्हें इस तरह से पेश किया है कि वह तैमूर की आज्ञा पर लिखे गये इतिहास से पूरी तरह मेल खाये। उदाहरण के लिए इस बात का पूरा ध्यान रखा गया है कि वह एक कट्टर शिया था।" (पृष्ठ ३९३, ग्रन्थ ३, इलियट एवं डाउसन)।

पश्चिम एशिया के बड़े भाग को निगलने के बाद तैमूर ने लिखा है कि—"काफ़िरों के खिलाफ़ एक अभियान चलाकर गाज़ी बनने की तमन्ना मेरे दिल में पैदा हुई क्योंकि मैंने सुना है कि काफ़िरों की हत्या करने वाला गाज़ी होता है। मैं अपने दिमाग़ में यह तय नहीं कर पा रहा था कि चीन के काफ़िरों के ख़िलाफ जाऊँ या हिन्दुस्तान के। इस बारे में मैंने कुरान से हुक्म लिया। मैंने जो पद निकाला वह यों है—'हे पैगम्बर! काफ़िरों और नास्तिकों से लड़ाई छेड़ दो और उनसे बड़ी कठोरता से पेश आओ'।"

तैमूर का पुत्र मुहम्मद सुलतान उर्फ शाह रूख़ अपने चोरी-चकारी के इरादे का भी पर्दाफाश कर देता है। वह तैमूर से कहता है कि—"हिन्दुस्तान सोने व जवाहरातों से भरा हुआ है।" उसके मुँह से लार टपकने लगती है।

तैमूर अपने गुर्गों और गुट-नायकों को बुलाकर कहता है—"हिन्दुस्तान पर हम लोग उस देश के लोगों को मुसलमान बनाकर काफिरपन की गन्दगी से उस ज़मीन को पाक और साफ़ कर सकें। और उन लोगों के मन्दिरों तथा मूर्तियों को बरबाद कर हम लोग गाज़ी और मुजाहिद कहला सकें।" (वही, पृष्ठ ३९७)।

भारत के सभी मुस्लिम विजेताओं और लुटेरों के अनुसार तैमूर भी सच्चाई से यह स्वीकार करता है कि उसका इरादा चोरी करना, हत्या करना और यातना के ज़रिए हिन्दुओं को मुसलमान बनाना तथा हिन्दू मन्दिरों एवं महलों को छीनकर उन्हें मस्जिद या मकबरा बना देना है।

मार्च, १३९८ ई० में उसने कटक के पास से सिन्धु नदी को पार किया

ग्रौर तुलुम्ब के सारे निवासियों को मारकर उनसे सारा धन, ग्रनाज इत्यादि छीन लिया। मध्यकालीन मुस्लिम सेनाएँ हर रोज मारकाट, लूट-पाट और शीलहरण में लगी रहती थीं। जीवन के दिन बिताने का बस एक यही उपाय उनके पास था। मृतकों के माल को खाकर ही उनकी सेनाएँ जिन्दा रहती थीं जिस प्रकार सड़ी-गली चीज में कीड़े कुलबुलाते रहते हैं। शराब पीना ग्रौर बलात्कार करना ही उनके जीवन का एकमात्र लक्ष्य था। जब उनका नर-संहार बन्द रहता था तब पराजित देश से लूटकर लाए हुए माल से वे लोग ख़रीद-फ़रोख़्त करते थे। ग्रपने ग्रापको सजाने-सँवारने, लोगों को घूस देने तथा भारत की लूट, हत्या, बलात्कार ग्रौर शराबखोरी के ग्रपने पापों का प्रायश्चित करने के लिए मक्का में गरीबों को दान देकर वे लोग ग्रपने लूटपाट के माल को ख़र्च करते थे।

इस उपजाऊ ज़मीन में बाकी हिन्दुग्रों की जिन्दगी का गला घोटने वाले, धर्मान्ध इस्लाम के दम घोटने वाले वातावरण ग्रौर घातक जहर से ग्रातंकित होकर कश्मीर के राजा ने तैमूर से सन्धि करके उस जानवर को मनमानी लूट मचाने की छूट दे दी।

वहाँ से ग्रागे बढ़कर वह जानवर उस नगर में पहुँचा जिसे वह शाह-नवाज़ कहता है (जबकि उस समय हिन्दुस्तान में इस मुस्लिम नाम का कोई नगर नहीं हो सकता था)। यहाँ तैमूर ने ग्रपने स्वभाव का जंगली-पन दिखाया। उस बृहत् कृषि-केन्द्र का सारा ग्रन्न उसने छीन लिया। जितना ढो सकता था उतना लाद लिया। बाक़ी को उसने जला दिया, ताकि उसकी तलवार से बचकर भाग जाने वाले लोग भूख की ग्राग में जल मरें। सारे संसार में उन लोगों ने इन्हीं तरीक़ों से लोगों को इस्लाम धर्म में भरा है। इस इस्लाम धर्म में लोगों को दीक्षित करने के लिए उन्हें भूख से तड़पाया गया, कुचला गया, लूटा गया, कटार भोंककर मारा गया ग्रौर तरह-तरह की यातनाएँ देकर सताया गया। ग्राँसू का कोई मूल्य उनके सामने नहीं था। दया-माया से उनका कोई नाता नहीं था। माँ-बाप के सामने उन लोगों ने स्त्रियों ग्रौर बच्चों पर सिर्फ़ बलात्कार ही नहीं किया वरन् उनका मांस उनके माँ-बाप के मुँह में ठूँसा गया।

फ़तहबाद, राजपुर ग्रौर पानीपत होकर तैमूर दिल्ली ग्रा धमका। प्रत्येक नगर ग्रौर ग्राम में उसने हत्या ग्रौर हाहाकार का बाजार गर्म कर

दिया था। जो हिन्दू उसके हाथ में पड़ा, हलाल हो गया। स्त्रियों पर बलात्कार हुआ। बच्चों को या तो हलाल कर दिया गया या उनका खतना हुआ। फिर भावी लुटेरा बनाने के लिए उन सबको अपने स्कूल में गुलाम बनाकर दाख़िल कर लिया। सब घरों में आग लगा दी गई।

मुलतान, दीपलपुर, सरसुती, कैथल, समाना आदि नगरों में ढाए गये तैमूर के क्रूर जुल्मों की कहानी उसके दिल्ली पहुँचने से पहले ही वहाँ पहुँच गई थी। इन घटनाओं को सुन-सुनकर यहाँ के हिन्दू नगर-सैनिकों एवं नागरिकों ने अपनी-अपनी पत्नियों और बच्चों को चिता में जला दिया, बशर्ते कि उनको यह काम करने का समय मिल सका हो या ऐसा करने का साहस उनमें रहा हो, जिससे ये मुस्लिम जानवर उनकी आँखों के सामने उन्हें भयंकर यातनाएँ न दे सकें। सारे सामान को लूटने के बाद लोगों को नंगाकर कोड़े से पीटा जाता था। उनका अपमान करने, यातना देने और खत्म करने के लिए उन लोगों को शहर के बीच मैदान में घसीट लाया जाता था। औरतों पर बलात्कार कर उन्हें खत्म कर दिया जाता था। अपने जैसा ही बर्बर.जंगली बनाने के लिए बच्चों को गुलाम बना लिया जाता था।

मानव-जाति के इतिहास में किसी भी धर्म या जाति ने यातना-पीड़ा देकर, फेफड़ा निकालकर, क़यामत बरपाकर, पाशविकता से बलात्कार कर, हलाल कर, असहाय और अपंग बनाकर, आँखें फोड़कर, हड्डियाँ चूर-चूर कर, जिन्दा जलाकर, गर्म लोहों से दाग़कर, गुदा-भोगकर, दीन-हीन गुलाम बनाकर, तबाही और बरबादी फैलाकर इतना जुल्म नहीं ढाया होगा, जितना इन जानवरों ने इस्लाम के नाम पर अफ्रीका से फिलीपाइन तक ढाया है। तैमूर इन जानवरों का शाहज़ादा था। इसीके ख़ून से हिंसक जानवरों की एक लम्बी क़तार पैदा हुई थी। इस क़तार को 'महान्' (?) मुग़लिया खानदान कहते हैं। १५२६ ई० से १८५८ ई० तक इस ख़ानदान ने हिन्दुस्तान पर अत्याचारों की मूसलाधार वर्षा की थी।

दिल्ली कूच करते समय तैमूर अपनी जीवनी मुलफ़ुज़द-ए-तैमूरी में कहता है—"मैंने तेहाना से अपना माल असबाब भेज दिया था। मैंने जंगलों और पहाड़ों के रास्ते सफ़र किया। मैंने २००० शैतान जैसे जाटों की हत्या की, उनकी पत्नियों और बच्चों को बन्दी बनाया और उनके

सारे धन तथा गायों को लूट लिया'''समाना, कैथल और असपन्दी के सारे लोग धर्म-विरोधी, बुतपरस्त, काफ़िर और नास्तिक हैं (जो) अपने-अपने घरों में आग लगाकर अपने बच्चों समेत दिल्ली भाग गये और सारा देश सुनसान कर गये।" यही वह मुस्लिम प्लेग है। इसीने हज़ार वर्ष तक भारत को बरबाद किया। इसीके नाम से लोग जान लेकर भागते थे। इसी इस्लामी प्लेग के मुस्लिम लुटेरों ने एक-एक कर हमारे देश को नोच-खाया और लूटा-जलाया।

पानीपत के उजड़े दुर्ग-भण्डार में तैमूर को १० हज़ार मन गेहूँ मिला। लालची मुस्लिमों की नर-हत्या की आग में भस्म होकर पानीपत-दुर्ग का नामोनिशान तक मिट चुका है।

तैमूर दिल्ली की ओर बढ़ता गया। पर-कटे भयभीत नये धर्मान्तरितों से तैमूर की सेना फूलती गई। सभी को उसने हथियार पकड़ने की आज्ञा दी। अब इन लोगों का नया जन्म होने वाला था। तैमूर कहता है—"दूसरे दिन मैंने एक टुकड़ी को जहाँनुमा के महल को लूटने की आज्ञा दी। गंगा के किनारे, एक पहाड़ी के ऊपर सुलतान फ़िरोज़शाह ने इस महल को बनाया था।" ज्योंही अफवाह फैलाने वाला, हत्यारा, चोर डाकू और झूठा तैमूर एक दूसरे मुस्लिम आततायी को एक महल बनाने का श्रेय देता है, त्यों ही हमारे अन्धे और विवेकहीन इतिहासकार इसे फ़िरोज़-शाह की बपौती समझकर उसे कसकर चिपटा लेते हैं। शायद उन्हें मालूम नहीं है कि हर हिन्दू चीज़ पर अपना कब्ज़ा कर लेना और उसपर अपना दावा ठोक देना हर मुसलमान की पाक ड्यूटी है। उनकी इस आदत और षड्यन्त्र से लगता है हमारे इतिहासकार अनजान हैं। इस ऐतिहासिक साजिश के दो पहलू हैं। एक में हर मुसलमान सारे हिन्दुस्तान के निर्माण का श्रेय दूसरे मुसलमान को दे रहा है। दूसरे मुसलमान ने यह श्रेय स्वयं ले लिया। इस छीना-झपटी में लटके हमारे इतिहासकारों ने भारत के इतिहास को एक झूठों का पुलिंदा बना दिया है। सिर्फ़ यहाँ के दुर्गों, शहरों, नगरों, नहरों, पुलों, भवनों और प्रासादों के बारे में ही उन्होंने भयंकर भ्रम नहीं फैलाया है वरन् उन्होंने एक "इण्डो सारसेनिक" आर्ट की गप्प भी मार दी है, जिसका कोई अस्तित्व ही नहीं था। यह है मुस्लिम नाम-बदल एवं धर्म-बदल जादू जो सिर पर चढ़कर बोल रहा है। सच्चाई

के प्रकाश से ही इस जादू का पाश-वन्धन नष्ट होगा।

इसके बाद तैमूर ने लोनी दुर्ग को ध्वस्त कर दिया। यह यमुना की एक प्राचीन राजपूती नहर के बीच में था। यह नहर यमुना से निकालकर फ़िरोज़ाबाद नामक नगर तक लाई गई थी। इस नहर के निर्माण का सेहरा फ़िरोज़शाह के माथे मँढना सरासर दिन-दहाड़े चोरी है। "अनेक राजपूतों ने अपने बीबी, बच्चों को घर में छोड़कर उसमें आग लगा दी। इसके बाद में वे लड़ाई के मैदान में कूद पड़े। नगर-सैनिक लड़ाई में मारे गये। बहुत-से लोग कैद किए गए।" (वही, पृष्ठ ४३३)।

तैमूर नामक राक्षस कहता है—"दिल्ली पर मेरे आखिरी हमले से पहले मुझे यह बताया गया कि हिन्दुस्तान में घुसने के समय से लेकर आज तक हम लोगों ने १ लाख हिन्दुओं को कैद किया है। ये सभी कैदी मेरे पड़ाव में थे। मैंने अपने दरबारियों से सलाह ली कि इन कैदियों का क्या किया जाये। उन लोगों ने बताया कि जंग के दिन इन एक लाख कैदियों को सामान के पास नहीं छोड़ा जा सकता। उसपर इन बुतपरस्तों और इस्लाम के दुश्मनों को आज़ाद छोड़ देना जंगी क़ायदों के खिलाफ़ होगा। उन लोगों की यह सलाह मुझे जंगी कानून क़ायदों के मुताबिक ठीक लगी। मैंने सारे पड़ाव में एलान कर देने का हुक्म दिया कि हर आदमी अपने-अपने काफ़िर कैदियों को हलाल कर दें और जो कोई भी हुक्म न मानेगा उसे मार दिया जायेगा और उसकी सारी चीज़ें वैसी खबर देने वाले को दे दी जायेंगी। इस्लाम के गाज़ियों को जब इस हुक्म की जानकारी हुई तो उन लोगों ने अपनी-अपनी कटारें खींच लीं और अपने कैदियों को हलाल कर दिया। मौलाना नासिरुद्दीन उमर मेरा सलाहकार और एक तालीम-याफ्ता आदमी था। उसने अपनी सारी जिन्दगी एक चिड़िया को भी न मारा होगा। अब, उसीने मेरा हुक्म पूरा करने के लिए अपनी तलवार से १५ बुतपरस्त हिन्दुओं को मार डाला जो उसके कैदी थे।"

एक लाख आदमियों की हत्या—दिल्ली पर आख़िरी चढ़ाई और लड़ाई में विजय पाने के लिए एक लाख हिन्दुओं की हत्या का शकुन किया गया। क्या यह भी बतलाना होगा कि इस्लाम के नाम पर बरसने वाली यातना और पीड़ा को इन १ लाख वीर और दृढ़ हिन्दुओं ने अपनी छाती पर झेला था और उफ़ तक नहीं की? अपनी जान दे दी पर आन नहीं

छोड़ी ? व्यभिचारी मुस्लिम जानवर बनने के बदले, वीर और धार्मिक हिन्दू के रूप में मिट जाना इन लोगों ने बेहतर समझा। तैमूर के इस बयान से यह भी ज्ञात होता है कि जो लोग एक वीर राजपूत के समीप जाने का साहस कभी नहीं करते थे, वे लोग भी असहाय हिन्दू कैदियों के पेट में अपना खूनी खंजर भोंककर गाज़ी कहलाने के सुनहरी मौके को अपने हाथ से नहीं जाने देते थे। तैमूर के वर्णन से यह भी मालूम होता है कि सारे संसार में इस्लाम धर्म एक खूनी धर्म के रूप में फैला था। इसमें प्रत्येक मुसलमान को क़त्लेआम का अपना कोटा पूरा करना पड़ता था चाहे वह मुसलमान मुल्ला हो या दलाल।

संकट की ऐसी घड़ी में एक कमज़ोर मगर खूनी सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ द्वितीय दिल्ली पर राज्य करता था। यमुना नदी के तट पर तम्बू लगाकर तैमूर की लुटेरी सेना गिद्धों और भेड़ियों के झुण्ड की भाँति ग्रामीण क्षेत्रों पर टूट पड़ी। प्रत्येक दिन सुलतान व तैमूर की सेना में झड़पें होने लगीं।

१७-१२-१३९८ ई० को तैमूर के हत्यारे दिल्ली में घुस पड़े। दिल्ली के एक दरवाज़े से अपनी जान लेकर सुलतान और दूसरे दरवाज़े से उसका सेनापति मल्ल खाँ नौ दो ग्यारह हो गया। मुस्लिम गिद्धों की खुराक बनने के लिए हिन्दू जनता वहाँ रह गई।

भरे दरबार में तैमूर ने अपनी जीत की खुशियाँ मनाईं। शराब में गर्क मुस्लिम गुण्डों के बीच कैदी औरतें बाँट दी गईं। इसी कारण यह मुहावरा भी हिन्दुस्तान में चालू हो गया है कि—आखिरी वक्त में अब क्या ख़ाक मुसलमां होंगे।

क्रिसमस नज़दीक आ रहा था। शाही खूनी-प्रथा के अनुसार इसे मनाने का निर्णय तैमूर ने किया। एक महान् नर-संहार का हुक्म हुआ। इसका कारण तैमूर ने दिया है—

(१) खूंखार तुर्कों के एक दल ने पुरानी दिल्ली के एक द्वार पर जमा होकर, मनोरंजन का साधन ढूंढ़ते हुए कुछ निवासियों पर प्रहार कर दिया।

(२) तैमूर के हरम की व्यभिचारिणी विदेशी मुस्लिम युवतियों ने शहर में जाकर हज़ार खम्भा महल देखने की इच्छा प्रकट की (इसके निर्माण का सेहरा तैमूर ने झूठ-मूठ मुहम्मद तुग़लक़ के सिर मँढ दिया है)।

बुरक़े में बंद इन स्त्रियों के अंगरक्षक स्पष्टतः सारे रास्ते अपनी व्यभिचारिणी प्रवृत्ति का प्रदर्शन करते रहे।

(३) खूँख़ार तुर्कों का एक दल क्षतिपूर्ति के लिए बाप का माल समझकर हर घर में घुसकर हिन्दुओं का सारा धन लूट-खसोट रहे थे।

(४) तैमूर की तबाही से घबराकर दूर-दूर जगहों के हिन्दू अपने परिवार के साथ दिल्ली में आकर जमा हो गये थे। उन सबको अब घरों से निकालकर एक केन्द्रीय स्थान में हाँका जा रहा था।"

पृष्ठ ४४६-४७ पर तैमूर उस खूनी दृश्य का बड़ा नृशंस और रोमांचकारी वर्णन करता है, जब उसकी निर्बाध तलवार चल रही थी—"सिपाही हिन्दुओं को पकड़ने के लिए जब बढ़े तो बहुतों ने अपनी तलवारें खींच लीं। इस लड़ाई से लगी हुई आग सभी कुछ जलाती हुई सीरी से लेकर पुरानी दिल्ली तक फैल गई। क्रोधित होकर तुर्क काटने-लूटने में लग गये। हिन्दुओं ने अपने घरों में अपने हाथ से आग लगा दी, अपनी स्त्रियों और बच्चों को उसमें जला दिया, फिर लड़ने दौड़े और मारे गये। हिन्दुओं ने लड़ाई में बड़ी फुर्ती और बहादुरी दिखाई। बृहस्पतिवार और शुक्रवार की सारी रात लगभग पन्द्रह हजार तुर्क काटने, लूटने और बरबाद करने में जुटे रहे। शुक्रवार की सुबह मेरी सेना मेरे काबू से बाहर हो गई। शहर में जाकर उन लोगों ने कुछ भी सोच-विचार नहीं किया, काटने, लूटने और बंदी बनाने में तल्लीन हो गये। सारे दिन मार-काट चलती रही (क्योंकि वह शुक्रवार था, हलाल करने और जिवह करने के लिए मुसलमानों का पाक दिन था)। दूसरे दिन शनिवार था। सभी कुछ वैसे ही चल रहा था। लूट इतनी ज्यादा थी कि हर आदमी के पास ५० से १०० तक कैदी थे, जिसमें औरत, मर्द और बच्चे सभी थे, (साथ सारे गहने और जवाहरात भी) हीरे, जवाहरात, माणिक, मोती, सोने-चाँदी के गहने, अशर्फ़ी, सोने-चाँदी के टंके, सोने-चाँदी के बर्तन, क़ीमती कपड़े और रेशम आदि लूट का बहुत अधिक माल हाथ लगा। हिन्दू औरतों के सोने-चाँदी के गहने इतने हाथ लगे कि उनका हिसाब नहीं हो सकता था। (क्या यह कहना होगा कि हिन्दू दिल्ली की यह सबसे बड़ी मुस्लिम डकैती थी ? इस सारी सम्पत्ति को इन मुस्लिम गुण्डों ने अरब से लेकर अफ़गानिस्तान तक के मक्का मदीना आदि शहरों में बहाया है)। मुसलमानों के रहने के लिए सारा शहर खाली हो गया।"

तैमूर आगे लिखता है—"दूसरे दिन शनिवार को मुझे यह बताया गया कि बहुत-से हिन्दू हथियार और राशन लेकर पुरानी दिल्ली की मस्जिद-ए-जामी (जामा मस्जिद) में जमा हो गये और बचाव की तैयारी कर रहे हैं। मेरे कुछ आदमी उधर जा रहे थे। हिन्दुओं ने उन लोगों को घायल कर दिया। मैंने तुरन्त अमीरशाह मलिक और अली सुलतान तबाची को काफ़िरों और बुतपरस्तों से अल्लाह के घर को खाली करवाने का हुक्म दे दिया। उन लोगों ने काफ़िरों पर हमला करके सभी को खत्म कर दिया। इसके बाद पुरानी दिल्ली लूट ली गई।"

क्या इस विवरण से यह साफ़-साफ़ मालूम नहीं हो जाता है कि मुग़ल बादशाह शाहजहाँ के २०० वर्ष पूर्व पुरानी दिल्ली और इसकी तथाकथित जामा-मस्जिद मौजूद थी, जिसके बनाने का झूठा श्रेय उसके माथे मँढा जाता है? अपनी बेवकूफ़ी से तैमूर यह भी बतला देता है कि जामा-मस्जिद एक हिन्दू मन्दिर था। अगर ऐसा नहीं होता तो हिन्दू कभी भी वहाँ जमा नहीं होते। घटनाक्रम में तैमूर इस बात को भी प्रकट कर देता है कि मुसलमान लोग प्रमुख हिन्दू मन्दिर को अपने अधिकार में कर उसे जामा-मस्जिद (यानी प्रमुख मस्जिद) कहने लगते थे और अन्य छोटे हिन्दू मन्दिर साधारण मस्जिद हो जाते थे। फिर यह लिख दिया जाता था कि इनको मुसलमानों ने 'बनाया' है।

अब एक दूसरी मुस्लिम-स्वीकृति भी सामने आती है। महलों के बनाने की कला से मुसलमान लोग अनजान थे। यहाँ के विशाल, भव्य हिन्दू दुर्गों, महलों, मन्दिरों और नदी के घाटों को देख-देखकर उन लोगों की आँखें विस्मय से फटी-फटी की रह जाती थीं। तैमूर लिखता है—"समरकन्द में एक मस्जिद-ए-जामी बनाने का मैं पक्का इरादा कर चुका था, जो सारे संसार में बेजोड़ हो। इसलिए मैंने हुक्म दिया कि कैदियों में से सभी (हिन्दू) राज-मिस्त्रियों, महल-निर्माताओं, कलाकारों और चतुर यान्त्रिकों को जो अपनी-अपनी कलाओं में माहिर हों, छाँट-छाँटकर अलग कर दिया जाये। इसके अनुसार हज़ारों कारीगरों को छाँटा गया।"

इस प्रकार महमूद गज़नवी की तरह तैमूर ने भी हम लोगों के लिए यह स्पष्ट रिकार्ड छोड़ दिया है कि भारत में एक भी दुर्ग, महल या मस्जिद बनवाना तो दूर रहा, महल की ज़मीन पर भी मुसलमानों ने कोई नाम देने

लायक निर्माण नहीं किया है। वे हिन्दू कारीगर ही थे; जिन लोगों ने अफ़गानिस्तान से लेकर अरब तक के सारे मध्यकालीन स्मारकों को बनाया है। इसलिए भारत में कोई भी मुस्लिम वास्तुकार नहीं था, न कोई मुस्लिम वास्तु-कला ही थी। सारी मुस्लिम जमीन पर हिन्दू वास्तु-कला बिखरी हुई है, जिसको हिन्दू खून, हिन्दू-पसीने, हिन्दू-धन, हिन्दू-चातुरी, हिन्दू-प्रतिभा और हिन्दू हाथों ने बनाया है। इसलिए सारे संसार की वास्तु-कला और इंजीनियरिंग की पाठ्य-पुस्तकों में अब सुधार करने की आवश्यकता हो गई है जो लोगों को साफ़-साफ़ यह बतला दें कि कम-से-कम एशिया की सारी प्राचीन और मध्यकालीन इमारतें परम्परागत हिन्दू-निर्माण कला के अद्वितीय नमूने हैं।

श्री, जहाँपनाह और पुरानी दिल्ली को अच्छी प्रकार लूट लेने के बाद, तैमूर कहता है—"मैंने दिल्ली के निवासियों की तबाही में और अधिक दिलचस्पी नहीं ली। (क्योंकि दिल्ली खाली हो चुकी थी)। (घोड़े पर) सवार होकर मैं नगरों के चारों ओर घूमा। श्री एक गोल शहर है। इसकी इमारतें बड़ी बुलन्द हैं, जो चारों ओर किलेबन्दी से (प्राचीर से) घिरी हुई हैं। पुरानी दिल्ली में भी एक ऐसा ही मजबूत किला है (और पुरानी दिल्ली में एक ही किला है, लाल किला) मगर यह श्री से बड़ा है। श्री से पुरानी दिल्ली तक, जो अच्छी खासी दूरी पर है, एक मजबूत दीवार चली गई है। आबाद नगर के बीच में जहाँपनाह बसा हुआ है। इन तीन शहरों में ३० दरवाज़े हैं—जहाँपनाह में १४, श्री में ६ और पुरानी दिल्ली में १०।"

तैमूर दिल्ली में १५ दिन तक रहा। यह समय उसने "मौज-मस्ती लेने, दरबार का आनन्द उठाने और बड़ी-बड़ी दावतें देने में गुज़ारा।" निश्चय ही इसमें एक मुसलमान का पहला धर्म हिन्दुओं को हलाल करना भी शामिल है। उधर मुस्लिम सुलतान मुहम्मद दूर गुजरात में जाकर छिप गया था।

१५ दिन के खूनी नाच के बाद यह देखकर कि कोई भी हिन्दू अब हलाल होने के लिए नहीं बचा है, तैमूर ने हम लोगों को बतलाया है कि हिन्दुस्तान के दूसरे भागों में हिन्दुओं की हत्या करने, उनके बच्चों को कैद करने और उनका धन लूट लेने के लिए "मैंने फिर अपनी तलवार खींच ली।"

मगर १५ दिन की हाय-हत्या के बाद तैमूर ने दिल्ली छोड़ने में बड़ी जल्दबाज़ी की। इसका कारण यह था कि बग़दाद की जनता वहाँ उसके गुर्गे के विरुद्ध खड़ी हो गई थी।

वापिस लौटते समय बाग़पत, मेरठ, हरिद्वार, जम्मू, नगरकोट आदि अनेक प्रसिद्ध नगरों को भी तैमूर बरबाद करता गया। प्रायः सभी हिन्दू नागरिकों को हलाल कर दिया, उनकी पत्नियों पर बलात्कार किया, चीखते-चिल्लाते निर्दोष बच्चों को या तो मार दिया या उनका खतना कर दिया, उनकी सम्पत्ति लूट ली, और मुस्लिम दुर्व्यवहार के लिए उनके मन्दिरों एवं महलों को मस्जिद और मकबरा बना दिया। उसने जम्मू के घायल राजपूत राजा को यातनाएँ देकर मुसलमान बना दिया और एक गाय को हलाल कर मुस्लिम गुण्डों के साथ उसे गोमांस खाने पर मजबूर किया। "इस प्रकार जब हम लोग उसे मुसलमान जाति में मिला चुके तब उसके जख़्मों की दवा करने के लिए मैंने अपने हकीम को हुक्म दिया।" (पृष्ठ ४६२)।

ऐसे असंख्य हिन्दू राजपूतों एवं उनकी प्रजा को ये लोग बन्दी बना लेते थे। फिर उनके जख़्मों की मरहम पट्टी करनी तो दूर रही, ये जानवर उन लोगों को तरह-तरह की यातनाएँ देकर संसार में मुसलमानों की तादाद बढ़ाते थे। लाखों हिन्दुओं को मारकर, अपंग कर, अपमानित कर, धर्मान्तरित कर तैमूर उन लोगों का असीम धन अपने साथ बटोरकर ले गया। जाते-जाते भी तैमूर मुलतान, लाहौर, देवलपुर आदि जगहों पर लूटमार जारी रखने के लिए अपने एक गुर्गे खिज्र खाँ को नियुक्त कर गया।

इस समय तक तैमूर ६३ वर्ष का हो चुका था। १३९९ ई० की फरवरी के अन्तिम चरण में रवाना होकर वह बग़दाद पहुँच गया और विद्रोह का दमनकर ८०,०००-आदमियों का खून पी गया। यातना और हाहाकार से उसने अब बौद्ध चीन को थर्राने का विचार किया। मगर अल्लाह ने उसके विचार को उसके दिल में ही दफ़ना दिया। इस मुस्लिम पिशाच का साँस १८ फरवरी, १४०५ ई० को निकल गया।

खूनी नर-संहार और नृशंस बलात्कारों के रोमांचकारी वर्णनों से इन विचित्र मुस्लिम इतिहासों का प्रत्येक पन्ना खून से लाल है, मगर बीच-

बीच में कहीं-कहीं बड़े मजेदार प्रसंग भी आ जाते हैं, जो उनकी बेवकूफ़ी तथा अज्ञान का भंडा बीच चौराहे पर फोड़ देते हैं।

तैमूर की तथाकथित जीवनियों में भी अनजाने एक ऐसा ही प्रसंग आ गया है जिससे यह स्पष्ट हो जाता है कि बलात्कार, कत्लेआम, गुदा-भोग और शराबखोरी में गर्क रहने वाले तैमूर और जहाँगीर आदि की स्वलिखित कहलाने वाली जीवनियों को उन लोगों ने नहीं, उनके किसी दूसरे चापलूस गुर्गे ने उन लोगों के लिए लिखा है।

इसका पर्यवेक्षण करते हैं सर एच० एम० इलियट कि अबुतालिब और मुहम्मद अफ़ज़ल की हस्तलिपियों में "तैमूर ने अपनी मौत को भी लिखवाया है। परवर्ती लिपिकार मुहम्मद अफ़ज़ल से तैमूर संक्षेप में लिखवाता है—'मैं अतरार गांव पहुँचा और मर गया।' मगर अबुतालिब यह लिखते हुए इस विषय का विशेष वर्णन करता है कि 'मैं सारी रात अल्लाह के नाम को रटते हुए बेहोश हो गया और मेरी पाक रूह अल्लाहताला और पाक परवरदिगार के पास चली गई।' (पाक और साफ़ तो वह थी ही। क्योंकि सारे संसार में जिन लाखों लोगों की हत्या उसने की थी, उन लोगों के खून में इसको धो-पोंछकर पाक और साफ़ किया गया था)।" (पृष्ठ ३९४)।

आश्चर्य होता है कि किस प्रकार तैमूर यह लिखवा सका कि वह बेहोश हो गया और मर गया। मगर यह छोटी-सी बात सर इलियट के इस कथन की पुष्टि करती है कि मुस्लिम इतिहास "एक धृष्ट और मज़ेदार धोखा है।"

सर इलियट इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार अफ़ज़ल "तैमूर को सुन्नी साबित करने की कोशिश करता है जबकि उसके कट्टर शिया होने के पक्के सबूत मौजूद हैं।" इस बात को पढ़कर हमारे इतिहास-कारों की आँखें खुल जानी चाहिए कि मुस्लिम इतिहास, इतिहास लिखने के उद्देश्य से नहीं लिखे गए हैं वरन् अपने मतलब की गप्प लिख-लिखकर उन्हें इतिहास का बुर्का उढ़ा दिया है।

जहाँगीरनामा का आलोचनात्मक अध्ययन करते हुए सर एच०एम० इलियट इस बात को भी स्पष्ट करते हैं कि किस प्रकार लोगों ने यह गप्प लिख मारी है कि जिस प्रकार तैमूर ने जनता का खून बहाया था, जिस

जगह को उसने सुनसान कर दिया था वहाँ तैमूर ने जन-कल्याण के लिए सराय, कुआँ आदि बनवाये हैं। क्या कोई जन-हत्यारा जन-कल्याण की चीजें बना सकता है ? अकबर, फ़िरोजशाह, शेरशाह और जहाँगीर आदि मुसलमानों के बारे में ऐसे ही बोगस दावे किए गये हैं। बड़े शोक की बात है कि स्कूलों और कालिजों के लिए पाठ्य-पुस्तक लिखने वाले एक भी इतिहासकार में इतना कहने का साहस नहीं है कि भेड़ियों से भी बदतर मुहम्मद तुग़लक, फ़िरोजशाह, शेरशाह और जहांगीर आदि को महान् कल्याणकारी मानकर प्रशंसा करने वाला एक नम्बर का फ्रॉड है।

तैमूर 'तैमूर लंग' के नाम से भी कुख्यात है क्योंकि लड़ाई में एक हाथ और एक पैर खोकर वह पंगु हो चुका था।

अपनी मौत से पहले १४०२ ई० में यूनान की प्रार्थना पर तैमूर ने तुर्की के बादशाह बयाजिद का अपमान किया था और यूनान के एक नगर का घेरा उठाने की आज्ञा दी थी। इस धृष्टता से क्रोधित होकर बयाजिद तैमूर पर टूट पड़ा। जुलाई, १४०२ ई० में लड़ाई फिंजिया नामक स्थान पर हुई। इस लड़ाई में बयाजिद की सेना हार गई। उसे बन्दी बना, बेड़ियों से जकड़कर जंगली जानवर की भाँति एक लोहे के पिंजरे में बन्द कर दिया। इसके बाद विजयी तैमूर ने मिस्र को कुचलकर वहाँ की जनता के खून से होली खेली और सारी सम्पत्ति को लूट लिया।

३६ वर्ष तक तैमूर का जंगली शासन और शैतानी नाच चलता रहा। समरकन्द के एक प्राचीन हिन्दू महल में उसे दफ़नाया गया है। उदय होते सूर्य एवं उछलते सिंह का हिन्दू राज्य-चिह्न उसके मकबरे की भीतरी दीवार पर अंकित है। इस चिह्न को अभी तक वहाँ के लोग इसके संस्कृत नाम 'सूर-सादूल' यानी "सूर्य-शार्दूल" के नाम से ही पुकारते हैं जिसका अर्थ है सूरज और सिंह। संस्कृत से अनजान वहाँ की जनता यह मानती है कि सूर-सादूल' का अर्थ उन्हें मालूम नहीं है। फिर भी बिना समझे-बूझे मशीन और तोते की तरह वे लोग इस नाम को रटते चले आ रहे हैं।

इतिहासकार और पुरातत्त्व विभाग को इस प्रमाण से चौंक जाना चाहिए। उन्हें यह भ्रम त्याग देना चाहिए कि वह तथाकथित इमारत तैमूर की लाश पर बनाई गई है। संसार में ऐसा कौन है जो एक आतंककारी, आततायी और अभिशप्त आदमी के लिए एक आलीशान यादगार बनवाएगा, वह भी उसकी मौत के बाद ? फ़िर उसके मकबरे पर किसी भी प्रकार का रेखा-चित्र बनाना तो इस्लाम के एकदम खिलाफ़ है। एक मूर्ति-भंजक, बुत शिकन और धर्मान्ध कट्टर मुसलमान की क़ब्र पर ऐसा चित्र बनाना तो एक अतिरिक्त गुनाह है। एक कट्टर मुस्लिम की क़ब्र पर खुदी ऐसी कलाकृति न तो उसे इस्लामी जन्नत में शांति दे सकती है, न इस्लामी

जहन्नुम में। उसपर ऐसे चित्र का नाम संस्कृत में तो कदापि नहीं होगा। इन सभी बातों पर हमारे इतिहासकारों एवं पुरातत्त्व-विभाग को विचार कर सारे संसार में बिखरे मध्यकालीन मकबरों, मस्जिदों, दुर्गों, महलों और प्रासादों के निर्माताओं के बारे में अपने बिचारों को सुधारना चाहिए।

मुस्लिम साहित्य में कभी-कभी तैमूर को 'फिरदौस मकानी' यानी 'स्वर्गका मालिक' कहा जाता है, जबकि उसे 'दोजख़ का मालिक' होना चाहिए। शायद खून-खराबा और मार-काट, लूट-पाट और हाहाकार ही मुसलमानों का स्वर्ग है। यह एक दूसरा फ्रॉड है। प्रत्येक मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरा, चाहे वह शाहज़ादा रहा हो या फ़कीर, जहन्नुम का ही मालिक था क्योंकि उसने औरत, मर्द और बच्चों को जहन्नुमी जुल्मों से सताया था, क्योंकि उसने लूट-पाट के खाने-दाने से अपना पेट पाला था, क्योंकि उसने लोगों का खून पीकर अपनी प्यास बुझाई थी, क्योंकि उसने गुलाम लोगों के आँसुओं से अपनी छाती ठंडी की थी।

लोग कहते हैं कि तैमूर के चार पुत्र थे (शायद इतिहासकार यह भूल जाते हैं कि हरमों की चीख़ती-चिल्लाती और विलाप करती हज़ारों औरतों में पागल साँड की भाँति घुसकर मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों ने न जाने कितनी सन्तानें पैदा की होंगी)। उसने अपने पोते (जहाँगीर मिर्ज़ा के बेटे) पीर मुहम्मद को अपना वारिस बनाया। मगर परम्परागत मुस्लिम रिवाज़ के अनुसार उसके एक दूसरे पोते खलील ने पीर मुहम्मद की हत्या-कर अपनी सुलतानी का ढोल बजवा दिया। उसके बाद मायावी मुस्लिम राजनीति का चक्र उल्टा चला यानी उसका चाचा अर्थात तैमूर का छोटा बेटा शाहरूख मिर्ज़ा गद्दी पर आकर जम गया।

मशाल और चिमटे तथा तलवार और कटार लेकर इस्लाम धर्म का प्रचार करने वाले अग्रणी राक्षस-संतों में तैमूर का विशिष्ट स्थान है। इसने मानवता का विनाश किया था।

पृष्ठ टी-१७२, ग्रन्थ १५, प्रकाशन १९२५ में महाराष्ट्रीय ज्ञानकोश बतलाता है कि जिस किसी भी शहर में तैमूर लंग जाता था, वहाँ के निवासियों को वह बड़ी कठोरता से अपना सामान सौंप देने की आज्ञा सुना देता था। उसके बाद वह सभी को एक केन्द्रीय स्थान पर हाँक लाता था। उनमें से वह मजदूरों और कारीगरों को छाँट लेता था। बाकी की गर्दन रेत देता था। तैमूर के १५० वर्ष के बाद अकबर भी बड़ी सच्चाई और निष्ठा से इस 'सम्मानित' और परम्परागत इस्लामी रिवाज का पालन करता था, क्योंकि उसकी रगों में तैमूर का खून भी बहता था।

(मदर इण्डिया, फरवरी, १९६८)

: १७ :

खिज्र खाँ

सात सौ वर्ष से तैमूर के धर्म-भाई लगातार हिन्दुस्तान में लूट मचाकर उनका खून बहाते चले आ रहे थे। मगर हत्यारों के सरताज तैमूर के संहारक टूर के तूफ़ान ने जो तबाही और बरबादी मचाई थी उसने एक बार तो इस देश का सत्यानाश ही कर दिया था। अपने पीछे वह कटी-सड़ी लाशों की सड़ान्ध से व्याप्त और अकाल के मारे उत्तर भारत के एक विशाल भाग को छोड़ गया था, जहाँ पंगु और अपंग मानव शरीर भूत की भाँति एक-एक दाने अनाज के लिए घिसट-घिसटकर ज़मीन पर चलते थे।

निर्जन दिल्ली भायँ-भायँ कर रही थी। कुछ लोग ही वहाँ ज़बरदस्ती चिपटे हुए थे। उनमें भी भयंकर दुर्भिक्ष और रोग फैला हुआ था।

तैमूरी आक्रमण से पहले ही बंगाल, दक्षिण भारत और विजयवाड़ा ने दिल्ली की मुस्लिम सुलतानी से अपना नाता तोड़ दिया था। अब तैमूरी-संहार के समय गुजरात, मालवा और जौनपुर ने भी दिल्ली से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। ये राज्य शक्तिशाली और स्वतन्त्र हो गए। सिन्ध के एक भाग, दीपलपुर, मुलतान एवं लाहौर पर तैमूरी गुर्गा खिज्र खाँ आकर बैठ गया।

१३९९ ई० में जब तैमूर ने भारत का पीछा छोड़ा तो नुसरत शाह ने अपने आपको दिल्ली का सुलतान घोषित कर दिया। उधर मात्र नाम का सुलतान मुहम्मद शाह तुग़लक़ अपने वज़ीरे-आज़म मल्लू के साथ गुजरात में छिपा हुआ था। मल्लू ने, जो अपने स्वामी से अधिक साहसी था, नुसरत पर धावा बोल दिया। नुसरत भाग गया और बाद में मर गया।

वास्तविक शासन मल्लू के हाथ में था यद्यपि वह मुहम्मद शाह तुग़लक़ के नाम से ही राजकाज चलाता था। उसकी आज्ञा दिल्ली के आस-पास ही

चलती थी। जब ख्वाजा जहान का दत्तक पुत्र मुबारिक शाह जौनपुर की गद्दी पर बैठा, तब मल्लू ने उसपर धावा कर दिया और हार खाकर वापिस लौट आया।

भगोड़े सुलतान मुहम्मद तुग़लक़ ने गुजरात के गवर्नर मुजफ्फर शाह के पास शरण ली थी। आज सर्वाधिक सभ्य कहलाने वाले लोगों के अच्छे दिनों में भी मुहम्मद अतिथि-सत्कार एक आफ़त ही है, तब मध्यकालीन मुस्लिम परम्परा में यह स्वाभाविक ही था कि मुहम्मद तुग़लक़ की उपेक्षा और अपमान हो।

जब सुलतान की हालत ऐसी पतली थी, उसी समय उसे मालवा के मुस्लिम गवर्नर दिलावर खाँ का निमन्त्रण मिला। दिलावर खाँ दिल्ली की गद्दी पर अपना दावा ठोकने के लिए सुलतान को शिखण्डी बनाना चाहता था।

इधर मल्लू ने भी देखा कि वह अपने विरुद्ध बग़ावतों की बाढ़ को नहीं दबा सकता तो १४०१ ई० में उसने दर-दर की ठोकरें खाने वाले सुलतान को दिल्ली आने का न्यौता भेज दिया। दिल्ली लौटकर सुलतान ने देखा कि वह एक बन्दी जैसा ही नहीं है, मल्लू की सत्ता को ललकारने वालों के लिए एक काक-भगोड़ा भी बनकर रह गया है।

कन्नौज और जौनपुर का दमन करने के लिए, शाही निशानी के बतौर मल्लू ने सुलतान को भी साथ रख लिया। शाही मौजूदगी के बावजूद मल्लू को हारना पड़ा। अब उसके लिए सुलतान का कोई महत्त्व नहीं रहा। उसने अपना काक-भगोड़ा मूल्य भी खो दिया था। सुलतान ने भी स्थानीय हिन्दू नागरिकों की सम्पत्ति लूटकर एक डाकू का जीवन व्यतीत करने के लिए अपने कुछ मुस्लिम साथियों के साथ जौनपुर में ही पड़ाव डालने का विचार कर लिया। कन्नौज और जौनपुर की हिन्दू जनता अब दो मुस्लिम सेनाओं की चक्की में फँस गई। उसका जीवन चूर-चूर होने लगा।

मल्लू सुलतान बनने को बहुत ही आतुर था। राजकाज चलाने के लिए उसे थोड़ी बहुत ज़मीन तो चाहिए ही। उसने ग्वालियर और इटावा पर धावा कर दिया। हमेशा की भाँति परम्परागत नियमबद्ध मुस्लिम तरीक़ों से उसने इन दोनों दुर्गों के समीपवर्ती क्षेत्रों को तहस-नहस कर डाला।

फिर भी हारे-थके मल्लू को अपना पसीना सुखाने के लिए भागकर दिल्ली आना पड़ा। दिसम्बर, १४०२ ई० में मल्लू ग्वालियर के देशभक्त हिन्दू शासक ब्रह्मदेव से भी हारा। दूसरे वर्ष धौलपुर में भी उसे धूल फाँकनी पड़ी। ग्वालियर और जलहर के हिन्दू राजाओं की सहायता से इटावा के वीर हिन्दू राजा राय सरवर से भी मार खाकर, मुस्लिम अत्याचारी मल्लू को साँस लेने दिल्ली लौटना पड़ा। हिन्दू क्षेत्र में लूट और बलात्कार की मुस्लिम उछल-कूद को हिन्दुओं ने एक बार फिर विफल कर दिया।

मल्लू ने अब कन्नौज पर घेरा डाल दिया। वहाँ से तुग़लक़ी सुलतान को हटाकर, मुस्लिम जोंक के रूप में वह खुद चिपकना चाहता था। मगर यहाँ से भी उसे भागना ही पड़ा। अब वह खिज्र ख़ाँ पर दौड़ पड़ा। सिन्ध और पंजाब की सीमा में मुलतान-मार्ग पर एक नगर है, इसका भी नाम अयोध्या है। इसके समीप लड़ाई हुई, जिसमें खिज्र ख़ाँ ने मल्लू को मार दिया और लटकाने के लिए उसका सिर काटकर फ़तहपुर भेज दिया।

दिल्ली में अब कोई नाम का भी शासक नहीं बचा तो मुहम्मद तुग़लक़ कन्नौज से दिल्ली आ गया और मुलतानी लबादा एक बार ओढ़ लिया। सुलतान के नाम पर दौलत ख़ाँ लोदी नामक एक अफ़ग़ान राजकाज चलाने का दिखावा करने में तल्लीन हो गया।

खिज्र ख़ाँ भी सिर्फ़ पंजाब में ही क्यों चिपका रहता? वह भी पड़ोस के हिन्दू-क्षेत्रों पर धावा बोल सकता था। हिन्दू-महलों को छीन सकता था। हजारों हिन्दुओं का इस्लामीकरण कर उन्हें अपनी सेना में भरती कर सकता था और अपनी निशाचरी कमाई से डगमगाती तुग़लक़ी गद्दी को उलटकर उसपर बैठ सकता था।

फलतः मुस्लिम रस्साकशी को चलना था, वह चली। खींचतान हुई। उत्तर भारत के विभिन्न भागों पर खिज्र ख़ाँ के दौड़ते-भागते हमले हुए। जहाँ-तहाँ टकराव भी हुआ। इस बीच दो बार दिल्ली उसके हाथ में आती-आती रह गई।

आठ वर्ष तक मात्र नाम का राज्य करने के बाद सुलतान मुहम्मद फरवरी, १४१३ ई० में मर गया। इसी बीच जान लेकर कभी वह इधर भागता था, कभी उधर। उसे कभी वज़ीरे आज़म ने खदेड़ा तो कभी किसी दरबारी ने रगेदा। कई बार उसने दिल्ली भी छोड़ी।

उसकी मृत्यु के बाद प्राय: एक वर्ष तक दौलत खाँ लोदी अपना हुक्म चलाता रहा। अन्त में, खिज्र ने उसे बन्दी बना लिया।

इस प्रकार दिल्ली की सुलतानी एक दूसरे मुस्लिम खानदान के हाथ में आ गई। यह सैयद ख़ानदान था। इसका पहला सुलतान था खुद खिज्र ख़ाँ। १४१४ ई० में वह गद्दी पर बैठा। हज़ार वर्ष तक इस्लामी लूट में संलग्न रहने वाले सभी मुस्लिम लुटेरों की भाँति, दिल्ली की गद्दी पर बैठने के साथ ही खिज्र ख़ाँ ने भी हिन्दू-क्षेत्रों पर अपनी नज़र दौड़ाई कि आसानी से अधिक माल कहाँ हाथ लग सकता है। सोच-विचारकर उसने रोहतक में तबाही फैलाई और सम्बल को लूट लिया जिसे २०० वर्ष से मुस्लिम डाकू लूटते ही आ रहे थे।

मध्यकालीन भारत में राज चलाने वाले सभी मुस्लिम सुलतानों के पास अपने दलालों, चापलूसों और स्तुति-गायकों का एक गिरोह होता था। इसमें प्रत्येक खुशामदी असभ्य मुस्लिम संरक्षकों की लम्बी-चौड़ी प्रशंसा-कर अपने पूर्ववर्ती एवं समकालीन धर्म-भाइयों को मात देने का जी तोड़ प्रयास करते थे। इस काम में याह्या-बिन-अहमद ने अपनी 'तारीख़े मुबारिक शाही' में एक कमाल कर दिखाया है। उसने खिज्र ख़ाँ को सीधे पैगम्बर मुहम्मद का वंशज प्रमाणित कर दिया। सबूत में फकीर (सन्त) जलालुद्दीन बुख़ारी का बयान दे दिया। मगर अफसोस! भारतीय विद्या भवन की पुस्तक 'दिल्ली सुलतानेट' (भारतीय जनता की सभ्यता और इतिहास का ग्रन्थ ६, पृष्ठ १२५) में लिखा गया कि यह "बिना आधार का प्रमाण है।" इस प्रकार यह पुस्तक संकेत करती है कि अन्ततोगत्वा इस मध्यकालीन तथाकथित सन्तों में न तो कोई सन्तपन ही था, न कोई सच्चाई ही।

तैमूर के बेटे शाह रूख की आड़ में खिज्र ख़ाँ ने दिल्ली की गद्दी सँभाल ली। पर जैसी उसकी हालत थी उसको देखते हुए उसका कोई महत्त्व नहीं था। मुस्लिम साजिशें और हत्याओं के लम्बे इतिहास ने दिल्ली राज्य को दिल्ली तक ही सीमित कर दिया था। शताब्दियों के परिश्रम से हिन्दुओं ने इसे सम्पन्न और उपजाऊ बनाया था। मुसलमानों ने इसे कंगाल और बंजर बना दिया। यही दिल्ली खिज्र ख़ाँ को मिली।

जब खिज्र ख़ाँ को दिल्ली मिली, याह्या हमें बतलाता है कि—"पिछले कारनामों की ज़ोर-ज़बर्दस्ती से दिल्ली कंगाल हो चुकी थी" (पृष्ठ ४६, ग्रन्थ

६)। इस प्रकार मुस्लिम इतिहासकार आपस में ही यह स्वीकार करते हैं कि भारत का प्रत्येक मुस्लिम शासक एक दुष्ट था। प्रत्येक मुस्लिम मालिक की प्रशंसा करता हुआ बतलाता है कि पिछले शासक ने भारत को कंगाल बनाया था।

हज़ार वर्ष तक लगातार पनपने वाले अनर्गल मुस्लिम इतिहासों की कतार का जोड़ संसार के साहित्य में कहीं भी नहीं खोजा जा सकता जिसमें हत्या, नरसंहार और लूट को 'महान्' ही नहीं बताया गया वरन् इन्हें 'मुस्लिम उदारता का बेजोड़ कारनामा' भी बताया गया है। यहाँ इसके शिकार 'हिन्दू' थे।

सैयद ख़ानदान के तत्त्वावधान में हिन्दुस्तान की लूट-खसोट जारी रही। नये सुलतान खिज्र ख़ाँ का एक गुर्गा "गंगा को पार कर कटेहर गया और उसने हिन्दुओं को लूट लिया। आतंककारी मुस्लिम कारनामों के सामने राय हरसिंह पहाड़ियों में भाग गए। ताजुल् मुल्क अब दूसरी ओर मुड़ा। उसने गंगा पार कर, खुर, कम्पिला, सकिमा, और बाधम को लूटा।"

इटावा, ग्वालियर, सूरी, चन्दावर, और जलेश्वर पर दूसरे मुस्लिम गुण्डों ने हमला कर दिया। उन्होंने हज़ारों हिन्दुओं को इस्लाम में दीक्षित किया, औरतों पर बलात्कार किया, मन्दिरों को छीनकर मस्जिद बना दिया, मुसलमानी बाज़ारों में बेचने के लिए बहुत से हिन्दुओं को गुलाम बना लिया और इन लोगों की सारी सम्पत्ति छीन ली।

जलेश्वर शिव-मन्दिर के लिए विख्यात था। चन्दावर के राजा से इसे छीनकर हिन्दुस्तान के मूर्त्ति-भंजक शासन में मिला लिया गया। खिज्र ख़ाँ ने फ़िरोज़पुर और सरहिन्द के हिन्दू नगरों की जागीर अपने पुत्र मलिक मुबारिक को दे दी। इसे चापलूस याह्या "अपने योग्य पिता का योग्य पुत्र" बतलाता है।

१४१६ ई० में खिज्र ख़ाँ के हुक्म पर ताजुल मुल्क ने बयाना और ग्वालियर पर हमला कर उन्हें लूट लिया। उस समय मुसलमानों में यह रिवाज था कि वर्ष में कम-से-कम एक बार वे हिन्दुस्तान के हिन्दुओं से जिहादी जंग छेड़ते थे। यह हमला उसी कुख्यात रिवाज के अनुसार था। यद्यपि समय के क्रमानुसार किसी भी मुसलमान का किसी भी जन-कल्याण

की चीजें बनाने का ज़रा-सा भी विश्वसनीय विवरण नहीं है फिर भी यह शोक की बात है कि भारतीय और यूरोपीय विद्वानों की पीढ़ियाँ इस भ्रम में पड़ जाती हैं कि अशिक्षित, आततायी, शराबी और नशेबाज़ मुस्लिम लुटेरों ने 'विस्मयकारी', लगान-पद्धति लागू की। मृत मगर घृणित और दुष्ट मुसलमानों के लिए मकबरा बनाया और मरणासन्न बदमाशों के लिए मस्जिदें खड़ी कीं।

१४१७ ई० में वीर हिन्दू राजा तुघनराय ने मुस्लिम अपहर्त्ता को ललकारा। मलिक साधू को मारकर उसने सरहिन्द के किले को घेर लिया। यहाँ मुस्लिम कारोबार चलता था। खिज्र ख़ाँ ने एक सेना भेज दी। इसने बाली के हिन्दुओं को लूटकर रौंद डाला।

१४१८ ई० में कटेहर का वीर हिन्दू शासक हरसिंह मुस्लिम हमलावरों से हिन्दुस्तान की रक्षा करने के लिए उठ खड़ा हुआ। उधर पाँच दिन तक ताजुल्-मुल्क असुरक्षित हिन्दू-नागरिकों को लूटता रहा।" लूट का बहुत सा माल बटोकर वह वापिस लौट आया।" (पृष्ठ ५७, ग्रन्थ ४) हज़ार वर्षीय मुस्लिम रणनीति थी कि एक-एक कर हिन्दू क्षेत्रों को नष्ट कर दो, इनकी धन-सम्पत्ति निचोड़ लो और असहाय जनता का कोड़ों से इस्लामीकरण कर सारी जायदाद ज़ब्त कर लो। टिड्डी जैसी मुस्लिम सेना की इस विनाश-लीला से प्रत्येक हिन्दू सैनिक प्रभावित होता था। इसके सारे खेत और खलिहान लूट के शिकार होते थे। इसके सारे रिश्तेदार यातना भोग कर मुसलमान हो जाते थे। विनाश और विध्वंस के इस्लामी-मलबे के बीच लंगर डाले कुछ हिन्दू राजाओं और उनकी सेनाओं की हिम्मत मुसलमानी अत्याचार देखकर टूट जाती थी। 'विनाशाय च दुष्कृताम्' के उपदेश को भूलकर वे लोग कुछ ले देकर शान्ति सन्धि ख़रीदने का प्रयास करने लगते थे।

मनुष्य देवत्व में प्रगति करना चाहता है। हिन्दू आदर्शवाद की इस परम्परा में विश्वास करते हैं और इसकी प्राप्ति के लिए अन्य बातों की उपेक्षा भी कर देते हैं। साधारण मानव की देवता के रूप में प्रगति करने के इस आदर्श में निमग्न प्रगतिशील हिन्दू धर्म ने अपने इतने अनुयायियों को खो दिया, फ़िर भी उसने अपनी पलकें नहीं उठाईं। इसलिए कि हिन्दुत्व जीवन की एक पद्धति है जो अपने आप में अद्वितीय और अनुपम है। नियमों

में जकड़े एक व्यक्ति-विशेष की ही विचारधारा पर चलने वाले इस्लाम और ईसाई धर्म से हिन्दुत्व की तुलना नहीं की जा सकती क्योंकि ये दोनों धर्म सिर्फ अपनी संख्या बढ़ाने की ही चिन्ता में लगे रहते हैं। कोई आध्यात्मिक चिन्तन नहीं करते।

हिन्दुत्व क्वालिटी पर जोर देता है, क्वानटिटी पर नहीं। यही हिन्दुत्व की कमज़ोरी थी। जिसके चलते मुस्लिम आक्रमणकारियों ने यातना और पीड़ा से अपने धर्मानुयायियों की संख्या बढ़ाई। इस्लाम की धमकी का सामना हिन्दुत्व आसानी से कर सकता था अगर वह धर्मान्तरित हिन्दुओं को अपनी गोद में वापिस ले लेने के साथ ही एक धर्मान्तरित हिन्दू बना लेता और इन धर्मान्तरित मुसलमानों को उस अरब भूमि पर हमला करने के लिए प्रेरित और उत्तेजित करता जहाँ खानाबदोश मुस्लिम दुष्टों का झुण्ड अपने ज़ालिम पंजों से सारे संसार को तबाह करने के लिए टिड्डी-दल की भाँति निकलता ही रहता था।

बदायूं और बजलाना को लूटने, रौंदने के लिए ताजुल्-मुल्क पीछे हट-कर इटावा की ओर बढ़ा। इसको लूटने के बाद उसने राय सरवर को घेर लिया। मगर यहाँ से हारकर लड़खड़ाता हुआ पीछे भाग गया।

१४१६ ई० में खिज्र खाँ ने खुद हिन्दू-राज्य कटेहर पर हमला कर दिया। मार्ग में उसने कोल (आज का इस्लामीकृत अलीगढ़), राहब और सम्भल को लूटा। जिसे लोग मीठी ज़बान में मुस्लिम शासन कहते हैं, वह हकीकत में विदेशी मुस्लिम लुटेरों और उनके बलात् धर्मान्तरित गुर्गों की डकैतियों की एक लम्बी कहानी है।

एक मुस्लिम झुण्ड का नेता मोहबत खाँ बदायूँ का खुद-मुख्तियार बन बैठा। उसकी इस धृष्टता से क्रुद्ध होकर खिज्र ख़ाँ ने कूच कर दिया। मार्ग में वह पटियाला नगर को लूटता हुआ बदायूँ तक जा पहुँचा। घेरा डाले उसे छः महीने बीत गए। इधर मुस्लिम-कपट और धोखेबाज़ी ने उसकी गद्दी को खतरे में डाल दिया। घेरा छोड़कर उसे दिल्ली भागना पड़ा। फलतः किवाम खाँ, इख़्तियार खाँ आदि मृत सुलतान मुहम्मद के बाग़ी अफसर पकड़े, सताए और मारे गए।

वह बग़ावत अभी पूरी तरह दबी भी नहीं थी कि मुसलमानों के दूसरे गुट ने बग़ावत कर दी। इसके नेता सारंग खाँ और ख्वाजा अली इक़बाली

थे। दिल्ली की तृप्त मुस्लिम सेना और पंजाब की बाग़ी मुस्लिम सेना के बीच में जालन्धर, सरहिन्द, तरसरी और रोपड़ के हिन्दू क्षेत्र थे। इन दोनों के आक्रमणों एवं प्रत्याक्रमणों के बीच इनकी चटनी बन गई।

विद्रोह को दबाए बिना ही खिज्र ख़ाँ को दिल्ली लौटना पड़ा। बहुत दिनों से मुस्लिम फन्दे में फँसी दिल्ली को मुक्त करने के लिए राय सरवर देशभक्त हिन्दुओं की सेना जमा कर रहा था। राय सरवर पर हमला करने के लिए उसने एक सेना के साथ ताजुल्-मुल्क को भेज दिया।

ताजुल्-मुल्क की सेना प्लेग की भाँति बारन और कोल (वर्तमान अलीगढ़) होकर गुज़री तथा "इटावा में प्रविष्ट होकर वहाँ एक गाँव को नष्ट कर दिया।" ताजुल्-मुल्क इटावा में राय सरवर की सेना को नहीं हरा सका तो परम्परागत मुस्लिम रोष और जोश में उसने गाँवों की जमीन को कुचलना-मसलना शुरू कर दिया। उसका गिरोह तब "चन्दावर देश की ओर बढ़ा और उसे लूटकर तबाह कर दिया।" (पृष्ठ ५२, ग्रन्थ ४)। उसके बाद यह मुस्लिम झुण्ड एक दूसरे हिन्दू क्षेत्र कटेहर में घुस गया था। इन हिन्दू घरों की लूट से ही ये मुस्लिम आक्रमणकारी अपना भरण-पोषण करते थे। यह सच्चाई है। इसे मुस्लिम इतिहासकारों ने बार-बार स्वीकार किया है।

पंजाब में एक दूसरा विद्रोह पनपा। तुघन राय ने मानसुरपुर और बाइल को अपने अधिकार में कर सरहिन्द को घेर लिया। दिल्ली की सुलतानी सेना लुधियाना और उसके पास के गाँवों को लूट रही थी। इसने राय तुघन से कोई भी छेड़छाड़ नहीं की। अपनी लूट बटोरकर मलिक खैरुद्दीन और मजलिसे अली जिरक खाँ चुपचाप दिल्ली लौट गए। सतलज पार के हिन्दू राजा जशरथ गक्खर और तुघन राय की सेना का सामना करने का साहस उनमें नहीं था।

१४२१ ई० में फलते-फूलते शान्त हिन्दू राज्यों पर कुख्यात मुस्लिम परम्परा के अनुसार वार्षिक हमला करते हुए खिज्र खाँ ने मवाती जाति के नेता बहादुर नाहिर (नाहर) पर धावा बोल दिया। अपने विध्वंसात्मक इस्लामी उन्माद में खिज्र खाँ का मुस्लिम गुर्गा मलिक ताज्जुल्-मुल्क १३ जनवरी, १४२१ ई० को मर गया। खिज्र ख़ाँ ने ग्वालियर दुर्ग पर धावा कर पड़ोस के गाँवों को रौंद डाला। हिन्दुओं से मुस्लिम-लगान वसूल करने,

उनकी नारियों पर बलात्कार करने और उनके बच्चों को हथियाने के बाद खिज्र खाँ दिल्ली वापिस लौट आया और १५ मई, १४२१ ई० में मर गया।

मुबारिक शाह—अब खिज्र खाँ का बेटा मुबारिक शाह गद्दी पर बैठा। अपनी तारीख़े मुबारिक-शाही में चापलूस याह्या-बिन-अहमद अपने योग्य मालिक के शासन का पिटारा खोलता है और हमेशा की भाँति, जबानी जमाख़र्च में उसे "स्पष्टतः एक अच्छा और शाही वारिस" मानता है।

मुबारिक शाह को अब वीर हिन्दू नेता जशरथ गक्खर से खतरा पैदा हो गया। उसने एक मुस्लिम गिरोहबाज़ सुलतान अली को बुरी तरह हराया था। वह अपने आपको कश्मीर का राजा ही नहीं कहता था, वरन् जिसने अपने इस्लमी अभियानों में थट्टा निवासियों की नींद भी हराम कर दी।

सुलतान अली पकड़ा गया। हिन्दुओं ने उसके गिरोह को नष्ट कर दिया। खिज्र खाँ की मृत्यु का समाचार पाकर वीर जशरथ ने व्यास और सतलज नदी पार की और वह उन धर्मान्तरित हिन्दुओं पर टूट पड़े, जो मुस्लिम गिरोहबाज़ गुर्गे बनकर सारी क्रूर मुस्लिम कलाएँ सीख चुके थे। राय जशरथ की चमकती तलवार को देखकर ये नये धर्मान्तरित हिन्दू तलवण्जी के राय कुमालुद्दीन और राय फ़िरोज़ नौ दो ग्यारह हो गए। लुधियाना, रोपड़ और जालन्धर के क्षेत्र को राय जशरथ ने अपने अधिकार में ले लिया। मजबूर होकर जिरक खाँ ने जालन्धर दुर्ग भी सौंप दिया।

अब नाक कैसे बचे ? मुस्लिम कपट की आदत से लाचार, अपनी नाक बचाने और बन्धक रखने के लिए जिरक खाँ ने जशरथ राय के सहायक तुघन राय के एक पुत्र को उड़ाकर दिल्ली ले जाने की योजना बनाई। जालन्धर के किले से ३ मील दूर बेनी नदी के किनारे जशरथ का पड़ाव था। उन्हें इस योजना की भनक मिल गई। उन्होंने स्वयं खिज्र खाँ को पकड़ा, कैद किया और लुधियाना पहुँच गए।

जशरथ एक वीर हिन्दू राजा और पंजाब और सिन्ध का शेर था। प्रत्येक हिन्दू के लिए वह प्रातः स्मरणीय है। मुस्लिम लुटेरा मलिक सुलतान शाह लोदी जशरथ की विजयी तलवार के भय से लुधियाना-दुर्ग में थर-थर काँप रहा था। गिड़गिड़ा-गिड़गिड़ाकर उसने दिल्ली के सुलतान मुबारिक शाह से सहायता की प्रार्थना की।

जशरथ के इस शक्ति उत्थान को मुबारिक अपनी गद्दी के लिए खतरनाक समझ रहा था। १४२१ ई० में उसने दिल्ली से पंजाब के लिए प्रस्थान कर दिया। मूसलाधार वर्षा के बीच दोनों ओर की सेनाएँ नदी के आर-पार लुधियाने के समीप खड़ी थीं। उस स्थान की सारी नौकाएँ जशरथ के अधिकार में थीं। काफ़ी प्रयास के बावजूद लुटेरी मुस्लिम सेना को एक नाव भी नहीं मिली। परवर्ती लड़ाइयाँ काबुलपुर, रोपड़, जालन्धर, भोवा, और टेखर की पहाड़ियों में हुई थीं। जम्मू के हिन्दू शासक राय भीम, मुस्लिम क्रूरताओं की प्रजा-पीड़क बर्बरता से घबराकर, मुस्लिम सेना का गाइड बन बैठा। जशरथ का गढ़ टेखर जीता नहीं जा सका। आस-पास के ग्रामीण-क्षेत्रों को मज़ा चखाकर मुस्लिम सेना लाहौर लौट गई।

विध्वंसात्मक मुस्लिम आक्रमणों ने ७०० वर्षों में ही बड़ी सफलता से हिन्दुस्तान की हरी-भरी ज़मीन की आब उतारकर रख दी। वह न हरी रही न भरी। यह जादू-सा कारनामा कैसे हो गया? याह्या-बिन-अहमद हमें समझाता है—"१४२१ ई० के दिसम्बर में सुलतान ने बरबाद लाहौर शहर में प्रवेश किया। इसमें उल्लुओं के अलावा कोई ज़िन्दा नहीं था। सुलतान किले और दरवाज़ों की मरम्मत कराते हुए एक महीने तक यहाँ ठहरे।" (पृष्ठ ५६, ग्रन्थ ५)। लाहौर दुर्ग की इतनी साफ़ स्वीकृति होने के बावजूद याह्या के १०० वर्ष बाद, झूठ के बण्डल जहाँगीरनामा में गाल बजाया गया है कि उसने "लाहौर के किले में प्रवेश किया, जिसे उसके पिता (अकबर) ने बनवाया था।" किसे सच माना जाए? भारतीय और यूरोपीय इतिहासकारों ने अपने भोलेपन और सीधेपन की हद कर दी है। ऐसी झूठी बातों को जैसे-का-तैसा मान लिया है। वे अनेक मध्यकालीन महलों के बनाने का श्रेय अकबर को देते हैं। यह दूसरी बात है कि उसने एक महल भी न बनवाया हो।

लाहौर का प्राचीन हिन्दू नाम लवपुर है। इस किले का डिज़ायन, कारीगरी और सामग्री सभी कुछ दिल्ली और लाल-किले जैसी है। जब हिन्दू सेना की शक्ति का स्वर्ण युग था तब हिन्दुओं ने काबुल, गज़नी, पेशावर, रावलपिण्डी और लाहौर से लेकर दूर दक्षिण तक ऐसे किलों और दुर्गों की एक लाइन खड़ी कर दी थी।

हज़ार वर्ष के मुस्लिम शासनकाल में लुटे-पिटे और ...

किलों में से कुछ किलों के नामों को हिन्दू देशभक्तों ने अपने खून से लिखकर अमर और अमिट कर दिया है। इन किलों में कुछ किले अटक, बनारस, मानकोट, कोट कछहारा, अमरकोट (दिल्ली का लाल-किला) आदि हैं।

सुलतान मुबारिक के पीछे ही पीछे जशरथ भी था। उसने लाहौर के किले को घेर लिया। लाहौर के किले में घिरे मुसलमानों पर ३५ दिन तक आक्रमण कर जशरथ उसकी सेना का सफ़ाया कर रहे थे। मुस्लिम भक्ति दिखलाता हुआ उसकी पीठ पर मुसलमानों का पिट्ठू भीम कलानौर में जशरथ की सेना पर हमला कर रहा था। दोनों के बीच में जशरथ अडिग, अजेय खड़ा था। भीम पराजित हुआ। सुलतान चुपके से दिल्ली सरक गया।

अपने सूखते खज़ाने को भरने के लिए मुबारिक ने हिन्दू क्षेत्रों पर वार्षिक मुस्लिम हमला करने का विचार किया। इतिहासकार याह्या हमें बतलाता है कि—"१४२३ ई० में सुलतान ने गंगा नदी पारकर राठौरों के प्रदेश पर हमला कर दिया और बहुत से हिन्दुओं को मौत के घाट उतार दिया।" अपनी सहायता करने वाले हिन्दुओं के प्रति भी मुसलमानों का व्यवहार इतना ही धर्मान्ध, कट्टर और धोखे से भरा हुआ रहा है कि "राय सरवर का पुत्र आतंकित होकर भाग गया।" (पृष्ठ ५८, ग्रन्थ ५) राय सरवर के पुत्र को देर से अक्ल आई। उसने अपनी कायरता और देशद्रोह का प्रायश्चित किया। हिन्दू धन को खा-पीकर मोटे होने वाले कुछ मुस्लिम दुष्टों को उसने सजाएँ दीं और इटावा को अपने अधीन कर लिया। हारकर मुबारिक शाह को दिल्ली वापिस आना पड़ा। यह दूसरी बात है कि हमेशा की भाँति मुस्लिम इतिहासकार दिल्ली की 'मुस्लिम' सेना की 'जीत' का तबला बजाने में नहीं चूके।

इसके बाद ही जशरथ ने भी मुस्लिम हमलावरों के हिन्दू सहायक भीम का हिसाब बराबर कर दिया। भीम की हिन्दू सेना ने अपने हिन्दुत्व के द्रोही चीफ़ की मृत्यु से मुक्ति की साँस ली। उसने वीर हिन्दू जशरथ को अपना नेता स्वीकार कर लिया। उस काले काल में जब मुस्लिम सेनाओं के जत्थे हिन्दुत्व को निगलने की तैयारी कर रहे थे हिन्दू शौर्य से भरपूर जशरथ सूर्य की भाँति चमका था। उसकी कूटनीति एवं रण-चातुरी ने हिन्दुत्व को विजय का महान् मार्ग दिखाया है। कृतज्ञ वंशजों को उसकी याद हमेशा ताजी रखनी चाहिए।

जशरथ की बढ़ती ताक़त से भयभीत सुलतान मुबारिक दिल्ली में छिपा हुआ था। उसी समय उसे समाचार मिला कि मुस्लिम गुण्डों का एक बड़ा झुण्ड लेकर शेख अली भक्कर और शिविस्थान पर झपट रहा है।

इधर अलप खाँ ने देखा कि दिल्ली-सुलतान अपने दुश्मनों के भय से दिल्ली में दुबका हुआ है। वह धन को लूटने और हिन्दुओं को मुसलमान बनाकर सेना में भरती करने के लिए ग्वालियर की ओर बढ़ा ताकि जन-धन से शक्तिशाली होकर वह दिल्ली-गद्दी का मज़ा लूट सके। सुलतान भी ग्वालिथर की ओर बढ़ा। ग्वालियर के शासक ने देखा कि दो मुस्लिम शैतान उसे दोनों ओर से पीसने आ रहे हैं—एक उत्तर से, दूसरा दक्षिण से। इधर सुलतान मुश्किल से बयाना तक ही पहुँचा होगा कि बग़ावत का विस्फोट हो गया। अपने माँ-बाप को मार डालने के मुस्लिम रिवाज़ के अनुसार बयाना के अमीर औलाद खाँ ने अपने चाचा मुबारिक खाँ का खून कर दिया। साथ ही उसने उन सभी किलों को अपने कब्जे में कर लिया जहाँ-जहाँ से सुलतान को हिन्दू-ग्वालियर पर हमला करने में सिपाहियों और धन की मदद मिलने वाली थी।

सुलतान बयाना से ग्वालियर पहुँचा। मुबारिक और अलप खाँ के बीच में ग्वालियर का हिन्दू क्षेत्र फँस गया। दोनों सेनाओं ने बीच की हिन्दू जमीन पर लूट-मारकर शैतानी नाच किया और वापिस अपने-अपने पड़ावों पर आ गईं। बड़ी सच्चाई से इतिहासकार याह्या ने हमें बतलाया है कि दोनों ने आपसी झगड़ों को क्यों दफ़ना दिया। उन लोगों ने "विचार किया कि दोनों ही दल के लोग मुसलमान हैं'''सुलतान कुछ दिन तक चम्बल के किनारे पड़ाव डाले पड़ा रहा, और पुराने रिवाज़ के मुताबिक पड़ोस के काफ़िरों से लगान और खिराज वसूल करता रहा।" (वही, पृष्ठ ६०)। इस बयान से यह साफ़ मालूम होता है कि सुलतान डाकुओं के गिरोहों की भाँति हिन्दू क्षेत्रों पर डाका डालना एक पुराना मुस्लिम रिवाज़ मानता था। मुस्लिम इतिहासकार डाका डालने को मीठी जबान में "लगान और खिराज" कहते थे। इस लगान और खिराज का साफ़ मतलब होता था "धन, औरत तथा इस्लामी-भरती के लिए हिन्दू क्षेत्रों पर धावा करना और इनकी सहायता लेकर मुसलमानी-मशाल और इस्लामी तलवार से हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान लूटना और बरबाद करना।"

१४२४ ई० की वार्षिक मुस्लिम-लूट की यात्रा में सुलतान कटेहर के राय हरसिंह पर टूट पड़ा। मुस्लिम माया और धोखेबाज़ी साथ-साथ चलती थी। सुलतान ने राय हरसिंह को मुस्लिम दरबार का मेहमान बनने का लोभ देकर कैद कर लिया। अब ब्लेकमेलिंग की शुरुआत हुई। उनकी मुक्ति के लिए मोटी रक़म माँगी गई। कटेहर के वीर नेताओं ने मुस्लिम जालसाज़ी के जवाब में अपनी ताक़त बटोरी और मुस्लिम-आतंक का सामना दृढ़ता से किया। भयभीत होकर सुलतान ने हरसिंह को छोड़ दिया और गुस्से से ग्रामीण क्षेत्रों को लूटने-खाने लगा। अब दूसरी लूट-पाट के लिए मुस्लिम रक्त-शोषण से "वहाँ हिन्दुस्तान के नगरों में भयंकर अकाल पड़ा हुआ था। तब मुस्लिम लुटेरे मेवात की ओर बढ़े। वहाँ सुलतान ने तबाही और बरबादी फैला दी।" उत्तर में जहर दुर्ग के मेवातियों ने वज्र प्रहार किया। आतंकित होकर सुलतान ने सीधे दिल्ली आकर ही साँस ली। अपनी पराजय की कड़वी स्मृति को यहाँ उसने "आराम और मौज में" दफ़ना दिया।

१४२५ ई० में लूट की वार्षिक यात्रा में मुस्लिम सेना फिर मेवात की ओर बढ़ी। सुलतान को हिन्दुओं के हाथों मिली पिछली पराजय शूल की तरह चुभ रही थी। अलवर और अन्दवार में सुलतान ने लूट और विध्वंस की परम्परागत मुस्लिम नीतियों से काम लिया। बहादुर नाहर के दो वीर पोतों जल्लू और कद्दू ने इस अभियान में ऐसी बहादुरी दिखाई कि मजबूर होकर सुलतान को "कद्दू का स्वागत करना पड़ा (मगर) वापिसी में मेवात क्षेत्र को नष्ट कर वह घर आ गया।"

संसार के इतिहासकारों को इतिहास यही शिक्षा देता है कि इस्लाम ने हिन्दुस्तान तथा अन्य देशों की यात्राएँ कीं और उन्हें कंगाल बनाया क्योंकि उसने इन देशों में हजार वर्षों तक प्रत्येक बार तबाही और बरबादी का वही खेल खेला है, जिसका वर्णन ऊपर किया गया है।

चाहे जिस भी देश में सुलतान मुबारिक ने अपने कदम बढ़ाए हों, वीर हिन्दुओं ने उसे खदेड़ ही दिया। इसपर भी उसकी प्रत्येक शर्मनाक पराजय को मुस्लिम इतिहासों में इस्लाम की महान् जीत घोषित किया गया है। मुस्लिम इतिहास के छात्रों को लिखित शब्दों का अर्थ सावधानी से समझना चाहिए। प्रत्येक मुस्लिम शासक एवं उनके सिपहसालारों को इन इतिहासों

में न्यायी, बुद्धिमान, रहमदिल, दयालु और उदार लिखा गया है। यह दूसरी बात है कि उनमें से हर एक ने जिन्दगी-भर बलात्कार, लूट, हत्या, और नरसंहार का ही धन्धा किया था। उन लोगों ने अपने बाप, भाई को भी नहीं छोड़ा। यह कहकर वे ही इतिहास पाठकों को ठगते हैं कि मुस्लिम विध्वंसकारियों ने "मन्दिरों को नष्ट किया और मस्जिदों (तथा मकबरों) को बनाया।" इसका अर्थ सिर्फ़ इतना ही है कि उन लोगों ने हिन्दू मन्दिरों का नामान्तरण कर दिया। किसी भी मध्यकालीन मुसलमान ने एक ईंट या पत्थर कहीं नहीं लगवाया। गिरोहबाजों ने रेडीमेड हिन्दू घरों, मन्दिरों, महलों, प्रासादों और किलों को अपने अधिकार में करके उनका उपयोग किया और उसे निर्माण की संज्ञा दे दी।

१४२५ ई० में मेवातियों के हाथों सुलतान की हार इस बात से साबित होती है कि अपनी वार्षिक हिन्दू-लूट यात्रा में सुलतान १२ नवम्बर, १४२६ ई० को फिर मेवात की ओर बढ़ा था। इस बार भी उसे वीर हिन्दुओं के हाथों हारना पड़ा। हताश होकर सुलतान बयाना की ओर मुड़ा। यहाँ का मुस्लिम बाग़ी मुहम्मद ख़ाँ अपनी खिचड़ी अलग ही पका रहा था। उसके कुछ सहायकों को सुलतान ने घूस देकर मिलाया और उसके हरम की औरतों को आत्म-समर्पण करने के लिए फुसलाया। बयाना का किला उसने मुक़बिल ख़ाँ को सौंप दिया तथा "सीकरी को जो अब फ़तहपुर के नाम से जाना जाता है, मलिक खैरुद्दीन तुहफ़ा के अधिकार में दे दिया।" (पृष्ठ ६२, ग्रन्थ ४)।

मैं सभी लोगों का ध्यान ऊपर की पंक्तियों की ओर खींचना चाहता हूँ। इसमें मुस्लिम इतिहासकार याह्या-बिन-अहमद ने अकबर से १०० वर्ष पूर्व फ़तहपुर सीकरी का वर्णन किया है, जो उसके समय मौजूद था। फिर भी इतिहासकार, सरकार और संसार के छात्रों को ठगते हैं, भ्रम में डालते हैं और बतलाते हैं कि तीसरे मुग़ल बादशाह अकबर ने १५०० ई० से १५८५ ई० के बीच इसका निर्माण किया था। क्या इस इतिहास को, जो स्कूलों और कॉलिजों में पढ़ाया जाता है, कोरी बकवास नहीं कहा जाएगा?

ग्वालियर, भँगर, और चन्दावर के हिन्दू शासकों ने मुस्लिम लुटेरों की दाल नहीं गलने दी। यह बात याह्या की किताब से स्पष्ट हो जाती है

क्योंकि हमेशा की भाँति मुस्लिम चापलूसी कहती है कि "रायों ने कोई विरोध नहीं किया और वे पुराने कानून के मुताबिक खिराज देते हैं।"

मुहम्मद ख़ाँ दिल्ली से अपनी सीमा में भाग गया और उसने खैरुद्दीन से बयाना और फ़तहपुर सीकरी छीन लिये। लगता है सारे देश ने ही सुलतान से बग़ावत कर दी। इब्राहीम शर्क़ी ने काल्पी कूच कर दिया। उसका भाई इटावा में लूट मचा रहा था। खुद सुलतान ने हरौली और तरौली को लूटा। गंगा-यमुना के पवित्र क्षेत्र में अराजकता फैल गई। इस खुले खूनी खेल में मुस्लिम सेनाओं, नगर-सिपाहियों, फन्देबाज़ों और बे-लगाम गुण्डों में होड़ मच गई थी।

हमें पुनः बड़ी सादगी से बताया जाता है कि सुलतान ने यह समझकर कि "दोनों ओर के जंगबाज़ मुसलमान थे" उन लोगों ने एक दूसरे का पीछा छोड़ दिया। प्रत्येक बार कई महीने के संकटों और पराजयों के बाद ही क्या मुस्लिम सुलतान को यह समझ आती है कि अन्ततः वह एक-दूसरे मुस्लिम गिरोहबाज़ के साथ ही लड़ाई मोल ले रहे हैं?

कंगाल सुलतान फिर हिन्दू क्षेत्र की ओर मुड़े। "उसने ग्वालियर के राय तथा अन्य रायों से पुराने रिवाज़ के अनुसार खिराज, कर और नज़-राना वसूल किया।" इस प्रकार पाठक खुद नोट कर सकते हैं कि उनकी अपनी स्वीकृति के अनुसार हिन्दू घरों और क्षेत्रों को तबाह करना मुसल-मानों का "पुराना रिवाज़" था।

३० अप्रैल, १४२८ ई० को दिल्ली लौटकर सुलतान "मौज-मस्ती और रँगरेलियों में डूब गए।" इस व्यभिचारी प्याले की दो-चार चुस्कियाँ ही सुलतान ले पाए थे कि वीर जशरथ के लाहौर, कलानौर, जालन्धर और काँगड़ा के साथ सारे पंजाब को अपने अधिकार में लेने का समाचार आ पहुँचा। बयाना ने फिर बग़ावत कर दी। खिन्न और उद्विग्न होकर सुलतान फिर (१४२९-३० ई० में) ग्वालियर लूटने निकले। इसने हाथकन्त देश को लूट कर बरबाद कर दिया और बहुत-से (हिन्दुओं) को कैद कर लिया।" सुलतान की दिल्ली वापिसी के समय एक प्रभावशाली मुस्लिम दरबारी "सईद सलीम मार्ग में ही मर गए।" इस मध्यकालीन मुस्लिम दरबार के इतिहासकार याह्या ने लिखा है कि "वह एक लालची आदमी था, जिसने इस दौरान तबरहिन्द (सरहिन्द) के किले में बहुत अधिक धन, अनाज और

सामान जमा कर लिया था।" सईद के बेटे ने अब सुलतान की अवज्ञा कर दी और दोनों में झगड़ा छिड़ गया।

१४३१-३२ ई० में अदम्य, अविजित अपराजित हीरो जशरथ ने दिल्ली-गद्दी पर बैठे विदेशी सुलतान के विरुद्ध दूसरा अभियान छेड़ दिया। जालन्धर ले लिया गया। इसका विरोध करने के लिए मलिक सिकन्दर आया और कैद हो गया। जब सुलतान इन सारी ललकारों के बीच दिल्ली में आराम कर रहा था, शेख अली ने मुलतान की सेना पर हमला कर दिया। शेख अली एक इस्लामान्तरित हिन्दू था, जिसके हृदय में हिन्दू देश-भक्ति की आग जल रही थी। तीव्र प्रहार से इस वीर व्यक्ति ने तुसुम्ब-दुर्ग को जीत लिया। इसके बाद उसके अनुयायियों ने इस (भूतपूर्व हिन्दू) दुर्ग को अपने अधिकार में कर लिया। गालियों की बौछाड़ करते हुए बड़े दुःखी दिल से इतिहासकार याह्या ने लिखा है कि—"सारे मुसलमान नापाक ज़ालिम काफिरों (यानी हिन्दुओं) के कैदी हो गए।" उसे याद नहीं रहता कि ये सारे तथाकथित 'मुसलमान' वास्तव में हिन्दू ही थे, जिन्हें मारकर 'मुसलमान' बनाया गया था।

बयाना और ग्वालियर भी बाग़ी ही थे, दूसरी बग़ावत का विस्फोट पंजाब के समाना में हुआ। मलिक अल्लाहदाद के अधीन सुलतान ने एक सेना पंजाब भेज दी। विकट जशरथ मुस्लिम सेना पर टूट पड़ा और उसे तितर-बितर कर दिया। बौखलाकर सुलतान लूट के लिए मेवात की ओर मुड़ गया और "उस प्रदेश के एक बड़े भाग को तहस-नहस कर डाला।" तारीख़े मुबारिक शाही के अनुसार इसके बाद मुबारिक गुण्डे ग्वालियर और इटावा के काफिरों (यानी हिन्दुओं) को धमकाने के लिए मुड़े। (पृष्ठ ७५, ग्रन्थ ४)।

दिल्ली की मुस्लिम-सत्ता के अधीन, एक के बाद दूसरे केन्द्र को छीनता धर्मान्तरित हिन्दू शेख अली पंजाब होकर आगे बढ़ता गया। तारीखे मुबा-रिक शाही से स्पष्ट हो जाता है कि वह अपने लुटे हिन्दू धर्म और खूनी सुलतानी तलवार के नीचे भय से काँपते अपने देशवासियों का बदला लेने के लिए निकला था। मुस्लिम सैनिकों के लाहौरी कमाण्डर मलिक यूसुफ़ और मलिक इस्माइल हिन्दू तलवार से भयभीत होकर रातों-रात लाहौर-किले से भाग निकले। "उनका पीछा करने के लिए शेख़ अली ने एक सेना

भेज दी, पीछा करने वालों ने अनेक लोगों को मार गिराया, दूसरे दिन शेख़ अली ने नगर के सारे मुसलमानों को कैद कर लिया।" मुस्लिम इतिहासकार याह्या तारीख़े मुबारिक शाही में लिखता है कि—"इस्लाम की गद्दी को नष्ट करने और मुसलमानों को कैद करने के अतिरिक्त शेख अली को (लगता है) और कोई काम नहीं था।" (पृष्ठ ७६, ग्रन्थ ४)। मध्यकालीन इस्लामी जीवन और करतूतों का स्वाद चखने के बाद शेख अली ने मुसलमानों की नक़ल की और उन लोगों को उनके कारनामों का स्वाद चखाने लगा। विदेशी मुस्लिम आक्रमणों के समय भी लाहौर वर्षों तक उसी प्रकार हिन्दू ज़मीन से कटकर अलग हो गया था, जिस प्रकार वह आज हो गया है। मगर जशरथ और अली शेख ने यह साबित कर दिया कि हिन्दुस्तान के लिए लाहौर सैकड़ों बार जीता जा सकता है।

कुछ दूसरे वीर हिन्दुओं ने, जिनमें कँगू एवं कजवी खत्री के पुत्र भी थे, विदेशी मुस्लिम सुलतान को पकड़कर उसकी सरकार को उलट देने की योजना बनाई। जबकि सुलतान बौखलाया हुआ, तंगहाल और अभावग्रस्त था। याह्या-बिन-अहमद ने अपनी मुस्लिम इतिहासकारों वाली परम्परागत आदत और स्वभाव का परिचय दिया है। वह लिखता है कि ३१ अक्तूबर, १४३३ ई० को इस सुलतान ने भी खैराबाद में एक नगर की नींव डाली।

यह बड़े शोक की बात है कि वे इतिहासकार जो अपने आपको विद्वान् मानते हैं ऐसे पालतू मुस्लिम लोगों की झूठी गप्पों पर विश्वास करते हुए इस बात की ज़रा भी खोज करने की जरूरत नहीं समझते कि इन सुलतानों और शैतानों के पास, जिनको मकबरों, मस्जिदों, नगरों, प्रासादों, किलों, और भवनों को बनाने का श्रेय दिया जाता है, एक नगर तो दूर रहा, क्या एक इमारत बनाने लायक शान्ति, सुरक्षा, सम्पत्ति, समय और प्रतिभा थी ?

शहर को बनाने में उसने हाथ लगाया ही था कि उसके पास मृत सईद के बाग़ी पुत्र पुलाद का कटा हुआ सिर आ पहुँचा। इस बार बाग़ी पंजाब का मुकाबला करने का साहस बटोरकर सुलतान आगे बढ़ा। कुछ समय बाद ही सुलतान वापिस लौटकर आया तो लीजिए, देखिए ! सुलतान अपने नवनिर्मित नगर मुबारिकबाद में प्रवेश कर रहे हैं। कुछ महीनों में

ही यह नगर सिर से लेकर पैर तक बनकर तैयार हो गया—अगर हम इतिहासकार याह्या का विश्वास कर सकें तो ?

अल्लाह ने भी देखा कि यह पतित काफी दिन तक दिल्ली की गद्दी को गन्दा कर चुका है। अपनी रहमदिली से उसने सुलतान के कुख्यात शासन पर पूर्णविराम लगा दिया। १३ वर्ष, ३ महीने और १६ दिन वह गद्दी पर रहा। १६ जनवरी, १४३४ ई० को पाक सैयद सुलतान मुबारिक शाह "नमाज की तैयारी कर रहे थे, (कि) मीरान सदर ने पहरे पर से अमीरों को हटा दिया। विदाई लेने के बहाने कुछ हिन्दू घोड़ों पर चढ़कर आए। सुधारुण कंगू अपने दल के साथ बाहर ही ठहर गया कि सुलतान की सहायता के लिए कोई भीतर न जा सके। सिन्धू पाल तेज़ी से भीतर गया और उसने राजा के सिर पर ऐसा वार किया कि उसकी ज़िन्दगी का खून ज़मीन पर बहने लगा।"

मुहम्मद शाह—उसके बाद खिज्र खाँ का पोता मुहम्मद शाह गद्दी पर बैठा। मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासकारों की आदत के अनुसार याह्या ने सुलतान को "उदार और अच्छे गुणों से भरपूर" होने का ख़िताब दिया है। परवर्ती सभी इतिहासकार उन्हीं झूठी बातों में आ गए हैं, जिनमें प्रत्येक मुस्लिम सुलतान को "न्यायी, रहमदिल और बुद्धिमान" कहा गया है। यह और बात है कि उसी इतिहासकार ने उसी सुलतान के शासन का ऐसा वर्णन किया है, जिसमें से लगातार अत्याचार, कपट, धोखा, तबाही, बरबादी, द्रोह, आतंक, साजिश, हत्या और संहार की सड़ान्ध आती है।

यद्यपि नये सुलतान में सारी अच्छाइयाँ ही भरी हुई थीं। सखारुल् मुल्क "अपनी योजना पर जमा हुआ था तथा ख़ज़ाना, भण्डार, घोड़े, हाथी और शस्त्रागार को अपने ही कब्जे में कर रखा था।" दूसरा मुस्लिम मुलिकुस् शार्क प्रचलित मध्यकालीन मुस्लिम परम्परा के अनुसार सखारुल् मुल्क बहुत ही धूर्त था। सुलतान-भक्ति की कसम खाने के बहाने उसने दरबारियों को बुलवाया। कुछ की उसने हत्या कर दी। बाकी को ज़ेल में डाल दिया। स्पष्ट होता है कि नया सुलतान सिर्फ कठपुतली था और हमेशा की भाँति मध्यकालीन मुस्लिम हाय-हत्या बेलगाम चलने लगी।

सिन्धुपाल ने बयाना, अमरोहा, नारनौल और दोआब के कुछ क्षेत्रों को वापिस हिन्दू-अधिकार में लाने का विचार किया। जब एक हिन्दू-राणा

बयाना दुर्ग का चार्ज लेने के लिए गया तो धोखे से मारा गया। उसके सिर को काटकर दुर्ग द्वार पर लटका दिया गया तथा उसके परिवार की कुछ स्त्रियों और बच्चों को मुस्लिम-हरमों में हाँक दिया गया।

अपने खास मुस्लिम स्टाइल में याह्या-बिन-अहमद सभी हिन्दुओं को "कमीना, गन्दा, काफ़िर" कहता है। बिना एक भी अपवाद के दूसरे सभी मुस्लिम इतिहासकार अनिवार्य रूप से हिन्दुओं को और भी रंगीन इस्लामी गालियाँ देते हैं। यानी विदेशी गुण्डों का एक दल, जिसने व्यभिचार और क़त्लेआम के अलावा और कुछ नहीं किया, हिन्दुस्तान में हिन्दुओं को "कुत्ते और चोर, डाकू और बदमाश" ही नहीं कहते वरन् अपनी पराजय को भी "इस्लाम की महान जीत" कहकर गौरवान्वित करते हैं। क्या यह धर्मान्ध-धृष्टता का बेजोड़ उदाहरण नहीं है?

४ अगस्त, १४३४ ई० को सखारुल् मुल्क ने "अच्छे गुणों से भरपूर" सुलतान की हत्या करने का प्रयास किया, मगर पासा पलट गया। सखारुल् मुल्क और उसके साथियों के सिर भुटटे से उड़ गए। इसके बाद हमेशा की भाँति उन हिन्दुओं पर मुस्लिम अत्याचारों की वर्षा होने लगी "जिन्होंने अपने आपको अपने-अपने घरों में बन्द कर लिया था।" सखारुल् मुल्क बग़दाद के दरवाज़े में प्रविष्ट हो गया (बहुत खोज़ने पर भी पाठकों को इस नाम का कोई नगर हिन्दुस्तान में नहीं मिलेगा, हिन्दू के स्थानों का मुसलमानीकरण करने की धुन में ये लोग कहाँ-में-कहाँ पहुँच गए?) अपनी स्त्रियों एवं बच्चों को घर में बन्द कर सिन्धुपाल ने घर में आग लगा दी और वीर हिन्दू परम्परा के अनुसार लड़ते हुए वीरगति प्राप्त की। कंगू तथा अन्य क्षत्रियों को पकड़कर महल में उस जगह लाया गया, जहाँ मुबारिक शाह ने दम तोड़ा था। मलिक होशियार और मुबारिक कोतवाल् का सिर "लाल-दरवाज़े" के सामने काट दिया गया (स्पष्ट है कि यह लाल-दरवाज़ा लाल किले का ही है)।

अपने आपको थोड़ा-बहुत सुरक्षित और हल्का पाकर सैयद ख़ानदान के सुलतान मुहम्मद शाह ने वार्षिक लूट-यात्रा का उद्घाटन करते हुए मुलतान की ओर कूच करने का निर्णय किया। मगर कुछ मकबरों का ही दर्शन कर वह वापिस लौट आया।

भारतीय इतिहास के छात्र इस बात पर ध्यान दें कि एक धार्मिक

इस्लामी कर्तव्य समझकर प्रत्येक वर्ष बड़े परिश्रम से लूट और नरसंहार के अभियान में निकलने की आसुरी आदत भारत के प्रत्येक मुस्लिम शासक में थी। क़ासिम के समय से ही इस इस्लामी करतूत का एक वार्षिक चार्ट इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफ़ी है। मुसलमानों के अमीर होने और उनकी संख्या बढ़ने का यही राज़ है।

१४३६ ई० में सुलतान मुहम्मद शाह ने समाना के लिए कूच कर दिया। "उसके सिपहसालारों ने इस प्रदेश को बरबाद कर दिया और सुलतान दिल्ली वापिस लौट आए।" (पृष्ठ ८५, ग्रन्थ ४)।

प्रारम्भ में ही इतिहासकार याह्या-बिन-अहमद ने लिखा था कि सुलतान "अच्छे गुणों से भरा-पूरा" है। अब हमेशा की भाँति मुस्लिम कलाबाज़ी दिखलाते हुए वही इतिहासकार हमें बतलाता है कि—"सुलतान ने सम्पत्ति की हिफ़ाजत के लिए कोई भी कदम नहीं उठाया। वे सिर्फ़ लापरवाही और ऐशोइशरत में गर्क़ हो गए। सभी लोग पागल हो गए थे और सभी लोग चिन्तित थे।"

सुलतान को ऐशोइशरत में गर्क़ देखकर मालवा के ख़िल्जी सुलतान महम्मद दिल्ली पर काबू पाने निकले। इसका सामना दिल्ली की सेना से हो गया। इसका सेनापति बहलोल लोदी नामक एक अफ़ग़ान था। यह बाद में सैयदों को हटाकर खुद गद्दी पर बैठा था। इन दो मुहम्मदों की सेनाओं को आपस में उलझा देखकर गुजरात के सुलतान अहमद शाह ने मालवा की ख़िल्जी राजधानी माण्डू के लिए कूच कर दिया। मुहम्मद ख़िल्जी ने झटपट एक सन्धि की और वापिस भागा। सन्धि-पत्र को बग़ल में दबाकर बहलोल लोदी ने मालवा के मुहम्मद का पीछा किया और उसका सारा सामान लूट लिया। उसे भी तो दिल्ली के सुलतान को ललकारने के लिए धन चाहिए।

इस कपटी आक्रमण के समय दरबार में बहलोल लोदी का पक्ष ऊँचा हो गया। सुलतान ने लाहौर और दीपलपुर की जागीर बहलोल लोदी को दे दी। यह और बात थी कि उस समय सारे पंजाब पर जशरथ गक्खर का शासन था। बहलोल लोदी ने जशरथ से एक समझौता कर उस वीर योद्धा की सहायता लेने का विचार किया। जशरथ की सहायता पा जाने का आश्वासन मिलने पर बहलोल लोदी ने आस-पास के क्षेत्रों को अपने काबू में

कर सुलतान से टक्कर ले ली। कुछ दूर पर उसे रोका तो गया मगर १४४५ ई० में सुलतान की मृत्यु हो गई। शायद उसे जहर दे दिया गया था। इसने १० वर्ष और कुछ महीने ही राज्य किया था।

मृत सुलतान के पुत्र अलाउद्दीन को गद्दी पर बैठाया गया। ऊपरी भक्ति का दिखावा करते हुए बहलोल लोदी ने उसे गद्दी से हटाने का पूरा विचार कर लिया। इतिहासकार याह्या को भी अब मृत सुलतान का कोई डर नहीं रहा। इसीलिए उसने साफ़-साफ़ शब्दों में लिख दिया कि नया सुलतान "अपने पिता से भी अधिक अयोग्य और लापरवाह था" यानी जिस मुहम्मद को उसने पहले "अच्छे गुणों से भरा पूरा" बताया था वह एक पापी और दुष्ट था।

गद्दी पर बैठने के बाद ही अलाउद्दीन सैयद अपनी पहली लूट यात्रा पर मुलतान की ओर चला। वह अभी दो-चार गाँव ही लूट पाया था कि जौनपुर के मुस्लिम सुलतान का दिल्ली कूच करने का समाचार उसे मिल गया। सुलतान ताबड़-तोड़ वापिस भागा।

१४४७ ई० में वह बदायूँ और उसके आस-पास के गाँवों को लूटने निकला। वज़ीर हिसम भी साथ था। बदायूँ लूट में निकला सुलतान खुद "ऐश में डूब गया"। दामाद और साला दोनों आपस में झगड़ बैठे। एक मारा गया। दूसरे को नये वज़ीर हमीद खाँ की आज्ञा पर मार दिया गया। पदच्युत वज़ीर हिसम खाँ बहलोल लोदी से जा मिला। वह एक बड़ी फ़ौज लेकर आ धमका। उसे अन्तिम सैयद सुलतान की मृत्यु की सूचना दी जाती है। अतएव इस बात की पूर्ण सम्भावना है कि उसकी मौत बहलोल लोदी के हाथों हुई। अलाउद्दीन का शासन ८ वर्ष और कुछ महीने का था। उसके साथ ही सैयद खानदान का अन्त हो गया।

एक के बाद दूसरे मुस्लिम ख़ानदान, मुसलमानी मशाल और इस्लामी तलवार से लगातार हिन्दुस्तान को तबाह और बरबाद कर रहे थे। वह मशाल और तलवार सैयदों के हाथ से ज़मीन पर गिर पड़ी। अब लोदियों ने इसे उठा लिया और इस ख़ानदान के शैतानों ने आतंक, यातना और विध्वंस का एक नया रिकार्ड क़ायम कर दिखाया।

(मदर इण्डिया, मार्च, १९६८)

: १८ :

बहलोल लोदी

मध्यकालीन दिल्ली की सुलतानी गद्दी पर बैठने वाले विदेशी हमलावरों के शैतानी ख़ानदानों के तारतम्य में लोदियों ने सैयदों के बाद दुष्टता का एक नया अध्याय जोड़ा। बहलोल लोदी दिल्ली के क्रूर-भोगी सुलतानों में लोदी ख़ानदान की नींव डालने वाला था। इस्लाम के नाम पर चलने वाली क्रूर अत्याचारों की चक्की को इसने चालू रखा।

अनेक साम्प्रदायिक और मायावी नेतागण ऐसे हैं जो २०वीं शताब्दी के मुसलमानों की भलाई नहीं सोचते। कुछ भलाई सोचने वाले लोग हैं भी तो ये देश-भक्त दिक्-भ्रम में पड़े हुए हैं। ये भारत के हज़ार वर्षीय लम्बे मुस्लिम कुशासन के काले कारनामों, यातनाओं और अत्याचारों को महान् बताते हैं।

ऐसे लोगों को हम इतिहास की परिभाषा बता देना चाहते हैं। इतिहास समय-क्रम के अनुसार देश के भूतकाल की वास्तविक घटनाओं का सही-सही वर्णन होता है। इसलिए किसी उद्देश्य से प्रेरित गप्पों या साम्प्रदायिक और राजनीतिक मिलावट के लिए इसमें कोई जगह नहीं है। सारे संसार के स्कूलों में पढ़ाने के लिए संक्षिप्त रूप में इतिहास एक प्राथमिक महत्त्व का विषय माना जाता है ताकि मानवता अपनी पिछली पीढ़ियों की भूलों को न दोहराकर अपना विकास कर सके। अगर साम्प्रदायिक या राजनीतिक उद्देश्य से प्रेरित गप्पों से इतिहास लिखा जाता है तो यह महत्त्वपूर्ण उद्देश्य निरर्थक हो जाएगा।

इस पर भी जो लोग इतिहास में मिलावट कर इसे भ्रष्ट करना चाहते हैं, हम उनसे पूछना चाहेंगे कि क्या ऐसी झूठी गप्पों का कोई अन्त भी है? अगर कोई विशेष सम्प्रदाय इतिहास से शिवाजी और राणा प्रताप को पूरी

तरह मिटा देना चाहे तो क्या इतिहासकर ऐसा कर सकेंगे? इसपर भी इस बात की क्या गारंटी है कि यही माँग उन लोगों की आखिरी माँग होगी। अगर इतिहास के साथ इस प्रकार की खींच-तान की जाएगी तो फिर वह इतिहास नहीं रहेगा, चूं-चूं का मुरब्बा हो जाएगा। इसलिए साम्प्रदायिक या राजनीतिक मायावियों को इतिहास के साथ किसी प्रकार की खिलवाड़ करने की छूट नहीं देनी चाहिए। इतिहास एक सच्चाई है, सम्पूर्ण सच्चाई और सच्चाई के अलावा कुछ नहीं। जबकि साम्प्रदायिकता और राजनीति में सिर्फ झूठ ही भरी रहती है तथा झूठ के अलावा कुछ नहीं रहता। इसलिए इतिहास को इन दो प्रकार के व्यक्तियों से बचाकर रखना चाहिए। उसे संरक्षण मिलना चाहिए।

किस प्रकार इतिहास के साथ खिलवाड़ किया जाता है, इसकी एक सच्ची कहानी हम लोगों के सामने आई है। महाराष्ट्र प्रान्त के एक भूत-पूर्व शिक्षा-मन्त्री ने विख्यात शिक्षकों का एक सम्मेलन बुलाया तथा साम्प्र-दायिक एकता बनाए रखने के लिए किस प्रकार इतिहास लिखा जाये इसकी आवश्यकता पर एक राजनीतिक उपदेश दिया। बहुत से आमन्त्रित व्यक्ति सरकारी स्कूलों तथा सरकारी सहायता प्राप्त विभागों के प्राचार्य और शिक्षक थे। मीठी भाव-भंगिमा तथा कपटी मुस्कानों से उन सभी उपस्थित लोगों ने धर्म-निरपेक्ष ज्ञान से लबालब भरे मन्त्रीजी के गम्भीर शब्दों पर अपनी-अपनी सहमति प्रकट करते हुए स्वीकारात्मक सिर हिलाया।

आमन्त्रित व्यक्तियों में कुछ ऊँचे दर्जे के निरपेक्ष इतिहासकार भी थे। उनमें से दो इतिहासकार असाधारण रूप से शान्त और मौन थे। उन दोनों की इस चुप्पी से परेशान होकर मन्त्रीजी ने पूछा कि क्या आप लोग इतिहास लेखन के इस 'विवेकपूर्ण' और 'विरोधहीन' आधार से सहमत नहीं हैं?

इन दो मौन योगियों में से एक ने मन्त्रीजी से स्पष्ट कह दिया कि इतिहास इतिहास है, इसमें गोलमाल या मिलावट नहीं की जा सकती और न राजनीति के लिए इसे तोड़ा-मरोड़ा ही जा सकता है।

मन्त्रीजी अवाक् रह गए। उसका प्रस्ताव जैसाकि उनका विचार था, सर्व-सम्मति से स्वीकृत नहीं हुआ। बौखलाकर मन्त्रीजी दूसरे असहमत इतिहासकार की ओर मुड़े। कुछ हिचकिचाते हुए दूसरे इतिहासकार ने

उत्तर दिया कि आपकी माँग एकदम असम्भव या विवेकहीन नहीं है। निश्चय ही इतिहास तत्कालीन सरकार की इच्छा के अनुसार लिखा जा सकता है। ऐसी घटना हमेशा से घटती चली आई है।

एक स्वतन्त्र इतिहासकार से, जिसका मौन ख़तरे की घण्टी था, अनपेक्षित सहमति पा जाने पर मन्त्रीजी गद्‌गद् हो गए। उन्होंने उन इतिहासकार से इतिहास के शिक्षकों एवं प्राचार्यों की सभा में इतिहास-लेखन की दिशा निर्देश के लिए कुछ कहने का आग्रह किया।

इतिहासकार ने बोलना आरम्भ किया—"बहनो और भाइयो, अगर सरकार आपसे चाहती है कि आप इतिहास इस प्रकार लिखें या इस प्रकार पढ़ाएँ, जिससे साम्प्रदायिक-एकता और मैत्री पैदा हो तो यह कोई कठिन काम नहीं है। मैं आपको इसका प्रैक्टिकल उदाहरण दूँगा। अगर आपको उस घटना का वर्णन करना है, जिसमें शिवाजी ने मूर्ख बनाकर और अपने काबू में लाकर हत्यारे अफ़ज़ल खाँ को मारा था तो आप अपने पाठकों और छात्रों को यह घटना इस प्रकार बतलावें कि अफ़ज़ल खाँ और शिवाजी के पिता बड़े गहरे दोस्त थे। साथ ही वे दोनों साम्प्रदायिक मैत्री के लिए बड़े उत्सुक भी थे। जब उन दोनों के पुत्र जवान हुए तो दोनों पिता जितनी जल्दी हो सके उतनी जल्दी दोनों की भेंट करा देने के लिए चिन्तित हो गए ताकि परम्परागत पारिवारिक दोस्ती आगे बढ़े। शिवाजी मेज़बान बनने को तैयार हो गए। उनको यह बताया गया कि अफ़ज़ल खाँ ज़रा भारी शरीर का लम्बा तगड़ा आदमी था। संयोग से शिवाजी ज़रा दुबले-पतले और नाटे थे। तो उन्होंने अफ़ज़ल खाँ को गुदगुदी करने के लिए और अट्टहास तक हँसी मज़ाक करने के लिए बघनख पहन लिया। वे दोनों एक सजे सजाए शामियाने में मिले। गहरे दोस्त होने के साथ-साथ वे दोनों अपने-अपने सम्प्रदायों के नेता भी थे। इसलिए दोनों ने एक-दूसरे का आलिंगन किया। शिवाजी के बचपन की चंचलता गई नहीं थी। उन्होंने अफ़ज़ल खाँ को जो गुदगुदाना शुरू किया तो गुदगुदाते ही रहे। प्रथम मिलन की नम्रता के कारण अफ़ज़ल हँसी से अट्टहास करता ही रहा। मगर शरीर से भारी होने के कारण, साथ ही साम्प्रदायिक मैत्री का डोज़ ज़रा अधिक हो जाने के कारण बेचारे अफ़ज़ल खाँ को दिल का दौरा पड़ गया। वह वहीं ज़मीन पर ढेर हो गया। शिवाजी ने उसे बड़ी धूमधाम से दफ़ना

दिया। इसलिए बहनो और भाइयो अफ़ज़ल खाँ की कब्र तथा इसी कारण से भारत के प्रत्येक मुसलमान की कब्र साम्प्रदायिक मैत्री का नमूना है। अगर सरकार की इच्छा है तो इस प्रकार इतिहास लिखा जा सकता है और हमें लिखना ही चाहिए।"

मन्त्रीजी सुन्न हो गए। उनकी अक़्ल गुम हो गई। उन्होंने मीटिंग बरख़ास्त कर दी।

आशा है पाठक इतिहास के ऐसे प्रयोग की असंगतियों को समझ ही गए होंगे, जिन्हें उक्त इतिहासकार ने संक्षिप्त रूप से व्यक्त किया था।

मेरे विचार से साम्प्रदायिक मैत्री के लिए इतिहास के व्यवहार का अधिक लाभदायक, तथ्यपूर्ण, व्यावहारिक, विवेकशील और प्रभावशाली मार्ग है जनता को कोरी सच्चाई बतला देना कि घटना कैसे घटी और क्यों घटी। अगर कोई शर्मनाक और बर्बर घटना हो गई है तो जनता को सचेत कर देना चाहिए ताकि वैसी दुखद घटना दूसरी बार न घटे। स्कूलों में इतिहास पढ़ाने का यही उद्देश्य है। अगर इसमें मिलावट की गई तो इतिहास इतिहास नहीं रहेगा वरन् अरेबियन नाइट और पंचतंत्र का किस्सा हो जाएगा।

इसी प्रकार हम बहलोल लोदी की दिल्ली-गद्दी अपहरण की कहानी पेश करेंगे। प्रारम्भ में ही हम पाठकों को यह याद दिला देना चाहते हैं कि सर्वसाधारण नियमों के अनुसार एक अपहर्त्ता कभी भी अच्छा शासक नहीं हो सकता। गद्दी हड़पने के लिए जो पीड़ा और यातना का उपयोग करता है वह गद्दी पर बैठने के बाद एक बेलगाम, निरंकुश और अत्याचारी शासक हो जाता है। भूली-भटकी मानवता को सही मार्ग पर लाने के लिए इतिहास की पढ़ाई के समय इन्हीं नियमों और निगमनों का पढ़ाया जाना आवश्यक है।

मलिक बहलोल लोदी सुलतानशाह लोदी उर्फ़ इस्लाम खाँ का भतीजा था। यह सैयद ख़ानदान का एक प्रभावशाली विदेशी कुलीन था।

इस्लाम खाँ की मृत्यु के बाद उसकी उपाधि लेकर बहलोल सरहिन्द का गवर्नर हो गया। यह भी सम्भव है कि उसने अपने चाचा की हत्या कर गवर्नरशिप हासिल की हो क्योंकि हत्या इन विदेशी मुसलमानों का जन्मसिद्ध अधिकार था। 'तारीख़े-ख़ान जहान लोदी' के इतिहासकार नियाम-

तुल्ला हमें बताते हैं कि बहलोल ने सरहिन्द के गवर्नर के रूप में अपनी पोज़ीशन मज़बूत कर ली थी, जिसका मतलब होता है यातना और आतंक का बेधड़क प्रयोग ।

बहलोल ने अपने चाचा की जागीर भी हड़पी थी, यह बात इस तथ्य से प्रमाणित होती है कि इस्लाम खाँ का अपना पुत्र कुतुब खाँ मुँह ताकता ही रह गया । बहलोल को हटाकर अपने पिता की जागीर दिला देने के लिए उसने दिल्ली-दरबार से भी प्रार्थना की ।

दिल्ली सुलतान मुहम्मद ने बहलोल की उद्दण्ड और चपल-चाल में उच्च महत्त्वाकांक्षा की झलक देखी । उसकी महत्त्वाकांक्षा को कुचलने के लिए उसने हिसाम खाँ उर्फ़ हाजी सुदानी के अधीन एक बड़ी फ़ौज भेज दी । क़र्रा गाँव में भयंकर युद्ध हुआ । दिल्ली सेना हारकर पीछे हट गई । बहलोल ताड़ गया कि दिल्ली की सुलतानी भी उसकी मुट्ठी में है ।

बहलोल के पिता और दादा दोनों ही व्यापारी थे । भारत पर आक्रमण करने वाले विदेशी मुस्लिम लुटेरों के गिरोहों को गधे, घोड़े और खच्चर बेच-बेचकर उन दोनों ने दोनों हाथों से धन बटोरा था । बदले में उनको भारत की लूट से प्राप्त धन, स्त्रियाँ और गुलाम मिलते थे जिसे वे पूरा मुनाफ़ा लेकर बेच देते थे । परम्परागत अश्व-व्यापारी का इस प्रवीणता ने दिल्ली गद्दी हथियाने में बहलोल की पूरी मदद की थी ।

अपने शक्तिशाली शिकार के समीप होने के लिए बहलोल ने सुलतान को एक पत्र लिखा । इसमें उसने पराजित हिसाम खाँ पर अनैतिकता एवं कुप्रबन्ध का आरोप लगाकर अपनी सुलतान-भक्ति की निष्ठा और लगन की सौगन्ध खाई थी । इस गुप्त-वार और आत्म-प्रशंसा से ही पाठकों को सचेत हो जाना चाहिए कि बहलोल आस्तीन का साँप बनाना चाहता था । अपने पत्र में बहलोल ने हिसाम खाँ को हटाकर हमीद खाँ को वज़ीरे आज़म बना देने की माँग की । कहीं कोई बहाना बनाकर बहलोल लड़खड़ाती सुलतानी पर हाथ न साफ़ कर दे, सुलतान एक कदम और आगे बढ़ गया । बहलोल को पूरी तरह प्रसन्न करने के लिए अपनी जातिगत परम्परा के अनुसार, उसने हिसाम खाँ की हत्या कर दी । कुछ दिन पूर्व सुलतान की सुरक्षा के लिए जो अपनी जान की बाजी लगा देता था, कृतघ्न होकर धोखे

से उसी की हत्या करा देना मध्यकालीन-मुस्लिम शासन का जग विख्यात साधारण कारनामा था।

बहलोल का गुर्गा अब वज़ीर के पद पर बैठ गया। उसकी सहायता से बहलोल सैयद सुलतान के चारों ओर लोदी-फन्दा कसने के लिए, ऊँचे ओहदों पर लोदियों की भरती करने लगा।

अपनी सम्पत्ति, ताक़त और सत्ता बढ़ाने के लिए बहलोल ने, सुलतान के नाम का बहाना बनाकर, पड़ोसी राज्यों से लड़ाई छेड़ दी ताकि ताक़तवर बनकर वह खुद एक दिन सुलतान को ललकार सके।

सबसे पहले उसने मालवा के ख़िल्जी पर धावा बोल दिया जो हाँसी, नागौर और मुस्लिम नामान्तरित हिसारफ़िरोज़ पर शासन चलाते थे। ख़िल्जी पराजित हुए। हमेशा से इन सभी लड़ाइयों में क्रूरता का अपना कोटा होता था। जिस भी मार्ग से मुस्लिम सेनाएँ जाती थीं, सारे जीवन-दीप बुझ जाते और सारा धन सूख जाता था।

बहलोल की बढ़ती ताक़त से परेशान होकर काँपते सुलतान ने उसकी प्रशंसा कर उसे खुश करना चाहा ताकि वह उसका आभार माने। उसने बहलोल को ख़ान ख़नान की उपाधि से विभूषित कर दिया।

लोदियों ने इस संकेत को समझने में देर नहीं लगाई। सुलतान के विरोधों की ओर से एकधम आँखें मूँदकर, वे लोग जल्दी-जल्दी लाहौर, दीपलपुर, सन्नाम, हिसारफ़िरोज़ आदि जगहों के मालिक बनते चले गए। जब उन लोगों ने देख लिया कि अब सुलतान उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकता तो उन लोगों ने सरे आम बग़ावत कर सुलतान को उसके दिल्ली महल में घेर लिया। अपनी इस योजना में उन लोगों ने ज़रा जल्दबाजी से काम ले लिया था। फलत: उनको अपना घेरा उठाना पड़ा। मगर सरहिन्द वापिस लौटकर बहलोल ने अपनी सुलतानी का ढोल बजवा दिया।

प्राय: इसी समय सुलतान मुहम्मद मर गया और उसका पुत्र अला-उद्दीन गद्दी पर आ बैठा। दिल्ली से दूर सुलतानी हुक्मनामा नहीं चलता था। विभिन्न मुस्लिम गिरोहबाज़ देश का शासन चलाते थे। भूईगव, पट्टियाली और काम्पिल के राय प्रताप जैसे थोड़े बहुत स्वतन्त्र हिन्दू राजा भी थे। मगर जब से मुस्लिम आक्रमणों का प्रारम्भ हुआ था, सभी का प्रजा-पालक शासन-कार्य एकदम ठप्प पड गया था। क्रमबद्ध सा[illegible]

कपट, लगातार हमले एवं दुर्गुणों से भरे वमनकारक वातावरण की निर्दयी चक्की में व्यक्ति एवं राज्य का जीवित रहना हर रोज़ की समस्या हो गई थी।

मुस्लिम सुलतानों के सामने भी यही समस्या मुँह बाए खड़ी थी। जिसकी लाठी उसकी भैंस वाला जंगली कानून देश में लागू था। बहलोल ने दूसरी बार दिल्ली पर कूच कर दिया। जिस प्रकार अलाउद्दीन के पिता ने बहलोल का प्रथम प्रयास असफल कर दिया था, उसी प्रकार अलाउद्दीन भी बहलोल को मार भगाने में सफल हो गए। बहलोल पुनः सरहिन्द वापिस आ गया।

अलाउद्दीन अपने को एकदम असुरक्षित अनुभव कर रहा था। गद्दी से उसको हटाने का बहलोली प्रयास उसके ताजधारी मस्तक पर नंगी तलवार-सा लटका हुआ था। अपनी शक्ति बढ़ाने के उपाय पर उसने कुतुब खाँ लोदी और राय प्रताप से विचार-विमर्श किया। सभी ने वज़ीरे आज़म हमीद खाँ को हटाकर क़ैद कर लेने की राय दी। प्रताप ने हमीद का किस्सा ख़त्म कर देने पर ज़ोर दिया क्योंकि हमीद के पिता ने राय प्रताप के राज्य में लूटमार भी मचाई थी और उसकी पत्नी को भी उड़ा लिया था। हाजी हिसाम खाँ की हत्या के उपरान्त हमीद खाँ वज़ीर बना था। अब उसकी हत्या की योजना भी बन गई।

उसको क़ैदकर दिल्ली से बुरहानपुर भेज दिया गया था। इसी बीच उसकी हत्या का हुक्म भी आ पहुँचा। मगर उसके भाइयों ने पहरेदारों को घूस देकर उसे भगा दिया। मलिक मुहम्मद जमाल हमीद की निगरानी में था। उसने हमीद के घर तक उसका पीछा कर उसपर आक्रमण कर दिया। इस झगड़े में जमाल ही मारा गया। ऐसे समय जैसा कि हमेशा से होता आया था, उसके सहायकों ने अपनी राज-भक्ति बदल दी। वे लोग हमीद खाँ की ओर हो गए।

सुलतान बदायूँ में था। उसकी अनुपस्थिति का फ़ायदा उठाकर हमीद खाँ ने सरकारी ख़ज़ाने तथा शाही मोहर के साथ ही शाही हरम को भी अपने कब्जे में कर लिया और उनकी पत्नियों, पुत्रों और पुत्रियों को नंगे सिर दिल्ली के (लाल) किले से बाहर हाँक दिया।

किंकर्तव्यविमूढ़ सुलतान हिचकिचाता हुआ बदायूँ में ही समय गुजारने

लगा। वह विचार कर रहा था कि अपने विरोधी वज़ीरे आजम से किस तरह पेश आए। हमीद खाँ का दमन करना भी आवश्यक था। सेना भेजने के लिए वह वर्षा ऋतु की समाप्ति की बाट जोहने लगा। इधर हमीद खाँ भी गद्दी पर बैठने के लिए एक नए कठपुतली सुलतान की तलाश में लग गया। इस झगड़े में बहलोल लोदी ने गद्दी हड़पने का एक नया अवसर पाया। अपनी सारी सेना लेकर उसने दिल्ली कूच कर दिया। हमीद दिल्ली में ही जमा रहा। उसे अपनी शक्ति पर विश्वास था कि बहलोल उसे जीत नहीं सकता। चूंकि बहलोल दो बार पहले भी असफल हो चुका था, इसलिए उसने सीधे लड़ाई छेड़ने की हिम्मत नहीं की। उसने कपट और माया का सहारा लिया। अपने गिने-चुने अफ़ग़ान कुलीनों के साथ उसने दिल्ली में निवास करने की अनुमति हमीद से माँगी।

लोकप्रियता से अपनी स्थिति दृढ़ करने के लिए हमीद खाँ ने एक दिन शराब और साक़ी का वृहत् आयोजन कर प्रमुख कुलीनों को निमन्त्रण भेज दिया। अपनी स्वाभाविक धूर्तता से बहलोल ने मेज़बान के खर्चे से ही आयोजित दावत द्वारा अपना काम निकालने का विचार किया। उसने अपने अफ़ग़ानों को दावत में मूर्खता का अभिनय करने की राय दी जिससे हमीद खाँ और उसके सहायक उसके बारे में ग़लत राय क़ायम कर लें।

"जब अफ़ग़ान हमीद के सामने आए तो वे लोग ऊलजलूल और अजीबोगरीब ढंग से व्यवहार करने लगे। कुछ लोगों ने अपना जूता अपने कमरबन्दों में बाँध लिया। कुछ ने अपना जूता हमीद खाँ के सिर के ऊपर ताक में रख दिया। हमीद खाँ ने इसका मतलब पूछा तो उन लोगों ने जुवाब दिया कि 'कहीं चोरी न हो जाए, हम इसकी सावधानी बरत रहे हैं।' थोड़ी देर बाद अफ़ग़ानों ने हमीद खाँ से कहा कि "आपका गलीचा बड़े नायाब ढंग से रंगा हुआ है। अगर आप हम सभी को इसका एक-एक टुकड़ा दे देने की मेहरबानी करें तो हम इसे एक नायाब तोहफ़ा समझकर अपने बच्चों की टोपियाँ बनाने के लिए अपने मुल्क भेज देंगे। इससे संसार के लोग जान जाएँगे कि हम लोग हमीद खाँ की ख़िदमत में हैं जिन्होंने हम लोगों को प्रतिष्ठा, सम्मान और इज्जत दी है।' हमीद खाँ मुस्कराया। उसने उत्तर दिया कि 'नायाब तोहफ़ों में मैं आप लोगों को बेशक़ीमती चीज़ें दूंगा। जब इत्र की शीशियाँ तश्तरी में लाई जा रही थीं तो अफ़ग़ानों

ने इत्र की शीशी को चाटा और फूलों को खाया। इन लोगों ने मुड़ हुए पान के पत्तों को खोला। पहले चूने को चाटा और फिर पान खाए।"

हमीद ने पूछा कि वे लोग इस प्रकार का व्यवहार क्यों कर रहे हैं तो बहलोल ने उत्तर दिया कि यह जोकरों का एक दल है जो सिर्फ़ खाना और मरना ही जानता है।

इसके बाद बहलोल प्रायः हमीद खाँ से मिलने जाने लगा। जब वह भीतर जाता था तो उसके बहुत से अनुयायी बाहर प्रतीक्षा किया करते थे। ऐसे ही एक अवसर पर बहलोल भीतर दावत खा रहा था। बाहर खड़े अफ़ग़ानों को पहले ही गुप्त आदेश मिल चुका था। इस योजना के अनुसार उन लोगों ने पहले पहरेदारों को पीटा। फिर यह चीखते-चिल्लाते वे लोग भीतर घुस पड़े कि बहलोल के समान हम लोग भी हमीद खाँ के ख़िदमतगार हैं। हम इन्तजार में बाहर खड़े नहीं रह सकते।

हमीद खाँ ने इस हल्ले-गुल्ले के बारे में पूछा। अफ़ग़ानों ने ऊपर से बहलोल को कोसते और गाली देते हुए हमीद खाँ से कहा कि आपके ख़िदमतगार होने के नाते हमें भी भीतर आने का उतना ही हक़ हासिल है, जितना बहलोल को है। इस चापलूसी से फूलकर हमीद खाँ ने सभी अफ़ग़ानों को भीतर आने की इजाजत दे दी। जब सभी लोग भीतर आ गए तो हमीद खाँ के प्रत्येक ताबेदार के पास दो-दो अफ़ग़ान खड़े हो गए।

ज्यों ही मेहमानों एवं मेज़बानों का खाना ख़त्म हुआ, हमीद खाँ के आदमी बाहर चले गए। "कुतुब खाँ ने अपनी छाती से एक जंजीर बाहर निकाली और हमीद खाँ के सामने रखते हुए कहा—"पब्लिक लाइफ से रिटायर हो जाना अब आपके लिए सबसे अच्छा रहेगा। मैंने आपका नमक खाया है। मैं आपको ख़त्म करना नहीं चाहता। इसके बाद उसने हमीद खाँ को कैद कर अपने अफ़सरों को सौंप दिया।" (नियामतुल्ला की तारीख़े-खान जहान लोदी)।

इसके बाद ही बहलोल लोदी ने अपनी सुलतानी का ढोल बजवा दिया और लोदी ख़ानदान की नींव डाल दी, जिसका वह पहला सुलतान था। जातिगत परम्परा के अनुसार बहलोल की ताजपोशी की तारीख़ निश्चित नहीं है। इसका कारण यह है कि उनका इतिहास अफ़वाह, प्रशंसा, ख़ुशामदी गप्प और सोद्देश्य-कहानियों का गडबडझाला है।

इसके कुछ दिन के बाद ही बहलोल ने एक पत्र सुलतान अलाउद्दीन को बदायूं भेजा। इसमें उसने संकेत कर दिया कि आप बदायूं में ही आराम फरमाएँ और दिल्ली लौटने की तमन्ना न रखें। हां! आपके शाही जज़बातों को सन्तुष्ट करने के लिए मैं शाही-फरमानों में आपका नाम ज़रूर रखूंगा। अपनी बेबसी में अलाउद्दीन ने इस कृपा के लिए बहलोल को धन्यवाद का एक पत्र लिखकर भेज दिया।

मगर ऐसा प्रबन्ध बहुत दिनों तक नहीं चल सकता था। हर आदमी दूसरे को गद्दी से धकेलने की ताक में ही रहता था। जिन कुलीनों को बहलोल ने निकाल दिया था। उन लोगों ने जौनपुर के महमूद को बहलोल से भिड़ने का न्यौता भेज दिया, मानो मन्त्री पद न मिलने से दल-बदलू नेताओं ने अपना दल बदलकर विश्वासघात और देशद्रोह किया हो। उस समय बहलोल दीपलपुर के निवासियों और बाग़ियों का दमन करने में लीन था। ये लोग उसके विनाश का विरोध जो कर रहे थे।

जौनपुर का महमूद एक दूसरा सुलतान था। वह दिल्ली गद्दी हड़पने की ताक में बैठा हुआ था। बहलोल दीपलपुर से दिल्ली भाग आया। दिल्ली से २० मील दूर नरेला में संग्राम हुआ। बहलोल का साथ छोड़कर दरिया खाँ लोदी महमूद से जा मिला। इसपर कुतुबु खाँ ने उसे धमकी दी कि यदि तुम महमूद की सहायता करना नहीं छोड़ोगे तो दिल्ली में तुम्हारी पत्नियों और पुत्रियों का शील-हरण कर लिया जाएगा। इस अनोखी धमकी से घबराकर दरिया खाँ युद्ध से पीछे हट गया। हारकर महमूद जौनपुर चला गया। उसके सिपहसालार फ़तह खाँ को लोदियों ने कैद कर लिया।

बहलोल को अब अपनी ताक़त पर पूरा यक़ीन हो गया। उसने हिन्दू क्षेत्रों को लूटना प्रारम्भ कर दिया। वह मेवात की ओर बढ़ा। वहाँ के शासक अहमद खाँ मेवाती ने आत्म-समर्पण कर दिया। उसके राज्य के सात परगनों (यानी ज़िलों) को बहलोल ने अपने राज्य में मिला लिया। मेवात मुसलमानों के आत्म-समर्पण एवं आज्ञापालन की गाँठ मज़बूती से बाँधने तथा अपनी नौकरी बजाने के लिए बहलोल ने उसके चाचा को अपने दरबार में बन्धक रख लिया।

दरिया खाँ लोदी जो पहले जौनपुर सुलतान की ओर चला गया था, अब वापिस बहलोल के दरबार में दौड़ा आया। लगता है ७ की संख्या

बहलोल की कमज़ोरी थी। दरिया खाँ की जागीर के सात ही परगनों को उसने अपने राज्य में मिलाया। अब बहलोल कोल (जिसे हम भ्रमवश अलीगढ़ कहते हैं) की ओर बढ़ा। अपने गुर्गे इंशा खाँ को उसने वहाँ नियुक्त कर दिया। उसने राय प्रताप को भुईगव का राजा मान लिया था। इसके बाद बहलोल कुतुब खाँ के रावड़ी दुर्ग की ओर बढ़ा। हालाँकि यहाँ भी बहलोल की विजय ही लिखी हुई है, मगर ऐसा लगता है कि बहलोल इस दुर्ग को जीत नहीं सका। कारण यह था कि यहाँ उसने कुतुब खाँ की सत्ता को अपनी मान्यता दे दी थी। नियामतुल्ला का इतिहास 'तारीख़े-खान जहान लोदी' भी अन्य मुस्लिम इतिहासों की भाँति चापलूसियों और गप्पों से भरा हुआ है। अतएव सही निष्कर्ष निकालने के लिए पाठकों को काफ़ी सचेत रहना पड़ेगा। हर संग्राम में अपने शासकीय सुलतान की विजय का दावा ठोक देना मध्यकालीन चापलूस इतिहासकारों का बड़ा प्यारा नारा रहा है। भले ही उस लड़ाई में उसका मालिक बड़ी बुरी तरह हारकर भागा हो या उसने अपनी नाक बचाने के लिए समझौता किया हो।

सुलतान बहलोल अब इटावा के उस हिस्से को लूटने निकला, जहाँ एक दूसरे मुस्लिम शासक जौनपुरी मुहम्मद शर्क़ी की सरकार थी। परम्परा के अनुसार मुहम्मद शर्क़ी एक बहुत बड़ा औरतबाज़ था। वह खुद विलास से जर्जर हो चुका था। इसलिए उसका अमीजोनियन गुर्गा, जो उसके हरम की देखभाल करता था, बहलोल से टकराने के लिए निकला। यहाँ भी बहलोल को समझौता ही करना पड़ा। इस ओर की लड़ाइयों में, कोई ज़मीन जीतनी तो दूर रही, उल्टे उसे शम्साबाद (इसका हिन्दू नाम जो भी रहा हो) एक हिन्दू राजा राय कर्ण को सौंप देना पड़ा।

इस लड़ाई में एक हिन्दू शासक को जो लाभ हुआ वह जौनपुर सुलतान मुहम्मद शर्क़ी की आँखों में खटक गया। उसने शम्साबाद की ओर कूच कर दिया। शायद अल्लाह उसकी बदमाशी से नाराज़ हो गए थे। अतः उसे अपने पास बुला लिया। उसका बेटा मुहम्मद शाह जौनपुर की गद्दी पर बैठा। सरकारी काम में नये होने के कारण उसने बहलोल से समझौता कर लिया। इस समझौते के अनुसार दिल्ली और जौनपुर की सुलतानी के बीच राजा कर्णसिंह का राज्य निरपेक्ष था। अभी इस समझौते की स्याही सूखने भी नहीं पाई थी कि अपनी कपटी जाति-परम्परा के अनुसार सुलतान

मुहम्मद शाह ने राय कर्ण पर आक्रमण कर दिया। लगता है, दिल्ली सुलतान बहलोल अपने अभियानों से एकदम थक चुके थे। एक हिन्दू राजा पर जौनपुर के मुस्लिम सुलतान की रण-भेरी सुनकर उसने अपने कान बन्द कर लिये। मगर राय प्रताप, जिनका बहलोल से राजनीतिक समझौता हो चुका था, राजा कर्ण के हिन्दू राज्य पर एक मुस्लिम लुटेरे के हमले से आतंकित और आशंकित हो उठे। वे राय कर्ण की सहायता करने निकले।

इधर अपने हरम में बहलोल पर भी एक संकट आ गया। उसकी मुख्य बेगम शम्स खातून ने उसे धमकी दी कि जबतक वह उसके भाई कुतुब खाँ को जौनपुर सुलतान के तहख़ाने से मुक्त नहीं करा लाता तबतक वह उसका बाइकाट करती रहेगी। लाचार होकर सुलतान को अपनी सेना लेकर मैदान में उतरना पड़ा।

कुतुब खाँ के साथ जौनपुर सुलतान का अपना भाई हसन खाँ भी बन्द था। यह मध्यकालीन मुस्लिम शासन में एक साधारण बात थी। नए जौन-पुरी सुलतान मुहम्मद को एकाएक सन्देह हो गया कि दोनों गुप्त रूप में बहलोल से मिले हुए हैं। उसने जौनपुर के कोतवाल को अपने भाई की हत्या कर देने का हुक्म भेज दिया। मगर उन दोनों पर सुलतान की माँ एवं हरम की कुछ अन्य स्त्रियों की छत्रछाया थी। इसलिए कोतवाल को उनका बाल भी बाँका करने का साहस न हुआ।

अपनी माँ को बहला-फुसलाकर अपने भाई से दूर करने के लिए, जौनपुर के सुलतान मुहम्मद ने अपनी माँ को एक मायावी-पत्र लिखा, जिससे संरक्षणहीन हमीद की हत्या आसानी से हो सके। उस पत्र में उसने अपने भाई से एक समुचित समझौता करा देने की प्रार्थना की थी। अपने पुत्र के कपटी-पत्र की माया में आकर इधर उसने जौनपुर छोड़ा उधर जौनपुरी सुलतान के दरबारियों ने हसन खाँ की हत्या कर दी। उस समय उसकी माँ कन्नौज में थी। अपने कपटी और खूनी पुत्र मुहम्मद शाह से बिना मिले ही वह उलटे पैरों वापिस लौट आई। अपनी जातिगत दुष्टता के अनुसार जले पर नमक छिड़कते हुए मुहम्मद शाह ने अपनी माँ को लिखा कि अपने मृत-पुत्र हसन खाँ का शोक मनाने का अभी समय नहीं आया है, क्योंकि वह अपने सभी पुत्रों का शोक एक बार ही मनाकर रोने-धोने के काम से सदा के लिए छुट्टी पा सकती है, क्योंकि आज नहीं तो कल सभी मरने ही वाले हैं।

तारीखे-खान-जहान के लेखक नियामतुल्ला जौनपुर के सुलतान मुहम्मद शाह को "खूंखवार और खून का प्यासा" मानते हैं। हकीकत में यह बात भारत के सारे मध्यकालीन मुस्लिम शासकों पर समान रूप से ठीक बैठती है।

जौनपुर के सुलतान मुहम्मद शाह का सामना अब दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी से हुआ। अपने एक आकस्मिक आक्रमण में बहलोल ने जौनपुरी सुलतान के एक भाई जलाल खाँ को कैदकर कुतुब खाँ की सुरक्षा के लिए अपने पास बन्धक रूप में रख लिया। एक भाई की कैद का समाचार सुनकर, दूसरा भाई हुसैन खाँ भयभीत हो जौनपुर भाग गया। सुलतान मुहम्मद शाह अकेला रह गया। उसने पीठ मोड़ी और नौ-दो ग्यारह हो गया। बहलोल लोदी ने उसका पीछा किया और उसका कुछ सामान लूट लिया। हिन्दुस्तान में निरंकुश शासन हड़पने के लिए, एक-दूसरे के खून के प्यासे ये मुस्लिम लुटेरे हिन्दुस्तान की ज़मीन की मलाई लूटकर अपनी खूनी लड़ाइयों का पेट भरते थे।

जौनपुर से सुलतान मुहम्मद शाह की अनुपस्थिति का लाभ उठाकर इसकी माँ बीवी राजी ने, दरबारियों की सहायता से, उसके छोटे भाई हुसैन खाँ को जौनपुर की गद्दी पर बैठा दिया। इस नये सुलतान ने अपने भगोड़े भाई सुलतान मुहम्मद का सफ़ाया करने के किए अपनी सेना भेज दी। गंगा के किनारे राजगढ़ में उसका घिराव हुआ। जातिगत परम्परा के अनुसार उसके असन्तुष्ट दरबारियों ने उसका साथ छोड़ दिया और वे लोग आक्रमणकारी हुसैन खाँ से आ मिले। मुहम्मद शाह मारा गया और जौनपुर सुलतान के रूप में हुसैन खाँ का ख़िताब पक्का हो गया। उसने दिल्ली के सुलतान बहलोल लोदी से समझौता कर लिया। बन्धक कैदियों की आपस में अदला-बदली हो गई।

इस इस्लामी हड़कम्प और उथल-पुथल में वीर राय कर्ण ने अपहर्त्ता जूना खाँ को मार भगाया और अपनी राजधानी पर अधिकार कर लिया। इसे विदेशी मुसलमान शम्साबाद कहते थे। दिल्ली और जौनपुर के मुस्लिम सुलतान, जिन्होंने समझौते और दोस्ती की सन्धि की थी, आपस में फिर घुसपैठ और साज़िश करने लगे। इधर बहलोल लोदी के कुतुब खाँ और

दरिया खाँ जैसे गुर्गों ने राय प्रताप को धमकाने के लिए उसके वीर पुत्र नरसिंह की हत्या कर दी।

दिल्ली दरबार के वातावरण को कपटी और ख़तरनाक़ देखकर कुतुब खाँ, हुसैन खाँ, मुबारिक खाँ और खिन्न हिन्दू राय प्रताप सुलतान बहलोल को छोड़कर जौनपुर के शर्की सुलतान की ओर हो गए। मुलतान में एक नया विद्रोह पनप रहा था। सुलतान बहलोल जल्दी से दिल्ली वापिस आ गया और अपने बचे-खुचे गुर्गों को बटोरकर मुलतान के लिए कूच कर दिया। जौनपुर के सुलतान को दिल्ली की गद्दी हथियाने का बड़ा सुनहरा अवसर मिल गया। इस नए संकट का समाचार बहलोल के पीछे-पीछे आ पहुँचा। मुलतानी बाग़ियों का दमन करना भूलकर वह दिल्ली भागा। सात दिन तक दोनों सेनाएँ आपस में मरती-कटती रहीं। काफ़ी खून-ख़राबे के बाद दोनों में युद्ध-बन्दी की एक सन्धि हो गई। इसके अनुसार दोनों सुलतानों को अपने-अपने राज्य में ३ वर्ष तक शान्त पड़े रहना था।

इस सन्धि ने, जिसपर बहलोल को विवश होकर हस्ताक्षर करने पड़े थे, बहलोल की दुष्ट आक्रामक गति को स्थिर कर दिया। इसके अनुसार बहलोल को निराशा में ३ वर्ष तक दिल्ली की गलियाँ ही नापनी थीं। मगर उसके पेट में कुलबुलाते कपट के कीड़े ने उसे शान्त नहीं बैठने दिया। जौनपुर सुलतान के सहायक अहमद खाँ मेवाती पर चढ़ाई कर उसने सन्धि के नियमों का पालन किया। बहलोल ने मेवात में प्रवेश किया और निरंकुश तबाही मचाकर वह हाथ में आए हिन्दुओं का धर्मान्तरण करने लगा।

बहलोल लोदी इधर इस अहमद खाँ को भयभीत और परेशान कर रहा था, उधर यूसुफ़ खाँ के पुत्र, बयाना के गवर्नर दूसरे अहमद खाँ ने उससे विद्रोह कर अपने आपको जौनपुर-सुलतान हुसैन खाँ का भक्त घोषित कर दिया।

घृणा के पात्र बहलोल लोदी के विरुद्ध सामूहिक असन्तोष व्याप्त हो चुका था। इससे प्रेरित होकर तीन वर्ष की युद्ध-बन्दी के बाद जौनपुर सुलतान ने फिर दिल्ली के लिए कूच कर दिया। भटवाड़ा के पास दोनों सेनाओं में टक्कर हुई। कुछ झड़पों के बाद फिर एक सन्धि हो गई और दोनों सेनाएँ अपने-अपने ठिकाने पर लौट गईं।

इतनी सन्धियों के बाद भी बहलोल को गद्दी से गिराने का जौनपुरी-

इरादा नहीं डगमगाया। एक बार फिर उसने दिल्ली पर चढ़ाई की। सराय लश्कर के पास दोनों सेनाओं में कई दिन तक लड़ाई होती रही। हिन्दू-क्षेत्र को काफ़ी नुकसान पहुँचाने, हिन्दू घरों को जलाने और मन्दिरों को मस्जिद बनाने के बाद दोनों मुस्लिम सेनाओं में फिर एक समझौता हो गया।

कुतुब खाँ ने एक षड्यन्त्र रचा। इसके अनुसार दोनों सुलतानों को फिर भड़काया गया। एक बार फिर दोनों में सिर-फुटौवल हो गया।

प्रायः इसी समय बदायूँ के एक दूसरे मुस्लिम सुलतान अलाउद्दीन का देहान्त हो गया। अलाउद्दीन की मौत में शरीक होने के बहाने जौनपुरी सुलतान भी बदायूँ आ पहुँचा। अपनी जातिगत दुष्टता के अनुसार उसका विचार उसके सारे ख़ज़ानों और हरमों को हड़पने का था ताकि वह नयी शक्ति और नए उत्साह से फिर दिल्ली की गद्दी सुलतान बहलोल से छीनने का प्रयास कर सके।

लाश पर मँडराने वाले गिद्ध की भाँति जौनपुर का सुलतान अलाउद्दीन की शव-यात्रा में गया। इसके बाद उसने अलाउद्दीन की बेग़मों और ख़ज़ानों के साथ उसके राज्य पर अपना अधिकार कर लिया। मगर इससे बदायूँ राज्य की विशाल हिन्दू जनता को कोई फ़र्क नहीं पड़ा। चाहे अलाउद्दीन हो या हुसैन, उन्हें तो उनकी इस्लामी घृणा और मुसलमानी क्रूरता का निवाला बनना था ही। सुलतान हुसैन ने अनुभव किया कि वे अब पड़ोसी क्षेत्रों पर डाका डालने योग्य हो गये हैं। दिल्ली सुलतान बहलोल से फैसला करने के लिए, पहले छोटे-मोटे सरदारों का शिकार कर हृष्ट-पुष्ट होने का जौनपुरी-विचार अच्छा था।

जौनपुर के सुलतान हुसैन ने सम्भाई को हड़प लिया। यहाँ से एक बड़ी फ़ौज बटोरकर उसने एक बार फिर दिल्ली पर चढ़ाई की। उस समय बहलोल सरहिन्द मार्ग पर स्थित क्षेत्रों में डाका डाल रहा था। यह समाचार पाकर वह दिल्ली लौट आया। लड़ाई लम्बी चली। इस लड़ाई में जौनपुरी सेना ने अच्छे हाथ दिखाए। कपटी कुतुब खाँ की माया फैली। बहला-फुसलाकर सारा माल-मत्ता उसने अपने अधिकार में कर लिया। सुलतान हुसैन कुतुब खाँ की कुरान की कपटी कसम पर विश्वास कर, सारा सामान छोड़, मौज उड़ाने, अपने हरम जौनपुर में चला गया। इधर बहलोल धोखे से उसके पड़ाव पर टूट पड़ा। सारा सामान भी वहीं था। उसने सामान

लूट लिया। रक्षकों को हलाल कर दिया। हिन्दू क्षेत्रों को लूटकर जौनपुर सुलतान ने बहुत धन, हाथी और घोड़ों को जमा किया था, इसका बहुत-सा अंश बहलोल के हाथ में पड़ गया। चालीस महत्त्वपूर्ण कुलीन भी उसके अधिकार में आए। इस धोखेबाज़ी का बदला कहीं जौनपुरी-सुलतान न ले इसलिए उसने इन चालीसों को गिरवी रख लिया। जौनपुरी-सुलतान के वज़ीर इस प्रकार जंज़ीरों से बाँधे गये मानो वे जंगली जानवर हों। जौनपुरी सुलतान के यात्रा हरम की स्त्रियां बहलोल की कामुकता का शिकार हो गईं। काम्पिल, पट्टियाली, साकित, कोल और जलाली, जो जौनपुर शासन के परगने थे, को घेरकर और लूटकर उनके निवासियों से एक बार फिर इस नये सुलतान ने अपना लगान वसूल किया। जगह-जगह जौनपुरी सुलतान का पीछा किया गया। रापड़ी के समीप हताश होकर उसने तलवार निकाल ली। मक्कार बहलोल उससे तलवार टकराना नहीं चाहता था। उसने समझौते की बात चलाई। एक-दूसरे की नयी सीमाओं को उन दोनों ने स्वीकार कर लिया। इसके बाद दोनों अपनी-अपनी राजधानियों को वापिस लौट आये।

दोनों ही एक-दूसरे के राज्य, ख़ज़ाने और हरम को हड़पना चाहते थे। कुरान की कसम भी उन दोनों ने तोड़ दी मानो उसका कोई महत्त्व ही न हो। वे लड़ाई की तैयारियों में लग गये। सोनहर गाँव के समीप फिर घनघोर संग्राम हुआ। सुलतान जौनपुर का पासा फिर उलटा पड़ा। उसका बहुत-सा ख़ज़ाना और बहुत-सी औरतें बहलोल के हाथ लगीं। इससे बहलोल की सैनिक-शक्ति बहुत अधिक बढ़ गई। अब हुसैन को ख़त्म करने का दृढ़ निश्चय कर बहलोल ने उसका पीछा किया। रापड़ी में भयंकर संग्राम हुआ। यथेष्ट नर-संहार तथा समीपवर्ती हिन्दू-क्षेत्रों के विध्वंस और लूट के बाद बहलोल की फिर जीत हो गई थी। प्राण लेकर भागते हुए हमीद को बड़ी घबराहट में यमुना पार करनी पड़ी। इस हड़बड़ी में उसकी बहुत-सी स्त्रियाँ और बच्चे यमुना की धारा में बह गये। इसके बाद वह ग्वालियर की ओर बढ़ा। अपने भोजन-वस्त्र के लिए उसका गिरोह अब उस हिन्दू राज्य के सम्पन्न घरों को लूटने तथा खेत-खलिहानों को रौंदने लगा। इस विध्वंसात्मक कार्य से कुपित होकर वहाँ की वीर हिन्दू जाति बहादुरिया उनपर टूट पड़ी।

निराशा, पराजय और शर्म से भगोड़े जौनपुर-सुलतान ने, जिसका पीछा एक दूसरा मुसलमान बहलोल कर रहा था, ग्वालियर के हिन्दू राजा करणसिंह से शरण माँगी। एक क्रूर और कपटी मुस्लिम को शरण देने के बदले राजा करणसिंह ने उसे काल्पी तक खदेड़ भगाया।

इस बीच बहलोल पराजित सुलतान के अन्य अनुयायियों का सफ़ाया करने में लग गया। तीन दिन के घेरे के बाद हुसैन के दो भाई इब्राहीम खाँ और हैबत खाँ ने उसे इटावा सौंप दिया। इसी अभियान में एक वीर हिन्दू राजपूत दादन्द ने इटावा क्षेत्र का अपना कुछ भाग वापिस अपने अधिकार में कर लिया।

अपने खोए राज्य को पुनः प्राप्त करने के लिए हुसैन काल्पी से मुड़ा। इस विपत्ति को रोकने के लिए बहलोल को रनगव में खड़ा होना पड़ा। यमुना नदी दोनों को अलग कर रही थी। बक्सर के समीप के क्षेत्रीय शासक राय तिलकचन्द ने इस झगड़े में अपनी कुछ ज़मीन वापिस जीतने का एक अवसर पाया, जिसे विदेशी मुसलमानों ने छीन लिया था। वे अचानक जौनपुर-सुलतान हुसैन पर टूट पड़े। इस हिन्दू आक्रमण से घबराकर सुलतान पन्ना के हिन्दू राजा की शरण खोजने भागा। काली करतूतों से भरे अपने जीवन के पश्चात्ताप और प्रायश्चित में उसने दिखावटी आँसू बहाए, नक़ली कसमें खाईं। मगर उसका कोई प्रभाव नहीं पड़ा। निराश होकर वह जौनपुर की स्थानीय जनता से सहयोग की भीख माँगने जौनपुर आया। बहलोल लोदी को जब यह समाचार मिला कि हुसैन अपनी राजधानी जौनपुर में है तो वह जौनपुर के लिए रवाना हो गया। उसकी अधिकांश सम्पत्ति और बहुत-सी औरतें एक बार फिर बहलोल के हाथ पड़ीं।

बहलोल अब जौनपुर लौटा, इसपर अधिकार किया और अपना एक गुर्गा वहाँ छोड़ दिया। ज्यों ही उसने पीठ मोड़ी सुलतान हुसैन जौनपुर पर अधिकार करने वापिस लौटा। बिना लड़े-भिड़े ही बहलोल की नगर-सेना भाग खड़ी हुई। उसने मनझौली तक उस सेना का पीछाकर उसे सन्धि करने पर मजबूर कर दिया। धूर्त कुतुब खाँ जानता था कि साक़ी और शराब हुसैन की कमज़ोरी है। बहुत-सी युक्तियों से वह सुलतान का जब तक मनोरंजन करता रहा जब तक सहायता न आ पहुँची। बहलोल का बेटा बरबक शाह इस गतिहीन सेना की सहायता के लिए आ पहुँचा। उसके

पीछे-ही-पीछे खुद बहलोल भी सहायक सेना लेकर चल पड़ा। अपना सब-कुछ बहलोल की कृपा पर छोड़कर हुसैन बिहार भाग गया। बहलोल ने अपने पुत्र बरबक को जौनपुर की गद्दी पर बैठा दिया। वापिसी में बहलोल ने धौलपुर की सीमा में प्रविष्ट होकर उसे लूटना प्रारम्भ कर दिया। इस मुस्लिम विध्वंस को बन्द करने के लिए उसने धौलपुर के हिन्दू शासक से कई मन शुद्ध सोने की माँग की।

इसी प्रकार बारी ज़िले को भी उसने तबाह किया। यहाँ की हिन्दू जनता से कई मन सोना छीन, बटोरकर और लुटेरे बहलोल को सौंपकर यहाँ के मुस्लिम गवर्नर इक़बाल खाँ ने इस भेड़िये से निजात पाई।

बारी से आगे बहलोल अल्लाहपुर (इसका हिन्दू नाम ज्ञात नहीं) की ओर बढ़ा। यह रणथम्भोर के अधीन था। बहलोल ने "इस देश को रौंद दिया तथा इसके खेतों और बगीचों को नष्ट कर दिया। इसके बाद वह दिल्ली आया जहाँ उसने ऐशो-आराम और उत्सवों में अपना समय गुजारा" —अपनी तारीख़े खाँ जहान में नियामतुल्ला कहता है (इलियट एवं डाउसन, ग्रन्थ ५, पृष्ठ ६१)। मुस्लिम इतिहासकार भी यह जोड़ना नहीं भूलता कि बहलोल का ऐश, दावत और व्यभिचार का जीवन "न्याय और उदारता के कारनामों" से भरा हुआ है।

जौनपुर-सुलतान का रोड़ा राह से निकल जाने के बाद अब बहलोल हिन्दू राज्यों को बेरोक-टोक लूट सकता था। राजा मानसिंह के अधीन ग्वालियर एक सम्पन्न राज्य था। मध्यकालीन मुस्लिम लुटेरों के जातिगत क्रूर तरीकों से बहलोल ने ग्वालियर की सीमा पर उत्पात मचाना प्रारम्भ कर दिया। असहाय हिन्दू किसानों को सताकर उनका धर्मान्तर कर देना, मुसलमानी बलात्कार के लिए उनकी पत्नियों और पुत्रियों को छीन लेना, गुलाम बनाकर बेच देने के लिए बच्चों को उड़ा लाना आदि अच्छे कामों की शुरुआत हो गई। हिन्दू शासक ईंट का जवाब पत्थर से न दे सके। सीमाओं के राजा, लगातार दिल्ली, जौनपुर और मालवा के सुलतानों की लूट के शिकार बनते रहते थे और अल्पकालीन शान्ति ख़रीदते रहते थे। "अपनी गरीब हिन्दू जनता के खेतों और घरों को मुस्लिम विनाश से बचाने के लिए ग्वालियर के हिन्दू शासक को ८० लाख टंका देने पड़े।"

सच्चाई और निष्ठा से हिन्दुओं को लूटने के लिए बहलोल अब इटावा की ओर मुड़ा। यहाँ दुदन्द सिंह के पुत्र संगत सिंह का शासन था। इस्लामी उन्माद में इटावा के छोटे राज्य से गुज़रता बहलोल-गिरोह हाहाकार और बरबादी की एक लकीर छोड़ता गया। संगत सिंह को जंगलों में शरण लेनी पड़ी। बहलोल के बर्बर जंगली इटावा के ग्रामों और नगरों में शैतानी नाच नाचने लगे।

इस आक्रमण से लौटकर बहलोल साकित क्षेत्र के मलावी गाँव में बीमार पड़ गया और १४८८ ई० में मर गया। उसका लोभी शासन ३८ वर्ष, ८ महीने और ८ दिन का था। यह दुष्ट दिल्ली के एक बाग में गढ़ा पड़ा है।

फरिश्ता हमें बताता है कि बूढ़े होने पर बहलोल ने अपना राज्य अपने बेटों, भाइयों और दरबारियों में बाँट दिया था। कर्रा और मानिकपुर आलम खाँ को मिला। बहराइच उसके भतीजे शाहजादा मुहम्मद फरमूली के अधिकार में रहा। लखनऊ और काल्पी आज़म हुमायूँ, जिसके पिता को उसके दुर्व्यवहार के कारण उसीके एक नौकर ने मार डाला था, के अधीन हुआ। बदायूँ की जिम्मेदारी ख़ाँ जहान की थी। दिल्ली तथा उसके सारे पड़ोसी परगनों की निगरानी उसके पुत्र शाहज़ादा निज़ामशाह करने लगे, जिन्होंने सिकन्दर लोदी की, उपाधि धारण कर हिन्दुत्व का विनाश करने वाली अपने पिता और पूर्वजों की खूनी तलवार का पूरा उपयोग किया था।

विदेशी मुस्लिम लुटेरों के बीच इस प्रकार हिन्दू-क्षेत्र के बँटवारे से यह स्पष्ट हो जाता है कि मध्यकालीन भारत में जादू के बीज जैसी मुस्लिम पीढ़ी से किस प्रकार कई शासकीय शाखाएँ फूटकर निकली थीं और किस प्रकार भारत का विनाश दिन दूनी और रात चौगुनी रफ़्तार से होने लगा था।

बहलोल का शासन इस बात को भी स्पष्ट करता है कि मध्ययुगीन मुस्लिम शासनकाल ,बलात्कार, लूट और बरबादी का लगातार चलने वाला एक खूनी वाक़या है, जिसमें न्याय और शान्ति का जीवन व्यतीत करने की इच्छा करना मृगमरीचिका ही थी। बीच-बीच में मुस्लिम इतिहासकार गद्दीनशीन मुस्लिम सुलतान के मुस्लिम अहं की तृप्ति के लिए उनकी प्रशंसा में उनके शासन का रोमांचकारी वर्णन करते हैं। वे उनकी बर्बर करतूतों की गन्दगी को खूब चमकाने के लिए पॉलसन-पालिश करते हैं क्योंकि इन इतिहासकारों को अपना पेट पालने के लिए उन्हीं काली-करतूतों में से मुट्ठीभर अनाज मिला करता था।

लोभी मुस्लिम चापलूसों ने जिस प्रकार इन इतिहासों को लिखा है उससे यह स्पष्ट है कि इतिहास-लेखन एक गन्दी साम्प्रदायिक-साज़िश थी। इन सभी मुस्लिम ब्लैकमेलरों और बर्बरों का जीवन काली-करतूतों से एकदम स्याह है। फिर भी इन सबको बहुत ही अधिक उदार, मानवीय, दयालु और न्यायी शासक कहकर महान् बताया गया। इस साज़िश का पर्दाफ़ाश भी हो जाता है—बहलोल लोदी का एक बहुत ही प्रशंसित वर्णन तरीख़े-दाउदी में है—

"बहलोल एक गुणी और नम्र शाहज़ादा माने जाते थे, वे अपने ज्ञान

के आधार पर पूरा-पूरा न्याय करते थे। वे अपने दरबारियों को अपनी रैयत नहीं, अपना साथी समझते थे। जब उन्होंने ताज पहना तब उन्होंने जनता के ख़ज़ाने को अपने दोस्तों के बीच बाँट दिया। यह कहते हुए कि मेरे लिए यही काफ़ी है कि बिना शाही दिखावे के ही दुनिया मुझे राजा मानती है वे शायद ही कभी गद्दी पर बैठे हों। अपने खान-पान में वे बहुत ही सन्तुलित थे। वह शायद ही कभी अपने घर खाना खाते थे। हालांकि वे कोई विद्वान् नहीं थे मगर विद्वानों को अपने पास रखने के बड़े इच्छुक थे और उन्हें उनकी योग्यता के अनुसार इनाम दिया करते थे। वे एक बुद्धिमान् और बहादुर शाहज़ादा थे तथा मुस्लिम क़ानून के अच्छे जानकार थे। अपनी सरकार में शासन चलाने के लिए वे उत्तम पारषदों की राय का अध्ययन करते थे। वे चतुर थे और सबसे बढ़कर बात यह थी कि सरकारी काम-काज में जल्दबाज़ी नहीं होने देते थे। उनके सारे जीवन का व्यवहार पूरी तरह से यह बताता है कि किस प्रकार वे इन गुणों का पालन करते थे।"

इस स्तुति की चीर-फाड़ करने पर हमें ज्ञात होता है कि बहलोल लोदी एक क्रूरतम अपहर्ता और ग़बन-कर्ता था। वह जनता के धन को अपने उन गुर्गों के बीच बाँटता था जिन्होंने सैयदों को हटाकर दिल्ली की गद्दी हड़पने में उसकी सहायता की थी। अगर फरिश्ता के अनुसार वह एक विद्वान् व्यक्ति नहीं था तो योग्यता के अनुसार विद्वानों को उचित इनाम देने का निर्णय वह किस प्रकार करता था। बहलोल मुस्लिम क़ानून में एकदम पारंगत था। इसका सिर्फ़ यही मतलब है कि वह 'क़ाफ़िरों की गर्दन काटो' वाले नियम का पालन पूरी तरह करता था। यह एकदम सफ़ेद झूठ है कि वह सरकार चलाने के लिए परिषद् के सुझावों का अध्ययन करता था क्योंकि हमें बतलाया गया है कि वह एक अशिक्षित व्यक्ति था। जब हम यह विचार करते हैं कि उसने अपनी सारी जिन्दगी लूट और लड़ाई में ही व्यतीत की थी तो किसी कानून या नियम की स्थापना करने का प्रश्न ही नहीं उठता। इस बयान का, कि वह सरकारी कामों में जल्दबाज़ी नहीं होने देता था, यही मतलब है कि बहलोल दिल्ली की गद्दी पर होता था तभी किसी बात पर अन्तिम फैसला किया जाता था।

'वह शायद ही कभी अपने घर में खाना खाता था' इसका स्पष्ट अर्थ है कि यह पेटू बहलोल अपने प्रतिदिन के भोजन के मामले में भी एक ऐसा जोंक था जो सदा दूसरे के माल पर ही हाथ साफ़ करता था।

(मदर इण्डिया, अप्रैल, १९६८)

: १९ :

सिकन्दर लोदी

हिन्दुस्तान में हज़ार वर्षों तक कट्टर धार्मिक उन्माद में हिन्दू-खून बहाने वाले विदेशी सुलतानों में अगर कोई तारतम्य सम्भव है तो उसमें सिकन्दर का स्थान भयंकरतम होगा।

वर्णसंकर यह सुन्दर शैतान, बहलोल का तीसरा पुत्र था। सरहिन्द के हिन्दू सुनार की अपहृत पुत्री जीबा के साथ बलात्कार से इसका जन्म हुआ था। इसने हिन्दू-हत्याकाण्ड में अपने पूर्वजों से दूना उत्साह दिखाया था। इसका हत्या उन्माद इतना भयंकर था कि इसके दल के इसके धर्म भाई नियामतुल्ला ने अपनी "तारीखे खाँ जहान लोदी" में इसके हत्याकाण्ड को बार-बार एक "कसाई का काम" लिखा है।

हिन्दू सुनार की पुत्री के इस पुत्र का चेहरा सोने की भाँति दमकता था। मगर उसका दिल अपने पिता जैसा काला था। वह दिल क़त्लेआम में ठंडी तलवार से मरते लोगों की चीख़ और चिल्लाहट सुन-सुनकर तृप्त होता था।

बहलोल लोदी के पुत्रों में सिकन्दर का नम्बर तीसरा था, मगर दूसरे दावेदारों से छुट्टी पाकर गद्दी हड़पने में उसका सफल होना यह प्रमाणित करता है कि साज़िश तथा बदमाशी में उसका नम्बर पहला था। गद्दी पर उसका दावा निर्विरोध नहीं था, दरबारियों के एक दल ने उसकी गद्दी-नशीनी में अड़ंगा तो लगाया, मगर बेकार।

जहाँ तक कपट, व्यभिचार और दुष्टता की भयंकरता का प्रश्न है, एक दावेदार को दूसरे से अलग करना भूसे के ढेर में सूई खोजना है। फिर भी कुछ दरबारी बहलोल के दूसरे पुत्र बरबक के पक्ष में थे और कुछ उसके पोते आज़म हुमायूँ के पक्ष में। मगर निजाम खाँ ने सभी को उल्लू बना-

कर सभी का दमन कर दिया और हड़पकर "सुलतान सिकन्दर लोदी" की भारी-भरकम उपाधि धारण की।

अपनी पुस्तक "क्रिसेन्ट इन इण्डिया" पृष्ठ १५४ पर श्री एस० आर० शर्मा पर्यवेक्षण प्रस्तुत करते हैं कि "फ़िरोज शाह तुग़लक और औरंगज़ेब की भाँति, कट्टरता सुलतान सिकन्दर लोदी की मुख्य दुर्बलता थी। हिन्दू मन्दिरों को तबाह और बरबाद करना उसके अभियान का नियमबद्ध कारनामा था। (मथुरा, धौलपुर, नागपुर आदि स्थानों की भाँति) जहाँ कहीं भी उसका हाथ पड़ा, हिन्दू मन्दिर नहीं बचे। उसने यमुना के पवित्र घाट पर हिन्दुओं का स्नान करना वर्जित कर दिया था। यहाँ तक कि नाई भी वहाँ हिन्दुओं की हजामत नहीं कर सकते थे। बंगाल के एक ब्राह्मण ने रूढ़िवादी मुसलमानों की घृणा को जनता के बीच यह कहकर भड़का दिया कि इस्लाम और हिन्दुत्व दोनों ही सच्चे धर्म हैं और ये दोनों धर्म सर्वशक्तिमान परमेश्वर तक ले जाने वाले अलग-अलग मार्ग हैं। उसने इस अपराधी (?) को दरबार में भेजने के लिए बिहार के गवर्नर को लिखा। यहाँ उसने काजियों से पूछा कि इस प्रकार का उपदेश देने की अनुमति है या नहीं। उन्होंने निर्णय दिया कि चूँकि ब्राह्मण ने सच्चाई स्वीकार की है अतएव उसे इस्लाम स्वीकार करने का अवसर मिलना चाहिए अन्यथा दूसरा विकल्प मृत्यु ही है। ब्राह्मण को मृत्यु-दंड मिला क्योंकि उसने अपना धर्म त्यागकर इस्लाम स्वीकार नहीं किया।"

'भारतीय जनता का इतिहास और संस्कृति, दिल्ली के सुलतान' (दूसरा संस्करण, ग्रन्थ ५, सन् १९६७ ई०) में इन विचारों की विस्तृत व्याख्या की गई है। पृष्ठ १४६ पर लिखा हुआ है कि "दुर्भाग्य से इस्लाम का कट्टर भक्त सिकन्दर दूसरे धर्मों को नहीं देख सकता था। हिन्दू माँ से उत्पन्न और हिन्दू राजकुमारी से विवाह करने को उत्सुक सिकन्दर का व्यवहार अपनी विशाल प्रजा के प्रति अविवेचनीय है। जब वे शाहज़ादा थे, उस समय भी उन्हें थानेश्वर के हिन्दू तालाबों पर आक्रमण करने से रोका गया था…जैसाकि मन्दरेल, उतगीर और नरवर के व्यवहार से प्रगट होता है, सिकन्दर प्रायः मन्दिरों को नष्ट कर देते थे और उनके स्थान पर मस्जिद तथा जन-कल्याण के भवन बना देते थे। मथुरा में उन्होंने हिन्दुओं को पवित्र घाटों पर स्नान तथा क्षौर-कर्म करने से रोक दिया था।

उन्होंने नगरकोट से लाई हुई खंडित हिन्दू प्रतिमाओं को तोल का बट्टा बनाने के लिए कसाइयों को दे दिया था। इन सबसे बढ़कर उन्होंने उलेमाओं से विचार-विमर्श कर बोधन ब्राह्मण को, जिसने अपने धर्म के साथ-साथ इस्लाम की सच्चाई भी स्वीकार की थी, मरवा डाला था।"

इसके उपरान्त भी ये ही दोनों लेखक शैक्षणिक-नटों की कलाबाज़ी दिखाते हैं और सिकन्दर लोदी के न्याय, उचित-व्यवहार, धार्मिकता और शासकीय सूक्ष्म दृष्टि की प्रशंसा करने लग जाते हैं। भारत की ऐतिहासिक विद्वत्ता का यह दुखान्त दृश्य है। ये लोग एक ही मुँह से निन्दा और प्रशंसा दोनों करते हैं। इस प्रकार साम्प्रदायिक और राजनीतिक उद्देश्य से लोगों के दिमाग की धुलाई तथा मस्तिष्क की सफ़ाई कई पीढ़ियों से होती चली आ रही है। ऐतिहासिक विषयों के लेखकों में इस धुलाई और सफ़ाई के शोकपूर्ण चिह्न प्रगट होने लगे हैं। इसके कारण एक ही पृष्ठ के विभिन्न अनुच्छेदों में स्वाभाविक विरोध आ गया है और इस विरोध को समझने की उनकी क्षमता नष्ट हो गई है।

भारतीय विद्या भवन अपने ग्रन्थ ६ के पृष्ठ १४५-४७ पर लिखता है कि "धार्मिक और परिष्कृत गुणों से सम्पन्न तुच्छ (विवादों और) बातों से अलग रहते थे...उन्हें अयोग्य मनुष्यों का साथ पसन्द नहीं था। कुछ लेखकों ने लिखा है कि वे छिपकर शराब पीते थे। मगर तत्कालीन इतिहासकार मुश्ताक़ी के अनुसार किसी ने भी उन्हें न तो शराब पीते देखा है, न उन्हें डगमगाती हालत में देखा है। वे अत्यधिक उदार थे। उन्होंने सारे राज्य में भोजन, वस्त्र आदि आवश्यक चीजें दान करने की बड़ी व्यापक व्यवस्था की थी।...ग्राम शासन, आर्थिक उन्नति, और न्याय के मामलों में उन्होंने अपनी प्रजा में कोई भेद-भाव नहीं किया था।"

प्रारम्भिक निन्द्य उद्धरण के प्रकाश में इस प्रशंसात्मक उद्धरण की संगति बिठाने पर पाठक स्पष्ट रूप से समझ सकते हैं कि सिकन्दर का बहु-प्रशंसित न्याय हिन्दुओं की हत्या करना था। बड़ी दरियादिली से कसाइयों को तोलने का बट्टा बनाने के लिए हिन्दुओं की खंडित देव-प्रतिमाएँ देने में उसकी उदारता निहित थी। शराब की महफ़िलों में कामुक तुकबन्दी जोड़ने तक उसका कविता और संगीत-प्रेम था। साहित्य-संरक्षण में उसने हाथ पसारे, स्तुति-गायकों की ओर कुछ सिक्के फेंके थे। अयोग्य

मनुष्यों को अपनी संगत से छाँटने का अर्थ था—कम पापियों को अपने पास न फटकने देना।

भारतीय विद्या भवन की भाँति श्री एस० आर० शर्मा को भी शैक्षणिक कलाबाजी का दौरा पड़ा। सिकन्दर की जन्मजात दुष्टता और नीचता के बारे में जो कुछ भी उन्होंने कहा, उसे भूलकर अपनी पुस्तक के पृष्ठ १५४ पर उन्होंने लिखा है—"अपनी कट्टरता को छोड़कर सिकन्दर एक अच्छे योग्य शासक थे। अगर उन्हें कहीं जरा-सी गड़बड़ी का आभास होता था तो वे तुरन्त उसकी खोज करवाते थे। बड़ी बारीकी से हिसाब-किताब की जाँच और परख की जाती थी तथा गरीबों का हमेशा संरक्षण होता था।"

भारतीय विद्याभवन और श्री शर्मा दोनों हमें विश्वास दिलाना चाहते हैं कि धर्मान्ध कसाई सिकन्दर लोदी का शासन इतना उचित और सही था कि हमारे २०वीं शताब्दी के रिज़र्व बैंक, धर्म-निरपेक्ष शासन और सुप्रीम कोर्ट उसके आगे पानी भरते हैं। अगर ऐसी बात है तो हमारी सरकार को इस युग में कुछ नहीं करना है उसे सिर्फ़ नक़ल करनी है। सिकन्दर लोदी के मूर्ख, कट्टर और खूनी कारनामों की नक़ल-रबर मोहर छाप की तरह नक़ल, और कुछ नहीं।

हमें हमारी बेबस पीढ़ी पर दया आती है जिन्हें इतिहास के नाम पर इस प्रकार की परस्पर विरोधी और अर्थहीन बकवासें पढ़ाई-रटाई जाती हैं। सारे तर्क और प्रमाणों के न्याय का गला घोंटने वाली ऐसी पढ़ाई के कारण ही शायद हमारा शिक्षण एवं राजनीतिक नेतृत्व इस प्रकार डगमगा रहा है। वह निर्बल, अंधा, दुविधापूर्ण और लचीला हो गया है। सीधे-सादे मगर अच्छे विचारों वाले उदार लोगों के चन्दों से चलने वाली भारतीय विद्याभवन जैसी संस्थाएँ भारतीय बोतल में झूठी ऐतिहासिक गप्पों की विदेशी शराब सर्व करती है। ख़तरनाक ख्याति वाले विद्वान् इसे अपनी सील मोहर से अनुमोदित करते है। इसमें से सत्य को छानने की क़तई ज़रूरत नहीं समझी जाती। क्या यह शोक और शर्म की बात नहीं है?

अगर इतिहास की पाठ्य-पुस्तकों के लेखकों को लूट, बलात्कार तथा नर-संहार को धार्मिकता और न्याय कहकर चमकाने, सजाने दिया जाएगा; किसी बर्बर अकबर, बाबर या किसी तुग़लक़, लोदी के कल्पित सुधारों का विस्तृत वर्णन, हमारे मासूम छात्रों को करने दिया जाएगा तो अब यह

समय आ गया है, जब हमारे छात्र एवं उनके संरक्षक आगे आएँ और सच्चाई की इस तोड़-मरोड़ को रोकें।

प्रत्येक मुस्लिम शासक के समान सिकन्दर के सामने भी पहला काम अपने विरोधियों को खत्म या अपंग करना था। क्रूरतम प्रवीणता के साथ उसने इस कार्य को पूर्ण किया। भाई आलम खाँ से सिकन्दर की निरंकुशता स्वीकार कराई गई। भतीजे आज़म खाँ और चाचा इंशा खाँ का दमन किया गया। भाई बरबक ने सिकन्दर को दो-दो हाथ करने के लिए ललकारा। यद्यपि वह दिल्ली की गद्दी नहीं छीन सका मगर उसने जौनपुर पर अपनी सार्वभौमिकता मनवा कर ही छोड़ी। बर्बर, धर्मान्ध और असुरक्षित मुस्लिम सुलतानों के अविराम क्रूर-अत्याचारों के कारण कराहती जौनपुर की हिन्दू जनता ने अपने विदेशी और पाशविक अत्याचारियों को मार भगाने के लिए विद्रोह खड़ा कर दिया। एक वीर राजपूत सरदार जूगा उनका नायक था। जूगा के कुशल नेतृत्व में राजपूत जाति बचगोति ने मुस्लिम गिरोह का अधिकांश भाग साफ़ कर दिया। मक्कार सिकन्दर इस अवसर से कैसे चूक सकता था। उसने अपने दुर्बल भाई को गद्दी से हटा कर उसके राज्य को अपने राज्य में मिला लिया। उसे तहखाने में फेंक दिया।

जौनपुर की गद्दी पर पुनः अपना अधिकार करने के लिए अब एक तीसरा मुसलमान हुसैन शर्क़ी सामने आया। इस जौनपुर का अपहरण कर उसके पूर्वजों ने अपना शासन चलाया था। उसने जूगा से अपना सम्पर्क बनाया। हिन्दुओं को घृणा की दृष्टि से देखने वाला सिकन्दर जूगा को जाउन्द दुर्ग से हटा नहीं सका था। उसने शर्क़ी को समाचार भेजा कि एक मुसलमान होने के नाते यह आपका कर्तव्य है कि आप एक हिन्दू जूगा को धोखे से फन्दे में डाल दें और आप ऐसा करेंगे तो मैं सिकन्दर के जाल में फँसे हिन्दू मेज़बानों का रक्त पीकर तृप्त हो जाऊँगा और आपको जौनपुर का स्वतंत्र शासक मान लूँगा। मगर हुसैन शर्क़ी जानता था कि वह सिकन्दर लोदी जैसे दुष्ट के बदले एक हिन्दू जूगा का विश्वास कर सकता है। वह सिकन्दर लोदी के साम्प्रदायिक फन्दे में नहीं फँसा। बाद में कई लड़ाइयाँ हुई, अन्त में हुसैन शर्क़ी को बंगाल भागना पड़ा।

हिन्दुस्तान को लूटने वाले दो विरोधी मुसलमानों के इस अभियान में [illegible] के राज्य को भूखे

गिद्धों की तरह खा डाला। यह पन्ना राज्य के अधीन था। जातिगत और स्वाभाविक मुस्लिम रणनीति के अनुसार विदेशी मुस्लिम गिरोह के डाकुओं की भाँति, जहाँ तक हो सका वहाँ तक राज्य की सेना से बचकर, राय-बलभद्र की सीमा में निर्मम अत्याचारों की वर्षा की। खड़ी फसलें जला दीं। बेचारे गरीब किसानों की गर्दनें मार दीं। उनकी स्त्रियों और बच्चों को मुसलमान बना लिया। सारे मन्दिर मस्जिद बन गये।

इन अभियानों के वर्णनों में मध्यकालीन मुस्लिम इतिहासों की स्वाभाविक और जातिगत चापलूसी, जालसाज़ी तथा कुतर्क के एक विचित्र नमूने से हमारा सामना हो जाता है। "तारीखे खाँ जहान लोदी" के लेखक और पालतू लिपिक नियामतुल्ला कहते हैं कि "ठीक उसी समय अपने सन्देही स्वभाव के कारण राय बलभद्र पड़ाव का सारा साज़ो-सामान छोड़कर भाग गये।" बड़ी धृष्टता से वे आगे लिखते हैं कि "सुलतान ने उनकी सारी सम्पत्ति एक जगह जमा करने की आज्ञा दी और उसे राजा के पास भेज दिया।" बड़े दुःख की बात है कि हमारे इतिहासकार बिना सोचे-समझे ऐसी कड़वी झूठ को भी निगल जाते हैं। अधिक व्यावहारिक और तर्क-संगत विचार सर एच० एम० इलियट, पृष्ठ ६४, ग्रन्थ ५ के पृष्ठान्त में प्रकट करते हैं कि "ठीक इसके विपरीत मख्जान-ए-अफ़गानी कहते हैं कि सुलतान ने इसे लूट लेने की आज्ञा दी जो एकदम संगत और सम्भव है।" इस कारण हमारे इतिहासकारों को सचेत हो जाना चाहिए कि प्रसंग के विरुद्ध और विपरीत जो कुछ भी भावात्मक बकवास उनके सामने आती है, उसके बारे में वे तुरन्त यह समझ लें कि यह "एक धृष्ट और मजेदार धोखा" है।

वास्तविक खेल यह था कि "अरेल पहुँचने पर सुलतान ने उस परगने के नागरिकों और उद्यानों को नष्ट करने की आज्ञा दे दी।" चूँकि क़ासिम से लेकर बहादुरशाह जफ़र तक सारे विदेशी मुस्लिम शासक एक ही धर्मान्ध और कट्टर मार्ग पर चले हैं, सिकन्दर लोदी की यह गुण्डागर्दी इस बात को प्रमाणित करने के लिए काफी है। एक उद्यान बनाना तो दूर रहा इन विदेशी मुस्लिम गुण्डों ने भारत के बाग़ों का सत्यानाश ही किया है। सर्व-सत्यानाशी आक्रमणों से पहले भारत एक उपवनों का देश था। इन उपवनों को यहाँ के सभ्य और सुसंस्कृत क्षत्रियों ने हज़ारों वर्षों से

सजाया और सँवारा था। इन हज़ारों उपवनों में जो दो-चार बचे हैं, उनके निर्माण का श्रेय कभी इस सुलतान को दिया जाता है तो कभी उस शैतान को।

सिकन्दर लोदी ने कर्रा, दलामऊ और उसके आस-पास के क्षेत्रों को लूटा। दलामऊ में शेर खाँ लोहानी की विधवा सुन्दर पत्नी को सिकन्दर अपने हरम में घसीट लाया। सिकन्दर की सर्व-भक्षी मशाल से जलने वाले दो नगर शम्साबाद और सम्भल भी थे। "शम्साबाद (चाहे इसका जो भी पवित्र हिन्दू नाम रहा हो) की ओर जाते हुए सिकन्दर ने परियोटकल नामक स्थान ध्वस्त कर दिया।" इस्लामी गाल बजाते हुए नियामतुल्ला जैसे पतित इतिहासकार "इसे लुटेरों की नाली और माँद" कहते हैं। (पृष्ठ ९४, ग्रन्थ ५ इलियट एवं डाउसन)। उन्होंने आगे लिखा है कि सुलतान ने "उस विद्रोही गिरोह के बहुत लोगों को तलवार के घाट उतार दिया।" इस प्रकार लोभी विदेशी मुस्लिमों से अपने ही देश में अपने भोजन, गृह और नारी-पवित्रता के लिए लड़ने वाले हिन्दुओं के सारे मुस्लिम इतिहासकारों ने "कुत्ता, चोर, डाकू, लुटेरा, नास्तिक, दस्यु, गन्दगी, मल और नाली" कहा है। पतित विदेशी चापलूसों और खुशामदी पदयात्रियों ने ऐसा ही अपमानजनक, गालीपूर्ण और मायावी इतिहास लिखा है। ये ही निन्दात्मक इतिहास हमारे पवित्र इतिहासों के उद्गम हैं, जिन्हें बड़ी उमंग और उत्साह से हमारे स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाता है।

वीर हिन्दू राजा बलभद्र और उन्हीं के समान उनके वीर पुत्र वीरसिंह देव ने लालची मुसलमानों का जीना हराम कर दिया। सिकन्दर उनकी सेना से बचता रहा और पन्ना राज्य की सीमाओं में लूट-पाट मचाकर निर्दोष नागरिकों को काट-काट कर फेंकता रहा। वृद्धावस्था से अशक्त और मुस्लिम शत्रुओं द्वारा अपनी प्यारी प्रजा की चमड़ी छीलने और चाबुक-प्रहार से दुखित बलभद्र राय ने सरगुजा जाते समय अपनी अन्तिम साँस ली। मगर उनके वीर पुत्र वीरसिंह देव ने अपना नाम सार्थक किया। फफूँद में उन्होंने सिकन्दर लोदी के सिर पर ऐसा प्रहार किया कि "सिकन्दर को जौनपुर भागने के लिए विवश होना पड़ा। (उसके पास) अनाज, अफ़ीम (जो इन क्रूर भोगियों का टॉनिक था), नमक और तेल का एकदम अभाव हो गया। उनके सारे घोड़े नष्ट हो गए।" बिहार की सीमा पर मँडराने

वाले बिहार के पूर्ववर्ती मुस्लिम शासक हुसैन शर्की ने सिकन्दर का पीछा कर उसकी हालत और पतली कर दी। वीरसिंह देव के भाई लक्ष्मी चन्द तथा सिकन्दर की खूंखार क्रूरताओं के शिकार अनेक राजपूत सरदारों ने अपनी-अपनी सेनाएँ तैयार कीं और इस भेड़िए सिकन्दर का पीछा किया। सिकन्दर लोदी ने भागने और बचने में रिकार्ड कायम कर दिया। एक बार तो ऐसा लगा कि भाग्य इस मुस्लिम-राक्षस को दण्ड देने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ हो चुका है। गंगा पारकर सिकन्दर चुनार भाग गया। मगर यहाँ से भी उसे जान ले भागना पड़ा। झुंझला और खिसियाकर वाराणसी पर झपट पड़ा। उसे विश्वास था कि यहाँ हिन्दू तीर्थ-यात्रियों के अबाध प्रवाह को लूट-मारकर वह अपनी दुष्ट सेना का पेट भरने के लिए प्रचुर खाना-दाना बटोर सकता है। बाद में यहाँ से भी उसे रगेदा गया। वह जान लेकर फिर भागा।

चारों ओर की घुड़कियों से परेशान होकर सिकन्दर ने स्व० राजा बल-भद्र राय के पुत्र शालिवाहन के पास दया और शान्ति की भीख मांगने अपने दरबारी ख़ान खानान को दूत बनाकर भेजा। अपने इस अभियान में "सिकन्दर ने बिहार को बरबाद करने के लिए देवबार के पड़ाव से एक सैन्य टुकड़ी ली। उसने दरवेश पुर और तिरहुत जिला भी नष्ट कर दिया।" यहाँ की आतंकित जनता से उसने एक डकैत की भाँति लाखों टंके चूस लिये।

इस प्रकार एक वास्तविक शैतान की भाँति सिकन्दर का सारा जीवन लूट, बलात्कार, नर-संहार, विनाश, हिन्दुओं के सामूहिक इस्लामीकरण और मुस्लिम दुर्व्यवहार के लिए सारे हिन्दू मन्दिर और महलों के मस्जिद और मकबरे में रूपान्तरण की एक दुःख भरी लम्बी गाथा है। किस प्रकार मुसलमानों ने अपने सहस्त्रवर्षीय विनाश और लूट से भव्य-भवनों, सम्पन्न मन्दिरों और सुवासित उपवनों से भरे-पूरे और फलते-फूलते हिन्दुस्तान को बिखरे खंडहरों, निर्धन झोपड़ियों और उजड़े रेगिस्तान में बदल दिया है, सिक़न्दर का शासन इसका एक ज्वलन्त उदाहरण है। मगर जले पर नमक छिड़कते और नीबू निचोड़ते हुए इन्हीं दुष्टों को बड़े श्रम से सुन्दर बागों और भव्य यादगारों के निर्माता होने का श्रेय दिया जाता है।

दिल्ली से सिकन्दर की लम्बी अनुपस्थिति का लाभ दिल्ली के गवर्नर

असग़ार ने उठाया। एक सुलतान की भाँति उसने इसपर शासन किया और सिकन्दर के हरम की स्त्रियों तथा लूटमार का मनचाहा उपयोग और उपभोग किया। अपनी राजधानी से हमेशा के लिए निर्वासित हो जाने की आशंका से आतंकित होकर सिकन्दर ने खवास खाँ को बड़ी सेना के साथ वहाँ भेजा। सम्भल तक असग़ार का पीछा किया और अगस्त, १५०० ई० को उसे पकड़कर तहखाने में फेंक दिया गया। सईद खाँ, तातार खाँ, मुहम्मद शाह आदि असंतुष्ट मुस्लिम लुटेरों ने सुलतान के असीम लोभ और व्यभिचार से विरक्त होकर दरबार त्याग दिया। अब वे मालवा और गुजरात के हिंदू नागरिकों तथा कृषकों का शिकार करने निकल पड़े।

ग्वालियर दूत निहाल को रोककर सिकन्दर ने अपनी स्वाभाविक इस्लामी धोखेबाज़ी से ग्वालियर के रावसिंह से सन्धि-वार्ता प्रारम्भ कर दी। वीर निहाल मुस्लिम धोखेबाज़ की घुड़कियों से उत्तेजित हो उठे। उसने कायर, कपटी और नीच व्यवहार के लिए सिकन्दर को बीच दरबार में बार-बार धिक्कारा। सिकन्दर ने क्रोधित होकर गरजते हुए हिंदू राज्य ग्वालियर को नेस्तोनाबूद करने की क़सम खा ली।

बयाना-दुर्ग सुलतान के असंतुष्ट दरबारियों के विरोध-प्रदर्शन का केन्द्र बन गया। खिसियाई बिल्ली के समान सिकन्दर ने अपने इस्लामी-रोष का बम धौलपुर के हिन्दू राज्य पर फोड़ दिया। धौलपुर के राजा और उनकी सेना से बचकर स्वाभाविक इस्लामी रण नीति के अनुसार इस्लामी गिरोह हिन्दू नागरिकों के घरों, खेतों, और खलिहानों पर झपटता था। कूटने, पीटने, लूटने तथा नारी-बलात्कार, इस्लामीकरण एवं धर्मान्तरण द्वारा गुलाम बनाने का काम चालू हो गया।

भारत में मुस्लिम-विजय का सारा इतिहास असहाय नागरिकों पर हुए क्रूर चील-झपट्टों का एक अन्तहीन वर्णन है। जबतक हिन्दू राजा और उसकी सेना घटना को समझें और सँभलें, सारे मन्दिर मस्जिदों में बदल जाते थे। चाकू की तीक्ष्ण धार पर सारी जनता का मुसलमानीकरण हो जाता था। उस क्षेत्र के अपने परिवारों और रिश्तेदारों के इस इस्लामीकरण से हिन्दू सैनिक एकदम हक्के-बक्के से रह जाते थे तथा वे अपने आपको अलग-थलग महसूस करने लगते थे। लड़ाई में उनका उत्साह नष्ट हो जाता था। तब या तो वे बेमन से विरोध करते थे या पीड़ा

और निराशा से हाथ मलते पड़ोसी हिन्दू क्षेत्रों में चले जाते थे। यह एक नया शत्रु था जो एक नई रण-पद्धति से लड़ता था। रातों रात श्रद्धालु हिन्दू कट्टर विदेशी हो जाते थे। वे अपने आपको लालची अरब और विलासी तुर्क समझने लगते थे और अपने ही पूर्ववर्ती भाइयों तथा बहनों को फाड़ खाने के लिए मुँह फाड़ लेते थे।

जबकि इस्लाम की सर्व-भक्षी तलवार ने पश्चिम में अल्जीरिया से लेकर पूर्व में जावा और मलाया तक के सारे राष्ट्रों का मलबा ऐसा गिराया कि भयभीत होकर इन देशों के अन्तिम व्यक्ति ने भी काँपते हुए इस्लाम स्वीकार कर लिया, तब अन्त में हिन्दू और हिन्दुस्तान के गौरव, साहस और शौर्य को यह श्रेय मिलना ही चाहिए कि इन लोगों ने हज़ार वर्षों तक अटल और अडिग होकर इस्लामी दुष्टता का सामना अन्त तक किया है। इस पर भी हिन्दुत्व इस पैशाचिक यातना, नारकीय अत्याचार और क्रूर अपमान से साफ़ बच सकता था अगर वह जीवन-मरण के इस संग्राम से स्वयं शत्रु की कुछ सीख सीख लेता।

हमें इन नये मुसलमानों को वापिस हिन्दुत्व में दीक्षित ही नहीं करना था वरन् एक हिन्दू धर्मान्तिरण के लिए कम-से-कम १० अरबी, तुर्क, अफ़गान और अबीसीनियों को हिन्दुत्व में दीक्षा देकर पूर्ण प्रतिशोध भी लेना था। इससे इस्लाम का यह आतंककारी और चूर्ण-कर्त्री चक्की उल्टी और पूर्व की ओर बढ़ने की बजाय लाहौर तथा पेशावर से चलकर काबुल, समरकन्द, तेहरान, बग़दाद, मक्का, कैरो और मोरक्को होकर अल्जीरिया तक पहुँच जाती।

इससे हिन्दुत्व और हिन्दुस्तान को ही लाभ नहीं होता वरन् इस्लाम के नाम पर संसार में आतंक और विनाश मचाने वाले बर्बर जंगली गिरोह के क्रूर-करों से पीड़ा और यातना पाने वाली नारियों और बालकों को बचाया भी जा सकता था। मगर शोक ! हिन्दुओं ने इतिहास के प्रति लापरवाही बरती है। शत्रु की कार्य-प्रणाली से कुछ सीखना तो दूर रहा, मित्रों की सलाह सुनकर कानों में रूई ठूँस ली है।

धौलपुर इन्हीं कार्य-प्रणालियों का शिकार हो गया। नियामतुल्ला हमें बताते हैं कि "सारी मुस्लिम सेना को लूट-मार में लगा दिया गया था और बयाना के चारों ओर सात कोस तक फैली झाड़ियों और वृक्षों को जड़ से

उखाड़कर फेंक दिया गया था।" अब हमें मालूम हुआ कि राजस्थान रेगिस्तान क्यों है ? घने छायादार वृक्षों से आवेष्टित चार सौ मील लम्बा लाहौर-आगरा का प्राचीन हिन्दू राजपथ सुखद छाया से हीन,-विधवा जैसा उजड़ा क्यों है ? एक महीने तक सिकन्दर धौलपुर में हिन्दू विनाश का मलबा बिखेरता रहा। अगर एक सिकन्दर अपने लूट और विनाश के उन्माद में धौलपुर को एक महीने में ही फ़कीर बना सकता था तो हज़ार वर्षों तक बार-बार चलने वाले इन म्लेच्छों के लूट-अभियानों ने भारत में प्रलय की कैसी आँधी चलाई होगी, कोई भी समझदार व्यक्ति आसानी से इसका अनुमान लगा सकता है। इसपर भी हमारे इतिहासकार बड़ी उमंग और उत्साह से लोगों को बतलाते हैं कि प्रत्येक विदेशी मुस्लिम शासक ने अपने-अपने शासनकाल में भारत पर दोस्ती, सम्पन्नता, खुशहाली, गौरव और महानता की वर्षा की है। क्या ऐसा लिखने वाले इतिहास और सच्चाई के दुश्मन नहीं हैं ?

एक के बाद दूसरे हिन्दू क्षेत्रों को निगलने वाला सिकन्दर सचमुच एक नर-भक्षी था। वह प्लेग की भाँति ग्वालियर पर बरस पड़ा। ग्वालियर गढ़ की पहाड़ियों के नीचे भव्य भवनों का समूह है। ग्वालियर दुर्ग द्वार के ओर अनेक महल खड़े हैं। वहीं वे महल भी हैं, जिन्हें हम आज भ्रम और भूल से मुहम्मद गौस और तानसेन का मकबरा मानते हैं। ये सभी प्राचीन हिन्दू महल और मन्दिर हैं। सिकन्दर लोदी जैसे विदेशी मुसलमानों के अविराम चील-झपट्टों में ये बरबाद हुए, इनपर अधिकार हुआ और दुरु-पयोग हुआ। इतिहास से अनजान हमारे शिल्पियों, वास्तुकारों और इन्जी-नियरों को रटा-रटाकर यह यक़ीन दिलाया जाता है कि ये मन्दिर, जिन की पावन-प्रतिमाओं को फेंककर इन्हें आक्रमणकारियों की कब्रों से सजाया गया है, सेरासेनिक कला के नमूने हैं।

राजा मानसिंह और उनके वीर पुत्र विक्रमादित्य ने सिकन्दर लोदी को मार भगाया। इसी बीच राजा विनायक देव ने धौलपुर पर फिर अपना अधिकार कर लिया। भारतीय इतिहास के छात्रों को सच्चाई छानने के लिए मायावी मुस्लिम इतिहासों की पंक्तियाँ ध्यान से पढ़नी चाहिए। भारत में हज़ार वर्षों तक चलने वाली अपनी लालची लूट में सभी मुस्लिम इतिहासकारों ने हिन्दुओं से हुई प्रत्येक लड़ाई में एक स्वर से "इस्लामी-

सेना की विजय" का डंका बजाया है। शायद ही कभी उन लोगों ने पराजय या पलायन स्वीकार किया हो। अतएव जहाँ कहीं भी यह वर्णन है कि मुस्लिम सुलतान ने हिन्दू शासक का "समर्पण स्वीकार कर लिया" या "उन्हें अपना शासन चलाने की अनुमति दे दी" और सुलतान अपनी राजधानी वापिस लौट गये तो बिना झिझके और अटके यह समझ लेना चाहिए कि मुस्लिम शैतान सुलतान या उसके गुर्गे को पीठ दिखाकर, दुम दबाकर, और सिर पर पैर रखकर भागना पड़ा था।

जहाँ कहीं भी मुस्लिम इतिहासकार यह लिखते हैं कि आक्रमणकारी मुस्लिम शैतान ने मन्दिर नष्ट कर मस्जिद बना दी, तो इस लेख से यही समझना चाहिए कि उसने मन्दिर से प्रतिमा उठाकर फेंक दी, मन्दिर के भवन में नमाज़ पढ़ ली और मस्जिद तैयार हो गई।

मध्यकालीन मुस्लिम शब्दों के प्रयोग, अलंकार और मुहावरों के उपयुक्त अर्थ की व्याख्या, समझ और गम्भीरता के अभाव में भारतीय इतिहास विषाक्त हो गया है। इस इतिहास के द्वारा संगीत और वास्तुकला भी विषाक्त हो गई है। भारतीय विद्या भवन जैसी संस्थाएँ सारे संसार में बिखरी हुई हैं। इसके संचालक विख्यात और धुरंधर विद्वान् हैं। ऐसे दिग्गज विद्वान् भी एक भोले-भोले मासूम व्यक्ति की भाँति मुस्लिम इतिहास-लेखन षड्यन्त्र के कपट और कुतर्क के जाल में फँसकर धोखा खा गए हैं। इसी कारण सारे संसार के स्कूलों और कालिजों में पढ़ाया जाने वाला हिन्दुस्तान का इतिहास शैक्षणिक-सादगी और विरोधी बयानों का एक गड़बड़झाला बन गया है। उदाहरण के लिए बड़े विद्वत्तापूर्ण तरीकों से पाठकों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह विश्वास दिलाया जा रहा है कि सारे शहर के नागरिकों को काटकर कीमा और खिचड़ी बनाने वाले, उस कीमे और खिचड़ी में गौमांस, बोटियाँ और देव-प्रतिमाओं का चूरन मिलाने वाले बड़े धुरन्धर-विद्वान्, न्यायी शासक और सभ्य इन्सान थे। ऐसी असंगति, कुतर्क और जालसाजी मानव-साहित्य के किसी भी विभाग में तथा संसार के किसी भी भाग में बेजोड़ है, अद्वितीय है, अकेली है। एकोऽहम् द्वितीयोनास्ति है। 'सत्यमेव जयते' के इस देश भारत में सच्चाई की तोड़-मरोड़ न सिर्फ बरदाश्त की जा रही है; वरन् धर्म-निरपेक्षता, साम्प्रदायिक मैत्री और पारस्परिक-प्रेम के नाम पर इसे महान् बताकर लहराया फहराया भी जाता है।

अपने प्रारम्भिक विनाश के बाद ग्वालियर और धौलपुर से भगाये जाने पर सिकन्दर को सारी वर्षा ऋतु बयाना दुर्ग के समीपवर्ती जंगल में छिपकर गुजारनी पड़ी।

१५०४ ई० में भूखे भेड़िए की भाँति सिकन्दर मन्दरैल दुर्ग के आस पास रहने वाली हिन्दू जनता का शिकार करने के लिए टूट पड़ा। दुर्ग पर अधिकार करने के बाद "सुलतान ने मन्दिर को नष्ट करने और उन के स्थान पर मस्जिद बनाने की आज्ञा दी। दुर्ग की रक्षा के लिए मियाँ माकन और मुजाहिद खाँ को छोड़कर वे खुद आसपास की जमीन को लूटने निकले जहाँ उन्होंने बहुत से लोगों को कसाई की भाँति काट डाला, बहुतों को बन्दी बना लिया तथा सारी झाड़-झाड़ियों और निवास-स्थानों को उखाड़ कर नष्ट कर डाला एवं अपनी प्रतिभा (?) के इस प्रदर्शन से अपने को तृप्त और गौरवान्वित (?) कर वे अपनी राजधानी बयाना लौट आए।" (पृष्ठ ८, ग्रन्थ ५, इलियट एवं डाउसन)। इस प्रकार उन्हीं की पार्टी के मुसलमान नियामतुल्ला प्रमाणित करते हैं कि सिकन्दर वृक्षों, प्रतिमाओं और मनुष्यों को खत्म करने वाला एक कसाई था, एक जल्लाद था। मगर श्री आर० सी० मजूमदार एवं श्री एस० आर० शर्मा जैसे विद्वान् सर्टीफाई करते हैं कि वह कसाई एक बहुत योग्य और न्यायी शासक था। क्या इस बेवकूफी का कोई जवाब है ?

नियामतुल्ला कहते हैं कि "उस साल हवा की गर्मी इतनी तेज हो गई थी कि प्राय: सभी आदमी बुखार में छटपटाने लगे। इस बार बहुत दिन व्यतीत हो जाने के बाद सुलतान को यमुना नदी के किनारे एक शहर बनाने का ध्यान आया जो सुलतान का मुख्यालय और सेना का निवास-स्थान दोनों होता। साथ ही उस हिस्से के बागियों के दिल में डर भी पैदा करता।...इस विचार से इन्होंने १५०५ में कुछ काजियों और बुद्धिमानों को यमुना तट का निरीक्षण कर उपयुक्त स्थान की रिपोर्ट देने के लिए नियुक्त किया। तदनुसार निरीक्षण दल के लोग, नावों पर बैठ, दिल्ली से चले और सावधानी से दोनों किनारों (की ज़मीन) को देखते-भालते आगे बढ़े। अन्त में ये लोग उस स्थान पर आ गए जहाँ अब आगरा खड़ा है। इसको उपयुक्त समझकर उन लोगों ने अपना चुनाव सुलतान को सूचित कर दिया। इस पर उन्होंने दिल्ली छोड़ी और मथुरा चले गए। यहाँ उन्होंने नाव ली और सारे रास्ते तरह-तरह की क्रीड़ाओं से अपना दिल

बहलाते रहे। जब वे निश्चित स्थान पर पहुँचे तो उन्होंने दो ऊँचे स्थान देखे जो भवन निर्माण के उपयुक्त प्रतीत होते थे। सुलतान ने मुल्लाखाँ से पूछा कि इन दो ऊँचे स्थानों में तुम्हें कौन-सा स्थान अधिक उपयुक्त नजर आता है। उन्होंने उत्तर दिया कि वह जो अग्र है (यानी आगे है) अधिक उपयुक्त है। सुलतान मुस्कराए और कहा कि तब इस शहर का नाम अग्र ही होगा।"

इस प्रकार नियामतुल्ला जैसे गुलाम की कलम के एक झटके ने न सिर्फ आगरा के प्राचीन हिन्दू नगर पर अपना दावा पेश कर दिया वरन् इसके संस्कृत नाम को भी पशुतुल्य सिकन्दर का निर्माण बता दिया।

मुस्लिम कुतर्क का यह एक जाना-पहचाना नमूना है। मुस्लिम इतिहासों में कदम-कदम पर इससे भेंट होती है। प्रत्येक मुस्लिम इतिहास में सुलतानों और शैतानों का कुछ ऐसा चित्र पेश किया जाता है कि वे सवारी या नाव पर बैठे एक महल की ओर जा रहे हैं, वे मुस्कराते हैं और एक शहर बनाने की आज्ञा देते हैं, इधर उनके मुँह से शब्द पूरी तरह से निकल भी नहीं पाता कि चिरागे अलादीन के जादू से शहर बनकर तैयार है। इस प्रकार हुमायूँ, अकबर, शाहजहाँ, सिकन्दर लोदी, फिरोजशाह तुगलक, अहमदशाह और मुहम्मद जैसे लुटेरों को इलाहाबाद, अहमदाबाद, आगरा, दिल्ली, फतहपुर सीकरी, फिरोजाबाद, फ़तहबाद, आदि न जाने कितने नगरों के बनाने और बसाने का श्रेय दिया। एक दूसरी जालसाजी है जिस में भारतीय इतिहास के विद्वान् बड़ी आसानी से फँस गए हैं। सिकन्दर लोदी को आगरा-निर्माण का श्रेय देने वाले नियामतुल्ला के वर्णन से हमें ठीक इसका उलटा समझना चाहिए यानी आगरा बनाना तो दूर रहा, इस शैतानराज ने उसे सैकड़ों बार लूटा है। यह हमारी दूसरी खोज है। जहाँ कहीं भी किसी सुलतान या शैतान का नाम किसी महल या नगर से सम्बद्ध हुआ है, वह उसका निर्माता नहीं विध्वंसक है।

आगरा से छः मील उत्तर में एक नगर है। इसे आज सिकन्दरा कहते हैं। यहाँ प्राचीन हिन्दू महलों के मलबे बिखरे हुए हैं। इस नगर में चतुर्भुज आकार के अनेक कुएँ और बावड़ियाँ हैं। अनेक नगरों की भाँति इस प्राचीन हिन्दू नगर को सिकन्दर ने नष्ट कर दिया था और नष्ट करने के बाद इसे अपना मुख्यालय भी बनाया था। जिस हिन्दू महल का

अपहरण कर इस मुस्लिम शैतान ने अपना डेरा डाला उसे अकबर के मकबरे का बुर्का उढ़ाकर बैठा दिया गया है। उसके बारे में हमें बताया जाता है कि उसका निर्माण या तो अकबर ने किया था, या जहाँगीर ने या फिर दोनों ने मिलजुल कर। यह एक दूसरी जालसाजी है। जिस महल पर सिकन्दर लोदी ने पहले अपना कब्जा जमाया था, बाद में अकबर उसी महल में मरा था। उलझे त्रिकोणों का गुप्त हिन्दूशक्ति-चक्र तथा अन्य अनेक हिन्दू-अलंकरण एवं चिह्न अभी भी इस महल में जगह-जगह पर देखे जा सकते हैं।

हमें बताया जाता है कि सिकन्दर लोदी ने न सिर्फ आगरा का निर्माण किया है वरन उसी ने इसका दुर्ग भी बनाया है। कुछ वर्षों के बाद हमें यह सुनाई देता है कि अकबर ने एक बार फिर इस निर्मित दुर्ग का निर्माण किया। इस प्रकार प्रत्येक मुस्लिम शासक को आगरा, दिल्ली आदि नगरों और उनके दुर्गों को बार-बार बनाने का बार-बार श्रेय दिया जाता है जबकि ये सभी प्राचीन हिन्दुस्तान के बचे हुए चिह्न हैं। उनके झूठे और चापलूस दरबारी इतिहासकारों ने अपने मालिकों के नाम से इन नगरों और दुर्गों का निर्माण कागजों पर न जाने कितनी बार किया है।

विनायक देव के हाथों मिली पराजय सिकन्दर के मुस्लिम-दल में काँटे की तरह चुभ रही थी। अपने इस जाली नगर-निर्माण के उत्सव के बाद सिकन्दर ने एक बार फिर धौलपुर पर धावा कर दिया। उसके बारे में हमें बताया जाता है कि उसने इस बार हिन्दू शासक को गद्दी से उखाड़ फेंका और वहाँ मलिक मुइजुद्दीन विराजमान हो गए। मध्यकालीन भारत में जब कभी और जहाँ कहीं भी इस प्रकार का परिवर्तन होता था तब लूट, बलात्कार, नोच-खोंच, धर्मान्तिरण, नर-संहार और मस्जिदीकरण का उत्सव अनिवार्य रूप से मनाया जाता था।

पतित सिकन्दर के विनाश से क्रोधित होकर अल्लाह ने ६ जुलाई, १५०५ ई० रविवार को भूकम्प से आगरा हिलाकर रख दिया। जैसा कि एक अशिक्षित बर्बर से अपेक्षित है, तत्कालीन मुस्लिम इतिहासकारों ने आद-तन इस भूकम्प का बढ़ा-चढ़ाकर अतिशयोक्तिपूर्ण वर्णन किया है। मगर ऐसा प्रतीत होता है कि इस भूकम्प से आगरा के प्राचीन लाल दुर्ग (जिस का निर्माण श्रेय कपट से अकबर को दिया जाता है) का बाल भी बाँका

नहीं हुआ। वह अटल और अक्षत रहा। यह बात इस तथ्य से पूर्णरूपेण प्रमाणित हो जाती है कि सिकन्दर और उसके दुष्ट विदेशी वारिसों ने इस प्राचीन हिन्दू लाल दुर्ग में रहना नहीं छोड़ा।

वर्षा ऋतु के बाद सिकन्दर एक बार फिर हिन्दू क्षेत्रों को लूटने के अपने इस्लामी अभियान पर निकला। इस अभियान में "उसने डेढ़ महीना धौलपुर में बिताया। इसके बाद वे चम्बल चले गए। वहाँ पर वे गौर-घाट के समीप कई महीने तम्बू लगाए पड़े रहे। (इसके बाद हिन्दुओं का रस निकालने) वहाँ शाहजादे जलाल खाँ और अन्य खानों को छोड़कर खुद सिकन्दर जिहाद छेड़ने तथा काफ़िरों की जमीन लूटने आगे बढ़े। उन्होंने जंगलों में भाग जाने वाले बहुत से (हिन्दू) लोगों को एक कसाई की भाँति कटवा डाला। बाकी लोगों को लूटकर बेड़ियों में जकड़ दिया गया।" (पृष्ठ १००, ग्रन्थ ५, इलियट एवं डाउसन)।

इस विनाश से क्रोधित होकर वीर पिता और पुत्र मानसिंह तथा विक्रमादित्य ने मुस्लिम गिरोह का आपूर्ति-मार्ग बन्द कर दिया। वे लोग भूखे मरने लगे। सिकन्दर पर आकस्मिक आक्रमण कर उसकी अधिकांश सेना नष्ट कर दी गई। सिकन्दर भी मरने से बाल-बाल बचा। बचाने वाले दो मुस्लिम गुर्गे दाउद खाँ और अहमद खाँ थे। सिकन्दर की अक्ल गुम हो गई। भय से काँपते हुए सिकन्दर ने आनन्द और मनोरंजन में अपना समय व्यतीत करने का विचार कर लिया। यानी शराब और व्यभिचार में गर्क होने वे तुरन्त आगरा लौट गए।"

मुहम्मद बिन कासिम और महमूद गज़नवी ने बिना एक भी अपवाद के जिस हिन्दू-हत्या, हिन्दू नारी-हरण, हिन्दू बाल-वरण, गुलामीकरण मन्दिरों और महलों के इस्लामीकरण आदि हिन्दू लूट के वार्षिक अभियानों की "विवेकपूर्ण" नींव डाली थी, सिकन्दर लोदी ने बड़े परिश्रम से इस मध्यकालीन मुस्लिम-प्रथा का पालन किया था। तदनुसार वे १५०६ ई० में अवन्त गढ़ की ओर बढ़े। दुर्ग पर घेरा पड़ गया। राजपूत सैनिकों ने कई बार मुस्लिम सेना को बड़ी बुरी तरह हराया। अन्त में "रक्त-पिपासु (मुस्लिम) सैनिक चींटियों की भाँति दीवारों पर चिपक गए। राजपूतों ने अपने अपने घरों में घुसकर अपना विरोध जारी रक्खा और जौहर के रिवाज के अनुसार अपने-अपने परिवारों को मार डाला।" (ताकि वे व्यभिचारी और बर्बर विदेशी मुसलमानों के हाथ न पड़ जाएँ)। दुर्ग का दायित्व सुलतान ने माकोन और मुजाहिद खाँ को दे

दिया। उन्हें इस बात की खास ताक़ीद की गई कि वे मन्दिरों की मूर्तियों को नष्ट कर उसके बदले वहाँ पर मस्जिद बना दें।"

(पृष्ठ १०१, ग्रन्थ ५, इलियट एवं डाउसन)। सुलतान की उद्दंडता, कपट, धोखेबाजी और पाशविकता से भिन्नाकर इसी मुजाहिद खाँ ने सिकन्दर से विद्रोह कर दिया। संगठित अदम्य हिन्दू सेना ने भी भागती मुस्लिम सेना का पीछा किया। मुस्लिम सेना एक संकीर्ण घाटी में फँस गई।" "सारी (मुस्लिम) सेना बड़ी आफत में पड़ गई। पानी का पूर्ण अभाव था। बहुत लोग प्यास से मर गए। पीठ पर बोझ लादे जानवरों को एक स्थान पर जमा किया गया था। उन्होंने बहुतों को कुचल दिया।" इस हिन्दू आक्रमण से आठ सौ मुसलमान नष्ट हो गए।

पाशविक मनोरंजनों से आगरा में वर्षा ऋतु व्यतीत कर सिकन्दर अगले सालाना-विनाश के लिए नरवर की ओर मुड़े। यह मालवा राज्य के अधीन था। "लाहौर में एक महीना रहने के बाद सिकन्दर ने १५०६ ई० में हाथकन्द का मार्ग पकड़ा। उन्होंने इसको मूर्ति-पूजकों और डाकुओं (यानी हिन्दुओं से साफ कर दिया। जब उन्होंने उस स्थान के बागियों (यानी हिन्दुओं) को मौत के घाट उतार दिया और प्रत्येक स्थान पर छोटी (मुस्लिम) चौकियाँ स्थापित कर दीं तब वे अपनी राजधानी वापिस आ गए।" यहाँ उन्हें सूचना मिली कि मुस्लिम व्यवहार से ऊबकर अहमद खाँ (जो सम्भवतः तलवार की नोक पर मुस्लिम बना था) पुनः हिन्दुओं से अपना सम्पर्क बना रहा है और वापिस हिन्दू बनना चाहता है। तब सिकन्दर ने उसे बेड़ियों में जकड़कर शाही दरबार में भेज देने की आज्ञा दी।

सिकन्दर एक बार फिर अवन्तगढ़ और सुइसपुर की ओर बढ़े। राय डूंगर भी साथ थे। इन्हें भाँति-भाँति की पीड़ाएँ देकर मुसलमान बनाया गया था और नाम दिया था हसन, एक विदेशी नाम। जब सिकन्दर इन विनाशों में संलग्न थे तब २१ नवम्बर, १५१७ ई० को गले के कैन्सर से उसकी मृत्यु हो गई।

मध्यकालीन भारत के प्रवीण और क्रूर भरती आफिस के इस्लामी एजेन्टों में शैतानी दिल और दैवी चेहरे वाले सिकन्दर को प्रथम पुरस्कार मिलना ही चाहिए। इस दुष्ट सिकन्दर को एक महान् लोदी शासक के रूप में चित्रित करना मध्यकालीन इतिहास के विद्यार्थियों के विवेक का अपमान है। दिल्ली के राजसिंहासन को नापाक और अपवित्र करने वाले विदेशी दुष्टों और बदमाशों में यह फर्स्ट क्लास दुष्ट और हाईक्लास बदमाश था।

(मदर इण्डिया, मई, १९६८)

□ □ □

पुरुषोत्तम नागेश ओक

जन्म : २ मार्च १९१७, इन्दौर (म० प्र०)
शिक्षा : बम्बई विश्वविद्यालय से एम० ए०, एल-एल० बी०
जीवन कार्य : एक वर्ष तक अध्यापन कर सेना में भर्ती।

द्वितीय विश्व युद्ध में सिंगापुर में नियुक्त। अंगरेजी सेना द्वारा समर्पण के उपरान्त आज़ाद हिन्द फौज के स्थापन में भाग लिया, सैगौन में आज़ाद हिन्द रेडियो में निदेशक के रूप में कार्य किया।

विश्व युद्ध की समाप्ति पर कई देशों के जंगलों में घूमते हुए कलकत्ता पहुँचे। १९४७ से १९७४ तक पत्रिकारिता के क्षेत्र में (हिन्दुस्तान टाइम्स तथा स्टेट्समैन में) कार्य किया तथा भारत सरकार के सूचना प्रसारण मंत्रालय में अधिकारी रहे। फिर अमरीकी दूतावास की सूचना सेवा विभाग में कार्य किया।

देश-विदेश में भ्रमण करते हुए तथा ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण करते हुए उन्होंने कई खोजें कीं। उन खोजों का परिणाम उनकी रचनाओं के रूप में हमें मिलता है। उनकी कुछ रचनाएँ हैं -- ताजमहल मन्दिर भवन है, भारतीय इतिहास की भयंकर भूलें, विश्व इतिहास के विलुप्त अध्याय, वैदिक विश्व राष्ट्र का इतिहास, कौन कहता है अकबर महान था?

उनकी मान्यता है कि पाश्चात्य इतिहासकारों ने इतिहास को भ्रष्ट करने का जो कुप्रयास किया है, वह वैदिक धर्म को नष्ट करने के लिए जानबूझकर किया है और दुर्भाग्यवश हमारे स्वार्थी इतिहासकार इसमें उनका सहयोग कर रहे हैं।



हिन्दी साहित्य सदन
18/28 (मार्ग 28), पंजाबी बाग पूर्वी
नई दिल्ली - 110 026

